ओ३म् तत्सत् परमात्मने नः

भारतोद्धारक ॥

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित "वैदिकपुस्तक-चाण्कफण्ड" का प्रकाशित मासिक पत्र—सदर मेरठ

इस मासिक पत्र की रजिष्ट्री कराई है इसलिये इस में के विषय अलग करके किसी को छापने का अधिकार नहीं है

१ वर्ष } आर्य्य संवत्सर १९७२९४८९९९ { सं० ८

(१) वार्षिक मूल्य अग्रिम सर्वसाधारण से डाकव्यय सहित १) धनाढ्य रईसों से २) राजा महाराजाओं से ५) श्रीमती गवर्नमेंट के सन्मानार्थ १०) पलटन के सिपाही, स्कूल के विद्यार्थी जो एक पाकट में १० प्रति एक साथ मंगावेंगे उन से ॥) मेरठ वालों से ॥।-) लिया जायगा पश्चात् दूना लिया जायगा । यह मूल्य ता० ३१ ज़नवरी ९८ ई० तक अग्रिम गिना जायगा ॥ फुटकर अङ्क दो आना

(२) जो महाशय "भारतोद्धारक" पत्र के सहायतार्थ रु० २५) दान देंगे उन के नाम धन्यवाद पूर्वक टाईटिल पेज के प्रथम पृष्ठ पर ३ मास तक ५०) छ मास तक रु० १००) एक वर्ष तक छपा करेंगे । देखें कौन महाशय इस धर्म्मकार्य्य में सहायता देता है ॥

(३) विषय—(१) वै० पु० प्र० फण्ड का आय व्यय (२) आर्यो ! सोक्त हो (३) समीक्षाकर (४) भास्करप्रकाश ॥

१ । २ । ९८

स्वामी प्रेस—मेरठ

भारतोद्धारक का मूल्यप्राप्ति स्वीकार ॥

सितम्बर सन् १८९७ का आय

१ गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य मथुरा १)
२ पं० हुकमसिंह जी शर्मा मसुरी १)
३ पं० वासुदेव सहाय शर्मा म० आ० स० वकील १)
४ लाला हरध्यानसिंह मंत्री आ० सं० तीलरों १)
५ पं० रामनारायण शर्मा जलेश्वर १)
६ ला० घनश्यामदास गुप्त कलकत्ता१)
७ बा० प्रभुदयाल इलाकेदार अजयगढ़ १)
८ बा० सुखदेवगणपति खुंडुआ १)
९ पं० नन्दनसिंह उपाध्याय असीथर १)
१० फूलचन्द विद्यार्थी नीमचछावनी१)
११ प० देवकीनन्दन गोपीनाथभींगा१)
१२ बा० जयमगल वर्मा जनकपट्टी १)
* ला० मूलचन्द जी सदर मेरठ ।।।-)
सितम्बर सन् १८९७ आय योग१२।।।-)

अक्टूबर सन् १८९७ का आय

१३ पं० सिश्रीलालशर्मामुदर्रिसआवर१)
१४ पं० रामविलास शर्मा मन्त्री आ०स० शाहाबाद १)
१५ पं० हरिश्चन्द्रशर्माप्रधान ,, ,, १)
१६ पं० लक्ष्मीनारायणदीक्षितप्रीटड१)
१७ बा० बनवारीलाल मन्त्री आ० स० लाहल १)
१८ बा० लच्छीरामहेडसिगनलरदिल्ली१)
१९ सेठमूलचन्दरामप्रतापभूतव्याबर१)
२० ला० खुशीराम जी दूकानदार फीरोजपुर छावनी १)

२१ पं० बलदेवप्रसादमिश्रमुरादा[bad]
२२ सरदार हमीरसिंह जी रा
२३ श्रीयुत हीरालालराम वैश्य भ
२४ श्रीयुत लक्ष्मणदास जाफरा
२५ बा० दिवानचन्द स्टेशनम[...] क[...]
२६ कुंवर शेरसिंह जी वर्मा करं
२७ पं० कत्तोराम जी शर्मा जग
२८ पं० कुन्नलाल शर्मा धा
२९ बा० रामविलास जी शर[...] ए० अजमेर
३० पं० दौलतरामशर्मा महाराज
३१ ला० टेकचन्द रेशमवाले वर्न
३२ पं० भूपनारायण शर्मा हेडम किसनपु
३३ पं० दुर्गादत्त शर्मा मन्त्री आ माज वर्मा
३४ बा० सवायाराम मुखतियार
३५ पं० रामरत्न शर्मा पयागले
३६ पं० चन्द्रधर वाजपेयी रायपुर
३७ बा० लक्ष्मणदास सब ओवर जसवन्तन
३८ जोषी मेघराज शर्मा जोध
३९ पं० श्रीचन्द शर्मा
४० बा० कुञ्जीलाल जी शिसौदा
४१ बा० भैरोंप्रसाद जी आ
अक्टूबर सन् १८९७ का [...]

——*——

वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड कार्यालय सदर मेरट का आय व्यय ॥

जनवरी सन् १८९७ का आय ॥

१) नित्यकर्मविधिः ३ बार की १९२
२३८) दिसम्बर ९६ के अन्त की बाकी
२४१) सर्व योग

फरवरी सन् १८९७ का आय

१॥) मथुरा के बाजारों के उपदेश में गोलक में आये।

पुस्तक विक्रय	प्रति
१०) नित्यकर्मविधि ३ बार	६४०
१) नीतिशिक्षावली	६४
१) पुराण किसने बनाये	१२८
॥) शंकरानन्द के उपदेश	६४
२) पुरुषसूक्त	६४

३५) जनवरी ९७ के अन्त की बाकी
५४) सर्वयोग

मार्च सन् १८९७ का आय ॥

पुस्तक विक्रय	प्रति
१) सुशीलादेवी	६४
१) ईसाई मतखण्डन २ भाग	६४
२) ईसाई मत लीला	१२८
४॥) नित्यकर्मविधिः ३ बार	२८८
॥) श्रीरामजीकादर्शन	६४

दान की पुस्तक विक्रय	प्रति
॥) बहारेनयरंग १-२	२-२
) हास्य तरंग १-३ भाग	१-१
॥)॥ शिक्षाध्याय	१७

) कमीशन बाहर की पुस्तक का
[illegible]) फरवरी ९७ के अन्त की बाकी
[illegible])॥ सर्वयोग

जनवरी सन् व्यय १८९७ का व्यय ॥

२००) सेवींबैंक में रक्खे
॥) डाक व्यय
≡) स्टेसनरी-सुतली रस्सी
५।-) लखीमपुर से पुस्तक आये उस का किराया मजदूरी
३५) जनवरी ९७ के अन्त में बाकी रहे
२४१) सर्वयोग

फरवरी सन् १८९७ का व्यय

।-) डाक व्यय
।-) पारसल किराया
५३।=) फरवरी के अन्त में बाकी रहे
५४) सर्वयोग

मार्च सन् १८९७ का व्यय।

६॥) वैदिकपुस्तक प्रचारक फण्ड के विज्ञापन आधा फार्म ६००० हज़ार की छपवाई बम्बईमित्रप्रेस मथुरा को दिये
८॥=) कागज़ ३ रीम
१०) क्रिश्चियनमतदर्पण २। फार्म १००० छपवाई बम्बईमित्रप्रेस मथुरा कोदिये
८॥=) कागज़ सवा दो
१॥≡) कटवाई सिलवाई
१॥) डेवीस की राय पाव फार्म छपवाई १०००
॥=) कागज़ भजवाई
≡)॥ डाक व्यय
।)। कमीशन नकद पर दिया
२६=) मार्च के अन्त में बाकी रहे
६४॥=)॥ सर्वयोग

अप्रेल सन् १८९७ का व्यय

अप्रेल सन् १८९७ का आय

पुस्तक विक्रय	प्रति
१) क्रिश्चियन मत दर्पण	३२
१) नित्यकर्मविधि ३ बार	६४
२) महाशंकावली १ ला	१२८

२६=) मार्च के अन्त की बाकी
३०=) सर्वयोग

मई सन् १८९७ का आय ॥

३) ला० हरज्ञानसिंहजी असालुञ्ञापुर २३३
२) „ बिहारीलाल जी खतौली २३४
४) बा० आनन्दलालजी मथुरा २३५

पुस्तक विक्रय	प्रति
२) नीतिशिक्षावली	१२८
१) श्रीरामजी कलियुग काशीमहा०	६४
१) पुराण किसने बनाये	१२८
१) शंकरानन्द के उपदेश	१२८

११०) सेवीङ्गबंक से निकाले
=) अप्रेल १८९७ के अन्त की बाकी
१२४=) सर्वयोग

जून सन् १८९७ का आय ॥

१) प० रामलाल जी मंत्री आ० स० विजयगढ़ जि० अलीगढ़

पुस्तकविक्रय	प्रति
४) डेविस की राय	५१२
२) नीतिशिक्षावली	१२८
८) नित्यकर्म ४ बार	५१२

१०) सेवींगबेंक से निकाले
१३≡) मई ९७ के अन्त की बाकी
३८≡) सर्वयोग

व्यय

नीचे लिखी छपवाई आदि पं० तुलसी राम स्वामी प्रेस मेरठ को दिये हैं

७) महाशंकावली १ भाग २०००
६॥≡) कागज
५।) श्रीरामजीकादर्शन कलियुगका० २०००
४।॥=) कागज
२॥=) पं० रामचन्द्रवेदान्ती का उ० १०००)
२।-)॥ कागज
॥)॥ कटवाई
॥≡) डाक व्यय
=) अप्रेल के अन्त में बाकी रहे
३०=) सर्वयोग

मई सन् १८९७ का व्यय ॥

स्वामी प्रेस मेरठ के मालिक पं० तुलसीराम जी को छपवाई आदि के दिये
१५) नित्यकर्मविधि ४ बार ६०००
२०) कागज ६ रीम
२) रजिस्टरी करवाई
७) शिवलिङ्ग पूजाविधान २०००
६।) कागज़ २ रीम
॥) कटवाई
१२।) मनुष्य जन्म की सफलता २०००
११-)॥ कागज
॥।=) कटवाई
१३॥) क्यास्वामीदयानन्दमक्कारथा २०००
१६)॥ कागज
१॥≡) कटवाई
॥।) डाकव्यय
१३≡) मई के अन्त में बाकी रहे
१२४=) सर्वयोग

जून सन् १८९७ का व्यय ॥

स्वामी प्रेस मेरठ के मालिक पं० तुलसीराम जी को छपवाई आदि के दिये
१४) मनुष्यसमाज २०००

वैदिकपु० का व्यय ॥

१८) कागज़ मनुष्यसमाज	४॥।≈) जून के अन्त में बाकी रहे
१) कटवाई	३८≈) सर्वयोग
।) डाक व्यय	

धन्यवाद!! धन्यवाद!! धन्यवाद!!!

निम्न लिखित महाशयों ने वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड को द्रव्य से सहायता दी है उन को अनेकानेक धन्यवाद दिया जाता है, इसी तरह से अन्य महाशय भी अपने शुभाशुभ समय पर उक्त फण्ड को लक्ष्य में रख के सहायता देवेंगे ऐसी आशा है दिसम्बर ०७ में १) ला० कामताप्रसाद जी ज़िमीदार थमरवा ज़िला हरदोई (२६२) मारफ़त मुंशी अवध विहारीलाल दिवान रियासत थमरवा। जनवरी में आया १) पण्डित श्यामलाल शर्मा मन्त्री आर्यसमाज औनहा ज़िला कानपुर। ह०—ब्रह्मानन्द सरस्वती प्रबन्धकर्त्ता वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड सदर—मेरठ

वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड को बड़ा भारी दान।

(जिसकी आमदनी से वैदिक धर्म की केवल पुस्तक ही छपैंगीं)

हमारे स्वदेश भक्त और दृढ़ आर्य वैदिक धर्म के दृढ़ प्रेमी प्राचीन औषधियों को ढूंढने वाले पं० रमादत्त त्रिपाठी मन्त्री आर्य समाज नैनीताल ने पहाड़ों पर बड़े परिश्रम से जा के उत्तम २ लाभदायक औषध ढूंढी हैं जिस में की थोड़ी सी वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड को दान दी हैं जिस की आमदनी तीन भाग उक्त फण्ड में जायगा, बाकी का उक्त पण्डितजी को नवीन औषधि ढूंढने के लिये सहायता में लगेंगे यह वह औषधि है जिस का विज्ञापन आर्यावर्त्त में दिया था, देश हितैषी महाशयों को चाहिये कि उक्त औषधि मंगवा के परीक्षा करें—यदि लाभदायक हो तो उस का प्रशंसा पत्र हमारे पास लिख भेजें।

१—संजीवनबूंटी १६ दिन की ३२ खुराक मूल्य २) इस बूंटी के सेवन से जितने वीर्य्यक्षय रोग हैं अर्थात् स्वप्न दोष, वीर्य्य का पतला होना वा पिशाब के साथ वीर्य आना, कमज़ोरी से सिर का दर्द, प्रमेह, रुधिरक्षय आदि नाश हो जाते हैं, यदि अरोग मनुष्य भी सप्ताह में एक बार दोनों समय सेवन करें तो वीर्य्यक्षय का रोग कभी न होवेगा।

खाने की विधि—प्रथम १२ सकर पीस के मिला लेवे प्रातः शौच आदि से निवृत्त हो कर १ तोला भर औषधि ले के फांक जावे तथा ऊपर से कच्चा

से कम ताज़ा आध सेर गौ का दूध पीवे रोगी ७-१० या १५ दिवस में अच्छा हो जायगा, (पथ्य) रोगी खटाई, गुड़, दही, या मट्ठा, लाल मिर्च इत्यादि न खाय, दस्त और पेशाब के वेग न रोके।

२-ममीरे का सुफेद सुरमा ३) का एक तोला—यह औषध पं० रमादत्त जी ने बड़े परिश्रम से ढूंढा है—उन्ही का भेजा हुआ है अनेक आंखों के रोग दूर होते हैं—अजमा के देखिये, यदि नीरोग भी महीने में चार सलाई आंख में लगावे तो उसकी आंखों की ज्योति कम नहीं होगी।

लगाने की विधि—काच या शीशे की सलाई को हमेशा धो के साफ कर सुरमा उस में लपेट कर रोगी दिन भर में तीन वार अर्थात् प्रातःकाल मध्यान्ह और रात्रि में एक सलाई अजन करे लगावे।

३-गरुड़ बूंटी २ तोले का १) की यह वह जीवनदान देने वाली ओषधि है कि जिस से मनुष्य जीवन से हाथ धो बैठते हैं अर्थात् सर्प बीछु काटे, बावला गीदड़ या कुत्ता काटे या किसी प्रकार का विष धोखे से या खुशी से खा लिया हो इस के पिलाने से सर्व प्रकार विष नाश का होता है।

खाने की विधि—इस बूंटी को छांव में प्रथम सुका के काच की शीशी में बन्ध कर देवे, जिस किसी को ओषधि देनी होवे दो मांसा बूंटी ले के और उस के साथ २ मांसा वंशलोचन तथा ७ दाने काली मिर्च के ले के १ छटांक भर पानी में कुंडी में भांग की तरह पीस कर जिसे काटा होवे पिलाय देवे तथा उस का बचा फोक घाव पर रख के कपड़े से बान्ध देवे १ घड़ी भर के बीच में सर्प आदि का विष उतर जाता है यदि न उतरे तो एक और मासा पिला देनी।

सूचना।

यह औषधि थोड़ी२ हमारे पास आई हैं शीघ्र मंगवा लेवें किसी२ ऋतु में नहीं मिलती, धर्मकार्य में द्रव्य लगे तथा रोगी को आराम हो एक पन्थ दो काज।

मिलने का पता—ब्रह्मानन्द सरस्वती प्रबन्धकर्त्ता
वैदिकपुस्तकप्रचारकफ़राड सदर—मेरठ

सुरमा! सुरमा!! सुरमा!!!

इस सुरमें से यह रोग आरोग्य होते हैं जाला, माड़ा, धुन्ध, ढर, फुली, रतौंधी, आंख की खुजली, दुःखना, करकराना, पानी का गिरना तीन माशे का मूल्य ॥) मोतियाविन्द और जाले की शीशी का मूल्य ।=) परीक्षा के लिये एक मासे मुफ्त केवल ⁻) डाक व्यय भेजना होगा—

छेदा लाल महता एण्ड को० कायमगञ्ज स्टेशन ज़ि० फर्रुखाबाद॥

भी स्मरण हो तो वेद शास्त्रों के दर्शनों से तो अवश्य ही वञ्चित होरहे हैं, कहां गये वे वीर क्षत्री जो निज बाहुबल से समस्त भूमण्डल की रक्षा करने को धर्म समझते थे आज उन्ही की सन्तान यथोचित अपनी ही रक्षा से असमर्थ हैं कहां गये पवित्र भूमि के वैश्य जो द्रव्योपार्जन में अत्यन्त कुशल थे कि जिस द्रव्य से धर्म के सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते थे वर्त्तमान में किसी के पास कुछ धन है भी तो वेश्याओं के नृत्य तथा भोग विलासादि अधर्म में लग रहा है। कहां गई तुम्हारी देववाणी (संस्कृत) जो इस भूमि में प्रचलित थी और उस के यथार्थ जाननेवाले महात्मा कहाते थे आज नाम ही शेष रह गया, अब सभी कार्य पूर्व की अपेक्षा नक़लमात्र रहगये हैं केवल दुःख प्रत्यक्ष रूप दृष्टिगत होरहा है, जो भारतजननी के पुत्रों में से एक, सहस्त्रों के ऊपर में से विजयी होता था, वे अब क्लीब (हिजड़े) होके टांग पसारे पड़े एक के न्यायविरुद्ध अत्याचार के सामने योग्य न्यायधर्मशील गवर्मेंट द्वारा इन्साफ़ कराने को असमर्थ हैं, इस का एक नवीन (ताज़ा) दृष्टान्त अभी मेरे जानने में आया है, वह संक्षेप से कहना चाहिये जो राजपूताना अजमेर के स्टेशन मास्टर युरूपियन ने एक देशी के ऊपर गुज़ारा उस की कैफियत ऐसी है कि बाबू पुरुषोत्तमराय ओवर सियर जिस गाड़ी में बैठा था उस में नियम से अधिक मनुष्य बकरों के माफिक भर देने से उसने स्टेशनमास्टर से इतना ही कहा कि (वाट आफ़ दि रेलवेरूल्स) रेलवे के नियम क्या हैं ? बस इतने ही कहिने के साथ स्टेशन मास्टर का मिज़ाज जामे से बाहर होगया "अय काला काफ़र । ऐसा पूछने वाला तू कौन है ? " इतना कहकर गरीब बाबू की गरदन पकड़कर रेल में से बाहर खींच लिया और खूब मुष्टिप्रहार किया, उस समय सहस्त्रों आर्य पुरुष खड़े देखते थे परन्तु इतना साहस किसी को नहीं हुआ कि दोनों को उस झगड़े से मुक्त करने के लिये हिम्मत करें "तेजोयस्य विराजतेहिबलवान् " अर्थात् जिस का तेज तपता है वही बलवान् है इस में आश्चर्य नही है परन्तु तात्पर्य इतना ही है कि आर्यभ्रातृभाव क्या है ? यह लेशमात्र भी नही जानते हैं, हे बहुत काल से बिगड़े निर्मुख हुवे आर्यो ! -ईर्ष्या द्वेषादि सर्व सत्यानाश करने वाले अवगुणों ने हम मे (अचल) अडिग वास किया है, वह दूर कर के परस्पर प्रेम और स्नेह दृष्टि से देखो कि सब आर्य मिलके मैं एक अवयवी हूं ऐसा समझ के तुम्हारे अन्तःकरण को हिन्दू,

मलिन कृष्णवर्ण (काला रंग) छोड़ के आर्य्य उज्ज्वल देदीप्यमान रंग डालो कि जिस से आर्य नाम के लायक़ गिने जावो जैसे कोई मलिन वस्त्र को रक्तादि सुन्दर रंग में रंगता हो तो प्रथम उस को स्वच्छ करने की आवश्यकता है उस को रजकादि निमित्त साधारण कारण के साधन की प्रथम आवश्यकता है, क्योंकि मल सहित वस्त्र पर रंग नहीं चढ़ता, उसी रीति से सत्य पुरुष रूप रजक को सुकार्य जल से पूर्वोक्त वस्त्र को स्वच्छ करके प्राप्त धर्म के कर्त्तव्य रूप रंग से रंगीन कर भूषित बनो, नहीं तो हिन्दु के हिन्दू ! अरे ! इतने प्रबन्ध हो रहे हैं, तथापि हिन्दू पद को छोड़ते नहीं, कौन दृढ़ दोष आगिरा कि ज़रा भी असर होता नहीं ? जो कुछ होता है वह ऊपर के भाव से, अन्तर के भाव से नहीं, और जब तक अन्तर भाव में आर्यता की परिपक्व छाप पड़ेगी नहीं तब तक मृगतृष्णा के जलतुल्य वृथा दर्शनमात्र उन्नति है, अहो देखो ! यूरूपियन, अमेरिकन, और जापानियों ने देखते २ में आर्य बन के किस उन्नति के शिखर पर पहुंचे हैं, और आगे कितनी उन्नति के शिखर पर पहुंचेंगे यह कह नहीं सकते धर्म कर्मादि उन्नति में लज्जा, भय, रखना यह कायर तथा हिन्दू का ही काम है, हम तो आर्य हैं हमारी बीज अनादि और जड़ गहरी है, गहरी जड़ खोदने के लिये बहुत यत्न करना पड़ता है और कोई निकालने के लिये प्रयत्न करते हैं परन्तु वह कालान्तर में भी ऐसा होना अशक्य है ऐसा इतिहासों का सिद्धान्त है, जैसे ऊपर के जड़ को सुखा के खींचने में देर नहीं लगती वैसा हमारे सम्बन्ध में नहीं है, परन्तु हमारा मूल तो अक्षीण वेद है ऐसा विचार कर प्रयत्न करो लज्जा को छोड़ो, मराठी में कहावत है कि " कुचेष्टा पासून प्रतिष्ठा बाढ़त नाहीं" अर्थात् प्रथम निन्दा भये विना प्रतिष्ठा होती नहीं है । आप इतिहास से जानते होंगे कि कौन २ मनुष्य प्रथम निन्दा, दुःख, अत्याचार भोगे विना इस देश तथा परदेश के धर्म पदार्थादि की नवीन शोध में कृतकार्य्य हुवे हैं ? वह यहां तक कि कितनेक को विषपान, अग्नि और पर्वत के ऊपर से अधःपतन तथा शतघ्नी (तोप) आदि से प्राण देके भी सत्य निश्चय छोड़ा नहीं उस के वर्त्तमान में धर्मादिकों के हम और कर्मादिक के युरूपियन फल खाते हैं यह स्थालीपुलाक न्याय से आप जान सकोगे, यथा पूर्वकाल में भगवान् गिने जाते राम, कृष्णादि महात्माओं को अपने कार्य सिद्ध करने में तथा वेदमार्ग तथा स्वर जाति धर्म का रक्षण करने में निन्दा, दुःख और तृषा दूषणादि

बड़े २ कष्ट सहने पड़े थे, तो अन्त में साफल्य प्राप्त कर के आर्य प्रजा ने उन को ईश्वर माना, इसी रीत्यनुसार श्रीमान् शङ्कराचार्य जी पर भी बहुत काल के प्रचरित जैनमत तोड़ने के लिये अनेक दुःख पड़े थे किन्तु अन्त को विष से प्राण भी गये, जिस से दिग्विजयी ईश्वर माने गये, और उन्ही के प्रताप से हम ईश्वरवादी हो आस्तिक बने, इस विषय में ताजा दृष्टान्त लो–जगत्प्रसिद्ध वैदिक धर्मोद्धारक श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वदेशहितैषी श्रीमत्स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी को वेद मार्ग प्रचार करने के लिये अनेकानेक कष्ट भोगने पड़े थे, और आप लोगों को स्मरण होगा कि इस कार्य को शेष निर्धारित छोड़ गरलपान (लोकोक्ति) से काल वश हुए, जिन के अश्रान्त परिश्रम से सहस्रावधि आर्य ईसाइयों के जाल में से फंसते २ बचे, और कितनेक यूरूप निवासी वेदमार्ग पर चलने वाले हुये, धन्य ! धन्य !!

इसी तरह ग्रीस (यूनान) देशवासी महात्मा तत्त्ववित् सोक्रेटीस (सुक्रात हकीम) को उस समय वहां प्रचलित पाखण्ड के खण्डन करने में ही विषपान करना पड़ा था, और अन्त को उस की संसार में अमर कीर्त्ति छा रही, इसी तरह से नीतिनिपुण महात्मा यूसुफ ने भी अनेक प्रकार के क्लेश सहकर भी सत्य के लिये पर्वत से गिर कर अपने शरीर का अन्त किया, और गेलीलियो की भी यही दशा हुई थी, कोलंबस तथा नेपोलियन, बोनोपार्ट प्रभृति महाशयों को अपने निर्धारित कार्य साधने के लिये बड़े २ कष्ट उठाने पड़े थे कहां तक लिखें कि यह ऐसे साहसी लोग यदि लज्जा, दुःख और मरणादि भय को विचारते तो इस भूमण्डल पर उन की अखण्ड कीर्त्ति के प्रताप की पताका झलक न रहती, कि जिस से हम लोग भी उन के नाम का गान करते। प्रिय पाठक गण ! भारत वासियो ! अब हमारा सोने का समय नहीं है, जो हम ईश्वरदत्त नियमित यावत् शक्ति को राजा की दत्त स्वतन्त्र रीति से यथोचित प्रयत्न कर फलीभूत न करेंगे, तो कैसी दुर्दशा होना सम्भव है ! दुर्दशारूप व्याधि (दृष्टान्त–भिडन के दांतों) मध्य अवश्यमेव ग्रसित होयंगे। उस का हमारे भूत वर्त्तमान प्रचलित व्यवहार से अनुमान होता है, वर्त्तमान ब्रिटिश साम्राज्य में सुधरने का समय जैसा ईश्वर कृपा से हम को प्राप्त हुआ है वैसा कभी सर्व विषयों में अनुकूल मिला नहीं, क्योंकि साधारण नियम ऐसा है कि सृष्टिक्रम में स्थूल सूक्ष्म, सजीव और निर्जीव एकरको सि-

लता गुण कर्म्म स्वभाव सर्वांश मिलने का नियम देखने में आता नहीं है तो "येन केन प्रकारेण स्वकार्यंसाधयेत् सुधीः" अर्थात् बुद्धिमान् तो वह है कि जो अनुकूल समय अपने शुभ अर्थ को साधे, मित्रो ! विचार करो कि हमने दैशिक सामाजिक, राजकीय तथा गृहस्थ सम्बन्धी उन्नति के गंभीर विचार क्या २ किये? तो उस का उत्तर वही आवेगा कि "न नीरं नोतीरं" (न पानी न किनारा) अर्थात् आर्यों के इतिहास से पूर्व स्थिति देखते बहुत काल भया कि अधोगति में लटक रहे हैं, हां इतना तो भया कि कर्त्तव्य कर्म्म करते तो नही परन्तु बोलना तो सीखे है, इस पर से अनुभव होता है कि यदि हम कटिबद्ध हों तो बहुत काल का आत्मप्रोप्तिरूप अग्नि अविद्यारूप यन्त्र से परिवेष्टित हुआ है, उस को सद्विद्वान् विद्या रूपी साधन द्वारा देखो तो वह प्रकट होने का समय निकट आवे, ये निस्सन्देह है, जिस के प्रताप से मतमतान्तर रूपी इन्धन (लकड़ियां) भस्म हो पृथ्वी से परमेश्वर पर्यन्त अव्यवस्था रूपी अन्धकार कहां का कहां पलायन हो जायगा, जो सद्विद्यादि का प्रकाश प्रस्फुरित होने से मिथ्यामतप्रसारक प्रकट चोर रूपी उलूक अन्ध होंगे, जिस से मिथ्याधर्म के जाल से बद्ध हो के लुटते भोले विश्वासी मुक्त हो कर सद्विचार करते होंगे । यहां कोई प्रश्न करे कि बहुत काल का हृदय गुफा में ग्रन्थित हुआ अविद्यान्धतम दूर होने को जैसा बहुत काल से विगाड़ते आये हैं वैसा ही क्रमानुसार सुधारने को सहज में बहुत काल की आवश्यकता है ।

हां, वर्त्तमान के कतिपय सुधारक ताम्रमुखियों (यूरुपियनों) की अनुचित मद्यपानादि की नकल रूपी मूसल अनेक मन्त्र रूपी सम्मार्जनी (झाड़ू) और बालविवाह रूपी सूर्प (सूप) से अनेक काल में भी संवार के साफ़ करके फटक नहीं सकेंगे, क्योंकि यह विपरीत मार्ग है, अन्धकार केवल विवेक की रीति से एक वेदप्रणीत आर्यधर्मरूपी दीपक की ज्योति प्रकट होने से क्षणमात्र में विलीन होसक्ता है, इस लिये हे आर्य ! मतमतान्तर के बोधरूपी नशे में याथातथ्य मार्ग से भ्रान्तिग्रस्त हो के हम अन्धे हो गये हैं, उस में वेद ज्ञानरूपी अञ्जन लगाओ कि जिस से रोग दूर हो जाय, पश्चात् दूरदर्शी होने के लिये विज्ञान दूरवीक्षण (दूरवीन) लगा के अज्ञान से अति अन्तर पड़े हुये, परमेश्वर से लगा के पृथ्वी पर्यन्त उन्नति के गूढ़ मार्ग के विना सन्मार्ग का पड़दा दूर होने वाला नहीं, और वेदविहित ईश्वर सृष्टि आदि का गम्यमार्ग देखने

उत्तमपदप्राप्ति लिख चुके हैं, कुटिल को नहीं । यहां तक शूद्रानधिकारखण्डन हुआ अब स्त्री के अनधिकार का खण्डन सुनिये-

द० ति० भा० पृष्ठ ३७ पं० ३१ में "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" का अन्वय उलटकर लगाया है कि "ब्रह्मचर्येण युवानं पतिं कन्या विन्दते" ब्रह्मचर्य से जवान हुवे पति को कन्या प्राप्त होवे । तात्पर्य्य यह है कि पति का ब्रह्मचर्य्य हो, कन्या का नहीं ॥

प्रत्युत्तर-आप ही के किये अन्वय से भी दो बातें तो सिद्ध होगईं १-विवाह में पति की युवावस्था होना । सम्प्रति प्रचलित ८।१० वर्ष के बालकों का विवाह आप के लेख से भी विरुद्ध है । २-यहां सामान्य उपदेश है कि कन्यामात्र युवा ब्रह्मचर्ययुक्त पति से विवाह करें तो यहां ब्राह्मणी आदि द्विज कन्या का वर्णन नहीं किन्तु सभी कन्याओं का है तो शूद्र कन्या भी ब्रह्मचर्य से युवा हुवे पति से विवाह करे और शूद्रा कन्या का शूद्र पति से विवाह होगा तो इस विधि से ब्रह्मचर्य्ययुक्त सामान्य करके सब ही कन्याओं के पति होने चाहियें । और जब तक वेदादि शास्त्र से कोई प्रमाण स्त्री के अनधिकार का न दिखलावो तब तक अन्वय में ऐसी खैंच तान भी ठीक नहीं । आप ने स्त्री के अनधिकार में नाम मात्र को उलटे सीधे अर्थ करके भी कोई वेदमन्त्र नहीं लिखा । लिखते कहां से है ही नहीं ॥

द० ति० भा० पृ० ३७ पं० ३२ से पृ० ३८ पं० ६ तक "इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्" की सङ्गति की है कि इस मन्त्र के विवाह में बोलने का विधान है पढ़ने का नहीं ॥

प्रत्युत्तर-आप को यह भी खबर है कि पत्नी शब्द का अर्थ क्या है ? "पत्युर्नो यज्ञसंयोगे" । अष्टाध्यायी ४।१।३३ से पत्नी शब्द यज्ञसंयोग में सिद्ध है अर्थात् यज्ञ में यजमान की स्त्री पत्नी कहाती है । कन्या के विवाह में उस विवाह रूप यज्ञ का यजमान कौन होता है ? कन्या का पिता आदि । फिर उस की स्त्री कौन हुई ? कन्या की माता आदि । तो भला अन्धाधुन्ध कैसे चलेगी कि "इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्" का तात्पर्य्य विवाहपरक है । और आप की विवाहपद्धति में कहीं लिखा है ? कि "इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्" कहीं नहीं । विवाह पद्धतियों में कन्या वा वधू शब्द का व्यवहार है पत्नी शब्द का नहीं क्योंकि विवाह संस्कार में जिस कन्या का विवाह है वह यजमान की पत्नी नहीं किन्तु यजमान की कन्या है । यह अन्धेर कैसे चल सक्ता है ॥

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ।
पतिसेवागुरौवासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया। मनुः ॥

इस का अर्थ यह नहीं है स्त्रियों का विवाह ही उपनयन है किन्तु (स्त्रीणां वैवाहिको विधिः, पतिसेवा, गुरौवास, गृहार्थः, अग्निपरिक्रिया वैदिक. संस्कारः स्मृत.) स्त्रियों को इतनी बातें वैदिक हैं । वैवाहिक विधिः, पतिसेवा, गुरुकुलवास, गृहस्थाश्रम और अग्निहोत्र करना ॥ तो भला अब अग्निहोत्रादि यज्ञ, यज्ञ में यजमानपत्नी होकर मन्त्रपाठ, गुरुकुलवास, ये सब बातें स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार सूचित करती है वा अनधिकार ? उ० अधिकार ॥

द० ति० भा० पृ० ३८ पं० ८ में–

योनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः । मनुः ॥

जो ब्राह्मण वेद न पढ़े और अन्यत्र परिश्रम करे वह वंशसहित जीते हुए ही शूद्रत्व को प्राप्त होता है । जो ब्राह्मण वेद न पढ़े वह शूद्र तुल्य हो जावे परन्तु शूद्र भी वेद ,पढ़े तो न पढ़ने वाले ब्राह्मण को शूद्रतुल्य कहना व्यर्थ होजावे । इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर–इस से शूद्र को अनधिकार तो सूचित नहीं होता किन्तु वेद न पढ़ने वाले ब्राह्मण को जीते ही अर्थात् इसी जन्म में शूद्रत्व लिखा जिस से यह सिद्ध होगया कि जो ब्राह्मण वेदहीन हो जाता है तो इसी जन्म मे शूद्र होजाता है अर्थात् वर्ण बदल जाता है । शूद्र को अधिकार रहने से जब शूद्र वेद पढ़ कर तदनुकूल द्विजों के गुणकर्मस्वभावयुक्त होजाता है तब शूद्र नहीं रहता, द्विज होजाता है । जैसे वेद न पढ़ा ब्राह्मण शूद्र होजाता है ॥

द० ति० भा० पृ० ३८ पं० १७–२० ईश्वर में शूद्र को अनधिकारी करने से पक्षपात नहीं आता जैसे सब को कर्मानुसार धन सन्तानादि देने न देने से पक्षपात नहीं किन्तु न्याय है वैसे ही शूद्र में समझो ॥

प्रत्युत्तर–धन सन्तानादि में भी चाहे कर्मानुसार प्राप्त न हो परन्तु किसी को धनोपार्जन वा सन्तानोत्पादन का अनधिकारी नहीं किया किन्तु धनोपार्जन और सन्तानोत्पादनार्थ प्रयत्न करने का सब को अधिकार है । प्रयत्न का सफल निष्फल होना कर्माधीन है । वैसे ही आप के दृष्टान्त से भी मानो

शूद्र को वेदाध्ययन में प्रयत्नवान् होने का तो धनोपार्जनादि प्रयत्न के सदृश अधिकार ही है किन्तु अध्ययन करने पर भी विद्वान् होना न होना शूद्र वा ब्राह्मण कोई हो सब को श्रम और प्रारब्धकर्मादि के आधीन है ॥

द० ति० भा० पृ० ३८ पं० २२

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः ॥
गुरौ वसन् संचिनुयाद् ब्रह्माधिगमिकं तपः ॥ मनुः ॥

इस श्लोक में द्विजः पद से ब्रह्मचारी पुरुष का ग्रहण है ब्रह्मचारिणी कन्या का नहीं ॥

प्रत्युत्तर—द्विजः पुल्लिङ्गनिर्देश से यदि पुरुष ही का ग्रहण है तो मनुष्य शब्द के पुल्लिङ्ग होने से मनुष्य पद में भी स्त्रीजाति का ग्रहण न होना चाहिये। धर्मशास्त्रों में जितने काम करने न करने को सामान्य निर्देश से विधिवाक्य वा निषेधवाक्य लिखे हैं उन के करने न करने, मानने न मानने वाली स्त्री को कोई दोष ही नहीं ? अपराधियों के दण्डविधानसङ्ग्रह में पुरुष निर्देश है तो उस प्रकार के अपराध करने वाली स्त्रियां सब छूट जानी चाहियें ? 'धन्य! पक्षपात'! जब स्त्रियों के अनधिकार का कोई वाक्य न मिला तो यह खेंच तान ! ! !

द० ति० भा० पृ० ३८ पं० ३० कन्या को वेद न पढ़ाना यह पूर्व ही लिख चुके हैं इति ॥

प्रत्युत्तर—पूर्व क्या ! आप चाहे बात २ में इस वचन को "तकियाकलाम" बनालें आप को अधिकार है परन्तु स्त्रियों के वेदाध्ययनानधिकार में आप को एक भी श्रुति स्मृति का वाक्य न मिला न लिखा। सत्यार्थप्र० से ही बनावटी श्रुति—

स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम् ॥

ले ली होती। कोई यह तो जानता कि श्रुति के प्रमाण से सिद्ध किया है। अन्य प्रसङ्गों में तो खैर आपने उलटे सीधे अर्थ कर के एक आध वाक्य लिख ही मारा है परन्तु स्त्रियों के अनधिकार विषय में तो वह भी न बन पड़ा अस्तु खूब मुह की खाई ॥

अथ सृष्टिक्रमप्रकरणम् ॥

द० ति० भा० पृ० ३९ के आरम्भ से पृ० ४० पं० २८ तक का आशय यह

है कि स्वामीजी ने जो सृष्टिक्रम के विरुद्ध बातों को असम्भव मानकर त्याज्य बताया है सो ठीक नहीं क्योंकि परमात्मा की विभूति का अन्त कोई नहीं जान सक्ता जब नहीं जान सक्ता तो उस की सृष्टि का क्रम किसी को कैसे विदित होसक्ता है उस की सृष्टि में सब कुछ है और होसक्ता है। स्वामीजी जिस बात को अपनी बुद्धि से नहीं समझ सके उसी को सृष्टिक्रम के विरुद्ध कह देते हैं। यदि माता पिता के संयोग विना पुत्रोत्पत्ति असम्भव और सृष्टिक्रम विरुद्ध है तो "तस्मादश्वाअजायन्त०" वेद में लिखा है कि उस परमात्मा ने घोडे भेड़ बकरी आदि उत्पन्न किये। फिर वह भेड़ बकरी आदि विना माता पिता हुवे? वा ईश्वर को लुगाई मानोगे? रामायण महाभारतादि में मृतक जिवाना, पर्वत उठाना आदि लिखा है आप रामायण भारतादि को मानते हैं। इसलिये जो असमर्थ को असम्भव है वह समर्थ को सम्भव है इत्यादि॥

प्रत्युत्तर–निस्सन्देह परमात्मा अनन्त और उस की समस्त सृष्टि का क्रम मनुष्य को अविज्ञेय है परन्तु इस से आप सम्भव असम्भव की व्यवस्था का लोप न कीजिये। स्वामीजी ने उतनी ही बातों को असम्भव लिखा है जो रात्रि दिन एक क्रम से हमारे आप के देखने में आती हैं। परमात्मा की वह सृष्टि जहां तक हमारा ज्ञान नहीं पहुंचा चाहें कैसी ही हो परन्तु तथापि जानी हुई बातों में कोई क्रम अवश्य है। यदि क्रम न हो तो गेहूं बोने वाले कृषक को यह विश्वास न होना चाहिये कि इस के फल गेहूं ही होंगे कदाचित् चणे आदि हो जावें। और परमात्मा की अमैथुनी सृष्टि को आप मानुषी मैथुनी आदि सृष्टियों में मिलाकर दोष देते हैं यह बेसमझी है। सृष्टिक्रम सृष्टि के लिये है वैसे परमात्मा का क्रम परमात्मा के लिये है। जैसे सृष्टि के मनुष्यादि प्राणी अपने २ गुण कर्म स्वभाव सामर्थ्य नियम के विरुद्ध नहीं करते वैसे ही परमात्मा भी अपने पवित्र गुण कर्म स्वभाव के विरुद्ध नहीं करता। यदि करता है तो क्या परमात्मा कभी पाप करता है? झूंठ बोलता है? मरता है? नहीं, नहीं। इसलिये परमात्मा का भी क्रम है और सृष्टि का भी क्रम है। रामायण महाभारत को स्वामीजी ने माना है यह लिखना झूंठ है। देखो सत्यार्थप्र० पृ० ६८ प० २५ में "मनुस्मृति वाल्मीकि रामायण महाभारत के उद्योग पर्वान्तर्गत विदुरनीति आदि अच्छे २ प्रकरण पढ़ावे" इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन ग्रन्थों के अच्छे २ प्रकरण पढ़ाये जावें बुरे २ नहीं। महाभारत के आदि पर्व में लिखा है:—

चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम् ॥

व्यासजी ने २४००० श्लोकों में भारत संहिता बनाई । वर्त्तमान समय में १००००० एक लक्ष से अधिक श्लोक महाभारत में हैं वे सब व्यासरचित नहीं हैं यही दशा रामायणादि की है । दूसरी बात यह है कि रामायण भारत भागवतादि में लिखी सृष्टिक्रमविरुद्ध असम्भव बातें तो साध्य पक्ष में हैं । जिन को अन्य प्रमाणों से सिद्ध करना आप का काम था । आप ने "साध्य" ही को प्रमाण में धर दिया । न्याय शास्त्र में "साध्यसम" हेतु भी हेत्वाभास=मिथ्या हेतु माना है तो आप तो साक्षात् साध्य ही को हेतुरूप से प्रमाणकोटि में धरते हैं । असमर्थ मनुष्य को इतना समर्थ मानना कि अङ्गुलि पर पर्वत उठाया यही तो असम्भव है । और उन मनुष्यों को ईश्वर मानना साध्य है, सिद्ध नहीं । इसलिये सृष्टिक्रम का न मानना न्यायशास्त्र के ८ प्रमाणों में ७ वें सम्भव प्रमाण को अपने हठ से न मानना है और सृष्टिक्रम ईश्वरक्रम सब ठीक है और उस के विरुद्ध बातों का मानना मूर्खता है ॥

अथ पठनपाठनप्रकरणम् ॥

द० ति० भा० पृ० ४१ पं० १६ से "स्वामीजी ऋषियों को पूर्ण विद्वान् लिख कर भी उन के ग्रन्थों में वेदानुकूल मानना अन्य न मानना लिखते हैं इस लिये वे नास्तिक हैं क्योंकि वे ऋषिप्रणीत आप्तोक्त ग्रन्थों का अपमान करते हैं । मनु में लिखा है कि:—

योवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः ॥
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेद निन्दकः ॥

जो वेद और शास्त्रों का अपमान करे वह वेदनिन्दक नास्तिक जाति पङ्क्ति और देश से बाहर किया जावे ॥

प्रत्युत्तर—पूर्ण विद्वान् ऋषि थे इस का तात्पर्य्य यह नहीं हो सक्ता कि वे, वेदप्रणेता परमात्मा से अधिक थे किन्तु मनुष्यों में वे पूर्ण विद्वान् थे । उन के वेदविरुद्ध वचन को (यदि उन के ग्रन्थों में उन का वा उन के नाम से अन्य किसी का कोई वचन वेदविरुद्ध जान पड़े) न मानना उन का अपमान नहीं किन्तु मान्य है क्योंकि मनु आदि ऋषि लिख गये हैं कि वेदबाह्य स्मृति माननीय नहीं । यथाः—

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः । इत्यादि ॥

और जो वेद शास्त्र का अपमान करे वह बाहर किया जावे। यह वचन स्वामीजी पर नहीं किन्तु आप पर घटता है क्योंकि स्वामीजी तो यह कहते हैं कि वेदविरुद्धस्मृतिवाक्य नहीं मानना" इस से वे वेद का मान्य करते हैं और आप उन के विरुद्ध मानो यह कहते हैं कि वेदविरुद्ध भी स्मृतिवाक्य मानना। वेद का अपमान साक्षात् ही आप करते हैं और ऋषियों का भी अपमान इसलिये करते हैं कि ऋषि लोग वेदबाह्य स्मृतियों को नहीं मानते और आप मानते हैं। इस प्रकार आप, परमात्मा और ऋषि दोनों का अपमान करते है। कहिये अब आप को कहां भेजा जावे ॥

द० ति० भा० पृ० ४२ पं० ४ से—यदि वेदानुकूल ही मानना अन्य न मानना तो यज्ञयज्ञादि की विधि कौन २ मन्त्र के अनुकूल है ? । इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर—प्रथम तो हम यह नहीं कहते कि हम मन्त्रों से साक्षात् ही सब विधि दिखला सक्ते हैं किन्तु हमारा सिद्धान्त तो जैमिनीय मीमांसा केः—

विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्। मी० अ० १ पा० ३ सू० ३

के अनुसार यह है कि शब्दप्रमाण के साक्षात् विरुद्ध वार्ते न मानी जावें परन्तु विरोध भी न हो और साक्षात् विधिवाक्य भी न मिले तो अनुमान करना चाहिये कि यह विधि किसी प्रकार किन्हीं ऋषियों ने वेद में साक्षात् वा ध्वनि आदि से देखा ही होगा। तथापि उद्गाता आदि का विधान नीचे लिखे मन्त्र में मूलरूप पाया जाता हैः—

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्, गायत्रं त्वो गायति शक्करीषु। ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां, यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः ॥ ऋ० मं० १० अष्टक ८ अध्याय २ मं० अन्तिम ॥

अन्वितव्याख्यानम्—[त्वशब्दः सर्वनामसु पठित एकशब्दपर्य्यायः] एको होता (पुपुष्वान् ऋचां पोषमास्ते) स्वकर्माधिकृतस्सन् यत्र तत्र पठिता ऋचो यथाविनियोगविन्यासेन पोषयति सार्थकाः करोति (त्वः शक्करीषु गायत्रं गायति) एक उद्गाता शक्कर्य्युपलक्षितासुच्छन्दोविशेषयुक्तास्वृक्षु गायत्रं गायत्रादिनामकं साम गायति (त्वो ब्रह्मा जातविद्यां वदति) एको ब्रह्मा, अपराधे जाते तत्प्रतीकाररूपां विद्यां वदति (त्वो यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ) एकोऽध्वर्युर्यज्ञस्य मात्रामियत्तां विमिमीते विशिष्टतया परिच्छिनत्ति ॥

अर्थात् एक होता ऋचाओं को विनियोगानुसार सङ्घटित करता है, एक

उद्गाता शक्वर्य्यादिच्छन्दोयुक्त गायत्र गान करता है, एक ब्रह्मा यज्ञ में कुछ अपराध वा भूल चूक होने पर उसका प्रतीकार करता है और एक अध्वर्यु यज्ञ के परिमाण वा इयत्ता को निर्धारित करता है ॥

द०ति०भा० पृ० ४२ पं० ११ से जब आप ब्राह्मण, निघण्टु, निरुक्तादि की सहायता से वेदार्थ करते हैं तो ब्राह्मणादि स्वतःप्रमाण क्यों नहीं। इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर–यह बात नही है कि निरुक्तादि की सहायता विना वेदार्थ हो ही न सके। जब तक निरुक्तादि ग्रन्थ नहीं बने थे तब भी वेद और उन का अर्थ था ही किन्तु निरुक्तादि के प्रमाण इसलिये दिये जाते हैं कि जो वेद का अर्थ हम करते हैं उस प्रकार अन्य भी अमुक २ ऋषि लिखते हैं जिस से हमारे समझे अर्थ की पुष्टि होती जावे ॥

द० ति० भा० पृ० ४२ पं० १८ इन ग्रन्थों में अंश भी वेदविरुद्ध नही है। इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर–सत्यार्थप्र० में भी यह तो नहीं लिखा कि निरुक्तादि ऋषिप्रणीत ग्रन्थों में वेदविरुद्ध है ही है किन्तु यह लिखा है कि यदि इन में वेदविरुद्ध हो तो त्याज्य है नहीं तो नही। अर्थात् ऋषि यद्यपि पूर्ण विद्वान् थे, उन के ग्रन्थो में पुराणप्रणेताओं के से गप्प नहीं हैं, यावच्छक्य ऋषियों ने वेदानुकूल ही लिखा है परन्तु तौ भी विद्वान् ऋषि लोग सर्वज्ञ परब्रह्म न थे अतः एव यदि कहीं किसी आर्षग्रन्थ में वेदसंहिता के विरुद्ध कुछ वचन पाये जावें तो वहां वेद माना जावे अन्य ग्रन्थ नही। और यह बात कुछ स्वामी जी ने ही नहीं लिखी किन्तु जैमिनि जी भी मीमांसा शास्त्र में लिखगये हैं कि–

विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्। १।३।३॥

विरोध हो तो त्याज्य है और विरोध न हो तो अनुमान करे कि अनुकूल है। यदि वेद से विरुद्ध कोई बात भी इतर ग्रन्थों में न होती तो जैमिनि जी ऐसा क्यों लिखते। आप स्वामी दयानन्द स० जी के लेख को न मानियेगा तो जैमिनीय मीमांसा को तो मानियेगा? फिर आप का यह लेख कैसे सत्य हो सक्ता है कि इन ग्रन्थों में अंश भी वेदविरुद्ध नहीं ॥

द० ति० भा० पृ० ४२ पं० १९ में (मन्त्रब्राह्मणयोः वेदनामधेयम्) मन्त्र और ब्राह्मण दोनों मिलकर वेद कहा जाता है। इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर–यह आपस्तम्ब की यज्ञपरिभाषा है। पारिभाषिक शब्दों का जो अर्थ ग्रन्थकार नियत करते हैं वह सार्वत्रिक नहीं किन्तु उसी अधिकरण में

माना जाता है। जैसे पाणिनि जी अष्टाध्यायी में "अदेङ्गुणः" १ । १ । १७ लिखते हैं कि अ, ए, ओ, ये तीन गुण हैं। तो व्याकरण ही में गुण शब्द से अ, ए, ओ का अर्थ लिया जायगा अन्यत्र नहीं। यदि साङ्ख्य शास्त्र में गुण शब्द आता है तो सत्व, रजः, तमः का अर्थ लिया जाता है। और वैशेषिक में रूप रस गन्धादि २४ गुण माने गये हैं। सो वे २ अपने २ ग्रन्थ में पारिभाषिक (इस्तलाही) शब्द हैं। यदि कोई व्याकरण में गुण शब्द से सत्व रजः तम समझे तो अज्ञान है, वा सांख्य में गुण शब्द से अ, ए, ओ समझे तो मूर्खता है। इसी प्रकार यज्ञ के प्रकार का वर्णन करते हुवे आपस्तम्ब के सूत्रों में जहां वेद शब्द आता है वहां ही मन्त्र और ब्राह्मण दोनो का ग्रहण होता है न कि सर्वत्र ॥

द० ति० भा पृ० ४२ पं० २२ में लिखा है कि सत्यार्थप्र० पृ० ३० के लेखानुसार यदि ऋषिप्रणीत ग्रन्थो में भी वेदविरुद्ध अंश हैं तो वे भी (विषसंपृक्तान्नवत्त्याज्याः) विषयुक्त अन्न के तुल्य त्याज्य है फिर ऋषिप्रणीत को पढ़ने योग्य क्यों मानते हो ॥

प्रत्युत्तर—पूर्वापर प्रसङ्ग देखिये सत्यार्थप्र० पृ० ३० में पुराणों के लिये विषयुक्त अन्न का दृष्टान्त है वह ऋषिप्रणीत ग्रन्थों में नहीं घटता। पुराणों के कर्त्ताओ ने ईर्ष्या द्वेष आदि से असत्य बातों का ढेर किया है वह अवश्य विषतुल्य है जिस के सङ्ग से पुराणों का सत्य विषय भी विषयुक्त अन्नतुल्य होगया है परन्तु ऋषिप्रणीत ग्रन्थो में जो कुछ कहीं भूल भी हो वह ईर्ष्या द्वेषादि से नहीं किन्तु अल्पज्ञता से है इसलिये उसे विष नहीं कह सक्ते किन्तु वह ऐसा है जैसे किसी औषध में कुछ मिट्टी कङ्कर आदि मिल गया हो तो उसे छांट कर औषधमात्र ग्रहण करना योग्य होता है इसी प्रकार ऋषिप्रणीत औषध रूप ग्रन्थ में अल्पज्ञता से आये मिट्टी कंकर आदि निकाल कर औषधोपम आर्षग्रन्थ पढ़ने चाहिये ॥

पुराणों का विष—

सर्वन्तु समवेक्ष्येदन्निखिलं ज्ञानचक्षुषा ।
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्म्मे निविशेत वै ॥

अर्थ—विद्वान् पुरुष को उचित है कि सब बातों को ज्ञान की आंख से देखकर श्रुति अर्थात् वेद के प्रमाण से पहले धर्म्म को स्वीकार करे।

देवै तब ब्रह्मविद्या की प्रतिष्ठा होती है इस से रैक्वनें उक्त दान को न ले कर अधिक दान का मनोरथ किया है राग वश होकर नहीं किया। जानश्रुति फिर अपनी शक्ति के अनुसार गौ आदि धन व कन्या को दिया और प्रार्थना किया फिर रैक्व उसके शोक प्राप्त होने व योग्यता ही कहने के अभिप्राय से शूद्र शब्द से सम्बोधन करके ऐसा कहा कि हे शूद्र तूने यह दान मुझे दिया इसके द्वारा विना बहुत काल की सेवा तू मुझसे ब्रह्म के उपदेश के वाक्यों को कहलावैगा। ऐसा कहकर उसको ब्रह्म का उपदेश किया इससे शूद्र शब्द से जानश्रुति के शोक ही को सूचित किया है शूद्र वर्ण होने को नहीं कहा। इस से जानश्रुति को शूद्र कहने के दृष्टान्त से शूद्र का अधिकार होना सिद्ध नही होता ॥

क्षत्रियत्वावगतेश्च ॥ ३५ ॥

क्षत्रिय होने की सिद्धि होने से भी ॥ ३५ ॥

दूत भेजने बहुत ग्रामों के दान देने आदि के ऐश्वर्य योग से जानश्रुति के क्षत्रिय होने की प्रतीति होती है जानश्रुति शूद्र नहीं है इससे जानश्रुति के लक्षण से शूद्र के अधिकार का अनुमान करना युक्त नहीं है ॥

उत्तरत्रचैत्ररथेनलिङ्गात् ॥३६॥

उत्तर में (उत्तर भाग में) चैत्ररथ के साथ कथन होने के लक्षण से,

जिसमें जानश्रुति का उपदेश है इसी सम्वर्ग विद्या में उत्तर भाग में अभिप्रतारि नामक चैत्ररथ क्षत्रिय के साथ अर्थात् चित्ररथ के वंश में उत्पन्न अभिप्रतारि क्षत्रिय के साथ जानश्रुति का वर्णन होने से जानश्रुति का क्षत्रिय होना अनुमान किया जाता है कैसे अनुमान किया जाता है ऐसा वर्णन न होने से कि कापेय (कपिगोत्रवाले) शौनक (शुनक के पुत्र) और काक्षसेनि (कक्षसेन के पुत्र) अभिप्रतारि दोनों के लिये सूपकारने भोजन परसा उनके भोजन करने के समय में उन से एक ब्रह्मचारी ने भिक्षा मांगी इत्यादि वर्णन से हे ब्रह्मचारिन् हम इसकी उपासना नही करते यह कहने तक कापेय अभिप्रतारि व भिक्षा मांगने वाले ब्रह्मचारी का तीन का सम्वर्ग विद्या में सम्बन्धी होना प्रतीत होता है उन में से अभिप्रतारि तौ क्षत्रिय और अन्य दो ब्राह्मण थे अर्थात् कापेय पुरोहित व ब्रह्मचारी यह दोनों ब्राह्मण थे इससे इस विद्या में ब्राह्मण का उस से भिन्न वर्णों में से क्षत्रिय

ही के साथ सम्बन्ध होना देखा जाता है शूद्र का योग होना विदित नहीं होता। इस से इस विद्या में अन्वित (योग को प्राप्त) होने से रैक्व ब्राह्मणसे भिन्न जानश्रुति का भी क्षत्रिय होना ही मानना युक्त है शूद्रत्व मानना युक्त नहीं है। अब यह शङ्का है कि इस प्रकरण में अभिप्रतारि का चैत्ररथ होना व क्षत्रिय होना श्रुत नहीं है अर्थात् सुना नहीं गया वा ज्ञात नहीं होता। कैसे अभिप्रतारि का क्षत्रिय होना व चैत्ररथ होना सिद्ध होता है यह विज्ञापन के लिये यह कहा है "लिङ्गात्" अर्थात् लिङ्ग से (अनुमान से) अर्थात् शौनक कापेय अभिप्रतारि काक्षसेनि इत्यादि कहने से अभिप्रतारि का कापेय के साथ सम्बन्ध होना प्रतीत होता है और अन्यत्र भी कहा है कि इस से चैत्ररथ को कापेयों ने यजन (पूजन वा यज्ञ) कराया इस प्रकार से कापेय के सम्बन्धी का चैत्ररथ होना सुना जाता है ऐसे ही चैत्ररथ का क्षत्रिय होना चैत्ररथ नामक एक क्षत्रियपति हुआ इस वाक्य से ज्ञात होता है इस से अभिप्रतारि का चैत्ररथ होना व क्षत्रिय होना सिद्ध होता है। इससे चैत्ररथ के लिङ्ग से जानश्रुति का क्षत्रिय होना अनुमान करने से जानश्रुति के दृष्टान्त से शूद्र का अधिकार होना सिद्ध नहीं होता ॥

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च ॥३७॥

संस्कार के परामर्श से और उसका अभाव कहने से ॥ ३७ ॥

इस से भी शूद्र का अधिकार नहीं है कि विद्या प्रदेशों में उपनयन आदि संस्कार विचार किये जाते हैं "यथा तंहोपनिन्ये अधीहि भगव" इत्यादि अर्थ—उस शिष्य को आचार्य ने उपनयन किया नारद भी विद्यार्थी हो मन्त्र को उच्चारण करते हुवे सनत्कुमार के पास जाकर यह कहा कि हे भगव अर्थात् भगवन् अधीहि अर्थात् उपदेश कीजिये तब आचार्य ने विद्यार्थी शिष्य को उपदेश किया इत्यादि, शूद्र के संस्कार का अभाव है शूद्र के संस्कार का विधान नहीं है क्योंकि ऐसा कहा है कि शूद्र चौथा वर्ण एक जाति है संस्कार के योग्य नहीं है इस से शूद्र का अधिकार नहीं है ॥

तदभावनिर्धारणे च प्रवृत्तेः ॥ ३८ ॥

और उसके अभाव निर्धारण में प्रवृत्ति होने से ॥ ३८ ॥

छान्दोग्य में जाबाल की यह आख्यायिका (कथा) है कि जाबाल का पिता मरगया था ऐसे पितारहित जाबाल ने अपने माता से पूछा कि मेरा गोत्र

क्या है माता ने कहा कि मैं अपने पति की सेवा में व्यग्रचित्त रहने से मैं भी तेरे पिता के गोत्र को नहीं जानती हूं मैं इतना ही जानती हूं कि मेरा नाम जाबाला है और तेरा नाम सत्यकाम है इसके पश्चात् जाबाल (जाबाला का पुत्र) गोतम ऋषि के पास उपनयन के लिये आया गोतम ने पूछा तेरा गोत्र क्या है जाबाल ने सत्य कह दिया कि गोत्र को न मैं जानता हूं न मेरी माता जानती है परन्तु मेरी माता ने यह कहा है कि आचार्य के पास उपनयन के लिये जा और यह कह कि मैं सत्यकाम जाबाल हूं गौतम ने उस के इस सत्य वचन से उसके शूद्रत्व के अभाव को निर्धारित किया अर्थात् शूद्रता नहीं है ऐसा मान लिया अर्थात् बिना ब्राह्मण के ऐसा सत्य विचार कर कोई नहीं कह सकता इस विचार से शूद्रत्व को न मानकर ब्राह्मणत्व का निश्चय करिके जाबाल के उपनयन करने व उपदेश करने में प्रवृत्त हुये। जाबाल की इस कथा को चित्त में लाकर यह शङ्का करिके कि न जाने हुवे गोत्र जाबाल को गोतम जी का उपनयन करना व उस को ब्रह्मविद्या का उपदेश करना शूद्र का भी अधिकार होना सूचित करता है यह कहा है उसका अभाव निर्धारण में प्रवृत्ति होने से अर्थात् सत्य वचन से उसका शूद्रत्व का अभाव निर्धारण करने पर प्रवृत्ति होने से शूद्रत्व होने में उपनयन व उपदेश नहीं किया इस से शूद्र का अधिकार नहीं है॥

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च ॥ ३९ ॥

और सुनने पढ़ने अर्थ के प्रतिषेध से स्मृति से ॥ ३९ ॥

स्मृति में ऐसा वर्णन है कि शूद्र जो है वह पशु वा श्मशान के समान है तिस से शूद्र के समीप वेद न पढ़ना चाहिये इसी से शूद्र के पढ़ने का निषेध सिद्ध है क्योंकि जिस के समीप पढ़ने योग्य नहीं होता वह वेद को स्वयं कैसे पढ़ेगा इस से श्रवण व पठन अर्थ के प्रतिषेध से भी शूद्र का अधिकार न होना सिद्ध होता है। अब इस अधिकार न होने के व्याख्यान का तत्त्व निर्णय किया जाता है शूद्र के अधिकार न होने को जो वर्णन किया है वह शूद्र के सेवा कर्म करने वालों के कुल में उत्पन्न होने व कुल सङ्ग व कर्म योग व विद्या के अभाव से प्रायः उस में उत्कृष्ट बुद्धि न होने से सूक्ष्म लक्ष्य वस्तु उस को दुर्ज्ञेय होने और उस में उस को श्रद्धा न होने से अश्रद्धालु अपात्र में उपदेश का निष्फल होना विचारने से जानना चाहिये कि उत्तम गुण वाले

श्रद्धालु धार्मिक विचारवान् बुद्धिमान् शूद्र को भी अर्थात् शूद्रकुल में उत्पन्न का भी अधिकार ही है यह निश्चय करना चाहिये गुण व कर्म ही मुख्य व उत्कृष्टता व निकृष्टता के हेतु हैं यदा युक्ति स्मृति श्रुति प्रमाण से सिद्ध सिद्धान्त है यह निश्चय है इस से गुण कर्म अनुसार ही वर्णों की उत्कृष्टता व निकृष्टता जानने योग्य है कुल की उत्पत्तिमात्र उत्तमता व अनुत्तमता की मुख्य कारण नहीं हो सकती जो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न है वह यवन के साथ भोजन करने व अन्य निषिद्ध पाप आचरण से वह पतित होगया यह कहा जाता है दण्ड को प्राप्त होता है कुल से सम्बर्ग से त्याग दिया जाता है ऐसा लोक में देखा जाता है जो कुल में उत्पत्ति होने की मुख्यता होती तो उत्तम निकृष्ट कर्म प्राप्त होने में भी शरीर की स्थिति होने में जिस कुल में उत्पन्न है उसी कुल का वर्ण धर्म व पदवी होना मानने योग्य है किसी दुर्गुण से श्वपच यवन आदि के साथ भोजन करने से उस का पतित होना सम्भव नहीं है परन्तु लोक में ऐसा व्यवहार देखने में नही आता किन्तु उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ अधर्म करने से निकृष्ट दण्ड के योग्य व त्याग के योग्य होता है इस से लोक में भी गुण कर्म ही की मुख्यता होना विदित होता है जैसे श्रेष्ठ वर्ण अधर्म आचरण से निकृष्ट होता है ऐसा ही निकृष्ट वर्ण धर्म आचरण से उत्कृष्ट होता है यही मन्तव्य है—सत् पुरुष धार्मिक आप्त पक्षपातरहितों का न्याय से यही सिद्धान्त हो सक्ता है ऐसा युक्ति से निश्चय किया जाता है और ब्रह्म-सूत्रों के निर्माता महर्षि वेदव्यास का भी यही सिद्धान्त निश्चय करने योग्य है अर्थात् उस के (शूद्रत्व के) अभाव निर्धारण मे प्रवृत्ति होने से इस सूत्र में सत्य कथन मात्र से गोतम ऋषि ने जाबाल के शूद्रत्व का निर्धारण करिके अर्थात् शूद्रत्व का अभाव मान कर उस के उपनयन करने व ब्रह्मविद्या के उपदेश करने में प्रवृत्त हुये यह विज्ञापन करने से ऐसा निश्चय करने योग्य है क्योंकि सत्य कथन न वर्णत्व है न गोत्रत्व है उत्तम गुणत्व व धर्मत्व ही है वही शूद्रत्व के अभाव निर्धारण का हेतु महर्षि गोतम जी ने स्वीकार किया है इस से जो वर्ण से गुण कर्म से भी शूद्र है उस का अधिकार नही है और जिस के सत्यता आदि धर्म गुण श्रद्धालुत्व व सत्कर्मों से जाबाल के समान शूद्रत्व का अभाव निर्धारण किया गया है उस का अधिकार ही है युक्ति हेतु से शब्द से उस के अधिकार के निषेध का कोई प्रमाण निश्चय नही किया जाता। जो यह शङ्का होवै कि कोई स्मृतियों में ऐसे निषेधवाक्य पाये

आते हैं कि वेद सुनने वाले शूद्र के कान में सीस और लाख भरना चाहिये तथा शूद्र जो है वह पशु व श्मशान के समान अशुचि है इस से शूद्र के समीप न पढ़ना चाहिये उस के उच्चारण में जिह्वा का छेदन (काटना) व धारण में शरीर का भेदन उचित होता है इस से शूद्र का अधिकार न होना सिद्ध होता है तो ऐसा नहीं है ऐसा अयुक्त वाक्य किसी आप्त का नहीं होता इस से किसी पक्षपातग्रस्तहृदय स्वार्थसाधक से प्रक्षिप्त ही जानना चाहिये क्योंकि वेद का श्रवण कोई निषिद्ध कर्म महापाप नहीं है जिस से सुनने वाले के लिये जिह्वाछेदन आदि दण्डविधान उचित होवे। यदि परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना, उपासना व ज्ञान व कर्म विषयक वेदवाक्यों में एकत्र अनेक शब्दों के पढ़ने व सुनने में दण्डविधान है तो भिन्न २ ईश्वर ब्रह्म परमात्मा सविता आदि वेदोक्त शब्दों के कहने वाले व सुनने वाले भी शूद्र दण्ड के योग्य मन्तव्य हैं। ऐसा होने में ईश्वर के नाम स्तुति कहने व स्मरण करने में भी शूद्र का अधिकार होना सिद्ध न होगा शूद्र में ईश्वर के ऐसे द्वेष व पक्षपात होने का कोई हेतु चिन्तन करने योग्य नहीं है और ब्राह्मण को आगे करके चारों वर्णों को सुनावे ऐसे विधिवाक्य से इतिहास पुराणों में भी विधि पाई जाती है तुल्य प्रमाण बल होने से इस विधिवाक्य से निषेध वाक्य का प्रतिषेध होने में यह विधिवाक्य स्वीकार करना चाहिये अथवा परस्पर के विरोध से दोनों के त्याग में कोई अन्य प्रमाण खोज करना चाहिये दोनों के प्रमाण के अनुसन्धान करने में युक्ति अन्य आप्तवाक्य श्रुति स्मृति प्रमाण की सहायता से विधिवाक्य की सबलता होने से निषेध वाक्य ही निर्बल होने से अप्रमाण रूप त्यागने योग्य है। आधुनिक भाष्य व टीकाकारों ने जो सर्वथा अधिकार न होना वर्णन किया है और जिन्हों ने ऐसा वर्णन किया है कि स्मृति इतिहास व पुराणों में निषेध के समान विधि भी मिलती है इस से वेद पूर्वक अर्थात् वेदपठनपूर्वक अधिकार नहीं है यह सिद्धान्त है वह असत्य आर्यसिद्धान्त वा वेद विरुद्ध ही प्रतीत होता है क्योंकि निषिद्ध कर्म से ब्राह्मण भी शूद्रत्व वा अनधिकारत्व व अधिकार को प्राप्त हो सक्ता है यद्यपि लोक में ऐसा व्यवहार (वर्त्ताव) न होवे तथापि न्याय से और आप्तवाक्य से यही सिद्धान्त निश्चय किया जाता है इस में प्रमाण वर्णन किया जाता है शुक्राचार्य जी ने शुक्रनीति नामक अपने ग्रन्थ में यह कहा है कि इस संसार में जाति से अर्थात् कुल में जन्म होने मात्र से न ब्राह्मण है न क्षत्रिय है न वैश्य है

न शूद्र है न म्लेच्छ है इन का भेद गुण व कर्मों से है अध्याय १ श्लोक ३९ सब जीव ब्रह्मा से उत्पन्न होने से क्या ब्राह्मण हो सक्ते हैं अर्थात् नहीं। वर्ण से और पिता से ब्रह्म तेज की प्राप्ति नहीं हो सक्ती अ० १ श्लोक ३९ ऐसा ही श्रीमहर्षि आपस्तम्ब ऋषि ने अपने सूत्रों में कहा है कि धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम वर्ण में प्राप्त होता है और वह उस वर्ण में गिना जावे कि जिस २ के वह योग्य होवे वैसा ही अधर्माचरण से पूर्व अर्थात् उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अपने नीचे २ वाले वर्ण को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे जिस्के योग्य होवे और सब वर्णों का विद्यारूप वेद में अधिकार होने के विषय में साक्षात् यजुर्वेद में छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मन्त्र प्रमाण है इसी कारण से अधिकार निरूपण के अन्तिम सूत्र में महात्मासूत्रकार ने यह कहा "और श्रवण अध्ययन अर्थ का प्रतिषेध होने से स्मृति से"। इस सूत्र में निषेध प्रमाण में स्मृतिमात्र का नाम कहा है चकार जिस का अर्थ "और" ग्राह्य है वह जैसे और "उस का" अभाव निर्धारण करने में प्रवृत्ति होने से" इस सूत्र में पूर्व कहे हुये हेतु से अन्य हेतु दिखाने के लिये कहा है ऐसा ही इस सूत्र में कहा है इसी से चकार का अर्थ और ग्रहण करके। "और श्रवण अध्ययन अर्थ का प्रतिषेध होने से स्मृति से" ऐसा सूत्र का अर्थ कहा गया है वेद का प्रमाण होने में उस के विरुद्ध स्मृति वाक्यों का अप्रामाण्य ही है उक्त मन्त्र यह है-

"यथेमां वाचं कल्याणी"—

इत्यादि इस का व्याख्यान यह है यथा यह प्रत्यक्ष रूप वेदचतुष्टयी—कल्याण रूप वा कल्याण की सिद्ध करने वाली वाणी को सब जनों के लिये अर्थात् सब मनुष्यों के लिये मैं कहता हूं वा उपदेश करता हूं किन जनों के लिये यह विज्ञापन वा विवरण के लिये यह कहा है ब्राह्मण क्षत्रिय के लिये वैश्य के लिये शूद्र के लिये अपने पुत्र के लिये सेवक सम्बन्धियों के लिये अति शूद्र के लिये यथा के साथ तथा का नित्य सम्बन्ध है इस से यथा कहने से अध्याहार से तथा शब्द ग्राह्य है तथा के ग्रहण से यह अर्थ होता है कि यथा मैं इस वाणी को कहता हूं तथा (वैसे ही) हे विद्वान् लोगो तुम सब मनुष्यों के लिये इस वेद वाणी को कहो उपदेश करो अर्थात् मुझ पक्षपातरहित की वाणी सब के हित के लिये है वह तुम को सब के लिये वक्तव्य है, अर्थात् वह सब को सुनाने व पढ़ाने योग्य है—कोई कहते हैं कि जन शब्द से ब्राह्मण ही अथवा तीन वर्ण का

अधिकार है इस से ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्य तक ग्रहण करना चाहिये। यह उन का कहना युक्त नहीं हैं क्योंकि जनेभ्यः अर्थ जनो के लिये यह कहकर आगे मन्त्र में पृथक् २ नामों को कहा है जो ईश्वर ब्राह्मण वा तीन ही वर्ण मात्र को अधिकार देता व उन ही मात्र का अधिकार होता तो शूद्रादिकों के पृथक् कर के प्रत्येक के नाम वर्णन न करता इस से विधि ही निश्चय करने योग्य है वेदप्रमाण की अनुकूलता से जो अन्यत्र विधिविषयक वाक्य हैं उन की सफलता वा पुष्टता सिद्ध होती है न्याय से आप्तवचन के प्रमाण से श्रुति से भी विधि सिद्ध होने से सर्वथा निषेध का प्रामाण्य नहीं है स्मृति वाक्य के चरितार्थ होने के लिये निषेध भी उक्त प्रकार से मन्तव्य है यह सिद्धान्त है ॥

इत्यधिकारनिरूपणविषये समीक्षाकरे चतुर्थोऽध्यायः॥

——*——

वेदान्तदर्शनस्यद्वितीयाध्याये तृतीयपादेजीवात्मनोऽनुत्पत्तिंज्ञातृत्वनिरूपणाधिकरणेप्रसंगात् सवाएषमहानजात्मायोयंविज्ञानमयः प्राणेष्विति श्रुतेरात्मनोविभुत्वंतथाएषोऽणुरात्माचेतसावेदितव्य इतस्तस्याणुत्वावगमात् किंपरिमाणंतत्वमितिसंशयेउत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् इत्यादिसूत्रैरात्मपरिमाणंनिरूपितं तेषांयानिसमीक्ष्यानितान्यत्रलिख्यन्तेअद्वैतमतानुसारेण निम्नलिखितजीवात्मपरिमाणविषयकसूत्राणांव्याख्यानानन्तरंसिद्धान्तोविचार्य्यते ॥

अथ भाषानुवादः॥

वेदान्त दर्शन के द्वितीय अध्याय तृतीय पाद में जीवात्मा का उत्पन्न न होना व ज्ञाता होना निरूपण करने के अधिकरण में प्रसंग से इस श्रुति से जिस में यह वर्णन है कि निश्चय से सो यह आत्मा महान् अज (जन्मरहित) है जो यह प्राणों में (इन्द्रियों में) विज्ञानमय है आत्मा का विभु (व्यापक) होना तथा इस श्रुति से कि यह अणु आत्मा चित्त से (ज्ञान से) जानने योग्य है आत्मा का अणु होना विदित होने से कौनसा प्रमाण सत्य है यह संशय होने में उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्। अर्थ—उत्क्रान्ति (शरीर से निकलना) लोकान्तर का जाना आना सुनने से इत्यादि सूत्रों से आत्मा के परिमाण का निरूपण किया है उन सूत्रों में से जौन समीक्षा के योग्य हैं वह यहां लिखे जाते हैं निम्न लिखित जीवात्मा के परिमाण विषयक सूत्रों का अद्वैत मत के अनुसार व्याख्यान करने के पश्चात् सिद्धान्त विचार किया जाता है ॥

तद्गुणसारत्वात्तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् । सूत्र० ॥२९॥

तुशब्दःपक्षंव्यावर्तयतिनैतदस्त्यणुरात्मेतिपरस्यैवतुब्रह्मणः प्रवेशश्रवणात् तादात्म्योपदेशाच्चपरमेव ब्रह्म जीवइत्युक्तं परमेवचेद्ब्रह्मजीवः तस्माद्यावत्पर, ब्रह्मतावानेवजीवोभवितुमर्हति परस्यब्रह्मणोविभुत्वमाम्नातं तस्माद्विभुर्जीवः तथा च सवाएषमहानजात्मायोयंविज्ञानमयः प्राणेष्वित्येवंजातीयकाजीवविषयाविभुत्ववादाःसमर्थिताभवन्तियदिजीवोविभुःकथमणुत्वादिव्यपदेशइत्यत आहतद्गुणसारत्वात्तद्व्यपदेशइतितस्या. बुद्धेर्गुणाः तद्गुणाइच्छाद्वेषःसुखदुःखमित्येवमादयस्तद्गुणाः सारंप्रधानंयस्यात्मनः संसारित्वेसंभवन्तिसतद्गुणसारः तस्यभावस्तद्गुणसारत्वंनहिबुद्धेर्गुणैर्विनाकेवलस्यात्मनः संसारित्वमस्तिबुद्ध्युपाधिधर्माध्यासनिमित्तंहिकर्तृत्वभोक्तृत्वादिलक्षणं संसारित्वम कर्तुरभोक्तुश्चासंसारिणोनित्यमुक्तस्यसतआत्मनस्तस्मात् तद्गुणसारत्वाद्बुद्धिपरिमाणेनास्य परिमाणव्यपदेशात्तदुत्क्रान्त्यादिभिश्चास्योत्क्रान्त्यादिव्यपदेशोनस्वतः जीवस्यौपचारिकमणुत्वंपारमार्थिकंचानन्त्यम् उपाधिगुणसारत्वाज्जीवस्याणुत्वव्यपदेश प्राज्ञवत्यथाप्राज्ञस्यपरमात्मनःसगुणेषूपासनेषूपाधिगुणसारत्वादणीयस्त्वादिव्यपदेशःअणीयान्व्रीहेर्वायवाद्वामनोमयः प्राणशरीरइत्येवंप्रकारस्तद्वत्स्यादेतत्यदिबुद्धिगुणसारत्वादात्मन.संसारित्वंस्यात्ततोबुद्ध्यात्मनोभिन्नयोः संयोगावसानमवश्यंभावीत्यतोबुद्धिवियोगेसत्यात्मनोविभक्तस्यालक्ष्यत्वमसत्वमसंसारित्वंवाप्रसज्येतेत्यतउत्तरंपठति ।

अथ भाषानुवाद ॥

तद्गुणसारत्वात्तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् । सू० ॥२९॥

वही प्रधान गुण है जिस का ऐसा होने से उस का कथन है प्राज्ञ के समान ॥२९॥

आत्मा अणु नहीं है क्योंकि परब्रह्म ही का जीव रूप से प्रवेश करना सुना जाता है और तादात्म्य को अर्थात् वही रूप होने को भी उपदेश है पर ब्रह्म ही जीव है यह कहा गया है पर ब्रह्म ही जीव है तिस से जितना पर ब्रह्म है उतना ही जीव होना चाहिये श्रुति में ब्रह्म को विभु कहा है इस से जीव भी विभु है ऐसा होने में निश्चय से सो यह आत्मा महान् अज है जो यह प्राणों में विज्ञानमय है इस प्रकार की जीव विषय वाली विभु की प्रतिपादन करने वाली श्रुतियां घटित होती हैं जो जीव विभु है तो

वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड के सहायतार्थ आई औषधियां—

(इस का अर्थ मूल्य भारतोद्धारक की सहायता में लगेगा—शीघ्र मंगावें)

(१) कोष्टवज्रमाग्रटी मू० एक डिब्बी ॥) इस को खाने से कोष्ट (पेट-मेदा) शुद्ध हो जाता है तथा अफरा, पेट का फूलना, ज्वर, जुरी, तिजारी, वातरक्त मल कोष्ट, गठिया, सिर का दर्द इत्यादि शीघ्र शान्त होता है।

(२) रुधिर परिष्कार वटिका अर्थात् आयुर्वेदीय सालसा मू० २)—खून को साफ करती है अशुद्ध पारा और कोई कच्ची धातु खा ली होवे उन के लिये बड़ी लाभकारी है सिरका दर्द वा चक्कर, जोड़ों का दर्द गर्मी अर्थात् आतशक और गठिया को दूर करती है।

(३) इन्द्रवज्र चूर्ण मूल्य ॥=) बीसो प्रमेह तथा वीर्यक्षय के सब प्रकार के रोग को आराम करती है यह एक महात्मा की बताई बड़ी लाभकारी महौषधि है, यदि निरोग मनुष्य भी उसे एक महीने में आठ बार सेवन करे तो स्वप्न दोष कभी न होवे।

(४) प्रसूतारि वटी मूल्य ५) प्रसूता स्त्री के लिये यह संजीवनी है इस से शरीर की दुर्बलता, हाथ पैर व कमर का दर्द आंखों का जलना अन्न का न पचना आदि रोग शान्त हो जाते हैं।

(५) गन्धकवटी मू० ।।।) इस से अग्नि मन्द, पेट का फूलना, वादी से डकार का आना आदि रोग दूर होते हैं पाचन के लिये रामवाण है।

(६) खांसी की गोली ५० का मूल्य ।।) सर्वप्रकार की नई पुरानी खांसी दूर हो जाती है।

(७) त्रिपुर भैरव वटी १) यह मुसाफरी करने वालों को अवश्य साथ रखनी चाहिये इस के सेवन से कैसा भी ख़राब पानी हो बाधा नहीं करता और हैजा कभी पास ही न आवेगा।

(८) दन्त वज्र मञ्जन मू० ।) इस के मलने से मसुड़ों से रक्त निकलना, दांतों का पोला पड़ जाना, मुख से दुर्गन्ध का आना, दांत अथवा डाढ़ का दर्द वा हिलना इत्यादि शीघ्र आराम हो जाता है।

(९) अमृत मंजरी गुटिका १) इस से सर्वप्रकार का नया वा पुराना ज्वर प्लीहाज्वर जुड़ी आदि दूर होते हैं तथा भूख लगती है कूईनेन का दादा है।

(१०) अमृत संजीवनी बूटी ।) हैजे के लिये बड़ी ही उत्तम लाभदायक है यदि उस समय सेवन की जाय तो हैजा प्राप्त न आवे सर्व महाशय को सदा साथ रखनी चाहिये।

ओ३म् तत्सत् परमात्मने नमः

भारतोद्धारक ॥

दृते दृंहह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित "वैदिकपुस्तक-प्रचारकफण्ड" का प्रकाशित मासिक पत्र—सदर मेरठ

इस मासिक पत्र की रजिष्ट्री कराई है इसलिये इस में के विषय अलग करके किसी को छापने का अधिकार नहीं है

१ वर्ष } आर्य्य संवत्सर १९७२९४८९९९ { सं० ९।१०

(१) वार्षिक मूल्य अग्रिम सर्वसाधारण से डाकव्यय सहित १) धनाढ्य रईसों से २) राजा महाराजाओं से ५) श्रीमती गवर्नमेंट के सन्मानार्थ १०) पलटन के सिपाही, स्कूल के विद्यार्थी जो एक पाकट में १० प्रति एक साथ मंगावेंगे उन से ॥) मेरठ वालों से ॥।–) लिया जायगा पश्चात् दूना लिया जायगा । यह मूल्य ता० ३१ जनवरी ९८ ई० तक अग्रिम गिना जायगा ॥ फुटकर अङ्क दो आना

(२) जो महाशय "भारतोद्धारक" पत्र के सहायतार्थ रु० २५) दान देंगे उन के नाम धन्यवाद पूर्वक टाईटिल पेज के प्रथम पृष्ठ पर ३ मास तक ५०) छ मास तक रु० १००) एक वर्ष तक छपा करेंगे ! देखें कौन महाशय इस धर्म्मकार्य्य में सहायता देता है ॥

(३) विषय—(१) वै० पु० प्र० फण्ड का आय (२) आर्यो ! जागृत हो (३) समीक्षाकर (४) भास्करप्रकाश (५) मुर्दा अवश्य जलाना चाहिये।

१५ । २ । ९८

स्वामी प्रेस—मेरठ

भारतोद्धारक का मूल्यप्राप्ति स्वीकार ॥

नवेम्बर सन् १९०७ का आय

४२ बा० गणेशलाल मुख़ार बाड़ १)
४३ ला० श्यामलाल वैश्य बजाज़ जलेसर १)
४४ ताराचन्द दूकान्दार तमाकू „ १)
४५ बा० लक्ष्मीनारायण दारोग़ा जेल शाहजहांपुर १)
४६ पं० अम्बालालजी नागरदानी इ० १)
४७ क्षेत्रपाल शर्मा मथुरा १)
४८ पं० दामोदरप्रसाद चतुर्वेदी अम्बाला छावनी १)
४९ बा० सीतारामजी एम०सी मन्त्री आर्यसमाज कराची १)
५० पं० कालूरामजी रामगढ़ १)
५१ पं० नाथूरामजी मुदर्रिस मन्त्री आर्यसमाज सकीट १)
५२ बा०बिहारीलालजी बी.ए. भूपाल १)
५३ मन्त्री आर्यसमाज जलालाबाद जिला अमृतसर १)
५४ बा० रूपसिंहजी सिग्नलर बरेली १)
५५ पं० शालिग्राम जी नागर मथुरा १)
५६ मुं०अवधविहारीलालजी दीवान रियासत चमरवा १)
५७ चौ०रणजीतसिंहजी नम्बरदार झायीन १)
५८ डा० रामलगनसिंह सीहोरा १)

नवेम्बर सन् ०७ का आय योग १७)

डिसम्बर सन् १९०७ का आय

५९ बा० इन्द्रप्रसादजी मन्त्री आर्यसमाज मुंगेर १)
६० श्रीकृष्णजी वामनेकर सुलतानपुर १)
६१ श्रीयुत जमादार आत्माराम „ १)
६२ डा० दुबेलीप्रसादजी कन्नौज १)
६३ पं० देवीदीन जी मन्त्री आ० „ १)
६४ श्रीयुत जसीयतराम जयशङ्कर अहमदाबाद १)
६५ „ सर्वजीतलालसं०आ०स०सीखड़ १)
६६ बा० अयोध्याप्रसादजी तीतरी १)
६७ बा० वृन्दावनदासजी मुरादाबाद १)
६८ बा०बैजनाथजी रईस नजीबाबाद १)

५९ श्रीयुत कृष्णराव नारायण रेगे जागीरदार हरदा १)
७० बा० तिलोकचन्दजी मन्त्री आर्यसमाज भीवानी, रोरा १)
७१ पं० पूर्णमलजी मुदर्रिस बढोला १)
७२ श्रीयुत धनसिंहजी शर्मा मवाड़ा १)
७३ „ नामदेव तुकारामजी सीपी० येवला १)
७४ पं० मन्नीलाल मुदर्रिस मसावत १)
७५ बा० पालारामजी लखनऊ १)
७६ पं० छेदालालजी महता कायमगंज १)
पं० रामप्रसादजी शर्मा गढोल १)
७८ श्रीयुत भवानीप्रसादजी सूर्यप्रसाद मलकापुर १)
७९ पं० गौरीशङ्कर तेवारी ठठिया १)
८० बा० बलदेवसिंह वर्मा अमरावती १)
८१ श्री मक्खनलाल मन्त्री भीलवाड़ा १)
८२ बा० तोलाराम जी लयलापुर १)
८३ ला० प्यादरसिंह जी खड़ा १)
८४ पं० श्रीराम जी पांचली कलां १)

मूल्यप्राप्तिस्वीकार ॥

८५ श्रीयुत मं० आ०स० नजीमाबाद १)
८६ बा० राधाकृष्णजी वैश्य „ १)
८७ ला० रतनलालजी स० ओ० हापुड़ १)
८८ लाला हरज्ञानसिंह अमनुल्लापुर १)
८९ बा० चम्पाराम भरतपुर १)
९० बा० छोटालाल गुप्त भंडारा १)
९१ श्रीयुत राव रोशनसिंहजी रईस अगरा १)
९२ मुं० कालिका प्रसादजी अगरा १)
९३ बा० हरद्वारीलाल मन्त्री आर्यसमाज बमत १)
९४ श्रीयुत हरकृष्णदास सिरज़ामलजी फ़र्रुखाद १)
डिसम्बर सन् १८९७ के आय योग ३७)

जनवरी सन् १८९८ का आय

९५ बा० घनश्यामदास तारइन्सपेक्टर दिल्ली १)
९६ ला० भागीरथलालजी बजाज रुड़की १)
९७ बा० शेरसिंहजी मन्त्री सुरजन नगर १)
९८ ला० गणेशीलालजी प्रधान चंदौसी १)
९९ कुंवर नेकनामसिंहजी रादौर „ १)
१०० पं० जयमङ्गल शर्मा साकरपुर १)
१०१ बा० भगवानदास वर्मा जालंधर १)
१०२ महन्त लक्ष्मणदासजी नाहन १)
१०३ डा० लक्ष्मणप्रसादजी फ़तहगढ़ १)
१०४ श्रीयुत नन्दकिशोर जभोई १)
१०५ पं. माधोप्रसादजी तिवारी अलीगढ़ १)
१०६ बा० प्रियालालजी करनाल १)
१)

१०८ राय दुर्गाप्रसादजी रईस फ़र्रुखा० २)
१०९ श्रीयुत जी०एल०शाहबा० ऐटला १)
११० श्रीयुत यमुनादासराजारामजी शरोफ़ बलसाड़ १)
१११ पं० मुक्ताप्रसादजी वाजपेई कलकत्ता १)
११२ बा० विश्वम्भरनाथजी कानपुर १)
११३ बा० बदनसिंहजी पचोरी जसोर १)
११४ डा० नरसिंहभानु मन्त्री बीलवली १)
११५ श्रीयुत गेंदालाल हलवाई „ १)
११६ मन्त्री आ०स० खिनुदादन खान १)
११७ बा० सत्याचरणराय कलकत्ता १)
११८ बा० मूलराजजी कोशाध्यक्ष आर्यसमाज भूपालवाला १)
११९ पं० रामलालजी संस्कृतअध्यापक थानेश्वर १)
१२० ला० मङ्गलराय वैश्य हाथी का करोंदा १)
१२१ मथुरालाल वर्मा स्वर्णकार देवाल १)
१२२ ठा० विजयसिंह वर्मा सिकूर १)
१२३ राय तुलसीप्रसाद जी रईस सिकन्दराराऊ २)
१२४ बा० प्रेमसुखजी कोषाध्यक्ष आर्य समाज चून १)
१२५ श्रीयुत खेमचन्द्र जी मन्त्री आर्य समाज रावला १)
१२६ बा० बांकेविहारीलाल हेडमास्टर डुडवारागंज १)
१२७ ला० नन्दरामसुन्नालाल वैश्य १)
जनवरी सन् १८९८ का आय योग ३७)

मूल्यप्राप्तिस्वीकार ॥

फरवरी सन् १८९८ का आय

१२८ बा० हरगोपाल जी मन्त्री, आर्यसमाज छतरी १)

१२९ मु० चिन्तामणि जी बुकसेलर फरुखाबाद १)

१३० सी० टी० पण्डित व्यास के १)

१३१ बा० राधाकृष्ण वर्मा मन्त्री आर्यसमाज शिमला १)

१३२ श्रीयुत रायबीरसिंह डिसाकेम्प १)

१३३ पं० बैजनाथ शर्मा उपप्रधान आ० स० विधून १)

१३४ पं० रामप्रताप शर्मा जयपुर १)

१३५ बा० निहालसिंह जी उपप्रधान करनाल १)

१३६ स्वामी बद्रीदास जी मन्त्री गौहसभा शिमला १)

१३७ ला० मुकन्दराम जी वैश्य मन्त्री आ० स० काजिमाबाद १)

१३८ बा० रामप्रसादगुप्त हास्पिटल एसिस्टेंट नरसिंहपुर १)

१३९ बा० माधोरामकानूनगोबदायूं १)

१४० ला० जीवनदास जी उपप्रधान लाहौर १)

१४१ पं० बद्रीप्रसाद शर्मा मन्त्री आ० स० टांडा मुबारकपुर

१४२ पं० बद्रीदीन शुक्ल अकबरपुर १)

१४३ पं० रामकिशोरजीशर्माकलकत्ता १)

१४४बा०बनवारीलालजीमुख्तारराँची१)

१४५ बा० बलदेवप्रसाद जी वकील १)

१४६ बा० चोखामल जी अजमेर १)

१४७ ला० चक्रपाणि जी मन्त्री आ०स० तेराजाकट १)

१४८ बा० कृष्णचन्द्र ओवरसियर पेशावर (दोवर्ष का) ३)

१४९ बा० सुन्दरलालगणेशीलाल जी मन्त्री आर्य समाज बम्बई १)

१५० बा० घासीराम जी एम० ए० प्रोफेसर जसवन्त कालेज जबलपुर २)

१५१ बा० मथुराप्रसाद जी सबपोस्ट-मास्टर मऊ १)

१५२ पं० बद्रीप्रसाद जी वैद्यकासगंज १)

१५३ ला० टोडरमल जी सिरवा १)

सामवेदभाष्य

श्वेताश्वतरोपनिषद् संस्कृत तथा भाषा भाष्य पूर्ण हुआ मूल्य ।=) मात्र है। अब कई भद्र पुरुषों की प्रेरणा से सामवेद भाष्य ठीक श्वेताश्वतर की शैली पर ४० पृष्ठ का मासिक अङ्क निकलेगा वार्षिक अग्रिम मूल्य ३) परन्तु सौ ग्राहकों का मूल्य आजाने पर ४) होजायगा सौ ग्राहकों का मूल्य आने पर छपेगा। ग्राहक महाशयों को शीघ्रता करनी चाहिये जिस से शीघ्र ही सामवेद-भाष्य पाठकों के दृष्टिगत हो और सम्पादक का उत्साह बढ़े। जो लोग ३) न भेज कर केवल ग्राहक बने हैं अथवा बनेगे वे सौ के भीतर नहीं गिने जायंगे। आप जानते हैं कि वेदों के भाषाभाष्य की कितनी आवश्यकता है॥

पता—सम्पादक "वेदप्रकाश" तथा "सामवेदभाष्य" मेरठ

ओ३म्

भारतोद्धारक ॥

अन्त्येष्टिकर्म आवश्यक है

अर्थात् मुर्दे अवश्य जलाने चाहियें। श्रीपण्डित लेखराम आर्यपथिक प्रणीत उर्दू का कवि कुमार शेरसिंह वर्मा कर्णवास वासी कृत भाषानुवाद

मृतक के साथ देशान्तरों तथा जातियों में बड़े विरोध के साथ व्यवहार किये जाते हैं अर्थात् दाह करना, गाड़ देना, जानवरों के आगे डाल आना, वायु में या औषध लगा के सुखा देना, पानी में बहा देना ॥

आर्य्य लोग सदा से मृतक को दाह करते हैं, यहूदी ईसाई मुहम्मदी गाड़ते हैं, पारसी पशुपक्षियों को चुगने डालते हैं और प्राचीन मिसरी औषध लगाकर वायु में सुखा देते थे। बहुधा विशेष जाति के लोग पानी में बहा देते हैं ॥

हमारा प्रयोजन इस लेख से यह है कि जो ठीक हो, विद्या बुद्धि से विरुद्ध न हो, जिस से तनक भी हानि न हो यद्वा बहुत ही कम हो उस का प्रचार होना उत्तम है ॥

जो प्रथा वैद्यक विद्या के विरुद्ध बीमारी, मूर्त्तिपूजा, पाप में मनुष्यों को डालती और दुनिया को नष्ट भ्रष्ट करती है उस से घृणा कर उसे छोड़ना चाहिये क्योंकि मत (मज़हब) या प्रथा वही सच्ची है जो सत्य विद्यानुसार है शेष सब अनर्थ है ॥

मृतकों के गाड़ने के विषय में अन्वेषण ॥

तौरेत उत्पत्ति अध्याय ४ आयत एक से १६ तक क़ाइन और हाबील की कहानी है कि एक की बलि ईश्वर ने अङ्गीकार की और दूसरे की नही जिस पर क़ाइन ने (जिसे मुसलमान क़ाबील कहते हैं) हाबील को मारडाला और पृथ्वी में गढहा खोद कर गाड़ दिया कि कोई भी न जान पावे ईश्वर ने पूछा कि अरे क़ाइन तेरा हाबील भाई कहां है? उस ने उत्तर दिया कि मैं नहीं जानता कि मैं उस का द्रष्टा हूं? ईश्वर ने कहा कि तेरे भाई का रुधिर पृथ्वी से पुकार कर कह रहा है कि तूने उसे काट डाला, अन्त को क़ाइन ने स्वीकार किया इस कारण परमेश्वर ने उस को वहां से नूद की धरती में चले

-जाने की आज्ञा दी इसी के अनुसार क़ुरान में लिखा है कि:-

(फ़बा, असुल्लाहो गुराबनयबहसाफ़िल अरज़े लेरिही कै फ़ लवारेसबातुलअख़ीहे कालयामेलतीआजज़ुअन्अकूनामिसलहा-ज़ुलगुराबफ़ अवारी सवातुलअख़ीफ़असबहामिननादमीन) सूरतुलमायदः।

इस पर टिप्पणी हुसेनी में भले प्रकार से क़ाबील हाबील का समस्त आख्यान लिखा है कि जब क़ाबील हाबील के मारने के प्रबन्ध में था तो उस समय शैतान मनुष्य के वेष में बनकर उसे एक कुक्कुट हाथ में पकड़े हुए दीख पड़ा अस्तु शैतान ने उस कुक्कुट के शिर को पत्थर पर रक्खा और दूसरे पत्थर से मारा कि वह कुचिल गया और मरगया। क़ाबील ने यह ढंग शैतान से सीखकर जब हाबील को पत्थर पर शिर रक्खे सोता पाया उसी प्रकार पत्थर उस के शीश पर उठाकर मारा और मारडाला और मरदूद हुआ अर्थात् अप्रतिष्ठित हुआ प्रलय के दिन नरक का आधा कष्ट उस को होगा ॥

अब क़ाबील नहीं जानता था कि उसे क्या करे एवं उसे कपड़े में लपेटकर चालीस दिन चारों ओर फिरता रहा-इब्न अब्बास कहते हैं कि एक वर्ष फिरता रहा कि वह अपवित्र और दुर्गंधित हो गया-जानवर उस पर गिरते थे कि यह फेंके और हम खावें कि जिस से बहुत तंग आगया, इतने में एक काक को क़ाबील ने देखा कि अपने दोनों पांव से एक गढ़ा खोदा और दूसरे मरे हुए काक को लाया और उस में रक्खा और ऊपर मिट्टी डाली-क़ाबील ने कहा कि आश्चर्य कि मैं इस काक से भी निर्बुद्धि हूं इस के पीछे क़ाबील ने हाबील को काक के अनुसार धरती में गाड़ दिया-(टिप्पणी यानी तफ़सीर हुसेनी पन्ना १४३ व १४४ जिल्द पहिली नवलकिशोर)

इस पर आनरेबिल सर सैयद अहमदख़ां साहब बहादुर फ़रमाते हैं कि आख्यान हज़रत आदम अले अस्सलाम के सुपुत्र हाबील और क़ाबील का जिस का बयान क़ुरानमजीद में विद्यमान है जब एक ने दूसरे को मारा तो उस का शव (मुरदा) छिपाने के लिये दुःखी था, देखा उसने एक काक को कि वह हड्डी (अस्थि) मट्टी में छुपाता है मनुष्य ने मरे हुए को गाड़ देनी हक़ीक़त में उसी समय से सीखा है। (तहज़ीब इख़लाक़ जिल्द १ नम्बर ४ सुफ़ा ३५)

अस्तु ठीक विदित है कि मरे हुए का गाड़ देना मनुष्य ने काक से सीखा या उस का अनुकरण किया है कोई मत (मज़हब) की बात नहीं है । और न धर्म का इस के साथ अनुगम है ॥

इन समाधियों के कारण अर्थात् मृतकों के गाड़ने के कारण समाधिस्थान के निकट वाले खेतों में अन्न अत्यन्त रोगकृत् और समीपी कूपों का पानी आरोग्य का नाशक है ॥

इस पर भी लाखों बीघा क्या अनेक मीलों धरती समाधिस्थानों के कारण से बिना खेती के ऊजड़ पड़ी हुई है विशेष कर समाधिस्थान उत्तम उर्वरा भूमि में होते हैं और जब वह बहुत सी अच्छी धरती खेती योग्य समाधियों में घिर गई तो बतलाइये कि कृषि की कितनी हानि हुई और होरही है अथवा भविष्य में होगी ॥

अन्धापत बढ़ रही है समाधिस्थान धरती को संकोच कर रहे हैं तिस पर बीमारी की भरमार तात्पर्य यह है कि मरे हुओं का गाड़ना—जीवतों का गला काटना है ॥

कोट्यान मनुष्य परमेश्वर का आसरा छोड़ ओषधियों से मुख मोड़ चिकित्सा तथा वैद्यकविद्या से विरुद्ध हो समाधियों (कबरों) को समाधिस्थलों पर जाकर व्यर्थ समय नष्ट करते, ईश्वर में साझा करते, अन्त के दिनका झगड़ा विशेष कर उठारहे हैं अर्थात् ईश्वर को छोड़ कबरों (समाधों) की पूजा अपनी जीविका साध पापी बन रहे हैं ॥

अब आगे देखिये कि शैतान के बतलाने से मारा गया काक के प्रबोध से गाड़ा गया हमारा उस से क्या संबन्ध, हम वह मार्ग स्वीकार करेंगे जिस से संसार में मनुष्य जाति का उपकार, रोग तथा महामारी की शान्ति, अन्न की वृद्धि हो, आनन्द और आराम से जगत् की उन्नति हो ॥

मुर्दों का जानवरों के आगे डाल देना ॥

यह राह पार्सी लोगों में ज़रदुश्त पैग़म्बर के पीछे चली है किन्तु "ज़न्दावस्था" में इस की तनक भी चर्चा नहीं है वहां केवल दो प्रकार लिखे हैं ।

"मुरदे को गरम पानी में या आग में जलावे यह ढंग मुरदे गाड़ने का है"—

इस पर टिप्पणी की है—कि यदि पीछे छोड़ने जान के शरीर को पवित्र जल से धोवे और शुद्ध सुथरे वस्त्र पहनावे और इसी प्रकार शरीर उस के को गरम पानी के मटके में तेज़ाब डाल गलावे और पानी को शहर से बहुत

दूर फेंकदे हड्डियां मुरदे के शरीर की मनुष्यों को ख़राब न करें यदि तेज़ाब में न गलावें इसी प्रकार जामा साफ़ पहना कर आग में जलावें–(फ़रग़ार्द व खशूराम व खशूर आयत नम्बर १५४ सुफा ३१)

इसके आगे इसी आयत के टीकाकार ने विद्यमान प्रथा से कूप खोद कर "दखमः" बनाने का भी वर्णन किया है परन्तु यह प्रथा बीमारी के फैलाने वाली और सभ्यता से गिरी हुई है और अब सभ्य पारसियों ने मुरदे का जलाना स्वीकार भी कर लिया है इसलिये सब से अच्छा यही दाह करने का मार्ग है–

हवा में या मसाला लगाकर सुखा देना।

यह प्रकार मिस्र के बादशाहों का था क्योंकि वह परमेश्वर को नहीं मानते थे और फ़रयून के तुल्य विचार वाले थे इसलिये अपने पुजाने के विचार से उन्हों ने आप या उन के चेलों ने इस की राह चलाई क्योंकि अब वह मत नहीं रहा और न वह उत्तम है कारण यह कि उस में भी बीमारी फैलने की सम्भावना है और जो मनोरथ है वह भी ठीक नहीं हो सकता क्योंकि समस्त मनुष्यों के लिये यह नियम नहीं चल सकता और इतनी धरती भी नहीं कि उस पर सृष्टि की आदि से आज तक जितने मनुष्य पैदा हुए यदि मसाला लगाकर रक्खे जावें तो समा सकें, आश्चर्य नहीं कि जीवते हुए लोगों को बस्ती न रहने पर चाहें समुद्र में घर बनानें पड़ें इसलिये यह मार्ग नितान्त अपापपंथी है–

पानी में बहा देना॥

यह प्रथा गङ्गादि नदियों के किनारे प्रचलित है और वह केवल मुक्ति के भरोसे पर है अर्थात् गङ्गा में पड़ जाने से मुक्ति होगी सो कुछ यह मत या विद्या की बात नहीं है–डाक्टरों, वैद्यों, ने सिद्ध कर दिया है कि जल में अपवित्र सड़ायंदी वस्तु डालना मुरदा डालना उसे पीने वालों के लिये महान् हानिकारक कर देना है। आप लोग देखते होंगे कि यदि किसी कुयें या तालाब में कभी मरे हुए जानवर पड़ जावें या मर जावें तो जल कैसा दुर्गन्धित हो जाता है और कितना आरोग्य के विरुद्ध है, यथार्थ में लोग गङ्गा का अमृततुल्य जल इसी प्रकार की सड़ायंदों के डालने से भ्रष्ट कर देते हैं–हां यह प्रथा चोर चकोर बटमार आदि लोगों के लिये हो क्योंकि वह लोग बहुधा

अनर्थ करते उसे छुपाने के हेतु पता दुराने के लिये ऐसा करते हैं सभ्य लोगों के लिये अत्यन्त ही अयोग्य है—

मुरदों का जलाना ॥

मृतकों का दाह करना एक समय जब कि समस्त संसार में वैदिकधर्म या आर्य्यधर्म का प्रचार था और संपूर्ण धरती के मनुष्य मात्र में प्रचलित था आर्य्यजाति (जिस के भीतर यूनानी, रूमी, पारसी, अंगरेज, जरमन, फ्रिञ्च तथा समस्त यूरोप और एशिया की सम्पूर्ण सभ्य जातियां आर्य सन्तान से हैं) सदैव मृतकदाह करते थे जिस को कि आनरेबिल डाक्टर डबल्यू हण्टर साहब बहादुर प्रख्यात ऐतिहासिक कहते हैं कि "आर्य्य क्या हिन्द क्या यूनान और इटली में अपने मुरदों को चिता पर जलाते थे"—(२ तारीखहिन्द सन् १८८४ई० सुफा ३०) ॥

अब हम आर्य्यावर्त्त की पवित्र पुस्तकों से अन्वेषण करते हैं यजुर्वेद में है कि (भस्मान्तꣳशरीरम् अ० ४० मं० १५) अर्थात् यह कि मनुष्य के शरीर से अन्तिम सम्बन्ध दाहकर्म कर देने तक है। इस पर महर्षि मनु भगवान् ने लिखा है

निषेकादि श्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितोविधिः० म०अ०२ श्लो० १६

अर्थात् गर्भाधान से श्मशान तक मनुष्य शरीर के लिये मन्त्रों की विधि है तात्पर्य यह कि जन्म से लेकर मरण पर्यन्त जो २ काम मनुष्य की भलाई के लिये आप या दूसरों को करने चाहियें उन की आज्ञा वेदमन्त्रों में है शरीर के पीछे फिर कुछ करने की उस के लिये आज्ञा नहीं है। और न कुछ उस को पहुंच सकता है। ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १६ मन्त्र ३ व ४ व ५ व ७ व १३ और ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १४ चौदह मन्त्र ६ से १६ तक तथा ऋ० वेद मण्डल १० सूक्त २० मन्त्र ९ और यजुर्वेद अध्याय ३९ मन्त्र १ से ६३ तक और अथर्व काण्ड १८ सूक्त २ मन्त्र १ से १० तक और तैत्तिरीय महर्षि की उपनिषद् में भी इन मन्त्रों के सम्बन्ध में संक्षेप विवरण है प्रपाठक ६ अनुवाक १ से १० तक वाक्य एक से सोलह तक में प्रत्यक्ष प्रकार से मरे हुओं को जलाने के लाभ और उस को अस्थियों को जलाने के पीछे पानी या खेत में डालने का चरचा है जिस का लाभ सूर्यवत् प्रकाशित है—चूना, हड्डी, कोयला, रेत, आदि से पानी शुद्ध होता है ॥

मृतक दाह के लाभ ।

(१ लाभ) मृतकों के जलाने में पृथ्वी कम व्यय होती है तात्पर्य यह है कि एक बीघा या उस से भी कम धरती में समस्त संसार के मृतक दाह किये जा सक्ते हैं—और फिर भी वह धरातल उसी प्रकार का शेष रहेगा बरन्‌ इस से भी बहुत कम और सहज में आराम के साथ निर्वाह हो सक्ता है—

(२ लाभ) मूर्त्तिपूजा या ईश्वर में साझे की जड़ उखड़ जाती है क्योंकि न समाधियां होंगी और न कोई उन से अभिलाषा पूर्ण करनी चाहेगा और फिर कोई भी पापी न होगा—वास्तव में इसी पीरपरस्ती या समाधिपूजा ने मृतक आराधना, समाधिपूजा की प्रथा चलाई जानो—

(३ लाभ) जो रोग समाधियों के सम्बन्ध से देखने में आते हैं नितान्त बन्द हो जावेंगे जल वायु और अन्नादि भी बिगड़ेंगे नहीं न संसार की अवनति होगी । धान्य उत्तम, जल शुद्ध, वायु हलकी, और पवित्र निर्वाह के लिये मिलेगी । वर्त्तमान के और प्राचीन वैद्यों ने बड़ी भारी तर्कों द्वारा निश्चय किया है और समस्त महाशयों का अनुभव है कि उत्तम और शुद्ध खुली वायु और पवित्र जल मनुष्य के आरोग्य का मूल कारण और परम आवश्यक है, एक मिनट भी वायु न मिले तो मनुष्य का प्राण नहीं रह सकता इसी प्रकार जल भी, क्योंकि सब से अधिक उत्तम और बड़ा पदार्थ जिस से मनुष्यजीवन निर्भर है यदि है तो वह यही है । यथार्थमें प्रकृति और बर्त्ताव का आयु के साथ बहुत बड़ा सम्बन्ध है जिस की सब से बड़ी जड़ जल वायु है जिस समय मृतकदाहप्रथा समस्त धरातल में थी अर्थात् तीन सहस्र वर्ष से प्रथम उस समय मनुष्यों की जीवनशक्ति पुष्ट ठीक और आरोग्य होती थी, वह पूरे युवक तथा बली और योद्धा होते थे यदि मृतकदाह की प्रणाली प्राचीन प्रथानुसार हो जावे तो अत्यन्त उत्तमता के साथ आरोग्य होजावे ॥

(४ ला०) एक प्रकार का जानवर बीजू (बूबर) जो समाधि से मुर्दे निकाल लेजाता है और बहुत से कफनखसोट समाधियों को खोद कर कपड़ा उतार लेते हैं इन कारणों से मृतक की प्रतिष्ठा भंग होती है और नैयायिक दोष देख पड़ते हैं उन सब का सहज प्रबन्ध होजावेगा ॥

(५ ला०) समाधि खोदने वाले श्मशानसेवी लोग जिन्हें मुजावर कहते हैं जो एक अशुभचिन्तकता संसार की तथा निरुद्यमी मार्ग से रोटी

कमाते और समयानुसार घृणित कर्म के कर्ता हैं सो भी किसी दूसरे अच्छे व्यापार में लग जावेंगे ॥

(६ ला०) अनेक मृतकों की समाधियों पर जो क्रोड़ों लाखों सहस्रों रुपये व्यय करके बड़े २ समाधिस्तम्भ मकान बनाये गये हैं और बनाये जाते हैं वह धन भविष्यत् में व्यर्थ व्यय न होने पावेगा और उस से बचा हुआ किसी उत्तम लाभकारक संसार के कार्य्य में अर्थात् पाठशाला अनाथालय, औषधालयादि में व्यय होगा ॥

(७ लाभ) काक या शैतान की बतलाई हुई छोड़ कर हम बुद्धि और पदार्थविद्या तथा सच्चाई के साथी और सहायक तथा अनुगामी कहलावेंगे ॥

(८ लाभ) रोशनी या मृतकों के मेला आदि का व्यय जो लाखों रुपये वार्षिक के लगभग है वह भी सम्पूर्ण न रहेगा ऐसा व्यय भी उत्तम कार्यों में लगाया जायगा और अब जो मृतकों के सिरहाने तेल जलता है जिस को वह तनक भी नहीं जानते फिर वह मसजिद या धर्मशालाओं तथा मन्दिरों में जलेगा वा मार्गों पर जहां बटोही जनों को बहुत लाभ पहुंचे उस के पुण्यभागी होंगे ॥

(९ लाभ) चरस गांजा अफीम और तमाकू पीना, छिनाला, ज्वारीपना, जो विशेष कर ऐसे स्थानों (तकिया, समाधिस्थल) में अधिक होता है उस का भी प्रबन्ध होजावेगा—अब थोड़े वर्षों से मृतकदाहकर्म की ओर डाक्टरों और पदार्थविज्ञानियों की प्रियता हुई है जिन्होंने एक मत हो स्वीकार कर लिया है कि यथार्थ में समाधि के स्थान में जलाना अत्यन्त ही लाभदायक है और सम्पूर्ण प्रकार की बीमारियां जो मुर्दे गाड़ने से उत्पन्न होती हैं उन के नष्ट होने का अनुमान किन्तु निश्चय है—

जापान, अमरीका और यूरोप के सभ्य देशों में इस का अधिक प्रचार होता जाता है क्योंकि विद्या इस की साथी है, इस हेतु आशा है कि एक समय समस्त सभ्य और विद्याप्रिय लोगों में यह कृत्य प्रचार पाजावेगा ॥

सब संप्रदायियों में से ईसाई अधिकतर विद्यारसिक हैं और एक विद्वान् पुरुष की कहावत है कि यूरूप में आज कल समस्त शक्ति विद्या की है और विद्या ही का वहां राज्य है इस कारण यूरोप तथा अमेरिका के ईसाइयों ने भी विद्या और न्याय की दृष्टि से गुण अवगुण पर ध्यान रख बुद्धिग्राह्य प्रकार स्वीकार किया है जिस का निश्चय समस्त प्रशंसित अंग्रेजी व उर्दू

अखबारों से होता है ॥

मृतकदाहकर्म के विषय डाक्टरों तथा ईसाई, मुसलमान और हिन्दू (आर्य) समाचारपत्रसम्पादकों की सम्मतिः—

लुधियाने का ईसाई अख़बार नूरअफ़शां लिखता है कि हिन्दुस्तान के अंगरेज़ी समाचारपत्र पायनियर तथा इंगलिशमैन ने लण्डन की महासभा (कांग्रेस) आरोग्यता की इस प्रस्तावना को प्रसन्न किया है कि मृतकदाहकर्म समाधि की अपेक्षा लाभदायक है—(ता०१७ सितम्बर सन् १८९१ ई० सुफ़ा १०) अख़बार अख़्तरेरूम, जो कि कुस्तुंतुनिया राजधानी टरकी से निकलता है लिखता है कि "इंगलिस्तान में जनाज़ों का जला देना" हेडिंग है। चंद साल से यूरोप और मुल्क इंगलिस्तान में आतिशपरस्तों की एक आईन जारी हुई है—वह यह है कि जो लोग मरजाते हैं उन की लाशों को आग में जला देते हैं तदनुसार सन् १८८५ई० में मुरदों के जलाने के लिये एक तनूर (मरघट) जारी हुआ—पूर्व लिखित वर्ष से सन् १८९० ई० तक तीन अंग्रेज़ों को उन के आज्ञापत्रानुसार और ५४ चौवन को आज्ञा विना ही जलादिया गया और वर्त्तमान वर्ष में भी ९९ मनुष्यों के शव उन के आज्ञापत्रानुसार दाह कर उन की भस्म को वायु में उड़ा दिया—अधिक निकट ही मानचिस्टर और अन्य प्रान्तों में ऐसे तनूर बनाये जाने वाले हैं (अख़्तरेरूम सन् १८९२ ई०) और शमशुल अख़बार मदरास ने भी (जिस के प्रबन्धकर्त्ता मुहम्मदयुसफुद्दीन आफ़री हैं) अपने पत्र २८ मार्च सन् १८९२ ई० जिल्द ३४ नम्बर १३ में इस को प्रति की है।

रफ़ीक़ हिन्द लाहौर (जिस के एडीटर एक मुसलमान मुहर्रमअली साहब थे) इस में लिखा है, "वैज्ञानिक यूरोप ने इस को सच माना है कि यूरोप में मुरदा जलाने का दस्तूर फैलता जाता है इटिली के रोम नगर में सन् १८८५ ई० में ११९ मृतकदाह किये गये सन् १८८७ ई० में १५५ परन्तु इस वर्ष में २०० से अधिक मनुष्य मरने के पीछे दाह किये गये—

इङ्गलिस्तान में दी "किंग" नामी स्थान में मृतकदाहकर्म की आज्ञा दी गई है तब से ६९ मृतकदाह हुए हैं—

विज्ञानी इंगलिश की यही सम्मति है कि जब तक ऐसे लोग जो हैज़ा और चेचक आदि रोगों से मरने वाले गाढ़े जावेंगे तब तक इन रोगों की जड़ कट जाना नितान्त असम्भव है—क्योंकि समाधियों में इन की उत्पत्ति

अणु होने का कथन क्यों है इस संदेह के निर्णय के लिये यह कहा है कि उस को अर्थात् बुद्धि के इच्छा द्वेष सुख दुःख आदि गुण ही सार होना (प्रधान वस्तु) जिस आत्मा के संसारी होने में संभव होता है अर्थात् संसारी अवस्था में बुद्धि के गुणों ही को आत्मा में मुख्यता है विना बुद्धि के गुणों के आत्मा का संसारित्व नहीं है। बुद्धि उपाधि धर्मों के अध्यास के कारण से कर्ता होना भोक्ता होना आदि रूप आत्मा का संसारित्व (संसारीपन) है शुद्धरूप आत्मा असंसारी नित्यमुक्त न कर्ता है न भोक्ता है। तिस बुद्धिगुणसार होने से बुद्धि के परिमाण से इस आत्मा के परिमाण का कथन है उसी की उत्क्रान्ति आदि (शरीर से निकलना अर्थात् मरण आदि) होने से इसकी (आत्मा की) उत्क्रान्ति आदि होना कहा जाता है स्वतः आत्मा का उत्क्रान्ति आदि होने का अभाव है। इस से जीव का औपचारिक अणुत्व (अणुरूप होना) है पारमार्थिक रूप से आत्मा अनन्त है। उपाधिगुणसार होने से जीव का अणु होना कहा है प्राज्ञ के समान अर्थात् जैसे प्राज्ञ परमात्मा का सगुण उपासना उपाधिगुणसार होने से अणु होने आदि का कथन है जैसे यह कहा है "अणीयान् व्रीहेर्वायवाद्वामनोमयः प्राणशरीरः" अर्थ-धान्य से यव से अतिः सूक्ष्म मनमय प्राण शरीर रूप है इत्यादि इस प्रकार के श्रुति वाक्यों में कथन है वैसे ही यह जीवात्मा का अणु कथन है। अब यह शङ्का है कि जो बुद्धिगुणसार होने से आत्मा का संसारित्व है यह निश्चित होता है कि भिन्न आत्मा व बुद्धि के संयोग का अन्त अवश्य होने वाला है इस से बुद्धि के वियोग होने में आत्मा के असंसारी अस्तित्वरहित अलक्ष्य होने का प्रसंग होगा इस का उत्तर वर्णन करते हैं।

यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात् ॥३०॥

नैवंशङ्कनीयंकुतः यावदात्मभावित्वात् बुद्धिसंयोगस्ययावदात्मासंसारीभवतितावदस्यसम्यग्दर्शनेनसंसारित्वं न निवर्तते तावदस्यबुद्ध्यासंयोगोनशाम्यति यावच्चायंबुद्ध्युपाधिसम्बन्धस्तावदेवास्य जीवस्यजीवत्व संसारित्वञ्चपरमार्थतस्तु न जीवोनामबुद्ध्युपाधिपरिकल्पितस्वरूपव्यतिरेकेणास्ति नहिनित्यमुक्तस्वरूपात्सर्वज्ञादीश्वरादन्यश्चेतनधातु र्द्वितीयोवेदान्तार्थनिरूपणायामुपलभ्यतेनान्योऽतोऽस्तिद्रष्टाश्रोतामन्ताविज्ञाताइत्यादिश्रुतिभ्यः कथं पुनरवगम्यतेयावदात्मभावीबुद्धिसंयोग इतितद्दर्शनादित्याहतथाहिशास्त्रंदर्शयति,योऽयंविज्ञानमयः प्राणेषुहृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः समानः सन्नुभौलोकावनुसञ्चरतिध्यायतीवलेलाय-

जीवइत्यादितत्रविज्ञानमयःइतिबुद्धिमयइत्येतदुक्तंभवतिसमानःसन्नुभौलोका-
वनुसञ्चरति इतिचलोकान्तरगमनेप्यवियोगंबुद्ध्यादेर्दर्शयतिकेनसमानस्तयैवबु-
द्ध्याइतिगम्यतेसंनिधानात्तच्चदर्शयतिध्यायतीवलेलायतीवइत्येतदुक्तंभवतिना-
यंस्वतोध्यायतिनापिचलतिध्यायन्त्यां बुद्धौध्यायतीवचलन्त्यांचलतीवेतिअपि
चमिथ्याज्ञानपुरस्सरोयमात्मनोबुद्ध्युपाधिसम्बन्धः न च मिथ्याज्ञानस्यसम्य-
ग्ज्ञानादन्यत्रनिवृत्तिरस्तीत्यतोयावत् ब्रह्मात्मतानवबोधस्तावदयंबुद्ध्युपाधि-
सम्बन्धोनशाम्यतिननुसुषुप्तिप्रलययोर्नशक्यते बुद्धिसम्बन्धआत्मनोऽभ्युपगन्तुम्।
सतासोम्यतदासम्पन्नोभवतिस्वमपीतोभवतिइतिवचनात् कृत्स्नविकारप्रलया
भ्युपगमाच्चतत्कथंयावदात्मभावित्वंबुद्धिसम्बन्धस्येत्यत्रोच्यते ॥

अथ भाषानुवादः ॥

यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात् ॥३०॥

आत्मा के रहने तक होने वाला होने से दोष नही है वह देखनेसे ॥३०॥

आत्मा के रहने तक रहने से यह शङ्का करने योग्य नही है जब तक आत्मा संसारी रहता है यथार्थ आत्मज्ञान न होने से संसारित्व निवृत्त नहीं होता तब तक बुद्धिका संयोग रहता है जब तक बुद्धि का संयोग नहीं छूटता तब तक इस जीव का जीवत्व व संसारित्व है बुद्ध्युपाधि से कल्पना किये गये रूप से भिन्न परमार्थ से जीव नामक वस्तु नही है। वेदान्त के अर्थ निरूपण में नित्यमुक्तस्वरूप सर्वज्ञ ईश्वर से भिन्न अन्य दूसरा चेतन धातु व पदार्थ नहीं है क्योंकि श्रुति में कहा है—

नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता इत्यादि ॥

अर्थ—इससे अन्य देखने सुनने मानने जानने वाला नहीं है इत्यादि श्रुतियो से एक ही होना सिद्ध है ये कैसे सिद्ध होता है कि बुद्धि का संयोग आत्मा के संसारी रहने तक रहता है इस के लिये यह कहा है वह देखने से अर्थात् जीव का बुद्धिसम्बन्ध से जो कर्तृत्व भोक्तृत्व है वह शास्त्र में देखने से बुद्धि का संयोग रहना सिद्ध होता है यथा इस श्रुति में देखा जाता है अर्थात् इस श्रुति में यह वर्णित है—

योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु॰ इत्यादि॥

इस सम्पूर्ण श्रुति का अर्थ यह है जो ये हृदय के भीतर इन्द्रियों में विज्ञानमय पुरुष है सो विज्ञान (बुद्धि) के समान हुआ अर्थात् बुद्धिरूप हो

दोनों लोक में बुद्धि के साथ ध्यान करता व लीला करता हुआ बुद्धि के समान जाता व विचरता है। इस प्रकार से आत्मा के लोकान्तर के जाने में भी बुद्धि का वियोग नही होता यह श्रुति देखाती है। आत्मा आप से न ध्यान कर्ता है न चलता है ध्यान करती हुई बुद्धि में ध्यान करता व चलती हुई बुद्धि में चलता है ऐसा बुद्धि के समान होना विदित होता है। यह जो आत्मा का बुद्ध्युपाधि सम्बन्ध है वह मिथ्याज्ञानपूर्वक है सम्यग्ज्ञान से (अच्छे प्रकार तत्वज्ञान होने से) भिन्न अन्य उपाय से मिथ्याज्ञान की निवृत्ति नहीं होती इस से जब तक ब्रह्मात्मा का बोध नहीं होता तब तक बुद्ध्युपाधि का सम्बन्ध नहीं छूटता यदि यह शङ्का हो कि सुषुप्ति व प्रलय में बुद्धि सम्बन्ध आत्मा के साथ नही कहा जा सक्ता क्योंकि श्रुति में—

सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति ॥

अर्थ—हे सोम्य! तब सत् शब्दवाच्य ब्रह्म में प्राप्त होता है अपने में लीन होता है इत्यादि ऐसा कहा है प्रलय सुषुप्ति में सब विकार का लय होना अंगीकार करने व बुद्धि का सम्बन्ध ज्ञात न होने पर आत्मा के रहने तक बुद्धि का सम्बन्ध कैसे मानना युक्त है इस के उत्तर में यह वर्णन करते हैं—

पुंस्त्वादिवत्तस्य सतोऽभिव्यक्तियोगात् ॥ ३१ ॥

यथालोकेपुंस्त्वादीनि बीजात्मनाविद्यमानान्येववाल्यादिष्वनुपलभ्यमानानिअविद्यमानवदभिप्रेयमाणानि यौवनादिष्वाविर्भवन्ति नाविद्यमानान्युत्पद्यन्ते षण्ढादीनामपितदुत्पत्तिप्रसङ्गात् एवमपिबुद्धिसम्बन्धः शक्त्यात्मनाविद्यमानएवसुषुप्तिप्रलययोः पुनः प्रबोधप्रसवयोराविर्भवति तस्मात् सिद्धमेतद्यावदात्मभावीबुद्ध्युपाधिसम्बन्ध इति ॥

अथ भाषानुवादः ॥

पुंस्त्वादिवत्तस्य सतोऽभिव्यक्तियोगात् ॥ ३१ ॥

पुंस्त्वादि के समान उस विद्यमान ही की प्रकटता होने के योग से ॥३१॥

जैसे लोक में पुंस्त्व (युवापन वा जवानी) आदि बीजरूप विद्यमान ही रहते हैं परन्तु बाल्यावस्था आदि में ज्ञात नही होते अविद्यमान के समान बने हुये यौवन (जवानी) आदि में प्रकट होते हैं अविद्यमान उत्पन्न नहीं होते जो अविद्यमान की उत्पत्ति होती तो नपुंसक में भी पुंस्त्व की

वियुक्तजीवेऽपितत्संयोगेनधर्मेण वा जीवत्वप्रतिपादनंनसंभवति तस्मा ब्रह्मणि
माप्तौवोक्तप्रकारेणजीवेश्वरप्रासौवाच्यायांनजीवाद्वियुक्तास्य.तद्ब्रह्मणोविभा-
गत्वेनस्थितायांद्वैतसिद्धेरद्वैतकथनं बुद्धिसंयोगवियोगाभ्यां च जीवत्वाजीवत्वं
ब्रह्माज्ञानत्वकथनञ्चायुक्तमेवावगम्यतेऽन्यच्च एवंसमीक्षितं श्रीभाष्येयदि मन्वी-
तउपाध्युपहितब्रह्मजीवः सचाणुपरिमाणः अणुत्वञ्चावच्छेदकस्यमनसोऽणुत्वा
त्तचावच्छेदोऽनादिरेवनुपाध्युपहिते देशे सम्बध्यमानाः दोषाअनुपहिते परे
ब्रह्मणि न सम्बध्यन्तेइत्ययं प्रष्टव्यः किमुपाधिनावच्छिन्नोब्रह्मखण्डोऽणुरूपो
जीवउताच्छिन्नएवाणुरूपोपाधिसंयुक्तोब्रह्मप्रदेशविशेषः । उतोपाधिसंयुक्तं ब्रह्म
स्वरूपम् उतोपाधिसंयुक्तंचेतनान्तरम् । अथोपाधिरेवेतिअच्छेद्यत्वाद्ब्रह्मणः प्र-
थमकल्पोनकल्पतेआदिमत्वं च जीवस्यस्यात्एकस्यसतोद्वैधीकरणं हि छेदनं
द्वितीयेतुकल्पेब्रह्मणएवप्रदेशविशेषे उपाधिसम्बन्धादौपाधिकास्सर्वेदोषास्त-
स्यैवस्युः उपाधौगच्छत्युपाधिनास्वसंयुक्तब्रह्मप्रदेशाकर्षणायोगादनुक्षणमुपाधि
संयुक्तब्रह्मप्रदेशविशेषभेदात्क्षणे क्षणेबन्धमोक्षौस्याताम् आकर्षणेचाच्छिन्नत्वात्
कृत्स्नस्यब्रह्मणआकर्षणं स्यात् निरंशस्यव्यापिनआकर्षणं न संभवतीतिचेत्त-
र्ह्युपाधिरेवगच्छतीतिपूर्वोक्तएवदोषःस्यात् अच्छिन्नब्रह्मप्रदेशेषुसर्वोपाधिसंसर्गे
सर्वेषां च जीवानांब्रह्मणएवप्रदेशत्वेनाभेदप्रतिसंधानस्यात् प्रदेशभेदादप्रति
संधानेचैकस्यापिस्वोपाधौगच्छतिसतिप्रतिसधानं न स्यात् तृतीयेतुकल्पेब्रह्म
स्वरूपस्यैवोपाधिसम्बन्धेन जीवत्वापातात् तदतिरिक्तानुपहितब्रह्मासिद्धि
स्स्यात् सर्वेषु च देहेष्वेकएवजीवःस्यात् तुर्येतुकल्पेब्रह्मणोऽन्यएवजीवइति
जीवभेदस्यौपाधिकत्वं परित्यक्तंस्यात्चरमेपक्षेचार्वाकपक्षएवगृहीतः स्यात्के
चिदद्वितीयत्वंब्रह्मणोऽभ्युपयन्तएवंवदन्तिएकस्यब्रह्मणः प्रतिबिम्बभूतानां
जीवानांसुखित्वदुःखित्वादयएकस्यैवमुखस्यप्रतिबिम्बानांसूर्यस्यप्रतिबिम्बा-
नां वामणिकृपाणदर्पणादिषूपलभ्यमानानामल्पत्वमहत्वकम्पत्वस्थिरत्वम-
लिनत्वविमलत्वादिवत्तत्तदुपाधिवशाद्व्यवस्थाप्यन्तेतत्रेदंविमर्शनीयम् अल्पत्व
मलिनत्वादयऔपाधिकादोषाः कदाश्रयेयुः मणिदर्पणाद्युपाध्यपगमे इति चे-
त्किंतदल्पत्वाद्याश्रयप्रतिबिम्बः तिष्ठतिनवा ? तिष्ठतिचेत् तत्स्थानीयस्यजी-
वस्यापिस्थितत्वादनिर्मोक्षप्रसङ्गः नश्यतिचेत्तद्वदेवजीवनाशात्स्वरूपोच्छित्ति-
लक्षणोमोक्षः स्यात् किंचयस्यह्यपुरुषार्थदोषप्रतिभासः तस्यतदुच्छेदः पुरुषार्थः
तत्रकिमौपाधिकदोषप्रतिभासोबिम्बस्थानीयस्य ब्रह्मणःउतप्रतिबिम्बस्थानी-
यस्यजीवस्य उतान्यस्यकस्यचित् आद्ययोः कल्पयोर्दृष्टान्तोऽयं न संगच्छतेमु-

खस्य मुखप्रतिबिम्बस्य श्यामत्वादिदोषप्रतिभासशून्यत्वात् न हि मुखं मुखप्रति-
बिम्बं वा चेतयते ब्रह्मणो दोषप्रतिभासे ब्रह्मणोऽविद्याश्रयत्वप्रसंगश्च, न हि कश्चित्
तत्त्वज्ञभ्रान्तिरहितः प्रतिबिम्बितवस्तुनि तदुपाधिदोषेणास्य सकलस्वरूपस्य तदव-
यवरूपस्य वा प्रतिबिम्बगतपत्वदीर्घत्वमलिनत्वकम्पनत्वादियुक्तान्यथाभावेन
दृष्टास्वरूपं प्रतितद्बिम्बिनो तिलेनस्वरूपं प्रतितस्याभावग्यानुभूयते एवमुपा-
धिदोषेण सर्वज्ञभ्रान्तिदोषासंस्पृष्टब्रह्मणोऽप्यन्यथाप्रत्ययो न संभवति तृतीयोऽपि
कल्पो न कल्प्यते बिम्बप्रतिबिम्बस्थानीयजीवब्रह्मव्यतिरिक्तस्य द्रष्टुरभावात् कि-
ञ्चाविद्याकल्पकस्य जीवस्य कल्पकः क इति विचारणीयं न तावदविद्या अचेतनत्वात्
नापि जीव आत्माश्रयदोषप्रसंगात् शुक्तिकारजतादिवदविद्याकल्प्यत्वाच्च जीवभा-
वस्य ब्रह्मैव कल्पकमिति चेत् ब्रह्माज्ञानमेवायातम् तदयुक्तं श्रुतिविरुद्धं ब्रह्मस्वरू-
पाभावरूपमयुक्तमप्रमाणमस्वीकार्यमिति प्रसक्तं सूत्राण्येव व्याख्येयानि—

अथ भाषानुवादः ॥

नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसंगोऽन्यतरनियमो वाऽन्यथा ॥२३॥

अन्यथा मानने में अर्थात् बुद्धि उपाधि न मानने में नित्य उपलब्धि वा अनुपलब्धि होने का प्रसंग होगा अथवा दो में से एक का नियम होगा २३.

आत्मा का उपाधि रूप अन्तःकरण, मन, बुद्धि विज्ञान चित्त अनेक प्रकार से वृत्ति भेद से कहा जाता है कहीं वृत्ति विभाग से संशयादि वृत्ति वाला मन कहा जाता है निश्चय आदि वृत्ति रूप बुद्धि कही जाती है इस प्रकार का जिस की संशय आदि, निश्चय आदि वृत्तियां हैं ऐसा कोई अन्तःकरण वस्तु अवश्य है यह मानने योग्य है ऐसा न मानने में आत्मा में नित्य उपलब्धि वा अनुपलब्धि (ज्ञान होने व ज्ञान न होने) का प्रसंग होगा अथवा उपलब्धि के साधन जो आत्मा इन्द्रिय व विषय हैं उन के सन्निधान होने में (समीप वर्तमान होने वा संयोग होने में) नित्य ही उपलब्धि होगी अथवा जो पदार्थ ज्ञान धारण करने का हेतु होने में भी उस के फल का अभाव है तो नित्य ही अनुपलब्धि का (ज्ञान न होने का) प्रसंग होगा परन्तु ऐसा होना विदित नहीं होता इस से जिस के संयोग होने से उपलब्धि होती है और न होने से उपलब्धि नहीं होती वह मन है अन्तःकरण शब्द से वाच्य मन की वृत्ति ही बुद्धि है क्योंकि काम आदि सब मन ही की वृत्तियां हैं ऐसा श्रुति वर्णन करती है यथा "कामः संकल्पो विचिकित्सा" इत्यादि इस श्रुति में यह कहा है कि काम संकल्प संशय श्रद्धाऽश्रद्धा धृति (धैर्य) अधृति लज्जा

बुद्धिमय ये सब मन ही हैं। इस से बुद्धिगुणप्रधान होने से बुद्धि के समान आत्मा का अणु होना कहना युक्त है। इन सूत्रों का ऐसा व्याख्यान यथार्थ न समझना चाहिये क्योंकि विचार करने से आत्मा व परमात्मा का सर्वथा अभेद होना बुद्ध्युपाधि मात्र से जीव होना व परमात्मा से जीव का भिन्न होना परमार्थ से एक होना तत्वज्ञान से जीव से बुद्धि के संयोग की निवृत्ति होना सिद्ध नहीं होता है क्योंकि नित्य सर्वज्ञ परमात्मा में अविद्या का प्राप्त होना सम्भव नहीं होता है जिस से ब्रह्म का बुद्धि के अनुगुण होना व बुद्धि के उपाधि से उपहित होना माना जाय अविद्या की प्राप्ति मानने में परमात्मा के सर्वज्ञ होने की हानि होती है उस से परमात्मा के स्वरूप का नाश होना व सर्वज्ञता प्रतिपादन करने वाली श्रुति का असत्य होना सिद्ध होता है और यह विचार करने योग्य है कि जीव आत्मा से विभाग को प्राप्त हुई बुद्धि भिन्न रूप से स्थित होती है अथवा परमात्मा में लीन होती है अथवा परमात्मा के अन्य प्रदेश में संयोग को प्राप्त हो किसी अन्य जीव को उत्पन्न करती है जीव से वियोग होने में बुद्धि वा अन्तःकरण की क्या गति होती है असत् से (जो नहीं है उस से) भाव नहीं होता है जो सत् है उस का अभाव नहीं होता है इस गीता स्मृति के वचन से और तर्क से भी यही सिद्ध होने से सर्वथा बुद्धि का अभाव होना निश्चित नहीं होता बुद्धि का होना वा रहना निश्चित होने में जो सम्यग्ज्ञान वा तत्वज्ञान के होने में जीव से विभक्त (भिन्न हुई) बुद्धि ब्रह्म में लीन होती है तो जीव व परमात्मा ब्रह्म के भेद न होने में जीव ही में प्राप्त होना सिद्ध होगा ऐसा होने में उस का नित्य योग ही सिद्ध होने में सम्यग्दर्शन होने में (पूर्ण ज्ञान वा तत्वज्ञान होने में) संसारित्व निवृत्त होने में बुद्धि का संयोग शान्त होता है वा नहीं रहता ऐसा कहना असंगत विदित होता है जो ऐसा माना जावे कि ब्रह्म के अन्य प्रदेश में प्राप्त हो अन्य जीव को उत्पन्न करती है तो वियुक्त (वियोग को प्राप्त) जीव को भी ऐसा ही उत्पत्ति अनुमान करने में उस के संयोग व वियोग से जीव की उत्पत्ति व विनाश सिद्ध होने में स एष महानजात्मा अर्थ—यह आत्मा महान् वा अज (उत्पत्ति रहित) है इस श्रुति में कहा हुआ अजत्व असत्य होगा जो ब्रह्म में प्राप्त भी बुद्धि अपने जीव उत्पन्न करने के धर्म से जीवत्व को उत्पन्न नहीं करती है तो वियुक्त जीव में भी उस के संयोग से व धर्म से जीवत्व का प्रतिपादन संभव नहीं होता है अथवा

उस के ब्रह्म में प्राप्त होने में इस प्रकार से जीव हो में प्राप्ति याच्य होने जीव से वियुक्त न होगी ब्रह्म से भिन्न उस की स्थिति होने में द्वैत सिद्ध होने से अद्वैत कहना बुद्धि के संयोग व वियोग से जीवत्व अजीवत्व था ब्रह्म का अज्ञानत्व कहना अयुक्त ही विदित होता है और भाष्य में अद्वैत मत की ऐसी मनोक्षा की गई है कि जो ऐसा मानें कि उपाधि उपहित ब्रह्म जीव है व अणुपरिमाण है और अणुत्व अवच्छेदक (व्यावृत्ति धर्मयुक्त) मन के अणु होने से और यह अवच्छेद (पृथक्ता वा व्यावृत्तिधर्म) अनादि है ऐसे उपाधि उपहित देश में सम्बन्ध को प्राप्त हुये दोष उपाधि को न प्राप्त हुये परब्रह्म में सम्बन्ध को नहीं प्राप्त होते तो अद्वैतवादी से यह प्रश्न करने योग्य है कि उपाधि से अवच्छिन्न (भिन्न हुआ) ब्रह्म का खण्ड अणुरूप जीव है अथवा अछिन्न ही (भिन्न न हुआ) अणुरूप उपाधिसंयुक्त ब्रह्म का प्रदेश विशेष है अथवा उपाधिसंयुक्त ब्रह्मस्वरूप है अथवा उपाधिसंयुक्त अन्य चेतन है अथवा उपाधि ही है ब्रह्म के अच्छेद्य होने से (काटने वा खण्ड करने योग्य न होने से) प्रथम कल्प कल्पित नहीं हो सकता वा कल्पना योग्य नहीं है और जीव का आदिमान् होना सिद्ध होगा विद्यमान एक को काटकर दो करना छेदन है ऐसा न होसकने से ब्रह्म अछेद्य है । दूसरे कल्प में ब्रह्म ही के प्रदेश विशेष में उपाधिसम्बन्ध होने से सब औपाधिक दोष ब्रह्म के होंगे उपाधि के चलने में उपाधि से संयुक्त जो अपना ब्रह्मप्रदेश है उस के आकर्षण का योग न होने से अर्थात् उस का उपाधि से पृथक् करलेना न हो सकने से उपाधिसंयुक्त ब्रह्म के प्रदेश विशेष होने के भेद से क्षण क्षण में बन्ध व मोक्ष दोनों ब्रह्म को होवेंगे आकर्षण करने में अखण्ड होने से सम्पूर्ण ब्रह्म का आकर्षण होगा परन्तु अंशरहित व्यापक का आकर्षण सम्भव नहीं होता है जो यह कहा जावे तो उपाधि ही चलती है यह सिद्ध होने वा मानने में पूर्व उक्त ही (जो पहले कहे गये वही) दोष होवेंगे । अछिन्न (अखण्ड) ब्रह्मप्रदेशों में सब उपाधियों का संसर्ग होने में और सब जीव ब्रह्म के प्रदेश रूप होने से सब जीवों का भेदरहित प्रतिसंधान (ज्ञान व स्मरण) होगा प्रदेशभेद से प्रतिसंधान न होने में अपनी उपाधि के चलने में एक का भी प्रतिसंधान न होगा । तृतीय कल्प में उपाधि सम्बन्ध से ब्रह्मस्वरूप ही का जीवत्व होने से उससे भिन्न उपाधि रहित ब्रह्म की सिद्धि न होगी और सब देहों में एक ही जीव होगा। चौथे कल्प में ब्रह्म से जीव अन्य ही होगा

ऐसा होने से औपाधिक जीव होने के पक्ष का त्याग होजायगा और अन्त के पक्ष में चारवाक मत का ग्रहण होगा वेदान्त मत का त्याग होगा कोई ब्रह्म अद्वितीयत्व के मानने वाले ऐसा कहते हैं कि एक ही ब्रह्म के प्रतिबिम्ब रूप जीवों का सुखी व दुःखी होना आदि मणि कृपाण दर्पण आदि को प्रत्यक्ष हुये एक ही मुख के वा सूर्य के प्रतिबिम्बों का छोटा होना बढ़ना घटना कांपना मलिन होना आदि के समान भिन्न २ उपाधिवश से भेद को प्राप्त होते हैं इस में यह विचारने योग्य है कि अल्पत्व मलिनत्व आदि औपाधिक दोष कब न होंगे वा कब नष्ट होंगे। जो यह कहा जावे मणि दर्पण के न रहने में। तो यह विचारणीय है कि उन अल्पत्व आदि का आश्रयप्रतिबिम्ब स्थित रहता है वा नहीं जो स्थित रहता है तो प्रतिबिम्ब स्थानीय जीव के भी स्थित रहने से मोक्ष न होने का प्रसंग होगा और जो नष्ट होता है तो वैसे ही जीव का नाश होने से स्वरूप नाश होना रूप मोक्ष होगा जिस को दोषों का प्रतिभास अपुरुषार्थ रूप होता है उस को उस का नाश पुरुषार्थ होता है इस में यह निर्णय के योग्य है कि औपाधिक दोष प्रतिभास (दोषों का प्रतिभाषित होना) बिम्ब स्थानीय ब्रह्म का है - अथवा प्रतिबिम्ब स्थानीय जीव का ? अथवा किसी अन्य का ? पहले दोनों कल्पों का दृष्टान्त घटित नहीं होता क्योंकि मुख व मुख के प्रतिबिम्ब को अल्पत्व आदि दोषों का प्रतिभास नहीं होता क्योंकि मुख वा मुख का प्रतिबिम्ब नहीं जानते ब्रह्म को दोष प्रतिभाषित होने में ब्रह्म अविद्या का आश्रय होगा अर्थात् ब्रह्म में अविद्या प्राप्त होने का दोष प्राप्त होगा कोई तत्त्वज्ञ भ्रांति रहित प्रतिबिम्बित वस्तु मणि दर्पण जल आदि में उस के उपाधि दोष से अपने सम्पूर्ण रूप व अवयव रूप के प्रतिबिम्ब अल्पत्व दीर्घत्व कंपनत्व मलिनत्व आदि अन्यथाभावयुक्त देख कर अपने स्वरूप में वैसे ही होना निश्चय नहीं करता है अपने स्वरूप में उपाधि दोष का न होना ही अनुभव करता है ऐसे ही सर्वज्ञ भ्रान्तिदोषरहित ब्रह्म को उपाधि दोष से अन्यथा प्रत्यय होना संभव नहीं होता है तीसरा कल्प भी कल्पित नहीं होसकता क्योंकि बिम्ब प्रतिबिम्ब स्थानीय ब्रह्म व जीव से भिन्न देखने वाले का अभाव है अर्थात् बिम्ब प्रतिबिम्ब अपने को देखते व जानते नहीं हैं तीसरा कोई देखनेवाला नहीं है इस से उक्त कथन अयुक्त है अन्य विचार यह है कि अविद्या कल्प्य (अर्थात् अविद्या से कल्पना के या होने के योग्य) जीव का

कल्पक (कल्पना करनेवाला) को है पहले अचेतन होने से अविद्या नहीं है आत्माश्रय दोष होने के प्रसङ्ग से जीव भी नहीं है सीप व चांदी के समान अविद्या कल्प्य होने से जीव भाव का ब्रह्म ही कल्पक है ऐसा कहा जावे तो ब्रह्म का अज्ञान सिद्ध हुआ यह अयुक्त श्रुतिविरुद्ध ब्रह्मस्वरूप के अभाव रूप अप्रमाण स्वीकार करने योग्य नहीं है इस से उक्त सूत्र इस प्रकार से व्याख्यान के योग्य हैं ॥

तद्गुणसारत्वात्तुतद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् २९

विज्ञानेतिष्ठन् विज्ञानंयज्ञंतनुतेज्ञानस्वरूपमत्यन्तनिर्मलम् परमार्थतइत्यादिषुज्ञानमेवात्मेति व्यपदिश्यतेऽतोनज्ञाताऽऽत्माइतिगम्यते इतिपूर्वपक्षाशङ्कायामिदमाहतद्गुणसारत्वात्तु इत्यादि तुशब्दश्चोद्यं व्यावर्तयति तद्गुणसारत्वात् विज्ञानगुणसारत्वादात्मनोविज्ञानमितिव्यपदेशः विज्ञानमेवास्यसारभूतोगुणः प्राज्ञवत् अर्थात् यथाप्राज्ञस्यानन्दस्सारभूतोगुणः इतिप्राज्ञानन्दशब्देन व्यपदिश्यते। यदेषआकाशआनन्दोनस्यात् आनन्दोब्रह्मेतिव्यजानादितिप्राज्ञस्य आनन्दः सारभूतोगुणः सएकोब्रह्मणआनन्दआनन्दब्रह्मणोविद्वान्नबिभेतिकुतश्चनेतियथावा सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेतिविपश्चितः प्राज्ञस्य ज्ञानशब्देनव्यपदेशः प्राज्ञस्यज्ञानंसारभूतोगुणइतिविज्ञायते ॥

अथ भाषानुवादः ॥

तद्गुणसारत्वात्तुतद्व्यपदेशःप्राज्ञवत् ॥ २९ ॥

वही (विज्ञान ही) गुणसार होने से उस का कथन है प्राज्ञ के समान ॥

विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानं यज्ञं तनुते ज्ञानस्वरूपमत्यन्त निर्मलम् ॥

अर्थ–विज्ञान में स्थित हुआ विज्ञान यज्ञ को करता है विज्ञानस्वरूप अत्यन्त निर्मल है इत्यादि श्रुति वाक्यों में विज्ञान ही (बुद्धि ही) आत्मा है यह कहा है इस से आत्मा ज्ञाता नहीं है यह सिद्ध होता है इस पूर्व पक्ष की शंका के उत्तर में यह कहा है कि वही गुणसार होने से उस का कथन है अर्थात् विज्ञान नाम कथन है अर्थात् विज्ञान नाम से आत्मा कहाजाता है प्राज्ञ के समान अर्थात् जैसे आनन्द गुणसार होने से प्राज्ञ परमात्मा आनन्द शब्द से कहा जाता है वा कहागया है यथा–

यदेषआकाशआनन्दोनस्यात् ॥

अर्थ—यह आकाश आनन्द न होता। इत्यादि तथा अन्य श्रुति में ऐसा वर्णन है ॥

आनन्दोब्रह्मव्यजानात् ॥

अर्थ—आनन्द ब्रह्म को जाना। तथा—

आनन्दंब्रह्मणोविद्वान् न बिभेति कुतश्चन॥

अर्थ—आनन्द ब्रह्म को जाननेवाला किसी से भय को नहीं प्राप्त होता है इत्यादि। अथवा जैसे—

सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म ॥

अर्थ—सत्य ज्ञान रूप अनन्त ब्रह्म है। इस श्रुति में प्राज्ञ के ज्ञान गुणसार होने से प्राज्ञ को ज्ञान शब्द से कहा है ऐसेही विज्ञानगुणसार होने से जीव को विज्ञान शब्द से कहा है यह ज्ञात होता है ॥

यावदात्मभावित्वाच्चनदोषस्तद्दर्शनात् ३०

विज्ञानस्ययावदात्मभाविधर्मत्वेनतद्व्यपदेशोनदोषः तथा च खण्डादयो यावत्स्वरूपभाविगोत्वादिधर्मशब्देनगौरितिव्यपदिश्यमानादृश्यते स्वरूपनिरूपणधर्मत्वादित्यर्थःचकारोज्ञानवदात्मनोपिस्वप्रकाशत्वेनज्ञानमितिव्यपदेशो न दोषइतिसमुच्चिनोति यद्यात्माज्ञस्वभावस्स्यात् विज्ञानमेवस्वसारभूतोगुणोवास्येत् तर्हिसुषुप्त्यादिषुतस्यज्ञानाभावोनस्यात् सुषुप्त्यादिषुज्ञानाभावाच्च ज्ञानस्यस्वरूपानुबन्धिधर्मत्वमित्याशङ्कायामुत्तरमाह।

भाषानुवाद

यावदात्मभावित्वाच्चनदोषस्तद्दर्शनात् ॥३०॥

आत्मा के रहने तक रहने वाला होने से दोष नहीं है यह देखने से ३०

विज्ञान के यावदात्मभावी धर्म होने से आत्मा को विज्ञान नाम से कहना दोष नहीं है ऐसा लोक में भी देखा जाता है फिर खण्डादि यावत् स्वरूपभावी (स्वरूप रहने तक रहने वाले) गोत्व आदि धर्मशब्द से गौ ऐसा कहे जाते हैं। जो आत्मा ज्ञान स्वभाव होता अथवा विज्ञान ही इस का सार गुण होता तो सुषुप्ति आदि में उस के ज्ञान का अभाव न होता सुषुप्ति आदि मे ज्ञान के अभाव से ज्ञान स्वरूप ज्ञान संयुक्त ही सदा रहना आत्मा का गुण वा धर्म नहीं है इस शङ्का का उत्तर वर्णन करते हैं ३०

पुंस्त्वादिवत्त्वस्य सतोऽभिव्यक्तियोगात् ३१

तु शब्दश्चोदितशङ्कानिवृत्त्यर्थः नेदृशी शङ्का कर्त्तव्या कुतः अस्य ज्ञानस्य सुषुप्ति-प्रलययोर्विद्यमानस्य सतो जागरादावभिव्यक्तिसम्भवादस्य ज्ञातृत्वस्य नित्यत्वोपपत्तिः । पुंस्त्वादिवत् यथा पुंस्त्वादीनि बीजात्मना विद्यमानान्येव बाल्यादिष्वनुपलभ्यमानानि अविद्यमानवदभिप्रेतानि यौवनादिष्वभिव्यज्यन्ते सप्तधातुमयत्वादि शरीरस्य स्वरूपानुबन्धि बाल्यावस्थायां विद्यमानं पुंस्त्वमस्य युवत्वे अभिव्यक्तं तत्सुषुप्तौ विद्यमानस्य ज्ञानस्य प्रबोधेऽभिव्यक्तिर्भवति एवं प्रलयमूर्छावस्थयोर्विद्यमानस्य सृष्टिस्वास्थ्ययोरुपलब्धिसम्भवादेवेति ज्ञातृत्वमेवात्मनः स्वरूपं ज्ञाताणुपरिमाणश्चायमात्मेत्यवधेयम् अन्यथा ज्ञानमात्रत्वपक्षे सर्वगतत्वपक्षे च दोषोऽनुमीयते को दोषः तत्राह—

अथ भाषानुवादः

पुंस्त्वादिवत्त्वस्यसतोऽभिव्यक्तियोगात् ॥३१॥

पुंस्त्वादि के समान इस विद्यमान की प्रकटता होने के योग से ॥३१॥

यह शङ्कायुक्त नही है क्योंकि सुषुप्ति व प्रलय में विद्यमान ही ज्ञान की जाग्रत् अवस्था में व सृष्टि समय में प्रकटता सम्भव होने से ज्ञान का यावदात्मभावी होना सिद्ध होता है पुंस्त्वादि के समान अर्थात् जैसे पुंस्त्व आदि बीज रूप से बाल्य अवस्था आदि में विद्यमान ही रहते हैं परन्तु ज्ञात नही होते वह विद्यमान ही अविद्यमान के समान समझे गये यौवन (युवावस्था वा जवानी) में प्रकट होते हैं सप्तधातुमय होना शरीर के स्वरूप का सम्बन्धी है पुंस्त्व जो बाल्य अवस्था में विद्यमान रहता है उसकी प्रकटता युवत्व (जवानी) में होने के समान सुषुप्ति में विद्यमान की जागने में प्रकटता होती है ऐसे ही प्रलय व मूर्छा अवस्थाओं में विद्यमान ज्ञान की सृष्टि वा स्वास्थ्य में प्रकटता जानने योग्य है इस से आत्मा का ज्ञाता होना ही स्वरूप है ज्ञाता व अणु परिमाण यह आत्मा है यही निश्चय करना चाहिये अन्यथा ज्ञान मात्र होने के पक्ष में और सर्वव्यापक होने के पक्ष में दोष होना अनुमान किया जाता है क्या दोष है वह वर्णन करते है ।

नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसंगोऽन्यतरनियमोवान्यथा ३२

अन्यथा सर्वगतत्वपक्षे तस्य ज्ञानमात्रत्वपक्षे च नित्यमुपलब्ध्यनुपलब्धी सहैव प्रसज्येयाताम् अन्यतरनियमो वा उपलब्धिरेव वा नित्यं स्यादनुपलब्धिरेव वा एत-

दुर्लभवत्तिलोके तावत्वर्त्तमानयोरात्मोपलब्ध्यनुपलब्ध्योरयं ज्ञानात्मासर्वगतो हेतुः स्यात् उपलब्धिरेववा अनुपलब्धिरेववाउभयहेतुत्वेसर्वदासर्वत्रोभयंप्रसज्येतयद्युपलब्धिरेवसर्वस्य सर्वदासर्वत्रानुपलम्भो न स्यात् अथानुपलब्धिरेवसर्वदासर्वत्रोपलब्धिर्नस्यात् अस्माकंमतेशरीरस्यान्तरेव वा स्थितत्वादात्मनस्तत्रैवोपलब्धिर्नान्यत्रेतिव्यवस्थासिद्धिः कारणाय तत्त्वोपलब्धेरपि सर्वेषामात्मनां सर्वगतत्वेनसर्वैः कारणैः सर्वदासंयुक्तत्वात् अदृष्टादेरप्यनियमादुक्तदोषः समानः इति ननुजीवपरमात्मनोर्भेदस्वीकारे नान्योऽतोऽस्तिद्रष्टाश्रोतामन्ता विज्ञाता इत्याद्यद्वैतवादिन्यः श्रुतयोमिथ्यास्युरिति चेन्नैवं चैतन्यजातिपरत्वेनात्मपरमात्मनोरैक्यत्वानुसंधानेनातआत्मनोऽन्यः कश्चित् श्रोतामन्ताविज्ञातानास्तीत्युक्तंयद्वांअतःपरमात्मनोऽधिकः कश्चिच्छ्रोतामन्ताविज्ञातानास्तीत्याशयः जातिपरत्वेनैक्यत्वस्वीकारेनाद्वैतवाक्येदोषः । नाद्वैतश्रुतिविरोधोजातिपरत्वात् ॥ अ० १ सू० १५४ इति सांख्यसूत्रप्रामाण्यात् चितितन्मात्रेणतदात्मकत्वादित्यौडुलोमिरितिवेदान्तसूत्रस्यैवप्रामाण्याच्च इति संक्षेपतउपलक्षणार्थंवेदान्तस्य विशेषसूत्राणिव्याख्यातानि एवंयत्रसंशयोभवेत्तद्विषयेत्वार्षग्रन्थभाष्यकृत्युक्तवाक्यैरार्षमतानुयाय्यन्यपक्षपातरहितमहाशयनिर्मितग्रन्थवाक्यैर्वास्वबुद्धितोपिसम्यग्विचारतस्तत्त्वार्थोग्राह्यःविशिष्टाद्वैतपरब्रह्मसूत्रवृत्तिनिर्मातृमहर्षिबौधायनमतविरुद्धपूर्वापरसम्यग्विचाराच्छ्रीमत्सूत्रकाराशयस्यापि विरुद्धत्वाच्छाङ्करमद्वैतमतंमन्तव्यमित्यवधेयम् वेदान्तविषयेऽतोऽधिकमस्मत्कृतब्रह्मसूत्रभाष्येद्रष्टव्यमत्रसर्ववेदान्तवाक्याशयलेखनेऽवश्यमन्यद्वेदान्तभाष्यंस्यात् अतः पूर्वाचार्य्यमतान्यनुसृत्यस्वबुद्धिविचारतोमहर्षिबौधायनमतानुसारेणमतत्वमवधार्यवेदान्तभाष्यनिर्माणानन्तरंविद्यार्थिभ्यउपलक्षणार्थंकतिपयसूत्राणामर्थएवात्रवर्णितःपूर्वोक्तग्रन्थेषूक्तदर्शनसूत्राणां भाष्याणि प्रागेव निर्मितान्यतोत्राधिकविस्तरोनकृतः। इतिशम् ॥

इति श्रीमत्पण्डित प्रभुदयालुनिर्मितेसमीक्षाकरे ब्रह्मसूत्रविशेषव्याख्याने पञ्चमोध्यायः ॥

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवंप्रधानमिति कापुरुषावदन्ति ।
दैवंविहायकुरुपौरुषमात्मशक्त्यायत्ने कृतेयदिनसिध्यतिकोत्रदोषः॥

अथ भाषानुवादः

नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसंगोऽन्यतरनियमोवाऽन्यथा ॥३२॥

अन्यथा मानने में नित्य उपलब्धि वा अनुपलब्धि होने का प्रसङ्ग होगा अथवा दो में से एक का नियम होगा ॥३२॥

अन्यथा अर्थात् आत्मा के सर्वगत (व्यापक) होने के पक्ष में और कालमात्र होने के पक्ष में साथ ही नित्य उपलब्धि नित्य अनुपलब्धियों के होने का प्रसङ्ग होगा अथवा दो में से एक के होने का नियम होगा अर्थात् उपलब्धि ही नित्य होगी वा अनुपलब्धि ही नित्य होगी। प्रथम लोक में वर्तमान जो उपलब्धि वा अनुपलब्धि हैं उन का सर्वव्यापक आत्मा हेतु होगा अथवा उपलब्धि ही वा अनुपलब्धि ही का। दोनों हेतु होने में सर्वदा सर्वत्र दोनों होंगे यदि उपलब्धि ही मात्र होगी तो सब को सदा सर्वत्र अनुपलब्धि न होगी अथवा अनुपलब्धि ही होगी तो सब को सदा सर्वत्र उपलब्धि न होगी ऐसा होने में अवस्था भेद की सिद्धि न होगी हमारे मत में शरीर के भीतर भी आत्मा की स्थिति होने में शरीर ही में उपलब्धि होती है अन्यत्र नहीं होती इस से व्यवस्था (अवस्था भेद) की सिद्धि है अन्तःकरण के आधीन उपलब्धि होने में भी सब आत्माओं के सर्वव्यापक होने में सब के अन्तःकरणों से सब के सर्वदा संयुक्त होने से और अदृष्ट आदि से भी नियम न होने से उक्त दोष पूर्व ही के समान हैं। जो यह शङ्का होवे कि जीव व परमात्मा के भेद मानने में।

नान्योअतोऽस्तिद्रष्टाश्रोतामन्ताविज्ञाता ॥ इत्यादि ।

अर्थ—इस से अन्य कोई देखने वाला सुनने वाला मानने वाला जानने वाला नहीं है। इत्यादि अद्वैत प्रतिपादन करने वाली श्रुतियां मिथ्या होंगी तो ऐसी शङ्का करना युक्त नहीं है अद्वैत श्रुति चैतन्य जाति एक होने के आशय से आत्मा व परमात्मा की एकता का अनुसन्धान कर के इस आत्मा से अन्य वस्तु कोई द्रष्टा श्रोता मन्ता व विज्ञाता नहीं है यह कहा है अथवा ऐसा अर्थ ग्राह्य है कि इस से अर्थात् इस सर्वव्यापक सर्वज्ञ परमात्मा से अधिक कोई द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता नहीं है जातिपरत्व से एकता स्वीकार करने में अद्वैत वाक्य में दोष नहीं प्राप्त होता और जातिपर होने से अद्वैत श्रुति में विरोध नहीं है ऐसा सांख्य दर्शन में अ० १ सू० १५४ में कहने के प्रमाण से और स्वय

महात्मा वेदान्तसूत्रकार ने ज्ञान तन्मात्र से तदात्मक होने से एकता का कथन है ऐसा औडुलोमि आचार्य मानते हैं ऐसा वेदान्त दर्शन के अ० ४ पा० ४ सू० ६ में कह कर अपनी भी सम्मति इस के अनुकूल विज्ञापित किया है इस से चेतन सजातीयभाव से एक मान के एकता का कथन है यह संक्षेप से उपलक्षण के लिये वेदान्त के विशेष सूत्रों का व्याख्यान किया गया है ऐसे ही जहां जहां संशय होवे उस विषय में आर्षग्रन्थ भाष्य व वृत्तियों में कहे हुये वाक्यों से और अपनी बुद्धि से भी अच्छे प्रकार से विचार करके तत्व का शोध करना चाहिये विशिष्टाद्वैतपर ब्रह्म सूत्र वृत्ति के निर्माता महर्षि बौधायन के मत से विरुद्ध होने से व पूर्वापर अच्छे प्रकार से विचारने से श्रीमान् सूत्रकार के आशय से विरुद्ध होना सिद्ध होने से अद्वैत मत सन्तव्य नहीं है वेदान्त विषय में इस से अधिक हमारे वर्णन किये हुये वेदान्तभाष्य में देखना चाहिये इस में सब वेदान्तवाक्यों का आशय लिखने से यह ग्रन्थ वेदान्तभाष्य हो जाता इस से पूर्वाचार्य्यों के मत अनुसार और अपनी बुद्धि के विचार से महर्षि बौधायन के मत के अनुसार तत्व का निश्चय करके वेदान्तभाष्य के निर्माण के पश्चात् विद्यार्थियों के लिये उपलक्षण के अर्थ कुछ थोड़े सूत्रों ही का अर्थ यहां वर्णन किया है पूर्वोक्त ग्रन्थों में उक्त दर्शनों के सूत्रों के भाष्य पहले ही निर्माण किये गये हैं इस से यहां अधिक विस्तार नहीं किया शमस्तु ।

श्रीसत्प्यारेलालात्मज बांदा मण्डलान्तर्गत तेरहीत्याख्यग्रामनिवासि
पण्डित प्रभुदयालु निर्मिते समीक्षाकरे ब्रह्मसूत्रविशेषाणां
व्याख्याने पञ्चमोऽध्यायः समाप्तश्चायंग्रन्थः ॥
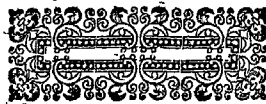
वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड कार्यालय—सदर मेरठ के विक्रयार्थ पुस्तकों का सूचीपत्र ॥

वैदिक पुस्तक प्रचारक फण्ड से छपी पुस्तकें—हिन्दु आर्य और नमस्ते का अन्वेषण सूत्र)॥ (पं० लेखराम कृत) क्या स्वामीदयानन्द मक्कारथा ?)॥ पुरुषसूक्त)॥ मनुष्यसमाज)॥ मनुष्य जन्म की सफलता)॥ श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का जीवनचरित्र)॥ क्रिश्चीयनमत दर्पण)॥ ईसाईमतखण्डन १ भाग)। दूसरा)। ईसाईमतलीला)। महाशङ्कावली १ भाग)। दूसरा भाग)। नीतिशिक्षावली)। सुशीलादेवी)। रामायण का आल्हा)। प० रामचन्द्र वेदान्ती का उत्तर)। शिवलिङ्गपूजाविधान)। श्रीरामजी का दर्शन)। कलियुग लीला काशीमहात्म)। नित्यकर्मविधि)। पुराण किसने बनाये, शङ्करानन्द के अनमोलउपदेश छेवीस की राय आधा २ पैसा ॥

अन्य पुस्तकें—खेतीविद्या के मुख्य सिद्धान्त ॥=) वेदान्तप्रदीप ॥) वैद्यानन्दप्रकाश ॥) चिकित्सासिन्धु २) लण्डनयात्रा ।-) श्रीछत्रपति शिवा जी का जीवनचरित्र ।) नारायणी शिक्षा १।) भास्करप्रकाश १ खण्ड ।=) श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य ।≡) संस्कृत की प्रथमपुस्तक)॥ द्वितीय -)। तृतीय =)॥ चतुर्थ ॥) चारों की जिल्द ।॥-) विश्वकर्माप्रकाश १।) वैदिकधर्मप्रचार ॥।) स्वधर्मरक्षा ।) आर्यसमाजपरिचय ।) भगवद्गीताभाष्य १।।) वीर्य्यरक्षा ≡) (स्त्री शिक्षा की पुस्तक) स्त्रीधर्मनीति १) भारत की विख्यात रानियों के चरित्र ॥) सीताचरित्रनावल १ भाग ।॥) (भजनों की पुस्तक) आर्यसंगीत पुष्पावली ॥) सभाप्रश्न ।)॥ प्रमोदयभजनावली ≡) भजनामृतसरोवर =) संगीत रत्नाकर =) संगीतसुधासागर -) भजनेन्दु -) (उत्तम देखने योग्य उपन्यास) दिवनिवारण ।॥ सुवर्णलता ।॥) मधुमालती ।॥) चितौड़ की चातकी ।॥ अमलावृत्तान्तमाला ।॥) इला ।।=) प्रमिला ।।=) जया ।।) अकबर ॥) अद्भुत लाश ।=) चन्द्रकला ।) संसारदर्पण २) वेश्यानाटक ।)॥ अंगरेजी की सीढ़ी ।=) अज्ञाननिवारण -)॥ वैदिकदेवपूजा -)॥ ईश्वर और उसकी प्राप्ति -) हारमोनिम गाईड १ भाग ।=) दूसरा ।=) लेखदीपिका ।) स्वास्थ्यरक्षा ।)

हमारे यहां श्रीस्वामीदयानन्द सरस्ती जी महराज कृत पं० भीमसेन जी कृत पं० तुलसीराम जी कृत स्वर्गवासी पण्डित लेखराम जी कृत उर्दू पुस्तकें, तथा प० कृपाराम जी के उर्दू ट्रैक्ट और मुं० चिम्मनलाल जी कृत आदि पुस्तकें है डाक व्यय सब को अलग पड़ेगा ॥

तिलकों में विरोध—

पद्मपुराण में कहा है:—

ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्य श्मशानसदृशं मुखम् ।
अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत् ॥
(तथा) ब्राह्मणः कुलजोविद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि ।
वर्जयेत्तादृशं देवि मद्योच्छिष्टं घटं यथा ॥

अर्थ—जो लंबा तिलक (वैष्णवी मार्ग का) धारण नही करता उस का मुंह श्मशान के तुल्य है अतएव देखने योग्य नही कदाचित् देख पड़े तो इस का प्रायश्चित्त करे अर्थात् तुरन्त सूर्य्य का दर्शन कर लेवे ॥ १ ॥ ब्राह्मणकुलोत्पन्न जो विद्वान् होकर भस्म धारण करे उस को शराब के जूठे बासन की नाईं त्याग देवे ॥

अब देखिये इस के विरुद्ध शिवपुराण में क्या लिखा है:—

विभूतिर्यस्य नो भाले नाङ्गे रुद्राक्षधारणम् ।
नास्ये शिवमयी वाणी तं त्यजेदन्त्यजं यथा ॥

अर्थ—विभूति (भस्म) जिस के माथे पर नहीं और अङ्ग में रुद्राक्ष नही पहिने । मुंह से शिव २ ऐसा न कहे वह चाण्डाल की नाईं त्याज्य है ।

इसी प्रकार पृथिवीचन्द्रोदय में भी वैष्णवों को लताड़ दी है:—

यस्तु सन्तप्तशङ्खादिलिङ्गचिह्नधरोनरः ।
स सर्वयातनाभोगी चाण्डालोजन्मकोटिषु ॥

अर्थ-जो मनुष्य तपे हुए शङ्खादिकों के चिह्नों को धारण करता है वह सब नरकयातनाओं को भोगता है और कोटिजन्मपर्य्यन्त चाण्डाल होता है ॥

ऊपर के श्लोकों से स्पष्ट विदित होता है कि तिलकधारण करने के विषय में पुराणों में सर्वथा परस्पर विरोध है अर्थात् शैवसम्प्रदायी चक्राङ्कित सम्प्रदायियों के तिलक को बुरा कहते और वैष्णवसम्प्रदायी शैवादिसम्प्रदायियों के तिलक को भ्रष्ट बताते हैं इस से यह निश्चित हुआ कि यदि पुराणों को सत्य माना जाय तो सर्व प्रकार के तिलकधारी भ्रष्ट पतित और नरक के अधिकारी ठहरते हैं अतएव पुराण भ्रमजाल में फसाने वाले हुए जैसा कि पद्मपुराण में स्पष्ट लिखा है:—

व्यामोहाय चराचरस्य जगतश्चैते पुराणागमास्तां तामेव हि देवतां परात्रिकां जल्पन्ति कल्पावधि । सिद्धान्ते पुनरेकएव भगवान् विष्णुस्समस्तागमा व्यापारेषु विवेचनं व्यतिकरं नित्येषु निश्चीयते ।

अर्थात् जितने पुराण हैं सब मनुष्य को भ्रम में डालने वाले हैं उन में अनेक देव ठहराये गये हैं एक ईश्वर का निश्चय नहीं होता । केवल एक भगवान् विष्णु पूज्य हैं ।

हे पौराणिक भक्तो ! जब सभी पुराण भ्रम में डालने वाले हैं जैसा कि ऊपर के वचन से स्पष्ट है तो तुम्हें भ्रम से बचाने वाला आर्यसमाज के अतिरिक्त और कौन है ।

पुराणों में देवताओं की निन्दा

भागवत में लिखा है:–

भवव्रतधरा येच ये च तान् समनुव्रताः । पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥ मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ । नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः ॥

अर्थ–जो शिव के भक्त हैं और उन की सेवा करते हैं सो पाखण्डी और सच्चे शास्त्र के वैरी हैं इसलिये जो मोक्ष की इच्छा रखते हैं सो भयानक वेष भूतों के स्वामी अर्थात् महादेव को छोड़े और नारायण की शान्त कलाओं की पूजा करें ।

अब पद्मपुराण में शिव की स्तुति में यह श्लोक कहे हैं:–

विष्णुदर्शनमात्रेण शिवद्रोहः प्रजायते ।
शिवद्रोहान्न सन्देहो नरकं याति दारुणम् ।
तस्माद्वै विष्णुनामापि न वक्तव्यं कदाचन ॥

अर्थ यह है कि–जब लोग विष्णु का दर्शन करते हैं तब महादेव क्रुद्ध होता है और उस के क्रोध से मनुष्य महानरक में जाते हैं इस कारण विष्णु का नाम कभी न लेना चाहिये ।

उसी पुराण में ये श्लोक हैं:–

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः ।
समं सर्वैर्निरीक्षेत स पाषण्डी भवेत्सदा ॥
किमत्र बहुनोक्तेन ब्राह्मणा येऽप्यवैष्णवाः ।
न स्प्रष्टव्या न द्रष्टव्याः न वक्तव्याः कदाचन ।

अर्थ यह है—जो कहते हैं कि और देवता अर्थात् ब्रह्मा महादेव इत्यादि नारायण के समान हैं सो पाखण्डी हैं इन के विषय में हम और बात न ब-ढ़ावेंगे क्योंकि जो ब्राह्मण विष्णु को नहीं मानते उन को कभी न छूना न देखना और न उन से बोलना चाहिये ।

फिर पद्मपुराण में विष्णु की स्तुतियों में यह श्लोक है:—

येऽन्यं देवं परत्वेन वदन्त्यज्ञानमोहिताः ।
नारायणाज्जगन्नाथात् ते वै पाषण्डिनो नराः ॥

अर्थ यह है कि—जो लोग किसी दूसरे देवता को नारायण से जो जगत् का स्वामी है बड़ा करके मानते हैं सो अज्ञानी हैं और लोग उन को पाखण्डी कहते हैं ।

फिर इसी पुराण में परस्पर विरोध देखो जैसे:—

एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः ।
न तस्मात्परमं किञ्चित् पदं समधिगम्यते ॥

अर्थ यह है कि—महादेव को महान् ईश्वर जानना चाहिये और यह मत समझो कि उस से कोई बड़ा है । फिर इस से विरुद्ध देखो:—

वासुदेवं परित्यज्य येऽन्यं देवमुपासते ।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः ॥

अर्थ यह है कि—विष्णु को छोड़ कर दूसरे देव को मानते हैं सो उस मूर्ख के समान हैं कि जो गङ्गा के तीर प्यासा बैठा कुवा खोदता है ।

इसी प्रकार ब्रह्मा विष्णु श्रीकृष्ण पराशर शिव चन्द्रमा बृहस्पति इन्द्र आदि महानुभाव जो कि प्राचीन काल में अत्यन्त प्रसिद्ध विद्वान् राजा महा-राजा हुए हैं और सत्यशास्त्रों में उन का बड़ा सत्कार किया गया है और जिन्हें ऋषि मुनि देवताओं की पदवियां दी गई हैं, पुराण उन की निन्दा करते और कोई ऐसा दूषण नही जो इन देवताओं पर नहीं लगाते हैं ॥

द० ति० भा० पृ० ४३ पं० १५ से कौमुदी की निन्दा करते थे परन्तु उन की मरणानन्तर वस्ते में निकली, भला व्याकरण में क्या मिथ्यापना है जो कौमुदी आदि को त्याज्य लिखा । काव्य न पढ़ें तो व्युत्पत्ति कैसे हो इन में क्या बुराई है । आप के "संस्कृतवाक्यप्रबोध" में सैंकड़ों अशुद्धि हैं जिस में बुद्धि भ्रष्ट होजावे । तर्कसंग्रह क्यों त्याज्य है, उस में वैशेषिक के विरुद्ध क्या बात है । मनु में भी प्रक्षिप्त है तो यह भी विपाक्त अन्नवत् क्यों न त्याग दिया जब भाषा के सब ग्रन्थ कपोलकल्पित हैं तो क्या सत्यार्थप्रकाशादि भाषा के ग्रन्थ कपोलकल्पित नहीं? यदि मुहूर्त्त मिथ्या हैं तो संस्कारविधि के पुण्य नक्षत्र उत्तरायणादि मिथ्या क्यों नहीं? और सुश्रुत सूत्रस्थान २ अ० में-

उपनीयस्तु ब्राह्मण. प्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्त्तेषु० इत्यादि ॥

ब्राह्मण का उपनयन अच्छे तिथि करण मुहूर्त्त और नक्षत्र में करे इत्यादि । और शकुन भी सुश्रुत में लिखा है । सूत्रस्थान अ० १०-

तत्तो दूतनिमित्तशकुनं मङ्गलानुलोम्येन । इत्यादि ।

अर्थात् वैद्य चिकित्सा को जावे तो शकुनादि अच्छे पड़ें तब रोगी को देखे छुवे और पूंछे । इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर-व्याकरणादि सभी विषयों के ऋषिप्रणीत ग्रन्थों का पढ़ना इस लिये अच्छा है कि उन में अपने मुख्यविषय के वर्णन के साथ २ उदाहरणादि के मिष से उस समय के धर्म कर्म आचार व्यवहार आदि की भी चर्चा कुछ न कुछ आती ही है जिस से विद्यार्थी पर कुछ न कुछ प्रभाव ऋषियों के चालचलन का पड़ता ही है। इसी प्रकार कौमुदी आदि के पढ़ने से उस समय के सिद्धान्त विचार व्यवहारादि का भी विद्यार्थी पर बुरा प्रभाव न पड़े इसलिये स्वामी जी ने ऋषिप्रणीत ग्रन्थों के प्रचारार्थ लिखा है। आधुनिक व्याकरण काव्यादि में श्रीकृष्णादि पर मिथ्यारोपित दूषणों का वर्णन है इसलिये उन से विद्यार्थी पर बुरा प्रभाव पड़ेगा अतःत्याज्य लिखा है । संस्कृतवाक्यप्रबोध में छापे आदि की अशुद्धि हो वे पढ़ाने वाले शुद्ध करके पढ़ालेंगे परन्तु कोई ऋषि-सिद्धान्तविरुद्ध बात तो नहीं जिस से विद्यार्थी का आचरण बिगड़े । तर्कसंग्रह में वैशेषिक से क्या विरुद्ध है यह तो आप को वैशेषिक पढ़ा होता तो ज्ञात होता-वैशेषिक में-

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानामित्यादि ।

छः पदार्थ हैं। तर्कसंग्रह में इनके विरुद्ध—

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाऽभावाःसप्त पदार्थाः०

इत्यादि में सात पदार्थ हैं। मनु में प्रक्षिप्त है परन्तु मनुस्मृति ऋषिप्रणीत तो है और बहुत न्यून जो कुछ मिलावट हुई है उसे वेद का सिद्धान्त जानने वाले सहज में जान सक्ते हैं। वह पुराणों के समान जानबूझ कर ग्रन्थ का ग्रन्थ ही तो अनार्ष नहीं। भाषाग्रन्थमात्र को स्वामीजी ने त्याज्य नहीं लिखा, सत्यार्थप्र० खोलकर देखिये पृ० ७१ पं० २७ में यह लिखा है कि "रुक्मिणीमङ्गलादि और सब भाषाग्रन्थ" इस लिखने से स्पष्ट विदित होता है कि रुक्मिणीमङ्गल के सदृश श्रीकृष्ण महाशय के शुद्ध चरित्रों को अश्लील अयुक्त रीति पर वर्णन करने वाले ही भाषाग्रन्थ त्याज्य हैं, न कि सत्यार्थप्रकाशादि उत्तम ग्रन्थ। मुहूर्त्तादि ग्रन्थों के मिथ्या लिखने का तात्पर्य्य यह है कि उन २ मुहूर्त्तों में लिखे फल मिथ्या हैं। यथार्थ में मुहूर्त्त समय विशेष को कहते हैं। शुभमुहूर्त्त में उपनयनादि लिखने वाले सुश्रुतादि ग्रन्थकारों का आशय यह है कि जिस मुहूर्त्त में अनुकूलता सब प्रकार से हो वह शुभमुहूर्त्त है न कि अनुकूलता तो १० बजे दिन को हो और ज्योतिषी जी कहते हैं कि ३॥ बजे रात्रि को मुहूर्त्त अच्छा है। उत्तरायण इसलिये अच्छा है कि वह दैवदिन है। क्योंकि एक वर्ष को दैवदिन मानने पर दक्षिणायन रात्रि और उत्तरायण दिन है। इसी प्रकार आर्षग्रन्थों की बातें निष्प्रयोजन नहीं हैं। शकुन का केवल इतना फल युक्त है कि जब किसी कार्य्य को मनुष्य चलता है तब यदि अच्छे पदार्थ सम्मुख हों तो चित्त को आल्हाद होने से, उस कार्य्य में अधिक उत्साह होता और उससे कार्य्य अच्छा बनना सम्भव है। अन्य शकुनावलि आदि में लिखे ऊटपटांग शकुनों को मानना और समझना कि "शकुन के विरुद्ध कार्य्य हो ही नहीं सक्ता" मूर्खता है। क्योंकि केवल अशुभ शकुन से चित्त पर कुछ बुरा प्रभाव भी पड़े और दूसरी बातें सब अनुकूल हों तो शकुन कुछ नहीं कर सक्ता। तात्पर्य्य यह है कि ऋषियों की सम्मति के अनुसार शुभ अशुभ कार्य्यों को देखकर चित्त पर उसका कुछ न कुछ प्रभाव होता है यह ठीक है परन्तु जिस प्रकार प्रचरित ग्रन्थों में लिखे शकुनों के विरुद्ध लोग काम ही नहीं करते चाहे कैसी ही अन्य अनुकूलता हों, और चाहे जितनी प्रतिकूलता होने पर भी केवल शकुन के भरोसे जो लोग काम बिगाड़ते हैं यह मूर्खता है॥

अथ इतिहासपुराणप्रकरणम् ॥

द० ति० भा० पृ० ४५ पं० १ से लिखा है कि-शतपथादि का नाम पुराण नहीं—

मध्याहुतयो वा ताएता देवानां यदनुशासनानि० ।इत्यादि।

शतपथ का पाठ लिखकर कहते हैं कि "आशय यह है कि विद्या वाक् वाक्य इतिहास पुराण गाथा नाराशंसी इनका पाठ अवश्य है जो इन का अध्ययन करते हैं देवता प्रसन्न होके उनके सब कार्य्य पूर्ण करते हैं"

प्रत्युत्तर–कोई पूछे कि प्रमाण तो आप को यह देना था कि भागवतादि का नाम पुराण है, शतपथादि का नहीं । आप यह लिखते हैं कि इन का पढ़ना अवश्य है। भला इन का पढ़ना अनावश्यक कौन बताता था । स्वामी जी ने तो यही लिखा है कि भागवतादि पुराण नहीं किन्तु नवीन हैं, शतपथादि पुराण हैं उन्हीं का पढ़ना आवश्यक है उन्हीं के पढ़ने से देवता प्रसन्न होते है । अच्छा उत्तर दिया ? कोई गावे शीलला, मैं जाऊं मसान ।

फिर द० ति० भा० पृ० ४५ पं० १५ में—

सयथार्द्रेन्धाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवम्०

शत० का पाठ लिखकर प० २० में लिखते है कि ऋग् यजुः साम अथर्व इतिहास पुराणादि उसी परमेश्वर के श्वास है इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर–आप यह तो ध्यान दें कि आपको सिद्ध क्या करना है और सिद्ध क्या करते हैं । मैं फिर स्मरण दिलाता दूं कि "भागवतादि पुराणहैं" यह आपका साध्य है । "शतपथादि पुराण हैं" यह स्वामी जी का साध्य है । अब न तो ईश्वर के श्वास होने से यह सिद्ध होता है कि भागवतादि का नाम पुराण है, न यह सिद्ध होता है कि शतपथादि को पुराण नहीं कहते । किन्तु आप के लेखानुसार इतना अवश्य निकलता है कि पुराण विद्या उपनिषद् श्लोक सूत्र व्याख्यान अनुव्याख्यानादि सब ईश्वर का श्वास है । मैं यह पूंछता हूं कि यदि श्लोक ईश्वर के श्वास हैं तो क्या "त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्त्तनिशाचराः" इत्यादि नास्तिकनिर्मित श्लोक भी ईश्वर के श्वास हैं ? इस पक्ष का अच्छे प्रकार खण्डन और इस शतपथ की कण्डिका का अर्थ सब मेरे बनाये "ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दूपरागे द्वितीयोऽशः" में लिखा है जिनको विशेष जिज्ञासा हो वहां देखलें ॥

द० ति० भा० पृ० ४६ पं० ११ में जो–" अरे अस्य महतोभूत० " और इस

का अर्थ लिखा है इसका उत्तर भी मेरे बनाये "ऋगादि-द्वितीयों ऽशः" में लिखा है ॥

द० ति० भा० पृ० ४६ पं० २४ में आश्वलायनसूत्र लिखा है—

अथ स्वाध्यायमाधीयीत ऋचो यजूंषि सामान्यथर्वाङ्गिरसो ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरितिहासः पुराणानीत्यमृताहुतिभिर्यदृचोऽधीते पयसः कुल्या अस्य पितॄन्त्स्वधा उपक्षरन्ति। यद्यजूंषि घृतस्य कुल्या, यत्सामानि मध्वः कुल्या, यदथर्वाङ्गिरसः सोमस्य कुल्या, ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरितिहासः पुराणानीत्यमृतस्य कुल्या, यथावन्मन्येत तावदधीत्यैतया परिदधाति। नमो ब्रह्मणे, नमोऽस्त्वग्नये, नमः पृथिव्यै, नम ओषधीभ्यो, नमो वाचे, नमो वाचस्पतये, नमो विष्णवे महते करोमीति ॥

आशय यह है कि जो ऋगादि चारो वेदों को और ब्राह्मणादि ग्रन्थों को कल्पगाथादि सहित पढ़ते हैं उनके पितरों का स्वधा से अभिषेक होता है, ऋवेदाध्यायी के पितरों को दूध की, यजुर्वेदपाठियों के को घृत की, सामाध्यायियों के को मधु, अथर्वाध्यायियों के को सोम और ब्राह्मण कल्प नाराशंसी इतिहास पुराण पढ़ने वालों के पितरों को अमृत की कुल्या प्राप्त होती है० इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर—साध्य की सिद्धि का यहां भी पता नहीं। क्यों कि इस से भी ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण नहीं है यह भी सिद्ध नहीं होता और न यह होता है कि भागवतादि का नाम पुराण है। किन्तु तात्पर्य्य यह है कि इस सूत्र में स्वाध्याय [पढ़नेरूपी] यज्ञ को पितृयज्ञ की उपमा दी गई है कि जैसे पितरों की सेवा दुग्ध घृतादि से की जाती है वैसे ब्रह्मचारी जो गुरुकुल में रहता है वह अपने माता पिता को घर छोड़ आता है उसका वेदादि पढ़ना ही मानो पितृसेवा है। वह जो ऋग्वेद पढ़ता है सो ही मानो पितरों के लिये दूध की कुल्या [नहर] बहाता है, यजुः पढ़ता है सो घृत की, जो साम पढता है सो मधु की, जो अथर्व पढ़ता है सो सोम की, जो ब्राह्मणग्रन्थों को पढ़ता है जो कि कल्प गाथा नाराशंसी इतिहास पुराण कहाते हैं सो मानो अमृत की नहरें बहाता है। इस से यह तो सिद्ध न हुवा कि ब्राह्मण ग्रन्थ

पुराण नहीं है, न यह कि भागवतादि पुराण हैं, किन्तु चारों वेदों को कह कर फिर ब्राह्मणों को वेदों के पश्चात् और पृथक् गिनाने से ब्राह्मणों का वेदों से पृथक् होना, वेद न होना, वेदों से दूसरी श्रेणी का होना और उनके पुराण इतिहास गाथादि नाम होना ही पाया जाता है ॥

द० ति भा० पृ० ४७ पं १२ में-

सप्तद्वीपावसुमती त्रयोलोकाश्चत्वारो वेदाः साङ्गाःसरहस्याः बहुधाभिन्ना एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मासामवेद एकविंश-तिधा बाह्वृच्यं नवधाथर्वणोवेदोवाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावाञ्छब्दस्यप्रयोगविषयः।महाभाष्य ।१।आह्निक ॥

यदि नाराशंसी का नाम ही पुराण होता तो साङ्ग लिखकर फिर पुराण लिखने की क्या आवश्यकता थी, पूर्वोक्त वाक्यों से सिद्ध है कि ब्राह्मण, उपनिषद् सूत्रादि से भिन्न ही कोई पुराण और इतिहास संज्ञा वाले ग्रन्थ हैं। इतिहास का पुराण विशेषण मानो तो इतिहास पुंल्लिङ्ग है उस का विशेषण पुराण नपुंसकलिङ्ग नहीं हो सक्ता । अतः पुराण से इतिहास भी कोई भिन्न ग्रन्थ हैं ॥

प्रत्युत्तर-यदि उक्त महाभाष्य में कहीं ब्राह्मण पद भी आता और इति-हास पुराण शब्द भी भिन्नविषयक आते तो सिद्ध हो जाता कि ब्राह्मण से इतिहास भिन्न हैं परन्तु जब ब्राह्मण पद नहीं और इतिहास पुराण शब्द हैं तो हम कह सक्ते हैं कि ये ही पद ब्राह्मण के ऐसे भाग के नाम हैं जिस में कोई कथा प्रसङ्ग है वह ब्राह्मणभाग इतिहास है जैसेः-

जनमेजयो ह वै पारिक्षितो मृगयाञ्चरिष्यन्हंसाभ्यामशि-क्षन्नुपावतस्थइति तावूचतुर्जनमेजयं पारिक्षितमभ्याजगाम । सहोवाच नमो वां भगवन्तौ कौ नु भगवन्ताविति । गोपथ । प्रपाठक २ ब्रा० ५ ॥

यहां परीक्षित के पुत्र जनमेजय की मृगयायात्रा और दो परमहंसों (संन्यासियों) का मिलना उन को नमस्कार करके पूछना कि आप कौन हैं? इत्यादि इतिहास है । और सृष्टि के आरम्भ समय के ऋषियों का वर्णन जिस में हो वह ब्राह्मणग्रन्थों का भाग "पुराण" कहाता है जैसे-

अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः । शतपथ ।११।५।

अग्नि वायु आदि ऋषियों से ऋगादि वेद हुवे । अग्नि वायु आदि तत्त्व न थे किन्तु जीवात्मा थे यह सायणाचार्य अपनी ऋग्वेदभाष्यभूमिका में लिखते हैं–

जीवविशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात् ॥

अर्थात् जीवविशेष अग्नि वायु आदित्यों ने वेदों को प्रकट किया है। इस से । इस रीति से इतिहास और पुराण ये दोनों नाम ब्राह्मणों के ही हुवे । इतिहास पुराण का जो अर्थ हमने किया और ब्राह्मण ग्रन्थों के उदाहरण दिये वही अर्थ आप भी द० ति० भा० पृ० ४६ पं० १७ में लिखते हैं कि "जिस में कोई कथा प्रसङ्ग होता है सो इतिहास । जिसमें जगत् की पूर्वावस्था सर्गादि का निरूपण होता है सो पुराण" सो ये दोनों बातें ब्राह्मण ग्रन्थों में (जैसा कि हमने ऊपर गोपथ और शतपथ का प्रमाण दिया) भी पाई जाती हैं इस से ये इतिहास पुराण हुवे। यदि कोई यह शङ्का करे कि एक ही स्थान पर ब्राह्मण पुराण इतिहास गाथा नाराशंसी ये सब नाम क्यों आये हैं जब कि ये सब एकार्थ हैं। तो उत्तर यह है कि "ब्राह्मण" यह सामान्य नाम है और इतिहास पुराण गाथा नाराशंसी आदि उस के विशेषों के नाम हैं जैसे "गृह" सामान्य शब्द है और हर्म्य (महल) भवन शाला आदि उस के विशेष हैं। इसी प्रकार यहां भी जानो । और आपने जो यह कहा कि साङ्ग कहने से अङ्गों में नाराशंसी भी आजाती फिर साङ्ग लिखकर पुराण क्यों पृथक् लिखते। सो महाशय! क्या आप वेदों के छः अङ्गों को भी नहीं जानते कि शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द और ज्योतिष ये छः अङ्ग कहाते हैं। इन में कल्प कहने से श्रौतसूत्रादि का ग्रहण है। और पुराण इतिहास ये दो नाम ब्राह्मणों के उस विशेष भाग के हैं जिसमें ऊपर लिखे अनुसार कथादि का प्रसङ्ग है। और यह भी जानना चाहिये कि यदि उपनिषदादि मिलाकर सब वेद हैं तो "चत्वारो वेदाः" कहकर फिर "सरहस्याः" इत्यादि की क्या आवश्यकता रहती। भिन्न ग्रहण से जाना जाता है कि ये ग्रन्थ वेद से भिन्न ही हैं ॥

द० ति० भा० पृ० ४७ पं० २९ से पृ० ४८ तक न्यायदर्शन के अ० ४ सूत्र ६२ और उसका वात्स्यायन भाष्य और उस का भावार्थ लिखा है उस सब को लिखने से ग्रन्थ बढ़ेगा परन्तु मुख्य अंश उस का यह है कि–

"इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदइति" और "यज्ञोमन्त्रब्राह्मणस्य, लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य, लोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः"

अर्थात् इतिहास पुराण ५ वां वेद है तथा मन्त्र ब्राह्मण का विषय यज्ञ है, इतिहास पुराण का विषय लोक का वृत्तान्त है और लोकव्यवहार की व्यवस्था करना धर्मशास्त्र का विषय है। यहां ब्राह्मण से भिन्न इतिहास पुराण का विषय पढ़ा है और भिन्न २ नाम भी इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर—एक ही ग्रन्थ का सामान्य विषय एक होता है और उसी ग्रन्थ के विशेष भागों के विशेष विषय भिन्न२ होते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणसामान्य का विषय यज्ञ है यह लिखकर ब्राह्मण के ये विशेष भाग जिन का नाम पुराण और इतिहास है जिनके दो उदाहरण भी हमने ऊपर लिखे हैं उन भागों का भिन्न "लोकवृत्त" विषय है। इस कथन से विषयभेद ही सिद्ध होता है ग्रन्थभेद नहीं। क्या एक ग्रन्थ में अनेक विषय नहीं होते? आप के ही इस द० ति० भास्कर में अनेक विषय हैं फिर क्या यह एक ग्रन्थ नहीं है? और यह कि इतिहास पुराण की प्रामाणिकता में ब्राह्मण ने प्रमाण दिया है कि यह पञ्चम वेद है। इस का उत्तर यह है कि वेद तौ ४ ही हैं इतिहास पुराण को पञ्चम वेद कहना उसकी प्रशंसा है जैसे किसी पुरुष की प्रशंसा में कहते हैं कि यह तौ दूसरा युधिष्ठिर है वा दूसरा बृहस्पति है। यथार्थ में युधिष्ठिर वा बृहस्पति दूसरे नहीं हैं परन्तु धर्मात्मा और विद्वान् अधिक होने से दोनों की उपमा दी जाती है इसी प्रकार इतिहास पुराणसंज्ञक ब्राह्मणभाग की यह प्रशंसा है कि ये पांचवां वेद है। क्या आप यथार्थ में जैसे चारों वेद अपौरुषेय हैं अर्थात् किसी पुरुष के बनाये नहीं इसी प्रकार यह समझते हैं कि इतिहास पुराण भी वास्तव में ५ वां वेद हैं और ये भी अपौरुषेय हैं? यदि ऐसा है तौ आप अन्य पौराणिकों के सदृश यह भी न मानते होंगे कि पुराणों के कर्त्ता व्यास हैं। अन्त में आप को भी स्वीकार करना पड़ेगा कि यह वाक्य प्रशंसापरक है। यदि यह कहो कि ब्राह्मण का कोई भाग पुराण है तौ उसमें अपनी प्रशंसा आप ही क्यों की गई तौ उत्तर यह है कि मनु ने भी अपनी प्रशंसा में यह कहा है कि—

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित् ।

अर्थात् अल्पविद्या वाले लोगों के बनाये ग्रन्थ आज बनते हैं, कल नष्ट होते हैं, जो कि इस मनु के अतिरिक्त कोई ग्रन्थ हैं। इस से मनु ने अपना प्रमाण और प्रशंसा दूसरों (अल्पविद्यरचितों) का अप्रमाण और निन्दा की है सो ठीक है। यदि अपने विषय में उचित प्रशंसा वा कथन कोई न करे तौ दूसरे द्वारा प्रशंसा न होने तक उस में श्रद्धा वा प्रामाण्य कैसे हो। यदि अपने विषय में स्वयं प्रामाणिकता का कहना अच्छा नहीं तौ आपने ही अपने इस द० ति० भास्कर की प्रशंसा और प्रामाणिकता को जताने के लिये आरम्भ में सुर्खी से ग्रन्थों के नाम और टाइटिल पेज पर "वेद ब्राह्मण शास्त्र स्मृति पुराण वैद्यकादि प्रमाणों से अलङ्कृत" यह प्रशंसा और प्रामाण्य क्यों लिखा है। और जब आपने ही टाइटिल पेज पर वेद शब्द लिख कर फिर ब्राह्मण और पुराण शब्द भिन्न लिखे हैं तौ औरों को क्यों कहते हो कि पुराण ५ वां वेद हैं। यदि पुराण ५ वां वेद हैं तौ जैसे वेद कहने से ऋग् यजुः साम अथर्व इन ४ का अर्थ आजाता है वैसे ही ५ वें का भी अर्थ आजाता॥

द० ति० भा० पृ० ४९ पं० १२ में अथर्ववेद के मन्त्र में इतिहास पुराण गाथा और

नाराशंसी पदको देखकर कहते हैं कि वेदमें भी इतिहासादि की स्पष्टता है ॥

प्रत्युत्तर-वेद में सामान्य शब्द इतिहास पुराणादि हैं किसी शिवपुराण अग्निपुराणादि आप के अभिमत पुराण का नाम नहीं। वेद में यदि "मनुष्य" शब्द आजावे तो क्या आप कहेंगे कि देखो वेद में मनुष्य शब्द है और हम (पं० ज्वालाप्रसाद) भी मनुष्य हैं इसलिये हमारा वर्णन वेद में आया है। इस का सविस्तर उत्तर मेरे बनाये "ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दूपरागे द्वितीयोंऽशः" में छपा है वहां देख लीजिये। जैसे आप ने महामोहविद्रावण, सत्यार्थभास्कर, सत्यार्थविवेक, महतावदिवाकर, मूर्तिरहस्य, मूर्तिपूजा, आदि पुस्तकों के आशयों को इकट्ठा करके पिष्टपेषण किया है, वैसा हम अच्छा नहीं समझते ॥

द० ति० भा० पृ० ४९ पं० १६ में- एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः। इत्यादि। गोपथ के वाक्य को उद्धृत कर के शङ्का की है कि कि यदि ब्राह्मण और इतिहास एक ही पुस्तक के नाम होते तो "सब्राह्मणाः" कहकर "सेतिहासाः" न कहते ॥

प्रत्युत्तर- आप तो अभी पुराणों को ५ वां वेद लिख चुके हैं फिर "सर्वे वेदाः" कहने में इतिहास भी (जो आप के लेखानुसार ५ वां वेद है) अन्तर्गत था फिर "सेतिहासाः" क्यों कहा? इसलिये आप का तर्क आप ही के पक्ष में दोषारोपण करता है। ब्राह्मण शब्द सामान्य कहकर भी ब्राह्मणान्तर्गत उपनिषद् और इतिहास का फिर से गिनाना यह सूचित करता है कि ब्राह्मण वा वेदके जिस भाग में विशेष कर ब्रह्मविद्या है उस भाग का नाम भिन्न उपनिषद् पड़ा और जिस ब्राह्मण भाग में लोकवृत्तान्त है उसका नाम भिन्न इतिहास पड़ा इसी से वे पुनः भी गिनाये गये। जैसे "भगवद्गीता" महाभारत के अन्तर्गत है परन्तु विशेष प्रकरण का विशेष नाम "भगवद्गीता" यह भिन्न भी है इसी प्रकार यहां जानिये ॥

द० ति० भा० पृ० ४९ पं० २६-और सूत्रकार ने भी तो "अश्वमेध" प्रकरण में ८ वें दिन इतिहास और ९ वें दिन पुराण का पाठ करना लिखा है। इस से निश्चय हो गया कि पुराण इतिहास, ब्राह्मणों से भिन्न ही ग्रन्थ हैं ॥

प्रत्युत्तर-धन्य है! आप का ऐसे निश्चय होजाता है तभी तो इतना पुस्तक बनाय बैठे। भला "८ वें ९ में दिन पुराण इतिहास सुनना चाहिये" इस से यह कैसे सिद्ध होगया कि ब्राह्मणों से पुराणादि पृथक् हैं? प्रत्युत यह सिद्ध होगया कि सूत्रकार के समय में आप के माने व्यासकृत १८ पुराण तो थे ही नहीं इस से सूत्रकार ने ब्राह्मण ग्रन्थों ही को लक्ष्य करके इतिहासपुराण का पाठ लिखा है। व्यास जी से पूर्व भी कई राजाओं ने अश्वमेध यज्ञ किये उन यज्ञों में ८ वें ९ वें दिन ब्राह्मणग्रन्थों ही का पाठ किया होगा ॥

द० ति० भा० पृ० ५० और ५१ में मनु, महाभारत, वाल्मीकीयरामायण, अमरकोष के श्लोक जिन में पुराणशब्द और पुराण का लक्षण है, लिखे हैं परन्तु उन में से किसी में भी "ब्रह्मवैवर्तादि का नाम पुराण है" यह नहीं लिखा तो फिर

सामान्य पुराण शब्दमात्र आने से कुछ भी सिद्ध नहीं होसक्ता। हां, इस पुराण-सिद्धिप्रकरण भर में केवल एक श्लोक द० ति० भा० पृ० ५० में लिखा है कि—

एवं वेदे तथा सूत्रे इतिहासेन भारत।
पुराणेन पुराणानि प्रोच्यन्ते नात्र संशयः॥

सो इस श्लोक का कुछ पता नहीं लिखा कि यह किस ग्रन्थ का श्लोक है। हमारी समझ में तो यह पं० ज्वालाप्रसाद जी का ही कृत्य है। जैसा इस श्लोक में लिखा है कि "इस प्रकार वेद व सूत्र में इतिहास से भारत और पुराण से पुराणों का ग्रहण है इस में संशय नहीं" ऐसा ऊपर के लिखे वेद ब्राह्मण महाभाष्यादि में नहीं भी नहीं। मनु, रामायण को तो आप भी व्यासजी से पूर्व रचित मानते हैं फिर मनु वा वाल्मीकि के प्रमाणों से व्यासकृत पुराणों का ग्रहण करना अज्ञान नहीं तो क्या है? इति॥

तिलकप्रकरणम्—

सत्यार्थप्र० पृ० ७३ पं० १९ में जो तिलकादिधारण से "पापनाशक" विश्वास को मिथ्या कहा है उस की समीक्षा द० ति० भा० पृ० ५१ व ५२ में इस प्रकार की है कि जैसे "नमस्ते" दयानन्दियों का, "परमात्माजयति" इन्द्रमणिपन्थ का, शेर का चिह्न गवर्नमेंट की वस्तु का, चिह्न है वैसे ही तिलकादि के भेद सम्प्रदायों के चिन्ह हैं। और चन्दन के गुण राजनिघण्टु में लिखे हैं इत्यादि॥

प्रत्युत्तर—"नमस्ते" चिह्न नहीं किन्तु शिष्टाचार है। और चिह्न होना और बात है तथा पापनिवृत्ति का उपाय समझना और बात है। स्वामी जी पापनाशक विश्वास का खण्डन करते हैं। और भिन्न २ वेदविरोधी सम्प्रदायों के चिह्न धारण करना भी अच्छा नहीं। आप जो चन्दन के गुण बताते हैं सो तो केवल लेपन और क्वाथादि में पान करने को हैं जिस से कोई नकार नहीं करता। स्वामी जी चन्दन केशर आदि लगाते थे और आर्य्य लोग भी लगाते हैं उन की बुद्धि शुद्ध है। आप के ऊर्ध्वपुण्ड्रादि में चिताभस्म के तिलक का विधान होने से मुर्दे के राख का बुरा प्रभाव आपके शैव अनुयायियों पर पड़ा है इसी से वैदिक धर्म के विरोधी बने हैं॥

द० ति० पृ० ५२ आपका मत वेद है तो मन्वादि के प्रमाण क्यों लिखे इत्यादि॥

प्रत्युत्तर—वेद अन्य सब ग्रन्थों का मूल है इसलिये स्वामीजी ने वेद और वेद के अविरुद्ध अन्य शास्त्रों के प्रमाण दिये हैं। संन्यासी (स्वामीजी) ने रुपये नहीं जोड़े न नफ़े से पुस्तक बेचे किन्तु लोकोपकारार्थ आर्य्यों ने सम्मति करके स्वामी जी के द्वारा वैदिक धर्मसम्बन्धी पुस्तकों के प्रचारार्थ वैदिक-यन्त्रालय स्थापित किया था और है स्वामी जी ने उसमें का स्वयं कुछ नहीं भोगा। आप ज़रा काशी के स्वामी विशुद्धानन्द जी आदि पर तो दृष्टि डालिये कि कैसा ठाठ व विभूति है॥

इति तुलसीराम स्वामिविरचिते भास्करप्रकाशे तृतीयसमुल्लासखण्डनम्॥

के नहीं, यजुर्वेद में कहा है कि:-

" नतं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्याचासुतृपउक्थशासश्चरन्ति " ॥

अर्थ–ईश्वर कहता है कि हे मनुष्यो ! इस सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति, स्थित,, और लय करने वाला जो मैं और मेरे से उत्पन्न हुवे वेदोक्त जो ईश्वरीय व्यावहारिक धर्म उस को तुम जानते नहीं हो, क्योंकि निम्न लिखित कारणों से उस का और तुम्हारा अत्यन्त पास का सम्बन्ध होते भी अनन्त अन्तर पड़गया है एक तुम अज्ञानरूपी कुहरा में भूले हुवे को कोई सत्य-मार्ग दिखावे तो देखते नही, कदापि देख लिया तो दुराग्रह से उस को मान करके भी मानते नहीं हो । क्योंकि तुम्हारे आस पास अज्ञानान्धकार वेष्टित हो रहा है । दूसरा दोष यह है कि जो मिथ्या वितण्डावाद पर बहुत तर्क से बकवादी हो और असुतृप् अर्थात् केवल स्वार्थवाद पर बहुत तर्क से मतवादी हो अर्थात् दूसरे के महान् अर्थ को बिगाड़ते हो और अपनी लघु अर्थ सिद्धि में भी चूकते नहीं और वेदसूक्तों की कुतर्कों से शिक्षा करने वाले हो अर्थात् वेदविरोधी नास्तिक हो । परमेश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि जो पूर्वोक्त रीति से विचार करते हैं वे सन्मार्ग को कदापि न देखेंगे, पाठकगण ! मन्त्रों का अर्थापत्ति न्याय से फलितार्थ क्या निकलता है ? और उपरोक्त अज्ञान का पर्दा कैसे मिटे ? इस का उत्तर यह आता है कि परमेश्वर के गुण कर्म और स्वभाव के अनुसार सृष्टिक्रम अविरुद्ध और न्याय के प्रमाणानुकूल ज्ञान होने से असत्य छोड़ सत्य ग्रहण विषयक जल पान करने से सुख का स्वार्थ तज, दुःख सह के और परमार्थ दृष्टि रखने से तथा वेदवचनों पर श्रद्धावान् हो के मण्डन करने से ईश्वर आदि शुद्धमार्ग का विघ्न मिट जाता है ॥

हे बुद्धिमानो ! विचार करोकि मनुष्य में कौन सीशक्ति नहीं है ? अपनी साधारण जनश्रुति (कहावत) स्मरण करो " मनुष्याः किन्न कुर्वन्ति कृष्णमस्तिष्कधारकाः " अर्थात् काले माथे का मनुष्य क्या २ नही कर सकता ? इसलिये परमेश्वर ने विवेक बुद्धि अधिक दी है इसका योग्य उपयोग जानते नहीं हो यही न्यूनता है । आप लोग मेरे बुद्धिचैतन्य विषय को अवश्य पढ़ के समझो न समझ में आवे तो विद्वानों का आश्रय लो और ऐसा न हो तो इतना सारभूत अधिक लो (स्वात्मोपार्जन से इन्द्रियों को कुविषय

में से हटा के एक चित्त से सुविषय में बुद्धि को लग्न करो) पीछे देखो क्या २ चमत्कार बनते हैं, और अपने पूर्वजों के सदृश अनिर्धारित अतर्क्य कार्य कर सकते हो कि नहीं ? एक बड़ी लज्जा की बात है कि अपने वर्त्तमान समय की अनुकूलता के योग्य उपयोग नहीं है, पुरुषार्थ से जड़ तत्त्वों को तथा पशु पक्षिआदिकों का कैसा उपयोग होता है और वे कैसे प्रभाव दिखाते हैं इस का हम थोड़ा सा विचार करके देखें। देखो कीर मैना आदि खग शिक्षा से मनुष्य की वाणी बोल सकते हैं तथा हथियारों का उपयोग कर सकते हैं, कबूतर निश्चय किये स्थान पर पत्र लेजा के डाक के सिपाही का कार्य करते हैं, घोड़े सरकस में कैसी अद्भुत रीति से बाजे पर नाचते हैं, कुत्ता शिक्षा से कृतज्ञता से रखवालों का कार्य कर सकते हैं, तथा महाभयङ्कर सिंह, व्याघ्र, रीछ, के मुख में खेलाड़ी कैसी क्रीडा करते हैं इन्हों ने अपना मांस कवलित करने को स्वाभाविक स्वभाव छोड़ दिया है और इसी तरहसे बन्दर (अर्ध मनुष्य) शिक्षा से सम्पूर्ण हाव भाव सीखके बुद्धि में सुभट का काम कर सकते हैं ॥

सज्जनो! जब पशु पक्षी और जड तत्त्वों में पूर्वोक्त गुण ज्यों २ काल कर्म के साथ शोधक शोधते जाते हैं त्यों २ अपूर्व शोधन देखने मे आता है और उत्तर काल में "न भूतो न भविष्यति" कैसा शोध होगा वह हम कह नहीं सकते, परन्तु भूत वर्त्तमान के प्रवाह को देखते अन्य प्रकार का सृष्टिव्यवहार बदलेगा, इस में कुछ संशय नहीं है। इस लिये हे प्रिय मित्रो! विचार करो कि अपने पूर्वज पूर्व में जो श्रेष्ठ स्थिति में थे तो वे किस कारण से थे हम लोग उस स्थिति को कैसे पहुंचें इस का देश काल शास्त्राधार से विचार करना चाहिये। बहुत ही लज्जा की बात है कि रथवाही बैल तथा घोड़े इत्यादि पशुजाति होते भी एक दूसरे पर शर्त में जय प्राप्त करने को आगे दौड़ जाने और श्रेष्ठ कहलाने के लिये अभिप्राय रखते हैं तो सर्वगुणयुक्त मनुष्य होते भी उन्नति करने के लिये यूरूपियन के सहगामी तो क्या किन्तु अनुगामी होने को अशक्त हैं। अरे! रे! रे! क्या आर्यों की अपदशा, कैसी भी भीरुता और क्या हतवीर्य से स्थूल तथा अविद्या से सूक्ष्म शरीर की दुरवस्था, अरे जिस के सहस्त्रमुख हो तथा पुराणप्रणेता व्यास जी सदृश वर्णन करने में अशक्त होवें, ऐसी अधोगति के समुद्र में आशिख गर्क भये हैं कि बड़े २ महात्मा उपदेष्टा भी अमर्याद अकथनीय दुर्गुण आदि अवगुणों को देख के थकित हो अधिक अपौ-

रुपेय दैवीशक्ति प्राप्ति करने को शरीर छोड़ परमधाम में पधारे हैं तो हमारे दुराग्रहियों को वहिष्करण करने को दूसरों की क्या गति? अब ऐसे दुर्गुणग्राही हम हुये हैं इस का कारण यह है कि मूल स्थूल शरीर का जीव भूत मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कारयुक्त सूक्ष्म शरीर विनय, विद्या, नीति, ज्ञान, साहित्य, सङ्गीत और सत्समागमादि नाना प्रकार के रसिक पौष्टिक व्यञ्जन (भोजन) नहीं मिलने से निर्बल होगया है। जिस से सामाजिक, राजनैतिक और आत्मिक उन्नति दुर्गसमारोहण ही पारङ्गत होने के लिये आत्मा अशक्त हुआ है उस से कुविषय प्रतिविम्बित बुद्धि इन्द्रियों के कुविषय पात्राधार हो अशक्त द्विगुण सबलता से आत्मा को आकर्षण कर अधोगति में डालता है, क्योंकि बुद्धि जड़ वस्तु नहीं है एक देश में समान धर्म होने से ज्ञानरूप चैतन्य कुविषय की ओर लुभा के नरकगामी करता है तब हे बुद्धिमान् वाचक वृन्द! इस बात का यह तात्पर्य निकलता है कि अपने स्थूल शरीरका प्राणभूत बुद्धि अङ्ग विद्या आहार विना क्षुधित हो स्तब्ध बन के निर्जीव हुआ है उस को प्रागुक्त भोजन भोग देके पुष्ट करो कि जागृत होके इन्द्रियों को सुमार्ग में चलाके उन्नति के गढ़ पर चढ़े। आज हम को योग्य साधन का उपयोग करना न आने से चढ़ने तो जाते हैं परन्तु मृषा रूढ़ी अभिमान तथा भीरुता आदि का महान् प्रतिगुरुत्व आकर्षण का बोझ पड़ने से नीचे गिर २ के कुचिलाते हैं। कारण कि यह स्वाभाविक नियम है कि ऊपर जाने से नीचे उतरना सहज बन सक्ता है इसलिये निश्चय स्मरण रक्खो कि प्रतिदिन प्रयत्न होगा तो अधोगति से बच के कालान्तर में भी उन्नति के गढ़ पर चढ़ेंगे, महाजनो! प्रथम छोटे बड़े कार्य में कठिनता है तौ भी परिणाम में जितने दुःख तथा अपयश आदि कार्य सिद्धि में किया हो उतना सुख तथा सुकीर्ति आदि लाभ प्राप्त होता है, कृष्णमहाराज ने गीता में कहा है "यत्तदग्रे विषमिवपरिणामेऽमृतोपमम्,, अध्याय १८ श्लोक ३७ अर्थात् जो कार्य सिद्ध करने को आरम्भ में विषतुल्य भयानक हो उस कार्य में उत्साह हिम्मत तथा बुद्धिपूर्वक परिश्रम करने से परिणाम में अमृत तुल्य अर्थात् अविनाशी सुखरूप फल प्राप्त होता है, अब इस श्लोक के अर्थापत्ति न्याय तथा गीता के उसी अध्याय के प्रमाण से सिद्ध होता है कि—

विषयेन्द्रियसंयोगो यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥

अर्थात् जिस कार्य के आरम्भ में इन्द्रियार्थ जन्य सुख अमृत जैसा अन्त में विषतुल्य नाशकारक भय उत्पन्न हो ऐसे सुख को राजस जानना। तात्पर्य अनुभव से सिद्ध होता है कि जो इन्द्रिय को विषय रस को अमृत तुल्य मान के प्रथमावस्था में लोलुप्य हो के पान करते हैं, वे मनुष्य अन्त में जैसे विषपान से नाश होता है वैसे होता है। इसलिये हे आर्य्यो! किसी भी कार्य में जितने अंश में दुःख होवे उतने अंश में सुख का चिह्न जान के या होम कर के उठो, अपने आर्य्यपन के कर्तव्य को सम्भालो और उस को कायरता से विघ्न के भय से आरम्भ करने को छोड़ मत दो क्योंकि यह कार्य नीच प्रकृति तथा नीच श्रेणि के मनुष्यों का है, हम सम्प्रति के आर्य बीज से प्रादुर्भूत हुये हैं, हमारे आर्यत्व की गहरी जड़ है अतिशुष्क भई नहीं है, उस को अविद्या रूपी कीट लग के प्रति दिवस हरकत दे रही है उस को सद्विद्या रूपी जल और विनय रूपी खाद डाल के प्ररोहण करो कि अन्त को पुनः उन्नतिरूप फल खा के तृप्त होगे, आर्य्यो! यह आब्रह्मस्तम्भपर्यन्त अपनी २ स्थिति की उन्नति करने का यत्न करते हैं तथापि वैसा होने के लिये साधन प्राप्त करने कराने को आता नहीं है तथा देश काल भी सानुगत नहीं होते। धैर्यरूपी अङ्कुर हृदय भूमि में शुष्क हो मुरझा गया है, उस को पुनः उत्साहित करो। मुझ को प्रसंग योग्य महाराजा भर्तृहरि का प्रमाण अपने हृदय सरोज को विकाशित करने को देना चाहिये यथा—

> आरभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः ।
> प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ॥
> विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः ।
> प्रारभ्य चोत्तमजनाः न परित्यजन्ति ॥

अर्थात् इस जगत् में तीन प्रकार के मनुष्य रहते हैं—नीच, मध्यम, और उत्तम। उस में नीच तो वे हैं जो व्यावहारिक, राजकीय और आत्मिक कोई भी कार्य में प्रथम से ही तन, मन, धन तथा यश आदि की हानि का विचार कर के उस कार्य का आरम्भ ही नहीं करते, मध्यम वे पुरुष हैं जो कार्य का आरम्भ तो करें परन्तु भय, निन्दा तथा हानि होने से झट उस आरम्भित कार्य को कुछ हानि उठा के छोड़ देते हैं, परन्तु उत्तम मनुष्य वे हैं कि जो प्रथम से देशकाल और स्थिति देख गम्भीर विचार करके कार्य का आरम्भ करते हैं

पुनः बारंबार विघ्न पड़ने पर भी उस कार्य से पीछे पांव न हटा के कटिबद्ध हो के चिरकाल तक भी उस कार्य को किये विना नहीं छोड़ते। आज देखोगे जो अन्त का उत्तम गुण पूर्व में अपने में था वह अब यूरूपियनों में है तथा अथवा क्वचित् दूसरा गुण अस्मदादि में है। उस से कार्य सफल कर नहीं सकते।

प्रिय वाचक वृन्द! जब उत्तम प्रति के मनुष्य की पद्धति ऐसी है तब अपने को उत्तम बनाना यह अपना कर्त्तव्य कर्म है, उत्तम होने को विद्या, द्रव्य, सत्सङ्ग और अनुकूल कालादि की आवश्यकता है परन्तु उन में सत्सङ्ग उत्तमता तथा उन्नति आदि सर्व उन्नति का मूल है, सत्सङ्गति के विना दैशिक, सामाजिक, राजनैतिक और आत्मिक उन्नति होना दुर्लभ है। नीति में कहा है "सत्सङ्गात्सविवेकाच्च लभ्यते ज्ञानमुत्तमम्" सत्संग और सुविवेक से सर्व प्रकार के उत्तम ज्ञान प्राप्त करने को मुख्य हैं, इसलिये आर्य्यों! विचार करो, उन्नति २ मुख से परिहरो, मुख के असर से जितना घटित था उतना होचुका अब तो कर दिखाने के विना विशेष संगीन होने का नहीं, क्योंकि भोजन २ तथा पानी २ करने से क्षुधा तृषा की शान्ति, शक्कर कहने से मिष्टता और अग्नि कहने से ज्वलन होती नहीं है, उसी तरह जब पर्य्यन्त कर्त्तव्य करने से ही निर्धारित कार्यसिद्ध होता है थोड़ासा कार्य आरम्भ कर के निष्फल हुआ करते हैं उस का मुख्य कारण यह है कि कार्य्यारम्भ संसिद्धार्थक यथा तथ्य जितने अंश में पुरुषार्थ न्यून होगा उतने अंश में हानि होती है इस से उत्तम पुरुष जो है वह तो प्रागुक्त रीति में चाहिये जितना विघ्न संकट खेद डाले तथापि उस से उत्तीर्ण हो प्रारम्भित कार्य में पारङ्गत भये विना एक स्थान पर बैठते नहीं। इदानीं अस्मद्देशीय श्रेणि में यहां की आबादी के प्रमाण में सच्चे देशहितैषी बहुत ही कम मिलेंगे, जो हैं उन को सर्व प्रकार की योग्यता मिलती नहीं। जैसे कि–विद्वान् को द्रव्य की, राजा तथा धनाढ्यों को विवेक और विद्या की, वीरों को देशहित, तथा देशाभिमानियों को (यह मेरा देश उस के प्रति कर्त्तव्यता) न्यूनता और व्यतिरेक होने से सच्चे स्वरूप में उन्नति कर नहीं सकते, जैसे चूना, कत्था एकत्र होने से लालरंग होता है वैसे भिन्न २ देश, जाति, गुण, कर्म और स्वभाव की एकता (यूनिवरसल ब्रदरहुड) अर्थात् जैसे अनेक अवयव मिल के समूहात्मक एक शरीर कहाता है, उस के कोई भी अंग में दुःख होने से सर्व अवयवों को दुःख ज्ञात होता

है अर्थात् सर्व आर्य मिल के मैं सर्व के सुख दुःख से सुखी दुःखी, सब के हानि लाभ में अपनी तथा देश के सामान्य हक़ रखने के लिये सामान्य धर्म इत्यादि संयोज के भ्रातृत्व रंग देश की उन्नति करने के लिये घटित है, यह गुण हमारे में दीख नही पड़ता जो देश वर्त्तमान में उन्नति के शिखर पर पहुंचा है, वह पूर्वोक्त गुण के पर्यावसान से ही। अपने देश की तरफ़ समालोचना करने से ज्ञात होगा कि राजा, महाराजा, राजकर्मचारी, विद्वान्, मूर्ख, व्यापारी, धनी और किसान इत्यादि देश की सम्प्रति कनिष्टदशा देख के किस का मन दुःखित हो के कौन देशोन्नति के लिये सच्चा भाग लेता है? और कौन दुःख निन्दा सहके देश की योग्य सेवा करता है? हां "सुखमस्तीतिवक्तव्यम्" इस वाक्य के जपने वालो का परिचय जब प्रसंग आता है तब दिखाई देता है, तात्पर्य्य यह कि स्वकीय सत अर्थ सधता न हो परकीय सहस्रावधि का साधन करने को लज्जा नही लाते। ऐसा बहुत भाग आडंबरी उन्नति करने वालों का दृष्टि पड़ता है इसलिये देश का भद्र होता नही जब तक ऐसे लोग अधिक देश निवास करते हैं तब तक इस देश निवासियों से अपना सुधार नहीं हो सकता ऐसे स्वार्थ पोषक स्वार्थी लोगों के हाथ में जैसे हमारे देश के हैं उन्नति की लगाम आवे तो प्रमाद से दुर्दशा परिखात में डाले विना रहते नहीं हैं जिस से उपस्थित लोग पिस जावें इस में लवमात्र भी संशय नहीं है। आज देखें तो अपनी स्थिति संदिग्ध हो रही है सब कोई अपने खान पान और ज्ञान के तान में मस्तान बन के गलतान हो मज़े में अज्ञान से सुलतान समान निदान बन रहे हैं किस को देश की लगी है। अपने अन्योऽन्य एक स्वदेशी भाई की तरफ मीठी नज़र देखते नही हैं, साधारण कार्य्य में भी परस्पर सहायता मेल नहीं है। प्रथम देशी राजाओं की ओर देखोगे तो येन केन प्रकार से राज्यकोष भरके ऐश आराम, नाच, रङ्ग, तमाशे अफीम कसुंबा तथा मद्यादि मादक व्यसन में चकचूर होके राज्यनीति रूपी समुद्र को एक गढ़े में समावेश करने के जैसा मान के अपने को कृतार्थ समझते हैं। धनाढ्य तथा व्यापारी की ओर नज़र करोगे तो अपने देशियों को ठग के मूसने में अपना श्रेय समझते हैं, नहीं कि सत्य रीत्यनुसार देश परदेश जाके स्वकीय नौका द्वारा माल असबाब विपर्यय करके लाभ मिलाने में। कृषिकार की ओर देखोगे तो महान् शोक हुये विना रहेगा नही, जितनी यह क़ौम उत्तम उतनी ही अविद्वान्, मलिन, वहमी, अमित व्यय से भोले भाविक और उदार

भी हैं परन्तु अविवेकी देखने में आते हैं । अब एक साधारण अधिकारी के ऊपर दृष्टि डालोगे तो बहुतों में अधिकार की मदान्धता इतनी अधिक व्याप गई है कि इन के अज्ञान और नम्र आकाङ्क्षित लोगों को सुविचार अपने अधिकार में रहा हुआ नहीं देते इतना ही नहीपरन्तु अपने महत्त्व सूचित नमस्कार सलाम इत्यादि प्रणाम लेने में लाज आती हो ऐसा समझते हैं भिक्षुक जाति की तरफ आलोचना करें तो उन्नति की स्वप्न में भी आशा रखनी नहीं, और दाता प्रतिग्रहीता ऐसे ही अयोग्य रहें तो देश की धर्म्म कर्म्मादि अव्यवस्था अधिक तर देखोगे ।

पाठक गण ! भिक्षुकों की लीला कहां तक लिखें शुभाशुभ कार्य्य में, पर देश में, पुण्य तीर्थों में, ग्रहण महोदय में, वैधृत व्यतिपात में, संक्रान्ति योग में, जन्म मरण में, मुहूर्त्त, अपशकुन में, पतित पावन तथा पल्लीपतन विधि में, कोई देव के निमित्त कर कन्यादान देने के और साधु के बहाने जहां पर देखोगे वहां पर कोई तीर्थ यात्रा के, कोई भीख २ और भीख के सिवाय समग्र देश में और कुछ देखने में आता ही नहीं जिन को मूर्ख दाता की तरफ से उत्साह मिलने से प्रति दिन यह प्रवाह बढ़ता ही जाता है उस में थोड़ी उत्पादकों की सम्पत्ति बह जाय, इतना होते भी (इंगलेन्ड में कोई मनुष्य भीख मांगता नहीं है, यदि मांगे तो पुलिस कानून के अनुसार दण्ड देती है, गरीबों और अनाथों के लिये पुवरहौस बने हैं ।) इंगलेन्ड के सदृश कायदा रूपी सेतुबन्धन में आता नहीं है, यह बड़े शोक की बात है, हमारी न्यायशीला गवर्नमेंट शान्ति तथा धर्मभङ्ग का निमित्त देखा के हस्ताक्षेप नहीं करती उस तरफ लक्ष नही देती है, आज देखोगे तो योग्य को उत्साह देने को कानों पर हाथ दिया जाता है उत्पादकों पर बोझा रूप अनुत्पादक भिक्षुकों को उत्साह मिलने से देश की क्षति (हानि) करने में मानो सहाय जैसा है, जिस से नाना प्रकार के पाखण्ड बढ़ गये हैं, चोरी चपाटी बढ़ी, कहां तक लिखें किसी २ समय पर प्राणघात भी होता है, सारी दुनियां में देखोगे तो अनेक तरह के भिक्षुक जितने यहां पर हैं उतने और कहीं दृष्टि गोचर नहीं होंगे और हम को दिखाना चाहिये ऐसे मिथ्यास्तुतिप्रिय फूल नोने वाले दाता भी नहीं हैं जहां आसमान फटा है वह कैसे जुड़ सका है, ऐसी सब बातों में अस्त, व्यस्त, हुई देशस्थिति देख कौन से देशहितैषी को अश्रु पात न होगा ? कहां तक रोया करें कोई कहता है कि कलिकाल की महि-

ना है; कोई कहता है कि अपने ग्रह निर्बल है, कोई कहता है कि नसीब में जैसा होगा वैसा होगा, और कई एक ऐसे भी कि अपने को ज्ञानी समझ कर कहते हैं कि यह तो ईश्वर इच्छा इस में मनुष्य का कुछ नहीं चलता। यह सब मेरी अल्पमति अनुसार कापुरुषों (कायर) के टल्ले नवीसी तथा उत्पादक लोगों की अतिन्यूनता के लक्षण हैं इसी तरह हम अपने ही हाथ से देश की ऐसी स्थिति लाने वाले हैं, प्रिय मित्रो! ज़रूर विचार करो कि यूरूपियनों अपनी वरिष्ठ स्थिति अपने पुरुषार्थ से ही की है। कुछ भी नहीं हम को केवल पुरुषार्थ की न्यूनता के फल मिले हैं। भाइयो! शीघ्र करो कोई भी कार्य कोई काल में अपने करे विना होने वाला नहीं है तो समझ बूझके सवि-स्तर आरम्भ करो "को हि जानाति कस्याद्य मृत्युकालो भविष्यति" अर्थात् कौन जाने कब मृत्यु काल आवेगा ऐसा विचार महान् कार्य्यों का आरम्भ करके कीर्त्ति स्तम्भ गाड़ो हरी हरी करने को छोड़ कर मिले हुए साहित्य का उपयोग करके जाग्रत हो।

महाशयो! आप अपना और अपने देश का कल्याण करने की जिज्ञासा रखते हो तो नीचे लिखे षट् शत्रुओं को मारो ॥

षड्दोषाः पुरुषेणेह हातव्या शुभमिच्छिता।
निन्द्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रिता ॥

अर्थ-(१) अत्यन्त निद्रा तथा अत्यन्त अनिद्रा जो रोग का मूल है उस को दूर करो, (२) तन्द्रा जो दुर्व्यसन तथा आलस्यादि अदृढ़ता से सारी रात्रि में अफ़ीमचियों के सदृश पड़े रहना और शुभकार्य का आरम्भित न करना (३) भय जो दूसरों के तेज में आजा के स्वदेशिक, सामाजिक, और आत्मिक उन्नति करने कराने में डर जाना (४) क्रोध जो परोत्कर्ष सहन न होने से जो ऊर्मि उत्पन्न हो उस को कहते हैं उस का विवेक ऐसा करना कि यदि क्रोध करने से धर्म का तथा सत्य का रक्षण अपने अधिकार में रहीहुई शक्ति से होता हो तो वह करने में शान्त प्रकृति छोड़ क्रोध करना अक्रोध गिना जाता है परन्तु अधर्मयुक्त क्रोध नहीं करना (५) आलस्य जो इन्द्रिय अन्तःकरण और आत्मा के तत्तज्जन्य सुविषयों का पुरुषार्थ छोड़ निवृत्तिमान उस के धर्म की शक्ति को रोक रखना, (६) दीर्घसूत्रिता अर्थात् देशकाल और स्थिति का विचार नहीं करके संसार तथा परमार्थ के शारीरिक, मान-सिक और आत्मिक सम्बन्ध के बड़े छोटे कार्य जो जो समय में करने से

लाभ प्राप्त होते हैं उस को उस २ समय में न करके कालोत्क्रमण करना। इन छः कारणों को जो मनुष्य दूर करते हैं वे सर्व प्रकार के सुख को सदा सर्वदा देखेंगे इस नीति प्रमाण का अर्थापत्ति न्याय से फलितार्थ यह निकलता है कि अयोग्य, निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता करने वाला मनुष्य तन, मन, धन, और ज्ञान, विभूति रहित हो, दुःख सागर में सदा डूबा करता है। मित्रो! अपने विविध दुःख दावानल में प्रज्वलित रहते हैं उस के ऐसे ही कारणों से देश के प्रमाण दरिद्र लाने में स्थिर वास किया है उस को सर्व भद्र मनुष्यों ने दूर करके सद्गुणी होना यही अपनी उन्नति के मुख्य कारणों में से एक कारण है। हे सज्जनो! तुम लोग क्यों आलसी बैल के सदृश संकोच से काल को व्यतीत करते हो? अरे! आन्तरिक देश की हितैषिता किसी को नहीं है। कहां गया अमोघ वीर्य? गये कला कौशल्य कहां है रूप बल बुद्धि का अभिमान और छटा? कहां है तुम्हारी धर्मनीति हां! कोई पांच हजार वर्ष से अगाड़ी का योगी पाताल से वा आकाश से वा कोई गुफा में से अपनी तथा अपने देश की अनेकानेक हीनावस्था देखें तो शोक के उद्गार से आश्चर्यसागर में डूबे इतना ही नहीं किन्तु यह पूर्व की भारतभूमि है इतना जानना उस को बड़ा कठिन हो जाय अर्थात् वैदिक काल से सर्व विपरीत देखेगा॥

वाचकगण! अवर्णीय अधोगति अपनी हुई है उस के लिये लोकोक्ति ऐसी है कि यह तो कलियुग की महिमा वह बात आज तो हम लोगों की होती है कारण कि कलि शब्द का अर्थ कल होता है और युग शब्द का अर्थ संयोग होता है उभय शब्दार्थ मिल के जो देश काल में क्लेश का मिलना उस की कलियुग संज्ञा है देखो तो आज अपने देश में कलियुग सर्वत्रैवदृश्यमान है उस में लवमात्र भी संशय नहीं परन्तु विद्या व्यतिरिक्त लोग अन्ध परम्परा ऐसा मान कर बैठे हैं कि कलिकाल सर्व मनुष्यों में प्रवेश करके धर्म कर्मादि करने में संनिषेध कर रहा है बुद्धिमानों को विचारना चाहिये कि काल कोई स्थूल वस्तु नहीं है कि किसी में प्रवेश करके अधर्म में उसे चलावें, कलि नाम तो मात्र अविद्या युक्त काल का है ऐसा उपनिषदों में कहा है॥

कलिः शयानोभवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेताभवति कृते सम्पद्यते चरन्॥

अर्थात् जो काल में तथा देश में मनुष्य के तीन भाग अविद्या रूपी सोया हो उस को उस समय कलिकाल कहते हैं अर्द्धभाग जागृत हो उस को द्वापर तीन भाग जागृत हो उस को त्रेता और कार्य सम्पादन करे उस को सत्ययुग कहें तो भूल गिनी न जाय, भारतखण्ड में तो कलियुग है ॥

अहो आर्यगण ! अविद्यारूपी काल की जाल में से छूट स्वतन्त्रता से काली मोह की निन्द्रा से जागो, उठो और कर्तव्यकर्म करने को समय व्यतीत मत करो अब आप लोगों का मन घबड़ा गया होगा इसलिये एक उपनिषद् का प्रासंगिक प्रमाण देके इस विषय को समाप्त करता हूं ।

"उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्नि बोधत" पुनः-पुनः कहता हूं कि जागो उठो उत्तम वस्तु को प्राप्त हो के सुधर दूसरे के सुधारने का बोध करो—किमधिकम् सुविज्ञेषु ॥

सूचना

महाशयो ! फरवरी का भारतोद्धारक का ८ वां अङ्क १५ दिवस से तैयार होगया था परन्तु डाकविभाग से भेजने का प्रबन्ध न होने से और उत्सवों में सम्मिलित होने के पत्र आने से ९, १० अङ्क भी तैयार करके आप की सेवा में भेजे जाते हैं अब मई में दोनों अङ्क अर्थात् ११, १२ साथ भेजे जायंगे । अब जिन २ महाशयों ने मूल्य नहीं भेजा है कृपा कर शीघ्र भेज के इस धर्म के कार्य में सहायता देवें ।

२—श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वती जी का जीवनचरित्र जो उर्दू में स्वर्गवासी धर्मवीर पं० लेखराम जी कृत मूल्य ४ां) के अनुवाद का भारतोद्धारक के अङ्क ५, ६, ७ में विज्ञापन दिया था उस के अनुसार २०० ग्राहक अभी तक नहीं हुये परन्तु थोड़े ग्राहक हुये हैं हमारा विचार भारतोद्धारक के दूसरे वर्ष से उसी में हर मास में ३ फार्म अर्थात् १२ पृष्ठ अधिक जीवनचरित्र देने का है कागज़ २० पौंड मोटे में छपेगा और भारतोद्धारक कुल ६॥ फार्म का होजायगा और उस का वार्षिक मूल्य २।=) डाकव्यय सहित रहेगा । भारतोद्धारक के ग्राहक महाशय स्वीकारपत्र शीघ्र भेजें जो महाशय लेना न चाहेंगे तो उन्हें केवल भारतोद्धार १) का भेजा जायगा जो महाशय स्वामी जी के जीवनच-

रित्र का अलग ३ फार्म का हर मास में लेना चाहें उन्हें १।=) अलग देना पड़ेगा कृपा करके हमारे ग्राहक महाशय शीघ्र अपना लेने न लेने का पत्र भेजें मैंने सुना है कि आर्यप्रतिनिधिसभा पञ्जाब ने नागरी में अनुवाद करना आरम्भ कर दिया है यह उत्तम है परन्तु लाखों आर्य्यों में दो हज़ार या चार हज़ार प्रति से क्या होगा हम भी प्रचार का प्रयत्न करते हैं कि जिस से स्वामी जी के पवित्र जीवन को लाखों मनुष्य जान के वेदोक्तसिद्धान्त का ग्रहण करें इस में कोई विरोध की बात नहीं किन्तु आनन्द की बात है इतना है कि हम हर मास में जीवनचरित्र आप लोगों की सेवा में भेजेंगे और यथा तथा (जैसा उर्दू में है वैसा ही) अनुवाद करेंगे। सम्पादक

विद्याविनोद समाचार—वार्षिक मू० ३॥) डाकव्यय सहित

यह समाचार पत्र हर सप्ताह शुद्ध नागरी भाषा में उत्तम कागज़ पर छपता है राजनीति, साहित्य, वाणिज्य तथा समाचारादि विविध विषय विभूषित है लखनऊ से निकलता है ऐसे नागरी के पत्र की पश्चिमोत्तर देश में बड़ी आवश्यकता थी सो पूर्ण हुई। कृपा करके नमूने की १ प्रति मंगाकर ग्राहक बनें इस में बड़े ग्रेजुएट तथा अण्डर ग्रेजुएट के लेख छपते हैं।

पता कृष्णबलदेव वर्मा एडिटर विद्याविनोद समाचार

केशरबाग़ लखनऊ के नाम भेजें

आर्यव्यापारीमण्डली बुकसेलर, पब्लीशर एण्ड कमीशन एजन्ट—सदर मेरठ (मनेजर ला० शंकरलाल गुप्त)

अपने विदेशी आर्य महाशयों को यहां की वस्तु तथा अन्य योग्य चीज़ें बाज़ार से ख़रीद के भेज सकते हैं। यहां की बनी बड़ी ही उत्तम दरज़ी के काटने की कैंची मेरठ का खुशबूदार साबुन, सुजनी कलाबत्तू की टोपियां और क्रिकेट में खेलने के गेंद (बोल) प्रेक्टिस बाल (रोज़मर्रह के) ६) दरजन मेच बाल ९) दरजन भाव है।

ओ३म्—टोपी में लगने के योग्य बड़ी खूबसूरत बने हैं। गिलट के।=) पीतल के।)

श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वती जी महाराज की टीन की बनी अमेरिका की तसवीर जो मुद्दतों से नहीं बिकती थी थोड़ी हमारे पास आगई हैं मू० ॥)

पूजा की योग्य आसन की तसवीर ।॥) लेखों की सादी -) रंगीन -)॥ पं० गुरुदत्त जी एम० ए० की सादी -) रंगीन -)॥

फोटो बड़े (केबीनेट साईज) पं० लेखराम जी के जीवित अवस्था का ॥) अर्थी (शव) का ॥) पं० गुरुदत्त जी का ॥) श्रीस्वामी दयानन्द जी महाराज का ॥) छोटे कार्ड साईज मू० ।)

पूना के देशीकारीगरों के उत्तम २ चित्र १६+२० के इञ्च मू० ।)॥ कांग्रेस के लीडरों के ५ तरह के चित्र, (२) श्रीछत्रपति शिवा जी महाराजा (३) राजा गोपीचन्द (४) नल दमयन्ती (५) हरिश्चन्द्र और तारामती काशी के आगमन का दृश्य (६) रामलालन (७) रामवनवास (८) भरतमिट (९) शकुन्तला और दुष्यन्त उपवन की (१०) मेनका के आश्रम की आदि अनेक तरह के चित्र हैं बड़े १०+१५ इञ्च के =)॥ उस से छोटे ८+१० इञ्च के -)।

स्त्रीशिक्षा के पुस्तक-स्त्रीधर्मनीति १) सीताचरित्रमावल १ भाग ।॥) उर्दू चारों भाग १।॥) बुद्धिमती ।-) अबलाविनय ≡)॥ अवलाधर्मचन्द्रोदय ≡) पाकरत्नाकर ।≡) कुलदेवी -)॥ नारीसुदशाप्रवर्तक १ भाग =) दूसरा ≡)॥ तीसरा ।≡) चौथा ।=) भारत की शूरवीर रानी का जीवनचरित्र ॥) जया ॥) मधुमालती ।॥) स्वर्णलता ।॥) इला ।≡) प्रमिला ।≡) नारीधर्म)॥ कन्यासुधार -)

भजन की पुस्तक-आर्यसङ्गीतपुष्पावली ॥) उर्दू ॥) सभाप्रसङ्ग ।)॥ उर्दू ≡)॥ प्रेमोदयभजनावली ≡) भजनामृतसरोवर =) सङ्गीतरत्नाकर =) सङ्गीतसुधासागर =) भजनेन्दु -) भजनपचीसी)॥ भजनविवेक)॥

हमारे यहां श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराजकृत पं० तुलसीराम स्वामीजी कृत पं० भीमसेन जी मुं० चीम्मनलाल श्री पं० कृपारामजी वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड आदि के पुस्तकें हैं तथा श्री स्वामी दयानन्द महाराज का उर्दू जीवनचरित्र स्वर्गवासी पं० लेखराम जी कृत ३॥) की भी है ॥

श्री १०८ स्वामी दयानन्द जी महाराज कृत पुस्तकें सत्यार्थप्रकाश मू० २) जो कई महीनों से छपता था अब नम्बई टाईप में उत्तम कागज पर छपके तैयार हो गया और हमारे पास भी आगया है मोटे कागज का मूल्य २॥) है ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका १॥) संस्कार विधि १।) आर्य नियम ।) पञ्चमहायज्ञविधि ≡)॥ संस्कृतवाक्यप्रबोध ≡) व्यवहारभानु ≡) आर्य्योद्देश्यरत्नमाला -) गोकरुणानिधि -) सत्यधर्मविचार (मेलाचांदापुर) -) शास्त्रार्थ काशी -) वेदान्तध्वान्तनिवारण ॥) हवनमन्त्र)॥ स्वीकार पत्र)॥ आर्यसमाज के नियम उपनियम)। स्वामीजी के पूना के ८ व्याख्यान ≡)

ओ३म् तत्सत् परमात्मने नमः

भारतोद्धारक ॥

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित "वैदिकपुस्तक-प्रचारकफ़ण्ड" का प्रकाशित मासिक पत्र—सदर मेरठ

१ वर्ष } आर्य्य संवत्सर १९७२९४८९९९ { सं० ५।६।७

(१) वार्षिक मूल्य अग्रिम सर्वसाधारण से डाकव्यय सहित १) धनाढ्य रईसों से २) राजा महाराजाओं से ५) श्रीमती गवर्नमेंट के सन्मानार्थ १०) पलटन के सिपाही, स्कूल के विद्यार्थी जो एक पाकट में १० प्रति एक साथ मंगावेंगे उन से ॥) मेरठ वालों से ॥।-) लिया जायगा पश्चात् दूना लिया जायगा। यह मूल्य ता० ३१ जनवरी ९८ ई० तक अग्रिम गिना जायगा॥ फुटकर अङ्क दो आना

(२) जो महाशय "भारतोद्धारक" पत्र के सहायतार्थ रु० २५) दान देंगे उन के नाम धन्यवाद पूर्वक टाईटिल पेज के प्रथम पृष्ठ पर ३ मास तक ५०) छ मास तक रु० १००) एक वर्ष तक छपा करेंगे। देखें कौन महाशय इस धर्म्मकार्य्य में सहायता देता है ॥

(३) विषय—(१) वै० पु० प्र० फण्ड का आय व्यय (२) आर्य्य हिन्दू और नमस्ते की तहक़ीकात (३) भारतोद्धारक को एक बड़ी सहायता (४) आर्यो! जागृत हो (५) समीक्षाकर (६) भास्करप्रकाश ॥

१५ । १२ । ९७

पं० तुलसीराम स्वामी सम्पादक "वेदप्रकाश" के प्रबन्ध से उन के स्वामियन्त्रालय मेरठ में छपा

इसे अवश्य पढ़िये ॥

महाशयो ! अब के आपकी सेवा में ५-६-७ तीन भेजे जाते ८ अङ्क फरवरी में निकलेगा हम अपनी प्रतिज्ञा को पूरा कर चुके अर्थात् दिसम्बर तक हमने छः के बदले ७ अङ्क दिये हैं अब कृपा करके शीघ्र मूल्य भेज धर्म के कार्य की सहायता दीजिये बहुत ग्राहकों के लिखने से हमने पत्र का मूल्य ता० ३१ जनवरी तक १) पश्चात् दूना होजायगा । इस समय समस्या तथा पहेली के उत्तर अभी तक हमारे पास नहीं आये ता० ३१ दिसम्बर ०७ तक नियमानुसार भेज के पारितोषिक के भागी बनें—सम्पादक—

आनन्ददायक संवाद ! आनन्ददायक संवाद ! !

श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज का जीवनचरित्र धर्मवीर पं० लेखराम जी कृत जो उर्दू का मूल्य ३॥) जो पंजाब प्रतिनिधि से छपा है उसका नागरी अनुवाद कुछ आर्यमहाशयों के कथन से मासिक पत्र द्वारा ३०० ग्राहक होने पर प्रकट होगा उस का अनुवाद आरम्भ होगया है और योग्य पुरुषों ने अनुवाद देखकर शुद्ध करने को स्वीकार किया है यह मासिक ४० पृष्ठ ५ फार्म रायल साईज़ में चिकने कागज़ पर हरमासको निकलेगा वार्षिक ३) डाक व्यय सहित रक्खा है परन्तु मार्च ०८ से ४) होजायगा हमारे पास थोड़े ग्राहक भी आगये हैं शीघ्र ग्राहक होजाइये कि फरवरी में आप के पास छप के आजावे ।

नोट—जिन महाशयोंने भारतोद्धारक शीघ्र और अपने समय से पूर्व प्रकाशित होते देखा है उन्हें इस में संशय न होना चाहिये कि जीवनचरित्र समय पर न मिलेगा यदि ग्राहकों ने पूरी सहायता दी तो हम एक मास में ८० पृष्ठ छाप के भेजेंगे ॥

ब्रह्मानन्द सरस्वती प्रबन्धकर्ता वैदिक पुस्तक प्रचारकफण्ड सदर मेरठ

पृष्ठ २० से आगे औषध विज्ञापन ॥

(१०) हैजे के लिये प्रशंसनीय अमृतजीवनी बटी एक सौ बटी का मूल्य।)

(११) एक दूसरी भारतोद्धारक की सहायता पं० छुट्टनलाल स्वामी (पं० तुलसीराम जी के भ्राता) परीक्षितगढ़ (मेरठ) निवासी ने अपना परीक्षित सुरमे की पुड़िया भेजी है जिस का मू० एक तोले का ।।) है इस का भी आधा मूल्य पत्र के सहायतार्थ जायगा, इस सुरमे से आखों के सर्व रोग आराम होते हैं तथा जिस बालक को पढ़ने से आखों की दृष्टि कम हो गई हो उसे बड़ा लाभदायक है यह सुरमा दिन में एक सलाई आखों में लगने से विकार किसी प्रकार का नहीं होने देता। सबों का पेकिंग वी०पी० डाकव्यय आदि अलग पड़ेगा

मिलने का ठिकाना—मैनेजर भारतोद्धारक सदर मेरठ

ओ३म्

भारतोद्धारक ॥

वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड कार्यालय सदर मेरठ का आय—

जनवरी सन् १८९५ का आय

१) बा० हीरालाल लखनऊ १२०
१) सेठ एदलजी पारसी „ १२१
१) बा० कालीकाप्रसाद „ १२२
१) बा० दुर्गाप्रसाद „ १२३
१) मौ० मोहुम अली „ १२४
१) देवीदास कबीरपन्थी „ १२५
१) बा० छज्जूमल „ १२६
१) बा० मनराखनलाल „ १२७
४॥।=) गोलक में „
१२॥=) डिसंबर ९४ के अन्त की बाकी

२०।) सर्वयोग

फरवरी सन् १८९५ का आय

२) मुं० कालिकाप्रसादजी लखनऊ १२८
१) पं० त्रिभुवननाथ „ १२९
१) मुं० जगतनारायण „ १३०
१) बा० मुन्शीलाल जी बहराइच १३१
१।।) गोलक में

पुस्तक विक्रय प्रति

१) ईसाईमतखण्डन १ ला भाग ६४
१०) वैदिकसन्ध्याविधि ३२०
१) रामायण का आल्हा ६४
=) सुशीलादेवी १२८
१) कलियुगलीला काशीमाहात्म्य १२८
१) पुराण किसने बनाये १२८
२०।) जनवरी ९५ के अन्त की बाकी

४०।।) सर्वयोग

मार्च सन् ९५ का आय

२॥=) गोलक में
१२-) फरवरी ९५ के अन्त की बाकी
१४॥≡) सर्व योग

अप्रैल सन् १८९५ का आय

१) पं० बलदेवप्रसाददीक्षितशाहाबाद१३१
१०) गुप्तदान मारफत पं० रामविलास शर्मा मं० आ०स० शाहाबाद ज़ि० हरदोई १३२
१) गुप्त दान मारफत पं० कालीचरण शर्मा प्रधान आ०स० शाहाबाद १३४
२) पं० हरचन्द्सिंहउपप्र०आ०स „ १३५
१) मु० कल्याण राय जी „ १३६
१) पं० शिवनारायण जी „ १३७
१) पं० बैजनाथ जी दीक्षित „ १३८
॥≡) पं० मैकूलाल जी „ १३९
॥) पं० रामविलास जी मन्त्री „ १४०
१) पं० राधाशरण शर्मा पुस्तकाध्यक्ष आर्यसमाज „ १४१
५) श्रीकृष्ण जी वाचसेकर मुलतान छावनी १४२
१) पं० पुत्तीलाल शर्मा तेराजाकट. १४३
१) पं० अनन्तराम जी „ १४४
४) पं० उपदेशानन्दजी चन्दाकरके तेराजाकट में दिये १४५
१) पं०ज्वालाप्रसाद तेराजाकट १४६
१) पं० महाराजसिंहप्रधान आ०स० १४७

॥) शिवशंकरलाल „ १४८
१) लाला रघुबरदयाल „ १४९
१) लाला चक्रपाणि मन्त्री „ १५०
पुस्तक विक्रय प्रति
४) वैदिक सन्ध्याविधि १२८
४) नीतिशिक्षावली २ बार की २५६
१) ईसाईमतखण्डन १ भाग ६४
२) „ २ भाग १२८
२) सुशीलादेवी १२८
२) रामायण का आल्हा १२८
४॥≡) मार्च ९५ के अन्त की बाकी

५०=) सर्व योग
मई सन् ९५ का आय
।) पं० लालमणि जी सिकन्दरपुर
जि० फर्रुखाबाद १५१
।) पं० श्यामसुन्दर जी „ „ १५२
।) पं० केदारनाथ, दीनदयालु „ „ १५३
॥) पं० बांकेलाल जी „ „ १५४
।) प० जगतनारायण, जी „ „ १५५
॥) पं० सुन्दरलाल जी „ „ १५६
।) पं० सेवकराम जी तथा १५७
।) चौबे ज्वालाप्रसाद जी तथा १५८
६।≡) सुबेदार मेजर जाट पल्टन नं० ६
कलकत्ता अलीपुर में पं० माधोप्रसाद तेवारी ने चन्दा जमा करके भेजा १५९
३॥) पं० माधोप्रसाद तेवारी
दारजिलींग से १६०
१) गोसाक में लखनऊ महाबीर मेले में

३३=) अप्रैल के अन्त की बाकी
४६॥-) सर्व योग
जून सन् ९५ का आय
१) पं० कालीचरण जी प्रधान
आ०स० शाहाबाद जि० हरदोई १६१
१, मु० वसन्तराय „ „ १६२
॥) पं० जगन्नाथ शर्मा पुवायां १६३
१) बा० मथुराप्रसाद मं० आ० मैनपुरी १६४
६॥।=) पुस्तक विक्रय-
४१॥-) मई के अन्त की बाकी
५१॥।≡) सर्व योग
जुलाई सन् ९५ का आय
२) आर्यसमाज नं० ८ बङ्गाल केवलरी
मारफत मन्त्री बलदेवसिंह वर्म्मा
इलाहाबाद १६५
९)॥ पुस्तक विक्रय जूलाई में
५१॥।≡) जून ९५ के अन्त की बाकी
६२॥।≡)॥ सर्व योग
अगस्त सन् ९५ का आय
२) बा० त्रिभुवनलाल कायस्थ
नगर उटारी जि० पलामऊं १६६
।) चौधरी शेरसिंह बिजनौर १६७
१) बा० नन्दलाल ओवरसीयर „ १६८
१) बलवन्तसिंह विद्यार्थी „ १६९
१) बा० होतीलाल जी „ १७०
१) मु० श्रीराम जी „ १७१
१) मुं० मूलचन्द जी „ १७२
॥) बा० हरललासिंह „ १७३
॥) मुं० वासुदेवप्रसाद „ १७४

१) मुं० मुन्नालाल जी	,,	१७५
१) सोती द्वारकाप्रसाद	,,	१७६
॥) प्रतापसिंह विद्यार्थी	,,	१७७
॥) नियादर सिंह विद्यार्थी	,,	१७८
॥) मुं० भूपसिंह	,,	१७९
॥) जालिम सिंह विद्यार्थी	,,	१८०
।) शम्भुनाथ विद्यार्थी	,,	१८१
।) बा० छेदालाल जी	,,	१८२
।) पं० गंगाप्रसाद	,,	१८३
।) मास्टर ब्रजलाल	,,	१८४
॥) मुं० छज्जूसिंह	,,	१८५
॥) चौ० दिवानसिंह	,,	१८६
।) मुं० ज्वालासिंह	,,	१८७
।) मुं० भगवान्दास	,,	१८८
।) ईश्वरीप्रसादविद्यार्थी	,,	१८९
॥) चौ० मेहरसिंह	,,	१९०
१) धन्नो वेश्या	,,	१९१
।) नानकप्र० औरलीलापतिविद्या०		१९२
।) जीराजसिंह विद्यार्थी और कालेमाली		१९३
२) मुं० श्यामलाल जीउपप्रधान		१९४
१) शेखसादिकहुसेन	,,	१९५
१) बा० प्रतापचन्द्र वकील	,,	१९६
१) सोती शिवशङ्कर जी	,,	१९७
१) पं० द्वारिकाप्रसाद	,,	१९८
१) पं० शिवबालकराम	,,	१९९
॥) मास्टर जियालाल	,,	२००
॥) बा० गौरीशंकर जी	,,	२०१
॥) चौधरी सरूपसिंह	,,	२०२
।) पं० मुकुन्दराम	,,	२०३
।) बा० असरफीलाल	,,	२०४
।) मुं० गुलाबसिंह	,,	२०५
≡) पं० बलदेवप्रसाद		२०६

२१≡) पुस्तकविक्रय अगस्त मास का
४३॥-) जुलाई ९५ के अन्त की बाकी

९४॥≡) सर्वयोग

सितम्बर सन् ९५ का आय

१५) पुस्तक विक्रय सितम्बर की
८१॥-)॥ अगस्त के अन्त की बाकी
९६॥-)॥ सर्वयोग

अक्टूबर सन् ९५ का आय

१) पं० श्यामसुन्दर लाल जी सिकन्दरपुर जि० फर्रुखाबाद		२०७

१४) पुस्तक विक्रय अक्टूबर में
९६॥≡)॥ सितम्बर के अन्त की बाकी
१११॥-)॥ सर्वयोग

नवम्बर सन् ९५ का आय

२६) पुस्तक विक्रय नवम्बर की
१११॥-)॥ अक्टूबर के अन्त की बाकी
१३७॥-)॥ सर्वयोग

दिसम्बर सन् १८९५ का आय

२) बा० ज्वालाप्रसादजीसदरमेरठ		२०८
१) बा० द्वारकाप्रसादजी	,,	२०९
१) बा० मुरलीधर जी	,,	२१०
१) ला० मूलचन्द जी	,,	२११
१) लालकुरती आर्यसमाज	,,	२१२
॥) लाला मुन्नालाल	,,	२१३
॥) पं० रामस्वरूपविद्यार्थी	,,	२१४
॥) ला० मंगलसेन जी	,,	२१५

।।) ला० विश्वम्भरसहायमन्त्री,, २१६
।।) ला० मूलचन्द जी ,, २१७
।) ला० यमुनादास जी ,, २१८
।) ला० खुशीराम जी ,, २१९

* २२० का नम्बर रसीद में नहीं लिखा है क्लर्क ने २१९ से २२१ का लिख दिया २२० नम्बर की रसीद ही नहीं बनी है ।।

।) ला० अयोध्याप्रसाद जी ,, *२२१
।) ला० हरनामदास ,, २२२
।) ला० मटरूमल ,, २२३
।) ला० बाबूलाल जी ,, २२४
।) ला० रामजीमल ,, २२५
।) ला० केदारनाथ ,, २२६
।) ला० रुमनलाल जी ,, २२७
।) ला० जगन्नाथ ,, २२८
।) बा० रामचन्द्र जी ,, २२९
१८।।=)। पुस्तक विक्रय दिसम्बर का
१३७।।।-)।।। नवम्बर के अन्त कीबाकी

१६७।।) सर्वयोग

जनवरी सन् १८९६ का आय

२०।=) पं० माधोप्रसाद तिवारी के मारफत चन्दा अलीपुर में हुआ २३०
१४।≡)।। पुस्तकविक्रय जनवरी की
१६६।।=) दिसम्बरसन् ९५ अन्तकीबाकी
२०१।≡)।। सर्व योग

फरवरी ९६-का आय

२७।।=)। पुस्तक विक्रय फरवरी में
१८१।≡)।। जनवरी के अन्त की बाकी
२०९-)।।। सर्वयोग

मार्च सन् १८९६ का आय

१) कुंवर श्यामलाल सिंह सिहोरमध्य प्रदेश २३१
।।) लालताप्रसाद जी तेराजाकट २३२
१७।≡)। पुस्तक विक्रय मार्च में
२०९)। फरवरी ९६ के अन्त की बाकी

२२७।।।≡)।। सर्वयोग

अप्रेल ९६ का आय

२≡)।। पुस्तक विक्रय अप्रेल में
२२६।।=) मार्च ९६ के अन्त की बाकी
२२८।।।-)।। सर्व योग

मई ९६ से दिसम्बर ९६ तक का आय

५९।≡) पुस्तक विक्रय
२२८।।=) अप्रेल ९६ के अन्त की बाकी

२८८-) सर्व योग

---*---

व्यय ।।

जनवरी सन् ९५ में कुछ नहीं हुआ

फरवरी सन् ९५ का व्यय

१४) पं० रामनारायणजीउपदेशकरक्खे उनका वेतन ता० १५ जनवरी ९५ से ता० २८ फरवरी ९५ तक दिया
१।।) रेल किराया उपदेशक का तथा पुस्तकों का महादेवा के मेले का प्रचार का व्यय
१२) ईसाईमतखंडन २ भाग २००० छपाई कागज का हिन्दीप्रभा प्रेस लखीमपुर को दिया

१≡) डाकव्यय-डिसंबर जन० फरवरी का
१२-) फरवरी ९५ की बाकी

४०।।।) सर्व योग

मार्च सन् ९५ का व्यय

१०) पं० रामनारायण जी उपदेशक को मार्च ९५ का वेतन दिया
४॥≡) मार्च के अन्त में बाकी रहे

१४॥≡) सर्व योग

अप्रेल सन् ९५ का व्यय

१।।।) स्टेसनरी—।-) डेस्क ॥)॥ कांटा -)॥ दावात ।॥-) लालटेन
३) कमीशन अजमेर आर्य्यसमाज के पुस्तकाध्यक्ष को दिया
१।=) पारसल किराया अजमेर, लखीमपुर, बरेली से पुस्तक आये
।॥=) डांकव्यय मार्च अप्रेल मई का
१०) पं० रामनारायण जी उपदेशक का वेतन अप्रेल ९५ का दिया
३३=) अप्रेल ९५ में बाकी रहे

५०=) सर्व योग

मई सन् ९५ व्यय

५) पं० रामनरायण जी को १५ दिवस का वेतन दिया
४१॥-) मई ९५ में बाकी रहे

४६॥-) सर्व योग

जून सन् ९५ व्यय कुछ नहीं हुआ

जूलाई सन् ९५ का व्यय

।)॥ डांकव्यय जून जूलाई का
१-)॥ कमीशन माधोप्रसाद तेवाड़ी दारजिलिंग को दिये पुस्तकों पर
६।।।=)॥ इलमारी लखनऊ से मंगवाई मजदूरी ।-)॥ रेल किराया ॥-)
७=) छपाई ईसाईमतलीला १९८५ की कागज सहित
४३॥-) जूलाई ९५ में बाकी रहे

६१।।।≡)॥ सर्व योग

अगस्त सन् ९५ का व्यय

२१॥-) छपवाई नित्यकर्मविधि प्रथम वार १०५० प्रति की कागज सहित हिन्दीप्रभा प्रेस को दिया
≡) डाकव्यय वी० पी० वापस आया
।।।)। कमीशन फुटकर दिया
८१।।।-)।।। अगस्त ९५ की अन्त में रहे

२४॥=) सर्व योग

सितंबर अक्टूबर नवंबर सन् १८९५ में कुछ व्यय नहीं हुवा

डिसम्बर सन् १८९५ का व्यय

।-) स्टेसनरी २ ताले सन्दूक के लिये
।।।-) डाकव्य वी०पी० वापस आये आदि
१६६।।=) डिसंबर ९५ के अन्त में बाकी

१६७।।) सर्व योग

जनवरी सन् ९६ का व्यय

२०) कागज नित्यकर्म २ वारा ५००० के लिये दिया
१८१।≡)॥ जनवरी सन् ९६ में बाकी रहे

२०१।≡)॥ सर्वयोग

फरवरी सन् ९६ का व्यय

१।।।) कमीशन फुटकारपुस्तकों पर दिया
।-)॥ डाकव्यय
२०९)। फरवरी ९६ में बाकी रहे

२११-)।।। सर्वयोग

मार्च सन् ९६ का व्यय

ॗ)॥ डाकव्यय
१=) कमीशन पुस्तकों पर दिया
२२६॥=) मार्च ९६ में बाकी रहे

२२७॥ॗ)॥ सर्व योग

अप्रैल ९६ का व्यय

ॗ)॥ डाक व्यय
२२८॥=) अप्रैल ९६ में बाकी रहे
२२८॥|-)॥ सर्व योग

मई ९६ से डिसंबर ९६ तक का व्यय

४८॥ॗ) पुस्तकों की छपवाई आर्यभास्कर प्रेस को कागज सहित पं० भगवानदीन जी के मारफत दिये पुराण किसने बनाये २००० नित्यकर्मविधि ३ बार ४००० पुरुषसूक्त १०००
=) डाक व्यय
१) पारसल किराया
२३८।) डिसंबर ९६ में बाकी रहे

२८८-) सर्व योग

जो दान में पुस्तक आईं उन का हिसाब ॥

सं०	पुस्तक का नाम	मूल्य	आई पुस्तक सं०	मूल्य	बिक्री सं०	मू०	बाकी पुस्तक सं०	मूल्य
१	फुटकर पुस्तकें	„	४८	४=)॥	४८	४=)॥	कुल	विकगईं
२	कर्मवर्णन	)॥	९६	३)	९६	३)	„	
३	प्रिन्सविकटरमी०	-)	२०	१।)	४	।)	१६	१)
४	शिक्षाध्याय	)॥।	५००	२३।≡)	४५	२-)॥।	४५५	२१।-)।
५	हास्यसरङ्ग १ला०	=)	४८	६)	४६	५॥।)	२	।)
६	„ ३भा०	=)	४८	६)	४६	५॥।)	२	।)
७	बहारेनयरङ्ग १भाग	=)	१००	१२॥)	१२	१॥)	८८	११)
८	दूसरा भाग	।)	१३०	३२॥)	१२	३)	११८	२९॥)
	योग			८९॥।-)॥		२६॥)॥		६१।-)।
	वैदिक पु० प्र० फंड की छपी पुस्तकों का योग					३०३।≡)		२१९)॥।
	सर्वयोग					३२९॥।ॗ)।		२८२।-)॥

(वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड से सन् ९६ तक छपी पुस्तकों का विवरण) ॥

सं०	पुस्तक नाम	मूल्य	छपी सं०	मूल्य	बिकी पुस्तक सं०	बिकी पुस्तक मूल्य	धर्मार्थ बटी सं०	धर्मार्थ बटी मूल्य	बाकी रही सं०	बाकी रही मूल्य
१	नीतिशिक्षावली प्रथमबार	)।	२०००	३१।)	१६५०	२५॥।)॥	३५०	५।≡)॥	बिक	गई
२	ईसाई मत खण्डन प्र० भाग	)।	२०००	३१।)	१७००	२६॥-)	३००	४॥≡)	बिक	गई
३	नित्यकर्मविधि प्रथमबार	)।	१९५०	३०।≡)॥	१८२०	२८।≡)	१३०	२)॥	बिक	गई
४	,, द्वितीयबार	)।	५१००	७९।≡)	४९८२	७७॥-)॥	११८	१॥-)॥	बिक	गई
५	वैदिक संध्याविधिः	)॥	२०००	६२॥)	१७५०	५४।≡)	२५०	७॥-)	बिक	गई
६	कलियुग लीला काशी०	)½	२०००	१५॥=)	१७००	१३।)॥	३००	२॥-)॥	बिक	गई
७	पुराण किसने बनाये प्रथमबार	)½	२०००	१५॥=)	१७४०	१३॥-)॥	२६०	२)॥	बिक	गई
८	पुराणकिसनेबनाये द्वितीयबार	)½	२०००	१५॥=)	४६४	३॥=)	५२	।=)॥	१४८४	११॥-)॥
९	श्रीराम जी का दर्शन	)½	२०००	१५॥=)	१५५२	१२=)	३०२	२॥-)॥।	१४६	१=)।
१०	शंकरानन्द के उपदेश	)½	२०००	१५॥=)	५८४	४॥-)	१३४	१)॥।	१२८२	१०)।
११	पुरुष सूक्त	)॥	१०००	३१।)	२२	॥≡)	०	०	९७८	३०॥-)
१२	नित्यकर्मविधि तृतीयबार	)।	४०००	६२॥)	४००	६।)	१०	=)॥	३५९०	५६-)॥
१३	ईसाई मतखण्डन २ भाग	)।	२०००	३१।)	४००	६।)	१९२	३)	१४०८	२२)
१४	नीति शिक्षावली द्वितीयबार	)।	२०००	३१।)	४००	६।)	१६०	२॥)	१४४०	२२॥)
१५	ईसाई मत लीला	)।	२०००	३१।)	४००	६।)	३८	॥-)॥	१५६२	२४।=)॥
१६	सुशीलादेवी	)।	२०००	३१।)	४००	६।)	१०२	१॥-)॥	१४९८	२३।=)॥
१७	रामायण का आल्हा	)।	२०००	३१।)	७०४	११)	१८८	२॥।≡)	११०८	१७।-)
			३८०५०	५६३।)॥		३०३।≡)		४०॥-)		२१९)॥

वैदिक पुस्तकप्रचारकफण्ड मार्च सन् १८९३ से स्थापित हुआ तब से डिसम्बर सन् १८९६ तक कुल आय व्यय हुआ उसका संक्षेप से ब्यवरा

१९१॥≈) रसीद द्वारा दान	२६४।≡) छपवाई कागज आदि
३७।≡) गोलक में	७॥≡)॥ कमीशन पुस्तकों पर दिया
३०३।≡) वै० प्र० फ० की पुस्तकें बिकीं	३॥।≈) पारसल किराया
२६॥)। दान में आई पुस्तक बिकीं	१०॥≡) स्टेशनरी
५५९।)। सर्वयोग कुल आय	१०।)॥ डांक व्यय
२३८।) नकद रुपये बाकी	३९) उपदेशक का वेतन
६३।–)। पुस्तक दान की बाकी रहीं	२३८।) डिसम्बर ९६ के अन्त में बाकी
२१९)॥ वै०पु०प्र० फ० छपी रही	५५९।)। खर्च योग कुल व्यय
५२०॥–)॥ समस्त सम्पत्ति है	४०॥।–) पुस्तक धर्मार्थ बांटी

——*——

धन्यवाद ! धन्यवाद !! धन्यवाद !!!

निम्नलिखित महाशयों ने वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड को द्रव्य से संस्कारों में सहायता दी है उन को अनेकानेक धन्यवाद दिया जाता है इसी तरह से अन्य महाशय भी अपने शुभाशुभ समय में उक्त फण्ड को लक्ष में रख के सहायता देंगे ऐसी आशा है यह द्रव्य नवम्बर दिसम्बर सन् ९७ में आया है रसीद संख्या (२५५) प० शालिग्राम वाजपेयी रायगढ़ सी० पी० एक रुपया पत्नी के अन्त्येष्टि संस्कार में (२५६) लाला रामचन्द्र जी मन्त्री आर्यसमाज लालकुरती एक रुपया गृहप्रवेशसंस्कार में (२५७) डूंगर जी सुनार जटौली जि० मेरठ एक रुपया यज्ञोपवीत संस्कार में (२५८) ला० रामचन्द्र जी उपप्रधान सदर मेरठ ।) पुत्र के चूड़ाकर्म संस्कार मे (२५९) लाला डालचन्द जी कपसाड़ जि० मेरठ एक रुपया पुत्री के विवाह संस्कार में (२६०) ला० कमलनयन जी खिरवा जि० मेरठ ५) भतीजे के विवाह संस्कार मे (२६१) मुं० अवधविहारीलाल दीवान रियासत धमरवा जि० हरदोई एक रुपया ॥

ह० ब्रह्मानन्द सरस्वती प्रबन्धकर्त्ता वैदिकपुस्तक प्र० फण्ड

पत्र की नक़ल ॥

श्रीयुतसम्पादक जी * आर्य्यगजट, नमस्ते—

निम्न लिखित लेख को अपने बहुमूल्य पत्र के किसी कोण में प्रकाशित करके बाधित कीजियेगा जो " † नूरअफ़शां ,, के आक्षेपों में से आर्य्यशब्द के विषय में है ॥

पादरी साहब को " आर्य्य" शब्द के अन्वेषण के प्रथम इस बात का अन्वेषण करना चाहिये जो अधिक आवश्यक है कि सब भाषाओं में मातृभाषा कौन है और प्राचीनता का दावा किसे है। पूर्ण निश्चय है कि इस बात का अन्वेषण करतें ही उत्तम प्रकार देववाणी संस्कृत के अतिरिक्त और किसी भाषा का दावा प्राचीनता व भाषाओं की माता होने का प्रमाणित न होगा। अतः जब संस्कृत ही सब भाषाओं की माता है तो मुख्य कर और जब आर्य्य शब्द उसी भाषा का है तो साधारणतया (-चमूनन) संस्कृत ही में ढूंढना सत्य व ठीक है। और संस्कृत की लुग़ात (कोषों) व धातु को त्याग कर दूसरी (आफ़टरबोर्न डैलेक्टस) भाषाओं में जो मूल के सम्मुख शाखा के तुल्य हैं, आर्य्यशब्द (जिस का अन्वेषण करना है) के धातु व उसके निकलने का स्थान ढूंढना ठीक ऐसा ही है जैसे "§जमैका" सुवर्ण के की खानि पर बैठ कर मोर पंख से सोना निकालने की चिन्ता में शीश मारना। अस्तु—पादरी साहेब तो क्या सम्पूर्ण धरामण्डल पर कोई भी ऐसा देश नहीं जहां के विद्वान् संस्कृत के गौरव व प्राचीनता को उत्तम प्रकार स्वीकार न करते हों और प्रमाण की ओर ध्यान दिलाने पर इस के सब भाषाओं की माता होने में संदेह करें। अतः पादरी साहब को यदि न मालूम हो तो अब जानलें कि आर्य्य शब्द का धातु प्रत्यय और अर्थ निम्न लिखित हैं ॥

आर्य्य—पुंल्लिङ्ग। ऋतुं योग्यः अर्य्यते वा ऋगती ऋहलोएर्यत् इति स्वामिनि—गुरौ सुहृदि-श्रेष्ठकुलोत्पन्ने-पूज्ये-श्रेष्ठे-संगते-नाट्योक्तौ-मान्ये-उदारचरिते-शांतचित्ते-कर्त्तव्यमाचरन्कामसकर्त्तव्यमनाचरन्। तिष्ठति प्राकृताचारे सतु आर्य्य इतिस्मृतः॥

*यह आर्य्यसामाजिक साप्ताहिक पत्र उर्दू में फ़ीरोज़पुर, (पंजाब) से प्रकाशित होता था अबलाहौर से (अनुवादक) -

† नूरअफ़शां—यह ईसाइयों का पत्र लुधियाने से प्रकाशित होता है अ० वा०

§ एक टापू का नाम है—

यदि पादरी साहेब संस्कृत जैसी देववाणी के समझने की शक्ति न रखने के कारण या हठधर्मी की ऐनक नेत्रों पर लगाने से केवल आफ्टर यानें (पीछे से उत्पन्न) भाषाओं ही में उत्तम प्रकार विज्ञता रखते हों तो भी आर्य्य शब्द के अर्थ लग भग उन भाषाओं में भी इस कारण कि वह सब संस्कृत की शाखा हैं बड़े व प्रतिष्ठित के पाये जाते हैं जैसे–

१ आर–फ़, आराय=संवारने वाला

२ अर्ज–फ़ा०=प्रतिष्ठा–पद। ३ अर्ज–अ०=ऊंचा।

४ आर्य्येन=नाम एक कवि का।

यद्यपि आर्य शब्द का शब्द सम्बन्धी अन्वेषण महोत्तम भाषा को त्याग के दूसरी भाषा में करना महामूर्खता है तो भी दो लाभ अवश्य हैं। प्रथम यह कि प्रत्येक भाषा में आर्यशब्द का लग भग एक अर्थ होने से संस्कृत का भाषाओं की माता होना सिद्ध हो सकता है द्वितीय हमारे एक अमरीकन् भाई के हृदय में आर्य शब्द के अर्थ व प्रतिष्ठा किसी भांति या किसी भाषा द्वारा बैठ जाना। और जो मैंने अपने इस दावे का समर्थन न करके (कि आर्य शब्द का अन्वेषण हर प्रकार संस्कृत में ही होना ठीक है) जो कुछ एक अर्थ के शब्द अन्य भाषाओं के लिख दिये वह केवल पादरी साहब की शांति व आर्य शब्द का अर्थ उनके हृदय में बैठाने को ठीक उसी प्रकार लिखे हैं जैसे साहब लोग अपने बच्चों को अक्षर पहचनवाने के लिये चित्रों वाले अक्षर दिखाते हैं। ओ३म् शान्तिः३

आपका शुभचिन्तक–हनुमान्प्रसाद मास्टर एङ्गलोवैदिकस्कूल
स्थान छिबरामऊ–जि० फर्रुख़ाबाद १। ९। ८७ ई०

जिस से हमारी जाति शुद्ध व यथार्थ नाम व धर्म पर ध्यान दे के आलस्य की निद्रा से जागे और सीधे मार्ग पर स्थित रहके कुत्सिताचारों से दूर रहें॥

अब नमस्ते शब्द के विषय में कुछ निवेदन करना चाहता हूं–

हमारे हिन्दू भ्राताओं में उन्हें अपना ठीक नाम आर्य भूल गया वैसे ही परस्पर मिलने के समय भी बहुत व्यर्थ व ऋषिमुनिकृत ग्रन्थों के विरुद्ध अनवसर शब्द बेसमझे बूझे प्रचलित हैं। जैसे जयराधे कृष्ण। जय सीताराम। राम २। हरिरामजी। जय हरी। पैरीपौना। बदगी। पांवलागैं। माथा टेकना। नमोनारायण। आदेश। जय शंभु। जय देवी। माता की जय आशी-

वोद इत्यादि—जहांलों अन्वेषण किया गया इन बातों का पुरानी पुस्तकों में चिह्न नहीं है जिस से ठीक सिद्ध है कि पुराने आर्य महात्मा उस समय में (जब सत्य धर्म की उन्नति थी) इन का प्रयोग नहीं करते थे और जब से यह बातें काम में लाई गई तब से घर २ में फूट—डाह—झगड़े के गोबर से चौका फिरा दृष्टि आता है मत मतान्तरों के बखेड़े पृथक् २ इष्टदेव आदि भी इसी अनैक्य व फूट के कारण देखाई देते हैं। नहीं तो एक ईश्वर के भक्त होने से इन का चिन्ह भी मिलना असम्भव होगा। आर्यवर्त्त की पवित्र भूमि में प्रतिदिन असत्य व उत्पन्न हुई वस्तुओं की पूजा का फैल जाना और आज कल अवनति की उन्नति होना केवल ऐसे ही कारणों से है। और जब लौं भलीभांति इन व्यर्थ बातों का खण्डन न होगा, अनैक्य दूर होना असम्भव है। जहांलौं सनातन ऋषिमुनिप्रणीत आर्षग्रन्थों को देखा जाता है "नमस्ते" शब्द का परस्पर प्रयोग करना पाया जाता है जो प्रेम व एकता मिलाप व शील के बढ़ाने के लिये अति उत्तम है स्यात् किसी भाई को संदेह हो कि नमस्ते शब्द सनातन ग्रन्थों में कहां पर आया है अतः आवश्यक हुआ कि थोड़े से प्रमाण दिये जावें।

कोई २ ब्राह्मण देवता (जिनको सत्यप्रियता से अपनी पसंद अधिक प्रिय है) समान जनों में तो नमस्ते का प्रयोग स्वीकार करते हैं परन्तु छोटे से बड़े वा बड़े से छोटे के लिये नहीं पसंद करते किन्तु अनुचित जानते हैं अतः उचित जाना गया कि तीनों का क्रमानुसार प्रमाण देवें॥

(१) तैत्तिरीयउपनिषद्वाक्य—

ओ३म् शन्नोमित्रः शंवरुणः शन्नोभवत्वर्य्यमा शन्नइन्द्रोबृहस्पतिःशन्नोविष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणेनमस्ते वायो त्वमेवप्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेवप्रत्यक्षं ब्रह्मवदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतुमाम् अवतुवक्तारम्॥

(२) नमस्ते अस्तु विद्यु ते नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्ते अस्त्वश्मने येनादूडाशे अस्यसि:॥ अथर्ववेद अ० ३ प० १ काण्ड १ ३ मं० १।

(३) यजुर्वेद अध्याय १६ मं० १—

नमस्तेरुद्रमन्यवऽउतोतऽइषवे नमः बाहुभ्यामुत ते नमः॥

(४) यजुर्वेद—

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः तेभ्यो नमो अस्तु ते नो वन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥

(५) गीता अ० ११ श्लोक ३९

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥

(६) विष्णुसह० ना० श्लोक १३३—

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने नमस्ते केशवानन्त वासुदेव नमोऽस्तु ते॥

(७) वि० स० ना० श्लो० १३४—

वासनाद्वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयम् सर्वभूतनिवासोऽसि वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥

(८) वि० स० ना० श्लोक १३५—

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

(९) चण्डीपाठ अ० ५ श्लोक ७ से ३४ लों—

(१०) शि० पु० उत्तर खण्ड अ० १४ श्लो० २४—

तवावबोधो भगवन्भूतानामुदयाय च। अलयाय भवेद्रात्रिर्नमस्ते कालरूपिणे॥

(११) शि० पु० उ० ख० अ० १४ श्लो० २८—

जगदीशस्त्वमेवासि त्वत्तो नास्तीव ईश्वरः जगदादिरनादिस्त्वं नमस्ते स्वात्मवेदिने ॥

(१२) शि० पु० उ० ख० अ० १४ श्लो० २९—

नमः समुद्ररूपाय संघातकठिनाय च। स्थूलाय गुरवे तुभ्यं सूक्ष्माय लघवे नमः ॥

(१३) सारस्वत सूत्र २८५—

नमस्ते भगवन्भूयो देहि मे मोक्षमव्ययम्। स्वामी वां स जहासोच्चैर्न्दृष्टवानौदा-नयाचनात् ॥

(१४) गुरु गोविन्द सिंह का जाप जी पौड़ी २ से लेकर २८ तक व २४ से ५७ तक व ६५ से ७९ तक व १४४ व १८४ से १८७ तक व १९८ जाप जी—

(१५) कथा स० ना० अ० १ श्लोक ५२—

नमः सत्यनारायणायास्य कर्त्रे नमः शुद्धशाखाय विश्वस्य भर्त्रे करालाय कालात्मकायास्य हर्त्रे नमस्ते जगन्मङ्गलायात्तमूर्त्ते ॥

(१६) यजुर्वेद—

नमो॑ ज्येष्ठाय॑ च कनिष्ठाय॑ च नमः॑ पूर्वजाय॑ चापरजाय॑ च नमो॑ मध्यमाय॑ चापगल्भाय॑ च० ॥

(१७) मनुस्मृति अ० २ श्लोक १२७—

(१८–२०) मनुस्मृति अ० २ श्लोक १३६—१३८

(२१–२३) „ ३ „ ३५५–५६

यह प्रमाण तीनों अवस्थाओं के प्रयोग के लिये पूर्ण है जिन के द्वारा बड़े समान व छोटे के लिये नमस्ते का बोलना ठीक है ॥

२४–२५–२६–मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ५७–५९

अन्यस्मृतियों में भी शतशः स्थानों पर छोटे बड़ों व बड़े छोटों का सत्कार करें। यह वर्णन है—

२७–वा०रा० बनकाण्ड में विश्वामित्र वसिष्ठ की विदा का वर्णन—

"नमस्तेस्तु गमिष्यामि"

२८–नमस्य नमस्करणीय (स्त्री) (स्या) पूजा ताजीम (प्रतिष्ठा) के लायक (योग्य) नमस्ते झुकना-सलाम-शब्दार्थभानु पृष्ठ १८५

२९–सर्वानुक्रमसूत्र नं० ८ वाक्य २४ में नमस्ते को याज्ञवल्क्यजी स्वतन्त्रता पूर्वक व साधारण बोल चाल में वर्तते हैं। हठधर्मी की औषध तौ धन्वन्तरि व *लुकमान के पास भी नहीं। पर जो सुजन ध्यान देंगे उन पर उत्तम प्रकार विदित हो जायगा कि नमस्ते शब्द से उत्तम विस्तृत और अच्छे अर्थ वाला क्या कोई और ऊपर लिखे नामों में से है। जहां लौं विचार किया गया कोई नहीं। अतः आवश्यक है, कि हम इस प्रेम ऐक्य व शील सिखाने हारे नाम का वर्ताव करें। जिस से जाति व देश की अवनति का ध्यान हो कर उस के उभार व उन्नति की ओर कटिबद्ध हों। और हिंदोस्तान को ईश्वर की कृपा व अनुग्रह से आर्यावर्त्त बनावें ॥

पादरी साहेब ने नोट (टिप्पणी) में लिखा है, कि यदि हिंदू नाम फार्सी में बुरे होने के कारण त्यागने योग्य है तौ राम फारसी में गुलाम को, इसी भांति आर्य अर्बी में कपटी जालि को, और वैद्य संस्कृत में हकीम को व फार्सी में विना फल के वृक्ष (बेद) को, और अनादि जिस का अर्थ संस्कृत में जिस

*यह यूनान में प्रसिद्ध हकीम हुआ है—

का आरम्भ न हो अरबी में तसलीम (सलाम्) को कहते हैं । यह भी त्यागना चाहिये । इसका उत्तर हमारी ओर से यह है कि नाम आर्य नमस्ते आदि शब्द संस्कृत पुस्तकों में सैकड़ों जगह हैं पर हिन्दू शब्द का चिन्ह भी नहीं अतएव पहले नाम मानने योग्य और दूसरे सुधारने या बदलने योग्य हैं । यदि हिंदू भी किसी आर्षग्रन्थ में होता तो हमें मानने से कब नाहीं थी पर विना प्रमाण (जैसा वर्णन हो चुका है) हम किसी प्रकार नहीं मानते । अतः प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि विचार कर के सत्य को ग्रहण करें और आर्य कहाने व नमस्ते बुलाने से किसी भांति की कदापि नाहीं न करें ॥

पादरी–जब दयानन्द ने सुना कि फ़ारसी भाषा में असीरान् का अर्थ क़ैद होने का है तो इस कारण उन्हों ने संस्कृत आशीर्वाद को त्याग दिया और उसके स्थान पर नमस्ते ठहराया । परन्तु जो आशीर्वाद है यह संस्कृत में उत्तम अर्थ रखता है और बहुत पुराना शब्द है और मनुस्मृति व अन्य विश्वास योग्य पुस्तकों में बहुत जगह पाया ही नहीं जाता वरन उस के लिये बहुत ही दृढ़ आज्ञा दी गई है । (म० स्मृ० अ० २ श्लो० १२६)

उत्तर–पा० सा० आपने ग़लती की और स्वामी जी महाराज पर दोष दिया। स्वामीजी ने कहीं भी आशीर्वाद के त्यागने में गवाही नहीं की और न कभी इस का प्रचार किया। जो शब्द सनातन ऋषियों के ग्रन्थों में प्रच- लित देखा इस लिये कि वह अति उत्तम था उसका प्रचार किया । और अनेकप्रचारक व सत्य व प्रेम के मिटाने हारे को दूर किया । आपने जो मनु का प्रमाण दिया उस श्लोक में आशीर्वाद शब्द नहीं है । हां अभिवाद व प्रत्यभिवाद है । जो एक सत्कार व दूसरा उसका उत्तर है। जिसको स्वा० जी ने भी उचित बताया है त्याग नहीं किया । देखो (वेदाङ्गप्रकाश भाग ४ संख्या २४।२५।२६) अतः यह आक्षेप भी केवल धोखा देना है । किसी प्रकार उचित नहीं ॥

पादरी–हिन्दू राजाओं व विद्वानों ने स्वामी दयानन्द जी के अतिरिक्त व उनके पंथवालों के कभी कोई आक्षेप हिन्दू नाम पर नहीं किया । और हिन्दुओं की पुस्तकों में इस नाम का प्रचार पाया जाता है । जैसे गुरुनानक जी के आदि ग्रन्थ में बराबर इस जाति का नाम हिन्दू लिखा है। और गुरु गोविन्दसिंह साहेब को भी जो फ़ारसी में अच्छी विद्वता रखते थे कभी यह न जान पड़ा कि जिस जाति में से हम लोग हैं उस का नाम मुहम्मदियों की

और से बहुत बुरा रक्खा गया है अतः वह बदला जावे ॥

उत्तर—हिन्दू राजों के राज्यों में साधारणतः वर्ण गोत्र के अनुसार कार्य्य-वाही होती है। और हिन्दू नाम मुसलमानों के आने से प्रथम कहीं न था अब भी जो किञ्चित् प्रचार है वह नहीं के तुल्य है और वह उर्दू व फारसी की कृपा है। पर राजों की उपाधियों में अब भी आर्य्यकुल दिवाकर इन्द्र महेंद्र आदि संस्कृत के यथार्थ शब्द शोभा देते हैं हिन्दू कहीं नहीं। शेषरहा आर्य्यकुल सत्योपदेशक बा० नानक जी महाराज के आदि ग्रन्थ में हिन्दू शब्द का होना। वह हमे स्वीकार है। पर प्रभाव फ़ारसी की शिक्षा का है और मुसलमान राज्य व देशभाषा में समझने के कारण लिखा, नहीं तो कभी न होता। और न मानपूर्वक उन्हों ने इस का वर्णन किया। किन्तु साधारण रीति से सत्यधर्म का उपदेश पञ्जाबी भाषा में दिया। जिस ने लक्षों हिन्दुओं को मुसलमान होने से बचाया और सत्यधर्म पर स्थिर किया। (अधिक देखो "सुर्मोचश्मआर्य्य" के उत्तर में) शेष रहा यह कि वीरता के रूप सत्यग्राही समरविजयी पुरुषसिंह महाबली गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज को इस नाम का बुरा न जान पड़ना। यह आप की ग़लती व अनजानकारी है। यदि आप किंचित् भी उन के इतिहास व आज्ञाओं को जानते होते तो ऐसा कभी न कहते। उन्होंने फ़ारसी में उत्तम योग्यता रखने के कारण इस के बुरे अर्थ को भली भांति समझ के त्याग दिया। और सिक्ख या सिंह प्रत्येक व्यक्ति का नाम रख के अपने समस्त अनुयायियों के समूह का नाम ख़ालसा जाति रक्खा जिस के अर्थ फ़ारसी में वही हैं जो आर्य्य शब्द के या यों कहो कि यह उसका लफ़्ज़ी तर्जुमा है। (देखो ग़यासुल्लुग़ात व मुंतख़िब व कश्फ़) "ख़ालिस व ख़ालसा। ख़ासा व नयामेख़्तः बचीज़े व पाक व बेआमेज़। यानी बे आमेज़िश"। अर्थ " पवित्र व बिना मिलावट स्वच्छ पदार्थ (अ० बा०) उन के समस्त अनुयायी और सम्पूर्ण पढ़े लिखे सिंहभाई हिन्दू नाम को बुरा जानते हैं। सिक्ख और सिंह आर्य्य भ्राताओं के समझाने के लिये और ख़ालसा मुहम्मदियों आदि के समझाने को है। अतः यह दावा आप का महानिर्मूल है ॥

पादरी—विचार का स्थान है कि अकबरबादशाह जो बेतअस्सुब प्रसिद्ध है और जिस के समय में बहुत से हिन्दू बुद्धिमान् वैभवशाली मन्त्री फ़ार्सी में पूर्ण योग्यता रखने वाले स्वतन्त्रता पूर्वक हो चुके हैं, उस समय उन्होंने

भी इस नाम पर कुछ ऐतराज़ न किया । अतः जिस दशा में हिन्दुओं के पुरुषा इसी का प्रचार करते व अपने ऊपर रखा करते रहे हैं और कुछ संदेह न किया। तो इससे ज्ञात होता है कि वह इसे अच्छा जानते थे नकि बुरा॥

उत्तर--यह नियम (क़ायदा) है कि जब लौं दो भाषाओं का मुक़ाबला व उनकी तौल नहीं होती। और जब तक इस के लिये स्वतंत्रता नहीं मिलती। जबलौं दोनों भाषाओं का मनुष्य विज्ञ नहीं होता। तब लौं किसी प्रकार का मुकाबला नहीं कर सक्ता है। और सब संसार जानता है कि अमीर व वज़ीर लोग आरामतलब या राज्यकार्य्य में लगे हुये होते हैं। इस कारण धर्म की पड़ताल व कुरीतियों के दूर करने का अवसर बहुत ही थोड़ा मिलता है। यह भी कोई प्रमाण नही है कि उन्हों ने कोई ऐतराज़ (आक्षेप) न किया जिस प्रकार नही किया केवल कहा जा सक्ता है। इसी भांति हम कह सक्ते हैं कि किया हो तो क्या आश्चर्य्य। केवल कोई लेख नहीं है। सो उसका प्रभाव दोनो पार्टियों पर समान है। वह हिन्दुओं के बुज़ुर्ग भी न थे किन्तु केवल धनी पुरुष थे। सांसारिक प्रतिष्ठा के अतिरिक्त हिन्दू किसी मान व प्रतिष्ठा की दृष्टि से उन को प्रतिष्ठित नहीं मानते हैं।

पादरी—हिन्दू और आर्य्यों को निज नामों के अर्थ अपनी भाषा संस्कृत में देखने चाहिये न कि फ़ारसी आदि में॥

उत्तर—प्रत्येक मनुष्य जो कुछ भी बुद्धि रखता हो। और उस की बुद्धि को किसी स्वार्थ ने अंधा न कर दिया हो। वह अवश्य न्याय से कहेगा कि हमने जितना आर्य्य व आर्य्यावर्त्त के सम्बन्ध में स्वीकार व हिन्दू और हिन्दोस्तान केसे अस्वीकार किया है वह उसी तहक़ीक़ात (अन्वेषण) से है जो हमने संस्कृत के अनुसार पादरी साहेब के कथनानुसार की है। इस कारण कि संस्कृत में इन दो शब्दों का कुछ अर्थ नहीं है। और न किसी कोष इतिहास पुराण या धर्मपुस्तक में यह शब्द हैं। अतः आप के कथनानुसार भी हम को और समस्त देशवासियों को इन बुरे नामों का त्याग आवश्यक है हम किञ्चित् भी ऐसा नहीं करते कि संस्कृत शब्दों को फार्सी के जोते हुये समझ छोड़ देवें किन्तु हम तो जो सच्ची व धर्मानुसार बात है उसको स्वीकार करके असत्य व बुराई को जो कलंक की नाई विदेशी हठधर्मियों ने लगाये हैं त्याग करते हैं॥

और यही आर्य्यसमाज का चौथा शुभ नियम है कि "सत्य के ग्रहण करने व असत्य के त्यागने में सर्वथा उद्यत रहना चाहिये" अतः हमने इस

नियम दृष्टि करके आप के सब आक्षेपों के उत्तर निवेदन कर दिये। प्रत्येक सत्यग्राही को आवश्यक है कि बुरी बातों बुरे नामों और बुराई से बचने को बड़े पुरुषार्थ से जहां लौं शीघ्र हो सके उद्यत होवे परमात्मा आप की धार्मिक इच्छाओं में उन्नति देवे इति।

नोट—हिन्दू शब्द के और भी अर्थ हैं। जो इस पुस्तक में नहीं लिखे गये हैं वह भी बुरे ही हैं अतः यहां पर लिख देना उचित समझता हूं। यह मैं ने "आर्य्यपत्र" बरेली से उद्धृत किये हैं।" इन की किताब ग़यासुल्लोग़ात आदि २ सफ़हा (पृष्ठ) ५०९ मतबूऐ मुंशीनवलकिशोर में यह मानी लिखे हैं—

हिन्दू के मानी—

गुलाम, काफ़िर, दुज़्द (चोर 'रहज़न (बटमार) हबशी, काले रंग वाला अशी, नास्तिक, बेदीन मुशरिक (ईश्वर के साथ अन्य को शरीक बताने वाला) तिल, मस्सा, खाल, छछून्दर और कुफ़्ल के हैं" (देखो आ० प० बरेली भाग ३ अंक १, पहला बाबत मास जनवरी सन् १८८६ ई० पृष्ठ ३ कालम १ पङ्क्ति ५ से ११ तक)

इन में कई अर्थ इस पुस्तक में आये भी हैं। परन्तु जो नहीं आये उन के कारण उक्त पंक्तियों की पूरी नकल करदी है। छोड़ देना आवश्यक न समझा* आर्य्य भाइयों का शुभ चिन्तक रामविलास शर्मा अनुवादक

*जहां लो ज्ञात हुआ हिन्दू शब्द का उत्तम अर्थ कहीं पाया नहीं जाता खाल तिल ही को कहते हैं। फिर दोनों शब्द लिखने का कारण ज्ञात नहीं होता (अ० वा०) इति ॥

—*—

भारतोद्धारक पत्र को एक बड़ी भारी सहायता ॥

श्रीयुत पण्डित कालिकाप्रसाद जी त्रिपाठी वैद्यराज कानपुर ने अपनी कामादिक परीक्षित निम्नलिखित औषधियां उक्तपत्र के सहायता के लिये उस का अर्ध मूल्य दिया है यह ऐसी औषधियां हैं कि जिनके हजारों प्रशंसा पत्र पण्डित जी के पास आये हैं धर्मानुरागियों को चाहिये शीघ्र निम्न लिखित औषधियां मंगवा के धर्म के कार्य को सहायता देवें। हम इस कार्य के लिये पं० कालिकाप्रसादजी को अनेकानेक धन्यवाद देते हैं, हमारे पास मंगवाने से ही अर्ध मूल उक्त पत्र की सहायता में जायगा अन्यथा नहीं। इसी तरह से और भी उदारचित्त धर्मानुरागी महाशय सहायता देंगे, ऐसी आशा है ॥

(१) कोष्ठवल्लभा वटी मूल्य एक डिब्बी ॥) " सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः" सम्पूर्ण रोगों का कारण कुपित मल है अर्थात् वात पित्त कफ इन्हीं के कुपित होने से सम्पूर्ण बीमारी होती है इनके शान्त करने के लिये मैंने बड़ा परिश्रम करके यह कोष्ठवल्लभा वटी बनाई है इस के खाने से कोष्ठ (पेट मेदा) शुद्ध हो जाता है और दो तीन दस्त साफ होते हैं पेट का अफरा अर्थात् पेट का फूलना, ज्वर, जुड़ी, तीजारी, वात रक्त, कुष्ठवातव्याधि उदर रोग, मल कोष्ठ, गठिया, सिर का दर्द तथा जिस को गर्मी होगई हो इत्यादि चार छः रोज़ में इस महौषधि के सेवन से बहुत शीघ्र शान्त हो जाते हैं। यदि निरोगी भी मनुष्य इसे हरमास में दो दिन सेवन करें तो रोग कभी उस के पास न आवेगा। इस महौषधि के सेवन से न जी मचलाता है और किसी प्रकार की तकलीफ होती है बड़े २ डाक्टरों और रईसों के प्रशंसा पत्र हमारे पास हैं बड़े सूचीपत्र को देखें ॥

खाने की विधि—धेला भर चीनी में एक गोली रखकर प्रातःकाल ताज़े जल से निगल जाय पश्चात् आध घंटे के बाद थोड़ा ठंडा जल अथवा शरबत पीवे ऐसा तीन चार बार करे ॥

जब दस्त बन्द करना हो तब गर्म जल अथवा चाह पीलेना चाहिये इस का भोजन पथ्य है और किसी तरह का कोई परहेज़ नहीं है ॥

(२) रुधिर परिष्कार वटिका अर्थात् आयुर्वेदि सालसा मूल्य एक डिब्बा २) खून को साफ करती है। अशुद्ध पारा और दूसरी कोई कच्ची धातु खा ली होवे उस के लिये बड़ी लाभकारी है तथा सिर का दर्द वा चक्कर वा जोड़ों के दर्द को भी शीघ्र आराम करती है तथा गर्मी अर्थात् आतशक और गठिया को दूर करता है। यह वटी खाने से खराब खून को निकाल कर नया शुद्ध खून पैदा करती है यह गोली ३२ काष्ठादि औषधियों से बनी है और शीघ्र फायदा करती है ॥

खाने की विधि—एक एक गोली सायं प्रातः पावभर गौ के दूध में तथा एक तोला सहत में गोली घोल कर खायं अथवा एक छटांक ताज़े जल में घोल कर एक तोला सहत मिला के खाय पथ्य—जौं, गेहूं या चने की रोटी, अरहर मूंग चना की दाल परमल लौकी बथुवे का साग और सेंधा निमक सांभरी निमक, उर्द माष तुहि लालमिर्च कड़वातेल आदि न खाय ॥

(३) बीसो प्रमेह पर इन्द्रवज्रचूर्ण मूल्य १ डिब्बा ॥=) यह एक महात्मा

ने बड़ी सेवा करने से प्रसन्न होकर बतलाया है यदि इसका मूल्य २)रखा जाता तो भी अधिक न था परन्तु सर्वसाधारण के सुभीते के लिये ॥=) रखा गया है यदि आप बहुतसी डाक्टरी या हकीमी दवायें खाकर उक्ता गये हो तो एक बार इसे मंगाकर खाइये और रोग को दूर कर आनन्द लूजिये १ डिब्बेमें ४९ दिवस के खाने को दवा रहती है ॥

खाने की विधि—सवापाव मिश्री मिलाकर ४९ मात्रा करलेवे एक प्रातः और एक सायं काल दूध अथवा जल के साथ—(पथ्य) खटाई गुड़ दहि या मट्ठा, लालमिर्च इत्यादि न खाय। दस्त और पेशाब के वेगको कभी न रोके॥

(४) प्रसूतारि वटी मूल्य ५) स्त्रियों के लिये जैसा प्रसूतिका रोग दुःखदायी है वैसे और रोग कम हैं इस से स्त्रियों का जीवन ही निष्फल होजाता है यद्यपि इस रोग से जल्दी नहीं मरती परन्तु उस जीने से मरना ही अच्छा समझती है हमने सैकड़ों बार परीक्षा की है इस के सेवन करने से प्रसूत रोग उपद्रव युक्त अर्थात् शरीर की दुर्बलता, हाथ, पैर, व कमर का दर्द आंखों का जलना अन्न का न पचना इत्यादि शिकायतें दूर होजाती है इस की हम स्वयं प्रशंसा न कर ग्राहकों ही के मुख से सुनना चाहते हैं २१ दिवस की मात्रा है ॥

खाने की विधि—एक गोली प्रातः १ गोली सायङ्काल पान में रखकर खाये ॥

(५) गन्धकवटी १ डिब्बी २० गोली का मूल्य ।॥) यह दवा बहुत प्रसिद्ध है आपने बहुत जगह से मंगवाई होगी एक बार इसे भी आजमा देखिये। अग्निमन्द, पेट का फूलना, बादी से डकार का आना, बन्द होता है। भोजन की शक्ति बढ़ती है। पाचन के लिये रामबाण है ॥

खाने की विधि—भोजन करने के पश्चात् दोनों समय एक गोली खालेने से अन्न अच्छी तरह पचजाता है गोली बड़ी स्वादिष्ठ है ॥

(६) खांसी की गोलियां ५० का मूल्य ।) खांसी यद्यपि साधारण रोग कहा जाता परन्तु यही पुराना होते २ बड़ी २ हानियां करता है यहां तक कि दम होजाता है अतएव किसी रोग को भी छोटा न समझना चाहिये इस दवा से चाहे जैसी नई या पुरानी खांसी हो सूखी या कफी हो सब उक्त गोलियां सेवन करने से दूर होजाती हैं ॥

खाने की विधि—दिन रात में छः या सात गोली खाये एक २ गोली मुख में डालकर चूसता रहे कफी वस्तु घुईयां आदि न खाये ॥

(७) त्रिपुरभैरववटी १ शीशी का मूल्य ।) यह वटी हरएक मनुष्य को हितकारी है १ शीशी जरूर साथ रखना चाहिये हाजमा की शक्ति को बढ़ाती है पेट का दर्द वा पेट का फूलना, अजीर्ण वा अफरा एक ही वटी के खाने से दूर हो जाता है अपान वायु को शुद्ध कर देती है दवा खाते ही वायु खुलने लगती है उन लोगों को तो अमृत ही का गुण देती है जो तीर्थ यात्रा करते हैं या जो महाशय हमेशा परदेश में भ्रमण किया करते हैं उनको दूसरे देश में जाने से जलवायु बदलने से अक्सर अतिसार अर्थात् दस्त की बीमारी संग्रहणी, मन्दाग्नि, मलेरिया ज्वर इत्यादि रोग उत्पन्न होजाते हैं वे इस के सेवन करने से नहीं होते और कैसा ही खराब जल हो विकार नहीं कर सका और भी बड़े २ लाभ हैं सर्वसाधारण के हितार्थ मूल्य भी बहुत कम रक्खा है जिससे लाभ उठावें, जिस समय हैजा का जोर हो आप एक गोली घरभर के मनुष्यों को भोजन के उपरान्त खिला दीजिये तो निश्चय है कि आप के घर में हैज़ा कभी आवेगा ही नहीं ऐसी दवाई के होते भी आप लोग अर्ककपूर को सेवन करें तो हमारा क्या वश है ॥

खाने की विधि—जल के विकार अथवा मन्दाग्नि में भोजन करने के पूर्व अथवा पश्चात् खाये और पेट का दर्द वा अजीर्ण वा पेट के फूलने में उसी समय देना चाहिये तकलीफ़ को देखकर एक या दो गोली तक दे दो, दो से अधिक मत दो तीर्थयात्रियों के लिये इस से बढ़कर सुख देने वाली कोई दवाई नहीं है ॥

(८) दन्तवज्रमञ्जन १ डिब्बी का मूल्य ।) इस मञ्जन के लगाने से मसूढ़ों से रक्त का निकलना वा मांस का बिथुर जाना, दांतों का पोला पड़ जाना मुख में दुर्गन्ध आना, दांतों का दर्द वा डाढ का दर्द वा हिलना इत्यादि रेल के अञ्जन के माफिक चिचियाता हुआ भाग जाता है और मुख से खुशबू आने लगती है ॥

(९) अमृतमञ्जरीगुटिका मूल्य १) कुनयन यद्यपि ज्वर को शरीर से दूर करता है परन्तु उस से अनेक विकार उत्पन्न होते हैं जिस को आज कल सैंकड़ों अंग्रेज डाकटर मानते हैं। हमने देशी जड़ी बूटी के अनुसार यह अमृत-मञ्जरी गुटिका बनाई है जो सर्व प्रकार के अर्थात् नया वा पुराना ज्वर, मलेरिया ज्वर, प्लीहा ज्वर, जूड़ी आदि को शरीर से दूर कर मुख खोल पाचक में सहायक हो शरीर को पुनः शीघ्र पुष्ट कर देता है ॥

ओ३म्

आर्य्यों ! जागृत हो !!!

प्रिय आर्य्यभ्रातृगण ! विशेष विचार का स्थान है कि इस आर्य्यावर्त्त का गौरव कैसा था वह इतिहासों से स्पष्ट है यहां तक इस पवित्र भारतभूमि की प्रतिष्ठा थी कि यहां के रहने वालों का नाम आर्यचिरस्थायी हुआ, वह इस देश के महर्षिगणों तथा उन की सन्तानों के गुण कर्म स्वभावानुकूल सार्थक ही था, पर आज पूर्वोक्त लिखित अति गम्भीर तथा प्रशंसित शब्द के साथ "जागृत हो" ऐसा लिखने की आवश्यकता हुई, प्रिय मित्रो ! क्या आप अपनी पूर्वदशा तथा वर्त्तमान दशा का मिलान कर पूर्ववत् भ्रातृभाव होने का प्रयत्न न करेंगे ? पाठक गण ! ऊपर लिखे, अनिर्धारित वाक्य के अकस्मात् उच्चारण से मेरा चित्त शोकावेश की लहरों से संकुचित हो गद्गद् होगया, और हृदय में यह विचार तथा प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या हम सोते हैं ? जो ऐसे उद्गारशब्द हमारे ऊपर संघटित हैं, नहीं २ हम जागते हैं परन्तु जागते हुये भी अज्ञानान्धकार रूप घोर निद्रा में पड़े२ सड़ रहे हैं कुम्भकरणादि भी प्रयत्न करने से अपनी घोर निद्रा से जाग कर अपने कार्य में प्रवृत्त हुये ऐसा भी लेख द्वारा प्रमाण मिलता है, परन्तु हमें अज्ञानरूप निद्रा से जागृत अवस्था में करने के लिये प्राचीन तथा नवीन संस्कृत प्राकृत तथा अन्य२ भाषाओं की पुस्तकें और अनेक समाचारपत्र तथा देशहितैषी महात्माजन अपने सुललित तरह २ के व्याख्यानों से अनेक प्रयत्न कर चारों ओर से गर्जना कर रहे हैं कि उठो, २ अपना कर्त्तव्य कर्म करने के लिये कटिबद्ध होओ तथापि हम लोग अज्ञान निद्रा से जागृत होके अपने कर्त्तव्य कर्म करने के लिये उठकर कटिबद्ध नहीं होते, तब मुझे विचार हुआ कि यह वाक्य "आर्य्यों जागृत हो" हमारे सदृश आलसी जनों के जागृत करने के लिये यथोचित है । कहा है कि " आलस्योहि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः " आलस ही मनुष्यों के शरीर में बड़ा शत्रु है इसलिये हे मित्रों आलस को छोड़ो और सोचो कि हमारी कैसी हीन दशा वर्त्तमान है यदि अब भी सोते के सोते ही रहोगे तो भविष्यत् में और अधिक दुःख भोगने की सम्भावना है यदि सुख की इच्छा है तो अज्ञानरूपी निद्रा से सचेत हो निम्न लिखित वाक्य को विचार कर शीघ्र ही कर्त्तव्य कर्म करने पर आरूढ़ होओ, यथा—

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम् ।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदञ्च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः ॥

अर्थात्—उत्साह युक्त जो काम जिस समय करने का है उसी समय करना अर्थात् विलम्ब न करना, क्रिया को विधि पूर्वक जानना और सम्पूर्ण व्यसनों से अलग रहना, शूरता को धारण करना, किये हुये को मानना, सुख दुःख मानापमान में दृढ़ रहना, ऐसे विचारशील पुरुष के समीप सुख की सामग्री अर्थात् लक्ष्मी निवास करने के लिये स्वयं जाती है ।

श्रीमत्स्वामीशङ्कराचार्य जी ने भी अपने शिष्यों के वाद प्रतिवाद में कहा है कि "शेते सुखं कस्तु समाधिनिष्ठः" शिष्य ने प्रथम पाद में प्रश्न किया कि हे महाराज सदा जागृत अवस्था में कौन सोता है ? इस प्रश्न का उत्तर श्लोकार्द्ध के उत्तर पाद में दिया है कि "समाधिनिष्ठः" अर्थात् अच्छे प्रकार से जिस का अन्तःकरण अपने आधीन इन्द्रियादिकों का संयम सत्य में दृढ़ अर्थात् आत्मस्वरूप में तल्लीन रहे उस को जागृत में भी सुख से सोया हुआ जानना, पुनः शिष्यने प्रश्न किया कि "जागर्त्ति को वा" अर्थात् निद्रा में कौन जागता है उत्तर "सदसद्विवेकी" अर्थात् सत्यासत्य से विचार कर के विवेक से वर्त्ताव करने वाला, तात्पर्य्य यह है कि—लोक लज्जा, निन्दा और राज्यादि भय से भी सत्य को प्राणान्त तक पकड़ के असत्य का कदापि न परिग्रहण करे । कहा भी है "नहि सत्यात्परोधर्मो नानृतात्पातकं परम्" परन्तु वर्त्तमान समय में इस के विपरीत ही दृष्टिगोचर हो रहा है—आप देखते ही होंगे कि सुधरे हुवे भी नहीं सुधरे, मूर्ख, विद्वान्, धनी निर्धन, राजा और प्रजा का बहुत भाग मिथ्या लोकलज्जा, भय और निन्दा से अनेक प्रतिष्ठित जनों का (कि जो सुमार्ग में प्रवृत्त होने के लिये इच्छा करें तो शीघ्र अविद्या के प्रवाह में बहते हुये को सेतु रूप हो रोक सकें ऐसे मनुष्य) थोड़ा भाग छोड़ के जो अपने कर्त्तव्य कर्म के करने में भय न रखते हों तो वे अपने देशी भाइयों को महान् कष्टसागर में डूबते क्या वे देखा करें ? और लेशमात्र भी अपने कर्त्तव्य कर्म को भ्रातृभाव ला के क्या वे विचार न कर सकें ? परन्तु अत्यन्त शोक का विषय है कि उन सभों ने मिथ्या प्रतिष्ठा रूप मद का प्याला पीकर उन्मत्त हो एक दूसरे को शत्रुवत् दृष्टिपात कर रहे हैं, पाठकगण ! जब तक यह नशा न उतरेगा तब तक नशे की लहरों में मुखमात्र से उन्नति का कथन करते रहेंगे । प्रिय मित्रों ! विद्या, ज्ञान रूप औषधि से इस उन्माद को छोड़

भ्रातृभाव प्रकट कर इस भारत आरत के जीर्णोद्धार करने के लिये शीघ्र कटिबद्ध हो ओ । नीति में भी कहा है कि—

अयंनिजः परं वेति गणनालघुचेतसाम् ।
उदारचरितानांतु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

अहा !! क्या उत्तम महर्षिगणों के वचन हैं, धिक्कार है कि हम अपना प्राचीन नाम दृढ़ रखने के लिये बड़े उत्साही हैं कि हम आर्य हैं, परन्तु पूर्वजों के आचरणों पर कुछ भी विचार नहीं करते कि वे किन २ कर्मों से यह पवित्र शब्द हमारे लिये चिरस्थायी किया है ध्यान देना चाहिये कि उन के कैसे शुद्ध संकल्प, तथा विचार थे, प्रियपाठक गण ! इस उक्त लिखित श्लोक पर विस्तार पूर्वक व्याख्या की जाय तो एक बड़ा लेख होजाय, परन्तु तात्पर्य इतनाही है कि यह देश, गृह, सम्पत्ति इत्यादि पदार्थों में ऐसी बुद्धि कि यह मेरा यह पराया ऐसा आर्य होके अविवेक से माने तो उसको लघुबुद्धि जानना, महाशय ! जो दीर्घविचारशील महात्मा होते हैं वे सम्पूर्ण संसार को अपना कुटुम्ब समझ कर सुख दुःख में स्वयं सुखी दुःखी हुआ करते हैं, प्रियमित्रो ! समस्त धरामण्डल अथवा पवित्र आर्यावर्त्त की भूमिमात्र की बात तो दूर रही केवल अपने आर्य देशी भ्राताओं में ही ऐक्य भाव रक्खें ऐसे शुद्ध सद्विचार के महात्मा बहुत न्यून मिलेंगे, हां " मुख मस्तीतिवक्तव्यं दशहस्ताहरीतकी " अर्थात् मुख है तो दश हाथ की हर्रे बोलने में क्या हानि ? या " परोपदेशेपाण्डित्यं " इस कथन के अनुसार बोलने वाले बहुत मिलेंगे, परन्तु करने वाले मिलने असम्भव हैं, परन्तु जब तक इस भारत की पवित्र संतान आर्यों में एकता हो भ्रातृभाव (जो मुख्य उन्नति का बीज तथा कारण है) आर्य हृदय रूप भूमि में समारोपण करने में असमर्थ हैं तब तक उन्नति करना धूल पर लेपन के तुल्य है, इस लिये मिथ्या धर्म्म कर्म्म की वितंडा को छोड़ एक चित्त भ्रातृभाव रखने वाले हो और एक अनादि वेदमार्ग का ही आश्रय लो, जिससे अपने शुभ कार्य में विजयी हो, हमारे देशियों में विद्यादि सर्व विभूति होते हुवे भी शरीर विभूति, धर्म्म, कला कौशल, पदार्थविद्या, वीरता, एकता, और धीरता, इत्यादि से विमुख हो लघुगुरु कार्य में पराधीन, काष्ठ पाषाण सदृश जड़ बन के टकटकी लगाये देखा करते हैं, यह सब भ्रातृभाव और उदारचित्त न होने का फल है इस लिये हे बन्धुओ ! आप किसी एक मत में रहो, चाहे

भिन्न २ मत में रहो परन्तु आर्य मनुष्यमात्र के कर्तव्य के पोलिटिकिल (राजकीय) और सामान्य धर्म में एक रहो। देखो यूरूपियन लोगों में ईश्वरीय धर्म मानने की तीन मुख्य शाखायें हैं और अन्तरंग अनेक शाखायें हैं, अनेक निराकार, साकार और निरीश्वर मत को मानने वाले हैं तथापि राजकीय और मनुष्य के सामान्य धर्म तथा देशोन्नति के विषय में कैसे एकचित्त हैं, यही सामान्य भ्रातृभाव का धर्म है इसी रीत्यनुसार भ्रातृभाव धर्म मुसलमानों में भी अधिक देखने में आता है, इन में धर्म की दो मुख्य शाखायें हैं और उनमें अन्तरंग बहिरंग कुल ७२ हैं जिस में सिया और सुन्नी प्रमुख हैं अनेक ताजिया दरगाहों को मानने वाले हैं तथापि जहां मनुष्य के सामान्य धर्म की बात आई कि झट " दीन, दीन शब्द के साथ ही प्राण देने को तयार होजावेंगे, वही मुसलमान कहावेंगे इसी रीत्यनुसार मद्रि (ईरानी) पारसियों में अस्मदीय सदृश ईश्वरीय विशेष धर्म को केवल पकड़ उस धर्म को सिद्ध करने वाले सामान्य धर्म पर लेशमात्र भी अविश्वास नहीं करते, उस के फल प्रत्यक्ष जैसे "तारे में चन्द्र के सदृश" आर्यों में प्रकाश हो रहे हैं, यह यहांतक कि जो कोई मुसलमान अथवा पारसी किसी स्थान पर बहुत द्विजाति के लोग उन से विरोध करते हों वे तो बहुत द्विजातियों में थोड़े यवन अथवा पारसी एक दम अपने जाति भाइयों की रक्षा करने को कूद पड़ेंगे, यह गुण अवश्यमेव श्रेष्ठ है तौ भी वर्त्तमान के हमारे आर्यों में से लोप होकर अन्य धर्मावलम्बियों में प्रवेश कर रहा है यह प्रत्यक्ष है कि एक यवन और द्विजाति के किसी एक पुरुष से द्वन्द्व युद्ध वाक् अथवा शरीर से होता हो तो समक्ष अनेक आर्य निर्वीर्य वन के (हिजड़े) देखा करेंगे, इतना ही नहीं किन्तु "यः पलायते स जीवति" अर्थात् जो भागता है वह जीता है यह आधुनिकदायभाग में रहा हुवा जाप जपने लग जायंगे इसी लिये मुहम्मदियों ने * हिन्दू (डरपोंक, काफर, डाकू और कृष्णमुखी) की पदवी (टाइटिल अलकाब) दिया क्योंकि हम अपने पूर्वजों के "वसुधैव कुटुम्बकम्" जाप को भूल गये हैं और सत्य रीति से देखे तो हिन्दू के अलकाब को आज हम योग्य ही योग्य हैं क्योंकि न तो हम वैदिक धर्माचरण ही करते हैं और न हमारे में वीर गुण और न धर्माभिमान का जोश रहा ॥

अरे! कुछ भी तो स्मरण करो कि कहां गये वे तुम्हारे ब्राह्मण जो चारों वेदों को पढ़ कर तदनुसार आचरण करने में समर्थ होते थे आज पाठमात्र तो दूर रहा चारों वेदों के नाम तक नहीं जानते कदाचित् किसी को नाम

अनित्य ईश्वर सिद्ध रूप हैं उन में गौणनित्यत्व आदि मान कर ऐसे सिद्धके उपासना के लिये नित्यत्व आदि को वर्णन करती हैं इस से नित्यत्वादि दर्शन वा ऐसा वर्णन करने वाली श्रुति सिद्ध के उपासना पर वा उपासना विषय में हैं यदि यह शङ्का की जाय कि ईश्वर की असिद्धि से ईश्वर नहीं है यह जो कहा गया है यह युक्त नहीं है कर्म फल दाता होने से ईश्वर सिद्ध होता है तौ इसका उत्तर यह है—

नेश्वराधिष्ठिते फलनिष्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः अ०५ सू० ॥२॥

ईश्वराधिष्ठिते कारणे कर्मफलरूपपरिणामस्यनिष्पत्तिर्नयुक्ता । आवश्यकेन कर्मणैवफलनिष्पत्तिसम्भवादित्यर्थः ॥२॥ ईश्वरस्य फलदातृत्वमपिनघटतेइत्याह सूत्रैः ॥

अस्य भाषानुवादः ॥

ईश्वर के अधिष्ठित होने में फल की सिद्धि नहीं है कर्म से उस की सिद्धि होने से ॥२॥

ईश्वर के अधिष्ठित होने में कर्मफलरूप परिणाम की सिद्धि मानना युक्त नहीं है क्योंकि आवश्यक कर्म ही से फल की सिद्धि होना संभव है अब ईश्वर का फलदाता होना घटित भी नही होता यह अगले सूत्रों में वर्णन करते हैं ॥

स्वोपकारादधिष्ठानं लोकवत् अ० ५ सू० ॥३॥

ईश्वराधिष्ठातृत्वे स्वोपकारार्थमेवलोकवदधिष्ठानं स्यादित्यर्थः ३ भवत्वीश्वरस्याप्युपकारः काक्षतिरित्याशङ्क्याह-

भावार्थः ॥

अपने उपकार से लोक के समान अधिष्ठान (मुख्य होना) होगा ३

जो अपने उपकार के लिये ईश्वर का अधिष्ठाता होना माना जावे तौ अपने उपकार से लोक के समान उस का अधिष्ठाता होना सिद्ध होगा यह अर्थ है । अब यह शंका कर के कि ईश्वर का भी वा ईश्वर ही का उपकार होना मानें तौ क्या हानि है यह वर्णन करते हैं ॥

लौकिकेश्वरवदितरथा ॥४॥

ईश्वरस्याप्युपकारस्वीकारेलौकिकेश्वरवदेवसोऽपिसंसारीस्यात् अपूर्णकामतयादुःखादिप्रसङ्गादित्यर्थः ४ तथैवस्वीकारेदूषणान्तरमाह-

भाषानुवादः ॥

अन्य प्रकार मानने में लौकिक ईश्वर के समान होगा ।४।

चेतन मुक्त रूप से अन्य प्रकार मानने में अर्थात् रागयुक्त ईश्वर और उस का अपना उपकार स्वीकार करने में यह भी लौकिक ईश्वर के समान अर्थात् लौकिक ऐश्वर्य को प्राप्त समर्थ राजा महाराजाओं के समान संसारी होगा और अपूर्णकाम होने से उस में भी दुःख आदि होने का प्रसंग होगा । जो ऐसा ही मान लेवें तो उस में अन्य दूषण वर्णन करते हैं ॥

पारिभाषिको वा ॥५॥

संसारसत्वेऽपियेदीश्वरस्तर्हिसर्गाद्युत्पन्नपुरुषेपरिभाषामात्रमस्माकमियभय-तामपिस्यात् । संसारित्वाप्रतिहतेच्छत्वयोर्विरोधान्नित्यैश्वर्यानुपपत्तेरित्यर्थः ईश्वरस्याधिष्ठातृत्वेबाधकान्तरमाह ।

भाषानुवादः ॥

अथवा पारिभाषिक (कथन मात्र भेद वाला) होगा ।५।

जो संसारी होने में भी ईश्वर मानें तो सृष्टि की आदि में उत्पन्न हुये पुरुष में अर्थात् ब्रह्मा में वा विष्णु वा हर में हमारे समान तुम्हारा भी कथन होगा कथन भेदमात्र होगा संसारी होना व नित्य पूर्णकाम होना इन दोनों में विरोध होने से संसारी होने में नित्य ऐश्वर्यवान् होना संभव नहीं होसक्ता ५ ईश्वर के अधिष्ठाता होने में अन्य बाधक होना वर्णन करते हैं ५

न रागादृते तत्सिद्धिः प्रतिनियतकारणत्वात् ॥६॥

किञ्चरागंविनानाधिष्ठातृत्वंसिध्यति प्रवृत्तौरागस्यप्रतिनियतकारणत्वा-दित्यर्थः उपकारश्चार्थसिद्धिः रागस्तदुत्कटेच्छेति नपौनरुक्त्यम् नन्वेवमस्तुरा-गोपीश्वरे तत्राह ।

अस्य भाषानुवादः ॥

बिना राग के उस की (अधिष्ठाता होने की) सिद्धि नहीं है प्रति नियत कारण होने से ६

प्रवृत्ति में राग का प्रतिनियतकारणत्व है जिस कारण के विना जो न होवे वह उस का प्रतिनियत कारण है प्रवृत्ति में राग प्रतिनियत कारण है इस से विना राग के अधिष्ठाता होने की सिद्धि नहीं है उपकार कह कर राग कहने में पुनरुक्त दोष की शंका न करना चाहिये क्यों कि इष्ट अर्थ की सिद्धि

उपकार है अति चाह होना राग है इस से दोनों में भेद है ईश्वर में राग मानने में क्या दोष है यह वर्णन करते हैं ॥

तद्योगेऽपि न नित्यमुक्तः ॥७॥

रागयोगेऽपिस्वीक्रियमाणेसनित्यमुक्तोनस्यात् ततश्चनित्यमुक्तईश्वरोऽस्तीत्यस्यसिद्धान्तस्यहानिःकिञ्चप्रकृतिंप्रत्यैश्वर्य्यंप्रकृतिपरिणामभूतेच्छादिना न सम्भवति अन्योऽन्याश्रयात् नित्येच्छादिकंच प्रकृतौ न युक्तं श्रुतिस्मृतिसिद्धसाम्यावस्थानुपपत्तेः । अतः प्रकारद्वयमवशिष्यतेतद्यथाऐश्वर्य्यं किंप्रधानशक्तित्वेनास्मदभिमतानामिच्छादीनांसाक्षाद्देवचेतनसम्बन्धात् किंवाऽयस्कान्तमणिवत्सन्निधिसत्तामात्रेणप्रेरकत्वादिति ७ तत्राद्यंपक्षंदूषयति ॥

अस्य भाषानुवादः ॥

उस के भी योग में नित्य मुक्त न होगा ॥७॥

राग का योग भी ईश्वर में स्वीकार करने में वह नित्यमुक्त न होगा ऐसा होने में ईश्वर नित्यमुक्त है यह जो सिद्धान्त है इस की हानि होगी जो यह कहा जाय कि प्रकृति के परिणाम रूप इच्छा आदि द्वारा प्रकृति को ऐश्वर्य होना संभव नहीं होता है क्योंकि अन्योऽन्य (परस्पर) आश्रय होने से असंभव है नित्य इच्छादिक प्रकृति में होना युक्त नहीं है क्योंकि ऐसा होने में श्रुति स्मृति में जो प्रकृति की साम्यावस्था (सम होने की अवस्था) सिद्ध है उस का होना असंभव होगा इस से दो प्रकार रहते हैं एक यह कि इच्छा आदि जो हम प्रधान की शक्ति से हुये वा प्रधान की शक्ति रूप मानते हैं उन का साक्षात् चेतन ही से सम्बन्ध होने से ऐश्वर्य्य माना जावे अथवा अयस्कान्त मणि के समान सन्निधिसत्तामात्र से प्रेरक होने से माना जावे इन दो में से प्रत्येक में दोष देखाने में प्रथम पहिले पक्ष में दोष वर्णन करते हैं ॥

प्रधानशक्तियोगाच्चेत्सङ्गापत्तिः ॥८॥

प्रधानशक्तेरिच्छादेः पुरुषेयोगात्पुरुषस्यापिधर्मसंगापत्तिः । तथाच यत्तत्रपश्यत्यनन्धागतस्तेनभवत्यसंगोयंपुरुषइत्यादिश्रुतिविरोधइत्यर्थःअन्त्येआह

भाषानुवादः ॥

प्रधान की शक्ति के योग से है ऐसा माना जाय तो सङ्ग की प्राप्ति होगी ।८।

प्रधान की शक्ति जो इच्छा आदि हैं उन के योग से ऐश्वर्य्य है ऐसा माना जाय तो इच्छा आदि का पुरुष में योग होने से पुरुष में भी धर्मों का सङ्ग होने से सङ्ग की प्राप्ति होगी ऐसा होने में—

"सयत् तत्रपश्यत्यनन्वागतस्तेनभवत्यसंगोऽयंपुरुषः,,

अर्थ—जिस से कि वह उक्त ज्ञानवान् विवेक को प्राप्त तिस में अर्थात् विवेकप्राप्त होने में आत्मज्ञान होने की अवस्था में अपने आत्मा को प्रकृति से भिन्न देखता है वा जानता है तिस से यह पुरुष असङ्ग सिद्ध होता है इत्यादि श्रुतियों का विरोध होगा यह अर्थ है अब दूसरे पक्ष में उत्तर वर्णन करते हैं—

सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्य्यम् ॥९॥

अयस्कान्तवत्संनिधिसत्तामात्रेण चेच्चैतन्यैश्वर्य्यंतर्हि सर्वेषामेवतत्तत्सर्गेषुभोक्तृणांपुंसामविशेषेणैश्वर्य्यमस्मदभिप्रेतमेवसिद्धम् अखिलभोक्तृसंयोगादेवप्रधानेनमहदादिसर्जनादिति। ततश्चैकएवेश्वर इतिसिद्धान्तहानिरित्यर्थः ॥९॥ स्यादेतदीश्वर साधकप्रमाणविरोधेनैतेऽसत्तर्काएव । अन्यथैवंविधासत्तर्कसहस्रैःप्रधानमपियाधितुंशक्यतेइतितत्राह—

भाषानुवादः ॥

सत्ता मात्र से है ऐसा माना जाय तो सब का ऐश्वर्य्य होगा ॥ ९ ॥

जो अयस्कान्त (चुम्बक) के समान संनिधिसत्तामात्र से चेतन का ऐश्वर्य माना जाय तो विशेषतारहित सभी भोक्ता पुरुषों का जैसा हम मानते हैं ऐश्वर्य्य सिद्ध होवेगा क्योंकि सम्पूर्ण भोक्ताओं के संयोग ही से प्रधान से महत्तत्त्व आदि उत्पन्न किये जाते हैं । ऐसा होने में एक ईश्वर है इस सिद्धान्त की हानि है ॥९॥ जो यह कहा जाय कि ऐसा ही हो ईश्वर के सिद्ध करने वाले प्रमाणों के विरोध से यह तर्क असत् ही है ऐसे ही सहस्रों असत्तर्कों से प्रधान का भी प्रतिषेध होसक्ता है इसका उत्तर यह है—

प्रमाणाभावान्नतत्सिद्धिः ॥१०॥

तत्सिद्धिर्नित्येश्वरस्तावत्प्रत्यक्षंनास्तीत्यनुमानशब्दावेवप्रमाणेवक्तव्येतेचन संभवत इत्यर्थः १० इदमेव (असंभवमेव) प्रतिपादयतिसूत्राभ्याम्

भाषानुवादः ॥

प्रमाण के अभाव से उस की सिद्धि नही हैं १०

प्रमाण न होने से उस की अर्थात् नित्य ईश्वर की सिद्धि नहीं होती है प्रमाण के अभाव कहने का तात्पर्य्य यह है कि ईश्वर विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है प्रत्यक्षमूलक ही अनुमान व शब्द प्रमाण होने से उनका भी होना सम्भव नहीं होता इसी को अगले दो सूत्रों में स्पष्ट वर्णन करते हैं—

सम्बन्धाभावान्नानुमानम् ॥११॥

सम्बन्धोव्याप्तिः अभावोऽसिद्धिः तेथा च महदादिकंसकर्तृकंकार्यत्वादित्याद्यनुमानेष्वप्रयोजकत्वेनव्याप्यत्वाऽसिद्धानेश्वरानुमानमित्यर्थः प्रत्यक्षमूलाव्याप्तिःप्रत्यक्षाभावेव्याप्त्यसिद्धेरनुमानस्याप्यभावः ११ नापिशब्दइत्याह—

भाषानुवादः ॥

सम्बन्ध के अभाव से अनुमान नहीं हैं ॥११॥

सम्बन्ध का अर्थ यहां व्याप्ति है अभाव का अर्थ असिद्धि है जैसा कार्य कारण सम्बन्ध वा व्याप्तिद्वारा ऐसा अनुमान होता है कि महत्तत्त्व आदि सकर्तृक है (कर्त्ता कारण सम्बन्धी हैं) कार्य होने से, इत्यादि अनुमानों में प्रयोजक (प्रेरणकर्त्ता) न होने से व्याप्य होनें की सिद्धि न होने से ईश्वर में अनुमान नहीं है अथवा व्याप्ति प्रत्यक्षमूलक ही होती है प्रत्यक्ष के अभाव में व्याप्ति की असिद्धि होने से अनुमान का भी अभाव है ११ अब शब्द प्रमाण के निषेध को वर्णन करते हैं ॥

श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य ॥१२॥

प्रपञ्चे प्रधानकार्यत्वस्यैवश्रुतिरस्तिनचेतनकारणत्वस्ययथाअजामेकांलोहितशुक्लकृष्णांवह्वीः प्रजाः सृजमानांसरूपाः। तद्धेदंतर्ह्यव्याकृतमासीत् तन्नामरूपाभ्यांव्याक्रियतेइत्यादिरित्यर्थः याच तदैक्षतबहुस्यामित्यादिचेतनकारणताश्रुतिः सासर्गादावुत्पन्नस्यमहत्तत्वोपाधिकस्यमहापुरुषस्यजन्यज्ञानपराक्विंवाबहुभवनानुरोधात् प्रधानएवकूलंपिपतिषतीतिवद्गौणीअन्यथासाक्षीचेताकेवलोनिर्गुणश्चेत्यादिश्रुत्युक्ताऽपरिणामित्वस्यपुरुषेऽनुपपत्तेरिति॥ अधुनैतद्दर्शनं समीक्ष्यतेएतेषु सूत्रेषु यदीश्वरप्रतिषेधउक्तः तत्तर्कैणासिद्धिंदर्शयित्वालौकिकमेववाधकंप्रतिपादितमित्येवावधेयम्नसर्वथेश्वरास्तित्वप्रतिषेधस्याशयोमन्तव्यःयतईश्वरासिद्धेरित्यस्मात्प्राक्सूत्रैःसम्बन्धविचारतोऽनुवृत्तिग्रहणाच्चायमेवाशयस्सांख्याचार्यस्य महात्मनः सम्यग्निश्चीयतेतदनेनव्याख्यानेनावधार्यम्अतः प्राग्विवेकज्ञानस्यसाक्षादुपायः प्रमाणान्येवसन्तीत्यभिप्रायेणप्रत्यक्षानुमानशब्दभेदेनत्रिविधंप्रमाणमितिकथनानन्तरंप्रमाणानांविशेषलक्षणवर्णनेप्रत्यक्षस्यव्याख्यानोपक्रमेतस्यैतल्लक्षणमुक्तम्—

अस्यभाषानुवादः ॥

श्रुति भी प्रधान के कार्य की है अर्थात् प्रधान के कार्य वर्णन विषय में है १२ प्रपञ्च में (सृष्टि प्रपञ्चमें) प्रधान ही के कार्य विषय में श्रुति है चेतन के

प्रतिपादन में नहीं है श्रुति यह है ॥

अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥

अर्थ—एक अजा (उत्पत्ति रहित प्रकृति) लोहित शुक्ल कृष्ण रूप को अर्थात् रज सत्व तम गुण रूप को अपने रूप के समान बहुत प्रजाओं को उत्पन्न करने वाली को एक अज (पुरुष) उस के साथ प्रीति करता हुआ शयन करता है अर्थात् भोग करता है और अन्य अज भोग कर के विराग को प्राप्त हुआ इस भोग की हुयी अजा को त्याग देता है तथा—

तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यां व्याक्रियते इत्यादि ॥

अर्थ—वह यह प्रकृति कार्य रूप प्रत्यक्ष जगत् पूर्व ही नाम रूप रहित अप्रकट था वह सृष्टि समय में नाम रूप से प्रकट किया जाता है अर्थात् प्रकृति से प्रकट किया जाता है इत्यादि और जो

तदैक्षत बहुस्याम्०इत्यादि ॥

अर्थ—उस ने इच्छा किया कि बहुत होंऊ इत्यादि चेतन कारण प्रतिपादक श्रुतियां हैं वह सृष्टि की आदि में उत्पन्न महत्तत्व उपाधिक महापुरुष के उत्पन्न हुये ज्ञान के विषय में हैं अथवा बहुत होने में उदित प्रधान ही में शीघ्र गिरने वाले कगार में कगार गिरने की इच्छा करता है ऐसा कहने के समान इच्छा वर्णन करने वाली श्रुति गौणी है अन्यथा—

साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

अर्थ—पुरुष साक्षी चेतन केवल निर्गुण है इत्यादि श्रुति में जो पुरुष का परिणामी न होना कहा है वह पुरुष में होना संभव न होगा ॥ अब इस वर्णन की समीक्षा की जाती है इन सूत्रों में जो ईश्वर का प्रतिषेध कहा गया है वह तर्क से असिद्धि को (सिद्धि न होने को) देखा कर लौकिक ही बाधक होना प्रतिपादन किया गया है यही मानना चाहिये सर्वथा ईश्वर के अस्तित्व प्रतिषेध करने का आशय नहीं स्वीकार करना चाहिये क्योंकि "ईश्वरासिद्धेः" इस सूत्र से पहिले वर्णन किये गये सूत्रों के साथ पूर्व से सम्बन्ध विचारने व अनुवृत्ति ग्रहण करने से महात्मा सांख्याचार्य का यही आशय अच्छे प्रकार से निश्चय किया जाता है यह इस व्याख्यान से निश्चय करना चाहिये कि इस निषेध वर्णन से पहिले से विवेक ज्ञान के साक्षात् उपाय प्रमाण ही हैं इस अभिप्राय से प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द भेद से तीन प्रकार का प्रमाण है

यह कहने के पश्चात् प्रमाणों के विशेष लक्षण वर्णन करने में प्रत्यक्ष के व्याख्यान के प्रारम्भ में प्रत्यक्ष का ऐसा लक्षण वर्णन किया है ॥

यत्सम्बद्धं सत्तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम् अ०१ सू०८९

इन्द्रियेणसहयत्सम्बद्धमर्थाद्व्यवहितसम्बन्धप्राप्तंनिर्दोषंयथार्थरूपं वस्तु तस्ययत्तदाकारोल्लेखिभ्रमविकाररहितं तत्स्वरूपधारिविज्ञानं तत्प्रत्यक्षंप्रमाण-मित्यर्थः ८९ ननुलौकिकजनानामेवप्रत्यक्षएतल्लक्षणस्यव्याप्तित्वंयोगिनामतीता-नागतव्यवहितवस्तुप्रत्यक्षेऽव्याप्तिः सम्बद्धवस्त्वाकाराभावादित्याशङ्क्यतस्या-लक्षणत्वेनसमाधत्ते ॥

अथ भाषानुवादः

जो सम्बद्ध (सम्बन्ध को प्राप्त) सत् (यथार्थ रूप से विद्यमान) है उस का जो तदाकारोल्लेखि विज्ञान वह प्रत्यक्ष है ॥ ८९ ॥

इन्द्रिय वा इन्द्रियों के साथ जो सम्बद्ध है अर्थात् व्यवधानरहित सम्बन्ध को प्राप्त निर्दोष यथार्थ रूप वस्तु है उस का जो तदाकारोल्लेखि अर्थात् भ्रम व विकाररहित तत्स्वरूप धारण करने वाला जो विज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥ ८९ ॥

अब यह शङ्का करके कि लौकिक जनों ही के प्रत्यक्ष में इस लक्षण की व्याप्ति है अर्थात् उन ही के प्रत्यक्ष तक इस की सीमा है योगियों को भूत भविष्यत् व व्यवहित भी प्रत्यक्ष होता है बिना इन्द्रिय सम्बन्ध हुये योगियों के प्रत्यक्ष में इस लक्षण की व्याप्ति नहीं है क्योंकि सम्बद्ध वस्तु के आकार का अभाव है। समाधान वर्णन करते हैं ॥

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः ॥ ९० ॥

ऐन्द्रियकप्रत्यक्षमेवात्रलक्ष्यंयोगिनश्चाबाह्यप्रत्यक्षकाः अतोनदोषोनतत्प्र-त्यक्षेऽव्याप्तिरित्यर्थः ९० वास्तवसमाधानमाह ॥

अस्य भाषानुवादः

योगियों के अबाह्य प्रत्यक्ष होने से दोष नहीं है ९०

इस में ऐन्द्रियक (इन्द्रिय से हुआ वा इन्द्रियसम्बन्धी) प्रत्यक्ष ही लक्ष्य है योगी जन अबाह्य वस्तु के प्रत्यक्ष करने वाले होते हैं इस से दोष नहीं है उन के प्रत्यक्ष में इस की अव्याप्ति का दोषारोपण करना युक्त नहीं है वास्तव समाधान को वर्णन करते हैं ॥

लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वादोषः ॥९२॥

अथवा तदुपिलक्ष्यमेवतथापिनदोषोनाव्याप्तिःयतोलीनवस्तुषु लब्धयोग-जधर्मजन्यातिशयस्ययोगिचित्तस्य सम्बन्धोघटतइत्यर्थः अत्रलीनशब्दःपराभि-प्रेतासन्निकृष्टवाची, सत्कार्यवादिनां ह्यतीतादिकमपिस्वरूपतोऽस्तीतितत्स-म्बन्धःसम्भवेदितिव्यवहितविप्रकृष्टेषु सम्बन्धहेतुविधयालब्धातिशयेतिविशे-षणम्अतिशयश्चव्यापकत्ववृत्तिप्रतिबन्धकतमोनिवृत्त्यादिरूपेतिअस्मिन्सूत्रेवाअ-दोषःएवंपदच्छेदात्नदोषःअयमर्थोगृह्यतेयोगिनामबाह्यप्रत्यक्षेलौकिकजनबुद्ध्या प्रत्यक्षस्याव्याप्तावपिनदोषःवाव्याप्तिरस्त्येवातोऽदोषः इतिकथनादिदंविज्ञापितं लौकिकजनाः स्वैन्द्रियकज्ञान वर्कोभ्यां सर्वंपदार्थान्प्रमातुंयथार्थंज्ञातुंवानशक्नुव-न्तिनवाह्येन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यमात्रज्ञानप्राप्तानां लौकिकजनानांवाह्यविषयके-न्द्रियकज्ञानोद्भवतर्कस्यप्रतिष्ठात्वमस्तियतोलोकएवयोगसाधनेनसामर्थ्यंविशे-षप्राप्तानां योगिनां यदवाह्यप्रत्यक्षत्वंतत्रप्रत्यक्षस्यव्याप्त्यभावोऽनुमानस्या-प्यसम्बन्धान्नतर्कस्यविषयोभवितुमर्हतिपरन्तुप्रत्यक्षस्याव्याप्तौतर्कणासिद्धौसत्यां नवोगिनामवाह्यप्रत्यक्षस्वस्यासत्यत्वंतस्येन्द्रियकप्रत्यक्षस्याविषयत्वात्अतोन-दोषः योगिनामवाह्यप्रत्यक्षवदीश्वरोऽपिप्रत्यक्षतन्मूलकानुमानयोरविषयत्वेनतर्केणासाध्योऽस्त्यतस्तस्यासिद्धेरपिनदोषइतिवक्तुमाशयेनाह ॥९१ ॥

अस्य भाषानुवादः

अथवा लीन वस्तु में प्राप्तहुये अतिशय सम्बन्ध से दोष नहीं है ॥९१ ॥

अथवा जो उन का प्रत्यक्ष भी लक्ष्य ही माना जावै तौ भी दोष नहीं है न अव्याप्ति है क्योंकि योग से उत्पन्न हुये धर्म से अतिशय सामर्थ्यवान् योगी के चित्त का लीन वस्तुओं में सम्बन्ध होता है उस से योगी को उन का प्रत्यक्ष होता है इस से दोष नहीं है यहां लीन शब्द जो वस्तु सन्निकृष्ट नहीं अर्थात् वाह्य इन्द्रिय वा लौकिक जनों के इन्द्रियों से सम्बन्ध को प्राप्त नहीं है उस का वाचक है सत्कार्यवादियों के मत में जो पदार्थ भूतकाल में हो गये हैं वा जो होने वाले हैं वह सब कारणवस्तु में विद्यमान ही हैं इस से उन का सम्बन्ध सम्भव है इस से व्यवहित (व्यवधान को प्राप्त) व विप्र-कृष्ट (दूरदेश में प्राप्त) वस्तुओं में सम्बन्ध होने योग्य होने से प्राप्त "अतिशय" यह विशेषण कहा है व्यापक होने की वृत्ति के रोकने वाले तम वा अज्ञान का निवृत्त होना अतिशय है इस सूत्र में वादोषः शब्द का वा अदोषः ऐसा

पदच्छेद करने से दोष नहीं है यह अर्थ ग्रहण किया जाता है कि योगियों के अबाह्य प्रत्यक्ष में लौकिक जनों की बुद्धि से प्रत्यक्ष की व्याप्ति न होने में भी दोष नहीं है अथवा व्याप्ति है इस से दोष नहीं है। यह कहने से यह विज्ञापित किया है कि लौकिक जन अपने इन्द्रिय सम्बन्धी ज्ञान व तर्क से सब पदार्थों के प्रमाण करने व यथार्थ जानने को समर्थ नहीं हो सक्ते और न बाह्य इन्द्रिय व अर्थ के सन्निकर्ष से जन्य (उत्पन्न होने योग्य) मात्र ज्ञान को प्राप्त हुये लौकिकों के बाह्य ही है विषय जिस का ऐसे इन्द्रिय सम्बन्धी ज्ञान से उत्पन्न हुये तर्क की प्रतिष्ठा है क्योंकि लोक ही में योगसाधन से विशेष सामर्थ्य को प्राप्त हुये जो योगीजन हैं उन का जो अबाह्य प्रत्यक्ष करने का सामर्थ्य है उस में लौकिक प्रत्यक्ष की व्याप्ति का अभाव होने में अनुमान का भी सम्बन्ध न होने से वह तर्क का विषय नहीं हो सक्ता न तर्क से उस की सिद्धि हो सक्ती है परन्तु प्रत्यक्ष की व्याप्ति न होने व तर्क से सिद्ध न होने में योगियों के अबाह्य प्रत्यक्षत्व की असत्यता नहीं होती क्योंकि वह ऐन्द्रियक प्रत्यक्ष का विषय नहीं है इस से लौकिक प्रत्यक्ष में दोष व लौकिक प्रत्यक्ष से असम्भव ज्ञात होने से योगियों के अबाह्य प्रत्यक्ष में दोष नहीं है योगियों के अबाह्य प्रत्यक्ष के समान ईश्वर भी प्रत्यक्ष व प्रत्यक्षमूलक अनुमान का विषय न होने से तर्क से साध्य नहीं है इस से उस की सिद्धि न होने से भी दोष नहीं है यह कहने के अभिप्राय से यह कहा है—

ईश्वरासिद्धेः ९२ ॥

ईश्वरासिद्धेः इत्यपूर्णवाक्यतयापूर्तिमपेक्षतेपूर्वान्नदोषइत्यनुवर्ततेऽनुवृत्त्या पूर्त्यनन्तरमीश्वरासिद्धेर्नदोषइतिसूत्रवाक्यं जायतेऽस्याशयः पूर्वोक्तोऽपिविशेषेणात्रवर्ण्यतेयथायोगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वे लौकिकप्रत्यक्षस्याव्याप्तौ तर्कस्याप्राप्तौ वा तर्केणासिद्धावपिवास्तवेनतस्यसिद्धत्वान्नदोषः एवंलौकिकतर्केणप्रत्यक्षादिप्रमाणेनवाईश्वरस्यासिद्धेर्नदोषः ईश्वरस्यापितत्त्वज्ञानं योगिनामबाह्यातीतानागतव्यवहितवस्तुप्रत्यक्षवद्योगिनएवप्राप्नोतीत्यर्थः इदन्तुलोकेऽप्यनुभूयते यत्किञ्चित्पण्डितेनज्ञातंसिद्धं वस्तुयदिबालकस्तत्स्वबुद्ध्याविचारेणवाज्ञातुन्न शक्नोतितत्स्यबालकबुद्ध्याऽसिद्धत्वात्दोषो न भवति न च तस्यमिथ्यात्वजायते तत्तुसिद्धमेवास्तएवएवं लौकिकतर्केणासिद्धावपीश्वरस्यास्तित्वं नप्रतिषिध्यतेऽयमेवाशयस्तादृश्याचार्यस्य महर्षेरवधार्यो नान्यथायद्ययमेवाशयो न स्यात्तर्हीश्वराभावादित्येवोच्येततृतीयाध्यायेस्वयमेवाचार्येण सहिसर्ववित्सर्वकर्त्ता सू० ५६

'ईश्वरासिद्धेःसिद्धा५७' एवमेोऽप्येतअर्थात्आभ्यांसूत्राभ्यांसन्निधिमात्रेणनि-मित्तकारणसर्वज्ञसर्वकर्तृप्रकारकमीश्वरंस्वीकृत्यतस्यसङ्कल्पपूर्वककर्तृत्वमुपादान कारणत्वञ्चप्रतिषेधितवान्सांख्याचार्यःअन्यच्च पञ्चमाध्याये समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता सू० ११६ इत्युक्तवान्अत्र भाष्यादिषुजीवात्मनोब्रह्मस्वरूपत्वस्वीकृत-मतोऽपिजीवात्परोब्रह्मणस्स्वीकारोवगम्यतेनननेश्वरः इति सूत्रेशेषः इतिमत्वा ईश्वरासिद्धेर्नेश्वरएवं सूत्रार्थोवाच्यःइतिवदेत्तेनैवंवाच्यंव्याकरणेऽन्येषु च सर्वदर्शन ग्रंथेषुपूर्वसूत्रात्परसूत्रेप्राप्यानुवृत्तिर्गृह्यतेपूर्वसम्बन्धेन ग्राह्यानुवृत्तिंपरित्यज्यशा-स्त्रशैलीविरुद्धस्वकल्पनयाऽध्याक्षेपेण व्याख्यानमाग्रहभूतमसङ्गतमप्रमाणरूपमित्य-वधेयमस्तिननुकार्यंचाकारणं कर्मणाकर्तृत्वनुमीयतएव अतोजगत्कार्येणतत्कारणे-श्वरस्यानुमानंभवत्यतः प्रमाणतर्काभ्यामीश्वरो न सिद्ध्यतिनैवंवाच्यमितिपू-र्वपक्षनिराकरणार्थं स्वपक्षसिद्धयर्थमग्रिमसूत्रैस्तर्केणासिद्धिप्रदर्शनार्थमाहबद्धमुक्त-योरन्यतराभावान्नतत्सिद्धिरित्यादिद्वतिराधान्तः प्रयोजनमात्रमर्थात् साङ्ख्या-चार्येरत्रसर्वयेश्वरप्रतिषेधस्याताशयत्वमात्रमत्रप्रतिपादितं ईश्वरविषयेविशेष-ज्ञानमस्मन्निर्मितवेदान्तभाष्यदर्शनादवगन्तव्यमिति इतीश्वरविषये सांख्यसूत्रा-णांव्याख्यानेश्रीमत्पण्डितप्रभुदयालुनिर्मितेसमीक्षाकरेतृतीयोऽध्यायः ३ ॥

अस्यभाषानुवादः ॥

ईश्वर की सिद्धि न होने से ॥

ईश्वर की सिद्धि न होने से यह वाक्य अपूर्ण है इस से इस में पूर्णता की आवश्यकता है पूर्व सूत्र से दोष नहीं है यह अनुवृत्ति से ग्रहण किया जाता है अनुवृत्ति से वाक्य पूर्ण करने पर ईश्वर की सिद्धि न होने से दोष नहीं है ऐसा सूत्र वाक्य होता है इस का आशय पूर्व ही वर्णन किया गया है तथापि यहां विशेषता से वर्णन किया जाता है जैसे योगियों के अबाह्य प्रत्यक्ष होने में लौकिक प्रत्यक्ष की व्याप्ति न होने वा तर्क से सिद्ध न होने पर भी वास्तव में उसकी सत्यता होने से दोष नहीं है ऐसे ही लौकिक तर्क से व प्रत्यक्ष आदि प्रमाण से ईश्वर की सिद्धि न होने से दोष नहीं है ईश्वर का भी तत्वज्ञान योगियों के अबाह्य अतीत अनागत (भूत भविष्यत्) व व्यवहित वस्तुओं के प्रत्यक्ष के समान योगी ही को प्राप्त होता है यह आशय है और लोक में ऐसा अनुभूत होता है कि कोई वस्तु जो पण्डित ज्ञानवान् की बुद्धि में सिद्ध व निश्चित है उस को जो बालक अपनी बुद्धि व अपने विचार से न जान सकने से असिद्ध समझता है तो बालक की बुद्धि से असिद्ध होने से दोष नहीं

होता है न उस वस्तु की असत्यता होती है वह तौ सिद्ध विद्यमान ही है ऐसे ही लौकिक तर्क से असिद्ध होने पर भी ईश्वर के अस्तित्व का प्रतिषेध नहीं होता यह आशय महर्षि साङ्ख्याचार्य का निश्चय करने योग्य है अन्यथा नहीं क्योंकि जो यही आशय न होता तौ ईश्वराभावात् ऐसा कहते अर्थात् ईश्वर की सिद्धि न होने से ऐसा न कहते ईश्वर के अभाव से अर्थात् न होने से ऐसा कहते और तीसरे अध्याय में आप ही सांख्याचार्य ने जो ऐसा वर्णन किया है–

सहिसर्ववित्सर्वकर्त्ता सू० ५६ ॥ ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ॥५७॥

अर्थ–वह सब जानने वाला सब करने वाला है ५६ ऐसे ईश्वर की सिद्धि सिद्ध है ५७ ऐसा वर्णन न करते अर्थात् इन सूत्रों से सन्निधिमात्र से निमित्त कारण सर्वज्ञ व सब करनेवाला ईश्वर को स्वीकार करके उस के सङ्कल्प पूर्वक कर्त्ता होने और उपादान कारण होने का प्रतिषेध किया है और पांचवें अध्याय में यह कहा है–

समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता ॥

अर्थ–समाधिसुषुप्ति व मोक्षों में ब्रह्म रूपता होती है सू० ११६ अर्थात् समाधि आदि में जीवात्मा को ब्रह्म रूपता प्राप्त होती है अर्थात् ब्रह्म के समान शुद्ध चेतन रूप इन्द्रियसम्बन्धरहित होता है इस से भी जीव से पर ब्रह्म को स्वीकार करना सिद्ध होता है जो यह कहा जाय कि ईश्वर नहीं है यह सूत्र में शेष है ऐसा मान कर ईश्वर की सिद्धि न होने से ईश्वर नहीं है ऐसा सूत्र का अर्थ कहना चाहिये तौ ऐसा कहना अयुक्त है क्योंकि व्याकरण और अन्य सब दर्शन ग्रंथों में पूर्व सूत्र से पर सूत्रों में प्राप्य अनुवृत्ति का ग्रहण किया जाता है सम्बन्ध से ग्रहण करने योग्य अनुवृत्ति को त्यागकरके शास्त्र की शैली के विरुद्ध अपनी कल्पना से आक्षेप करके व्याख्यान करना आग्रह रूप असंगत अप्रमाण रूप ही निश्चय करने योग्य है। जो यह कहा जावे कि कार्य से कारण व कर्म से कर्त्ता अनुमान किया जाता है इससे जगत् कार्य को देखकर उस के कारण व कर्त्ता ईश्वर का अनुमान सम्भव होता है इस से प्रमाण व तर्क से ईश्वर नहीं सिद्ध होता है ऐसा न कहना चाहिये इस पूर्वपक्ष के निराकरण (खण्डन) के लिये और अपना पक्ष सिद्ध करने के लिये अगले सूत्रों से तर्क से ईश्वर की असिद्धता दिखाने का प्रतिपादन के प्रयोजन से यह वर्णन किया है ॥

मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः ॥

इत्यादि यह सिद्धान्त है यहां प्रयोजन मात्र अर्थात् सांख्याचार्य का सर्वथा ईश्वर के प्रतिषेध करने का आशय न होना मात्र कहा गया है । ईश्वर विषय में विशेष ज्ञान हमारे निर्माण किये हुवे वेदान्त भाष्य से प्राप्त करना चाहिये–

इतिश्रीनत्यपण्डित प्रभुदयालुनिर्मितेसमीक्षाकरे ईश्वरविषये सांख्यसूत्राणां व्याख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथवेदान्तसूत्रविशेषाणां प्रायआधुनिकभाष्यटीकाकारैः कृतायुक्तव्याख्यानस्य समीक्षाप्रारभ्यतेवेदान्तदर्शनस्यप्रथमाध्यायस्यप्रथमपादे एकविंशतितंस्यकमिदंसूत्रम् ॥

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥

शांकरभाष्येश्रीशंकराचार्यैः कृतमस्यसूत्रस्येदं व्याख्यानं इदमाम्नायतेछान्दोग्ये " अथयएषोन्तरादित्येहिरण्मयः पुरुषोदृश्यते हिरण्यश्मश्रुहिरण्यकेश आप्रणखात्सर्वएवसुवर्णः तस्ययथाकप्यासपुण्डरीकमेवमक्षिणीतस्योदितिनाम स एषसर्वेभ्यः पाप्मभ्यउदितउदितिहवैसर्वेभ्यः पाप्मभ्यःयएवंवेद " तत्रसंशयः किंविद्याकर्मातिशयात्प्राप्तोत्कर्षः कश्चित्संसारीजीव. सूर्यमण्डलेचक्षुषिचोपास्यत्वेनश्रूयतेकिंवानित्यसिद्धःपरमेश्वरः किन्तावत्प्राप्तंसंसारीतिकुतः रूपत्वश्रवणात् यएषोन्तरादित्येहिरण्मयइत्यादि श्रुतिवाक्यात् नचपरमेश्वरस्यरूपवत्त्वं युक्तं "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" इतिश्रुतेः अनाधारस्यतस्यसर्वाधाररूपस्ययएषोन्तरादित्येयएषोन्तरक्षिणिइत्याधारश्रवणाच्च एवंपूर्वपक्षसंस्थापनानन्तरमिदमुत्तरमुक्तम् परमेश्वरएवअन्तरादित्येअक्षणिचोपास्यः न संसारीकुतः तद्धर्मोपदेशात् तस्यपरमेश्वरस्य धर्माइहोपदिष्टास्तद्यथातस्योदितिनामइतिश्रावयित्वाअस्यादित्यस्यपुरुषस्यनामसएषसर्वेभ्यः पाप्मभ्यउदितः इतिसर्वपापापगमेननिर्वक्ति सर्वपाप्मापगमश्चपरमात्मनएवश्रूयते। आत्माअपहतपाप्माइत्यादौ इत्यादिहेतुभिः परमात्माएवउपास्यइतिस्थितं यएषोन्तरादित्येइत्यादि, अस्याः श्रुतेरयमर्थः आदित्येअन्तरक्षणिचहिरण्मयः प्रकाशमयः हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेशः प्रकाशमयः श्मश्रुर्यस्यप्रकाशमयः प्रकाशरूपोवाकेशोयस्य आप्रणखात्सर्वएव सुवर्णः प्रकाशरूपःयःपुरुषः दृश्यतेतस्ययथाकप्यासंपुण्डरीकमेवमक्षिणी अर्थात् कंजलंपीयते (पीङ्पाने इतिधातोः). इतिकपीनपुंसकलिङ्गत्वाद्ध्रस्वत्वेकपि, आस्तेइत्यासंकपिचतदासंकप्यासमर्थात्स्वमूलनालाभ्यांजलंपीयतेकोऽर्थः पिव-

त्यर्थात्ताभ्यां जलं पीत्वार्द्रत्वंप्रफुल्लनञ्चप्राप्तमस्तितदेववास्तेयत्कप्यासंमी दृशंपुण्डरीकमर्थात्नस्वनालाच्छिन्नमनार्द्रं शोभाह्रास्यप्राप्तं किन्तुनालस्थपूर्व शोभाप्राप्तंपुण्डरीकंयथाएवंतस्यपुरुषस्याक्षिणीयद्वाकंजलंग्रासउपवेशनमिति धा-तुरपिपूर्वकः वष्टिभागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोरितिवचनादपेरकारलोपः क-प्यासंसलिलस्थमित्युक्तं भवतिअथवासूर्यः स्वकिरणैर्जलमाकर्षत्यतः कपिःसूर्यः तस्यासंमण्डलंयथाआदित्यमण्डलंहृदयपुण्डरीकञ्चपरमात्मनउपासनस्थानंतथा तस्योपासकस्याक्षिणीतस्योदितिनामतस्यपुरुषस्यउदितिनामउत्इतिनामेत्य-र्थः उन्नामनिर्वक्तिसएषसर्वेभ्यः पाप्मभ्यउदितः उद्गतः सर्वपाप्माऽस्पृष्टइत्यर्थः शांकरभाष्यटीकायां श्रीगोविन्दानन्देनतस्ययथाकप्यासंपुण्डरीकमेवमक्षिणी इत्यस्यश्रुतिवाक्यावयवस्यायमर्थउक्तः तस्येतिकपेर्मर्कटस्यासंपुच्छभागोत्यन्तते जस्वीतत्तुल्यं पुण्डरीकं यथादीप्तिमदेवंतस्यपुरुषस्याक्षिणीसद्योविकसितरक्ता भोजनयनइत्यर्थःनायमर्थोग्राह्यः वीभत्सार्थापत्तेरन्योत्तमोपमाकथनेश्रुतिवक्तुर-क्षमत्वावगमात्रक्तवर्णातिरिक्तान्यवर्णोवत्वमपिकपेर्मुखासयोःसंभवात्पुण्डरी-कशब्दस्यसिताम्भोजेनियतत्वादसंगतेरनुत्तमत्वादिति ॥

अनुकृतेस्तस्य च अ० १ पा० ३ सू० २२ ॥

वेदान्तदर्शनेप्रथमाध्यायेतृतीयपादेदहराधिकरणेऽर्थात् हृदयपुण्डरीकस्याम स्थदहरशब्दवाच्यस्योपासनवर्णनेदहरउत्तरेभ्यः इत्यारभ्यानुकृतेस्तस्य च एत-त्सूत्रपर्य्यन्तं विमृश्यहेतुभ्योदहराकाशशब्देन परब्रह्मएवोपास्यम् इत्यवधारितं दहरउत्तरेभ्यः इत्यस्यायमर्थः दहराकाशःपरब्रह्मकुतःउत्तरेभ्योवाक्यगतेभ्योहेतु-भ्यः एषआत्माऽपहतपाप्माविजरोविमृत्युर्विशोकोविजिघत्सोऽपिपासस्सत्यका मःसत्यसङ्कल्पइतिनिरुपाधिकात्मत्वमपहतपाप्मत्वादिकंसत्यकामत्वं सत्यसङ्क-ल्पत्वंचेतिदहराकाशे श्रूयमाणगुणादहराकाशं परं ब्रह्मेतिज्ञापयन्तिइत्यादि-निरूपणानन्तरमुपसंहारेऽनुकृतेस्तस्यच २१ "अपिस्मर्यते" २२ इमेसूत्रेउक्तेस्तः तत्रानुकृतेस्तस्यचअस्यायमर्थः तस्यदहराकाशस्यपरब्रह्मणोऽनुकारादपहतपाप् मत्वादिगुणकोविमुक्तबन्धःप्रत्यगात्मानदहराकाशः तदनुकारस्तत्साम्यंतथाहि प्रत्यगात्मनोविमुक्तस्यपरब्रह्मानुकारःश्रूयतेयदापश्यःपश्यतिरुक्मवर्णंकर्तारमीशं पुरुषंब्रह्मयोनिंतदाविद्वान्पुण्यपापेविधूयनिरञ्जनः परमं साम्यमुपैतीतिअतो-ऽनुकर्त्ताप्राणपतिवाक्यनिर्दिष्टःजीवःअनुकार्यंब्रह्मदहराकाशःकेचित् अनुकृतिर-नुभानमित्युक्त्वाअनुकृतेस्तस्य च अपिस्मर्यतेइतिसूत्रद्वयमधिकरणान्तरं तमेव

भान्तमनुभातिसर्वंतस्यभासासर्वमिदंविभातीत्यस्याःश्रुतेःपरब्रह्मपरत्वनिर्णयाय प्रवृत्तंवदस्तितत्तु " शूद्रस्यस्वादिगुणकोपपत्तेः " द्युभ्वाद्यायतनंस्वशब्दात् १। इत्यधिकरणद्वयेनतस्यप्रकरणस्य परब्रह्मविषयत्वप्रतिपादनात्ज्योतिश्चरणा- भिधानादित्यादिषुपरस्यब्रह्मणोभारूपत्वावगतेश्चपूर्वपक्षानुत्थानादयुक्तं भ्रत्रा- क्षरवैरूप्यंचअर्थात्अनुकृतिरनुभानमितिकथनमयुक्तंकरोतिभाष्योरेकार्थस्याभा- वात् अस्मिन्नेवपादेब्रह्मविद्याधिकारनिरूपणेशूद्रस्याधिकारनिरूपणविषयक- निम्नोक्तानिसूत्राणिसन्ति–

शुगस्य तदनादरश्रवणात्तदाद्रवणात्सूच्यते हि ॥३४॥

अस्य व्याख्यानम्

देवादीनामपिब्रह्मविद्यायामधिकारंनिरूप्यशूद्रस्यापितस्यामधिकारोस्ति- नवास्तीतिविचार्यतेकिंयुक्तमस्तीतिप्रथितंत्यसामर्थ्यप्रयुक्तत्वादधिकारस्य शूद्र- स्यापितत्संभवात् इतिहासपुराणेषुविदुरादयस्तपोनिष्ठास्तथाछान्दोग्योपनिष- द्यपिसंवर्गविद्यायां शूद्रस्यापिब्रह्मविद्याधिकारः प्रतीयतेसुश्रूपुंहिजानश्रुतिमा- चार्योरैक्वः शूद्रेत्यामन्त्रयतिस्मब्रह्मविद्यामुपदिशतिस्मआजहारेमाःशूद्रइत्यादि- अतःशूद्रस्याप्यधिकारोविज्ञायतेइत्येवंप्राप्तेसंवर्गविद्यायांरैक्वस्यजानश्रुतिंप्रति हेशूद्रइतिकथनंनजानश्रुतेः शूद्रवर्णत्वेहेतुतोअधाय्येयतस्तस्यशूद्रत्वमवगच्छेदि- तिप्रतिपादनायेदमाहशुगस्येत्यादिअस्यसूत्रवाक्यस्यायमर्थः सदनादरश्रवणात् कोर्थःतेषांहंसानांतेभ्योहंसेभ्योवाअनादरश्रवणात्अस्यजानश्रुतेःशुक् अर्थात् शु- गुत्पन्नातासूचीरैक्वःजानश्रुतिंप्रतिहेशूद्रआजहारेमाःशूद्रइत्यत्रशूद्रशब्देनसूचितवा- नुस्वपरोक्षज्ञानस्य विज्ञापनायेतिगम्यते अतोरैक्वेनोक्तशूद्रशब्देन जानश्रुतेः शुक् (शोकः) सूच्यतेकथंपुनःशूद्रशब्देन शुगुत्पन्नासूच्यतेइत्युच्यतेतदाद्रवणात् शुचमा- द्रवणात् शुचावारैक्वमभ्याद्रवणात् जानश्रुतिस्तेषांहंसानांतयोर्हंसयोर्वावचनं श्रु- त्वाशुचमभिदुद्रावशुचावारैक्वमभिदुद्रावेतिशूद्रावयवार्थसंभवात् शुचेर्द्रइतिरप्र- त्ययेधातोश्चदीर्घचकारस्यदकारेशूद्रइतिभवतिअस्यव्याख्यानस्यवैशद्यार्थछान्दो- ग्योपनिषदुक्तजानश्रुतिराख्यायिकाऽऽकांक्षिताऽतस्तासंक्षेपेण अत्रोच्यतेजानश्रु- तिनामावहुद्रव्यप्रदोवहुअन्नप्रदश्चअभूवतस्यधार्मिकाग्रेसरस्य धर्मेणप्रीतयोः कयो- श्चिन्महात्मनोरस्यब्रह्मजिज्ञासामुत्पादयितवोर्हंसरूपेणनिशायामस्याविदूरेग- च्छतोरन्यतरइतरमुवाचभोभोभल्लाक्षभल्लाक्षजानश्रुतेः पौत्रायणस्यसमंदिवाज्यो- तिरासतन्मांप्रसाङ्क्षीस्तत्वामाप्रधाक्षीदितिएवं जानश्रुतिप्रशंसारूपंवाक्यमुप- श्रुत्यापरोहंसःप्रत्युवाचकंवरेनमेतत्सन्तंसयुग्वानमिवरैक्वमात्थेतिकंसत्तमेनंजान-

श्रुतिंसयुग्वानं रैक्वंब्रह्मज्ञमिवगुणश्रेष्ठमेतदात्थसब्रह्मज्ञो रैक्वएवलोकेगुणवत्तरो, ऽ-
भूताधर्मेणसंयुक्तस्याप्यस्यजानश्रुतेरब्रह्मज्ञस्यकोगुणः यद्गुणाजनितंतेजोरैक्वतेज-
इवमांदहेदित्यर्थः एवमुक्तेनपरेणक्वोऽसौरैक्वइतिपृष्टोलोकेयत्किञ्चित्साध्वनुष्ठित-
कर्मयच्चसर्वंचेतनाङ्गं विज्ञानन्तदुभयंयदीयज्ञानकर्मान्तर्भूतं सरैक्वइत्याहतदेतद्धंस-
वाक्यब्रह्मज्ञानविधुरतयाऽत्मनिन्दागर्भन्तद्वतयाचरैक्व प्रशंसारूपंजानश्रुतिरुप-
श्रुत्यतत्क्षणादेवक्षत्तारं रैक्वान्वेषणायप्रेष्यत विदित्वाऽगतेस्वयमपिरैक्वमुपसद्य-
गवांषट्शतंनिष्कमश्वतरीरथञ्चरैक्वायोपहृत्यरैक्वंप्रार्थयामासअनुमएतांभगवोदेवतां
शाधियान्देवतामुपास्सेइतितदुपास्यां परां देवतांमामनुशाधीत्यर्थःइतिसचरैक्वः
स्वयोगमहिम्नविदितलोकत्रयोजानश्रुतेर्ब्रह्मज्ञानविधुरतानिमित्तानादरगर्भहंस-
वाक्यश्रवणेनशोकाविष्टतान्तदनन्तरमेवब्रह्मजिज्ञासयोद्योगं चविदित्वाऽस्यब्रह्म-
विद्यायोग्यतामभिज्ञायचिरकालसेवांविनाऽर्थप्रदानेन शुश्रूषणास्यास्ययावच्छ-
क्तिप्रदानेनब्रह्मविद्याप्रतिष्ठिताभवतीतिमत्वातमनुगृह्णन्नस्य शोकाविष्टस्योपदे-
शयोग्यताख्यायिकांशूद्रशब्देनामन्त्रणेनज्ञापयन्निदमाह अपाहरत्वं शूद्रतवैवसह-
गोभिरयंरथस्तथैवसहगोभिरस्त्वितिसहगोभिरयंरथस्तवैवास्तुनैतावताऽसच्छूद्रत्वेन
ब्रह्मजिज्ञासोःशोकाविष्टस्यतवब्रह्मविद्याप्रतिष्ठिताभवतीत्यर्थः सचजानश्रुतिर्भू-
योपिस्वशक्त्यनुगुणमेवगवादिकंधनकन्यां च प्रदायउपससादसरैक्वः पुनरपितस्य-
योग्यतामेवख्यापयन् शूद्रशब्देनामन्त्र्याहआजहारेमाः शूद्राऽनेनमुखेनालापयि-
ष्यथ इति इमानिधनानिशक्त्यनुगुणान्याजहर्थअनेनैवद्वारेणचिरसेवयाविनापि
मांत्वमभिलषितब्रह्मोपदेशरूपवाक्यमालापयिष्यसीत्युक्त्वा तस्माउपदिदेशअ-
तःशूद्रशब्देनविद्योपदेशयोग्यताख्यापनार्थं शोकएवास्यसूचितोनचतुर्थवर्णत्व-
मितिअतोजानश्रुतेःशूद्रशब्दामन्त्रणदृष्टान्तेनशूद्रस्याधिकारसिद्धिः ॥

क्षत्रियत्वावगतेश्च ॥३५॥

क्षत्तृप्रेषणाद्बहुधनप्रदानाद्यैश्वर्ययोगाच्चजानश्रुतेः क्षत्रियत्वावगतिप्रतीतेर्जा-
नश्रुतिर्नशूद्रोऽतस्तल्लिङ्गाच्छूद्रस्याधिकारानुमाननयुक्तम् ॥

उत्तरत्रचैत्ररथेनलिङ्गात् ॥ ३६ ॥

जानश्रुतेरुपदिश्यमानायामस्यामेवसम्वर्गविद्यायाम् उत्तरत्रकीर्त्यमानेना
भिप्रतारिनाम्नाचैत्ररथेन (चित्ररथवंशोत्पन्नेन) क्षत्रियेणास्यजानश्रुतेः क्ष-
त्रियत्वमनुमीयतेकथंशौनकंचकापेयम् (कपिगोत्रपुरोहितं) अभिप्रतारिणंचका-
क्षसेनिं (कक्षसेनापत्यं) परिविष्यमाणौब्रह्मचारीविभिक्षइत्यादिनाब्रह्मचारि-

न्नेद्मुपास्महइत्यन्तेनकापेयाभिप्रतारिणोर्भिक्षमाणस्यब्रह्मचारिणश्चसम्बर्गवि
द्यासम्बन्धित्वं प्रतीयते तेषु चाभिप्रतारीक्षत्रियः इतरौब्राह्मणौअतोस्यांविद्या
यांब्राह्मणस्यतदितरेषु च क्षत्रियस्यैवान्वयोदृश्यतेनशूद्रस्यअतोऽस्यांविद्याया
मन्वितत्वाद्रैक्षाद्ब्राह्मणादन्यस्य जानश्रुतेरपिक्षत्रियत्वमेवयुक्तं नशूद्रत्वंनन्व-
स्मिन्प्रकरणेऽभिप्रतारिणश्चैत्ररथत्वं क्षत्रियत्वञ्चनश्रुतं तत्कथमस्याभिप्रतारिण-
श्चैत्ररथत्वङ्कथंवाक्षत्रियत्वतत्राहलिङ्गादितिअथहशौनकंचकापेयमभिप्रतारिणं
चकाक्षसेनिमित्यभिप्रतारिणः कापेयसम्बन्ध प्रतीयतेअन्यत्रचएतेनवैचैत्ररथङ्का
पेयाअयाजयन्नितिकापेयसम्बन्धिनश्चैत्ररथत्वंश्रूयतेतथाचैत्ररथस्यक्षत्रियत्वन्त्व-
स्माच्चैत्ररथोनामैकक्षत्रपतिरजायतेतिअतोऽभिप्रतारिणश्चैत्ररथत्व क्षत्रियत्वंच
गम्यते अतश्चैत्ररथेनलिङ्गाज्जानश्रुतेःक्षत्रियत्वानुमानान्नजानश्रुतेर्हष्टान्तेनशू-
द्रस्याधिकारोऽवगम्यते ॥

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च ॥ ३७ ॥

इतश्चनशूद्रस्याधिकारोयद्विद्याप्रदेशेषूपनयनादयः संस्काराःपरामृश्यन्तेतं
होपनिन्येहेभगवइत्यादितंहोपनिन्येअर्थात् तंशिष्यमाचार्यउपनीतवानित्यर्-
थः नारदोपिविद्यार्थीमंत्रमुच्चारयन्सनत्कुमारमुपगतमित्याहहेभगवः (भगवन्)
अधीहीतिउपदिदेशेतिशूद्रस्य संस्काराभावोभिलप्यतेशूद्रश्चतुर्थोवर्णएकजातिर्न
संस्कारमर्हतिअतश्चनशूद्रस्याधिकारः ॥

तदभावनिर्धारणे च प्रवृत्तेः ॥३८॥

छान्दोग्येजावालस्येयमाख्यायिकाश्रूयतेमृतपितृकः सत्यकामाख्योजावालो
मातरमपृच्छतकिं गोत्रोहमितितमातोवाचभर्तृसेवाव्यग्रतयाहमपितवपितुर्गोत्रं
न जानामि जावालातुनाम्नाहमस्मिसत्यकामनामात्वमसीतिएतावज्जानामि
अत.सजावालः (जावालायाअपत्यं) गोतममागत्यतेनकिंगोत्रोसीतिपृष्टउवाच
नाहंगोत्रंवेद्मिनमातावेत्तिपरंतुमेमात्राकथितं उपनयनार्थमाचार्यंगत्वासत्यका-
मोजावालोस्मीतिब्रूहीतिगोतमोऽनेनसत्यवचनेनतस्य शूद्रत्वाभावोनिर्धारितः
अब्राह्मणएतत्सत्यंविविच्यवक्तुंनार्हतीतिनिर्धार्यजावालमुपनेतुमनुशासितुंचप्र-
वृत्तेजावालस्येमांकथामनुसंधायेत्याशंक्यत्वज्ञातगोत्रंजावालंप्रतिगोतमस्योप-
नयनब्रह्मविद्योपदेशाभ्यांप्रवृत्तिः शूद्रस्याप्यधिकारंसूचयतीत्याहतदभावनिर्धा
रणेचप्रवृत्तेःसत्यवचनेनतस्यशूद्रत्वस्याभावनिर्धारणेप्रवृत्ते प्रवृत्तिहेतोश्चशूद्रस्या
धिकारोनास्ति ॥

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च ॥ ३९ ॥

यद्युहवाएतच्छ्मशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम् अतएवाध्ययनप्रतिषेधोयस्यसमीपेऽपिनाध्येतव्यंभवति सकथंश्रुतिमधीयीत । अतः श्रवणार्थप्रतिषेधादपिशूद्रस्यानधिकारोऽवगम्यते । अधुनास्यानधिकारव्याख्यानस्यतत्त्वं निर्णीयतेशूद्रस्ययदनधिकारत्वमुक्तं तच्छूद्रस्यसेवाकारिकुलोत्पत्तित्सामान्यतः कुलसंगकर्मविद्याभावहेतुभ्यस्तस्मिन्नुत्कृष्टबुद्ध्यभावे तेन सूक्ष्मलक्ष्यवस्तुदुर्ज्ञेयत्वात्तस्मिन्नपात्रेऽश्रद्धावस्तूपदेशनिःफलत्वविचारतोविज्ञेयम् । सद्गुणवतः श्रद्धालोर्धार्मिकस्य मेधाविनः शूद्रस्याधिकारोऽस्त्येवेत्यवधेयंगुणकर्मणामेवोत्कृष्टनिकृष्टयोर्मुख्यहेतुत्वमिति युक्तिस्मृतिश्रुतिप्रमाणसिद्धसिद्धान्तइतिनिश्चयः अतो गुणकर्मानुसारेणैव वर्णानां श्रेष्ठत्वंजघन्यत्वञ्च विज्ञेयमस्तित्कुलोत्पत्तिमात्रमुत्तमत्वानुत्तमत्वयोर्मुख्यंकारणं भवितुमर्हति ब्राह्मणकुलोत्पन्नोयवनेन सहभोजनाद्वान्यनिषिद्धपापाचरणात्पतित इत्युक्तोदण्डप्राप्तः कुलात्स्ववर्णात्त्यक्तोवेति लोकेदृश्यते । यदिकुलोत्पत्तित्वस्यमुख्यत्वं स्यात् तर्हि सर्वनिकृष्टगुणप्राप्तावपि शरीरस्थितौमत्यांयत्कुलोत्पन्नस्तस्यैववर्णत्वं धर्मत्वं पदत्वञ्च स्वीकार्यं न कस्माच्चिद्दुर्गुणात्श्वपचयवनादिसहभोजनाद्वातस्यपातित्यं संभवति नचैवंलोके व्यवहारो दृश्यते किन्तूत्तमकुलोत्पन्नोऽधर्मचर्य्यया निकृष्टोदण्ड्यस्त्याज्योभवति अतोलोकेऽपि गुणकर्मणामेवमुख्यत्वमनुभूयते यथाश्रेष्ठवर्णोऽधर्मचर्य्ययानिकृष्टोभवतीत्येवमन्तव्यः सतांधार्मिकाणामाप्तानां पक्षपातरहितानां न्यायतोऽयमेव सिद्धान्तोभवितुमर्हति एवं युक्त्यानिश्चीयते ब्रह्मसूत्रनिर्मातुर्महर्षेरप्ययमेवसिद्धान्तोऽवधार्य्यःकथं तदभावनिर्धारणेचप्रवृत्तेरत्रसूत्रेसत्यकथनमात्राद्गौतमोमहर्षिरज्ञातगोत्रस्य जाबालस्य शूद्रत्वानिर्धारणानन्तरं तमुपनेतुमुपदेष्टुञ्च प्रवृत्त इति विज्ञापनात्सत्यकथनंनवर्णत्वं गोत्रत्वं वाऽस्तिउत्तमगुणत्वं धर्मत्वमेवतस्यैव शूद्रत्वाभावनिर्धारणहेतुत्वं महर्षिणा स्वीकृतम् अतोयस्यवर्णतो गुणकर्मतोऽपि शूद्रत्वंतस्याधिकारो नास्ति यस्यतुसत्यत्वादिधर्मगुणश्रद्धालुत्वसत्कर्मभिर्जाबालवच्छूद्रत्वाभावो निर्धारितः तस्याधिकारोऽस्त्येवयुक्तितोहेतुतश्शब्दतोवानकिमपिप्रमाणं तस्याधिकारनिषेधस्य निश्चीयते । ननु काश्चित्स्मृतिष्वीदृशानिनिषेधवाक्यान्युपलभ्यन्ते "अथास्यवेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूर्णमिति यद्युहवाएतच्छ्मशानं यच्छूद्रं तस्माच्छूद्रसमीपेनाध्येतव्यमितिभवतिचोच्चारणेजिह्वाछेदो धारणेशरीरभेदइति" अतश्शूद्रस्यानधिकारत्वमवगम्यतेइतिचेन्मैवं नेदृशानिवाक्यान्ययुक्तानिकस्याप्याप्तस्यभवितुमर्हन्त्यतः केश्चित्पक्षपातग्रस्तहृदयैःस्वार्थसाधकैः प्रक्षिप्तान्येवज्ञातव्यानियतोवेदश्रवणंनि-

अर्थात् सर्वेषांहिताय पक्षपातरहितस्य ममेयवाणीविद्यतेसत्पुरुषाभिः सर्वेभ्यो जनेभ्योवक्तव्या अर्थात्श्रावणीयापाठनीयेत्यर्थः केचिद्वदन्तिजनशब्देनब्राह्मणएव वा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याएवग्राह्याः तेषामेवाधिकारत्वातन्नैतद्युक्तं यतोजनेभ्य इतिशब्दात्परेभागेमन्त्रेपृथक्पृथक् नामान्युक्तानिसन्ति यदिपरमेश्वरोब्राह्मणेभ्यो वा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यमात्रेभ्योऽधिकारमदास्यत् तेषामेवाधिकारोऽभविष्यत्त र्हिशूद्रादीनां पृथक्त्वेन प्रत्येकस्यनामनाऽवदिष्यत् अतोविधिरेवावधार्य्योवेद प्रमाणानुकूलतयाऽन्यत्रोक्तविधिवाक्यानामपिसबलत्वमवगम्यते न्यायतश्चाप्तो क्तप्रमाणतः श्रुतितश्च विधिसिद्धेर्नसर्वथानिषेधस्यप्रामाण्यं स्मृतिवाक्यस्यचरितार्थत्वायनिषेधोऽप्युक्तप्रकारेणमन्तव्यो इतीतिस्थितंसमाप्तञ्चेदमधिकारनिरूपणम् ॥

इतिश्रीमत्प्रभुदयालुनिर्मिते समीक्षाकरे चतुर्थोऽध्यायः । ४ ।

एषां भाषानुवादः ॥

अथ वेदान्त के विशेष सूत्रों का जो प्रायः आधुनिक भाष्य वा टीकाकारों से अयुक्त व्याख्यान किया गया है उस की और व्याख्यान में उक्त श्रुति के व्याख्यान की समीक्षा प्रारम्भ की जाती है वेदान्त दर्शन के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद में यह सूत्र है ॥

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥

अर्थ—अन्तर में उस के धर्म के उपदेश से ॥ २१ ॥

शांकरभाष्य में श्रीशङ्कराचार्य जी ने इस सूत्र का व्याख्यान इस प्रकार से किया है छान्दोग्य में ऐसावर्णन है ॥

यएषोन्तरादित्येहिरण्मयः पुरुषःदृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेशआप्रणखात् सर्वएवसुवर्णः तस्ययथाकप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदितिनामसएषसर्वेभ्यः पाप्मभ्यउदिति उदिति हवैसर्वेभ्यःपाप्मभ्यःयएवं वेद ॥

अर्थ—जो यह सूर्य के मध्य में प्रकाशमय पुरुष देखाजाता है जिस की प्रकाशमय डाढ़ी है प्रकाश ही जिस के केश हैं नख पर्यन्त सब प्रकाश ही रूप है कप्यास कमल के समान अर्थात् वृक्ष में लगा हुआ फूले कमल के समान जिसके नेत्र हैं उस का उदिति नाम है वह सब पापों से रहित है जो उस को ऐसा मानता है वह सब पापों से छूट जाता है । इस में यह संशय

है कि विद्या वा कर्म के अतिशय से उत्कृष्टता को प्राप्त कोई संसारी जीव है जो सूर्यमण्डल व नेत्र में उपास्य होना सुना जाता है अथवा नित्य सिद्ध परमेश्वर है। पहले ऐसा ज्ञात होता है कि संसारी है किस हेतु से-रूपवान् होना सुनने से अर्थात् जो यह सूर्य में प्रकाशमय है इत्यादि श्रुतिवाक्य से परमेश्वर को रूपवान् होना युक्त नही है क्योंकि श्रुति में शब्दरहित स्पर्श रहित रूपरहित नाशरहित कहा है आधाररहित सब के आधाररूप का जो यह सूर्य में देखा जाता है ऐसा आधार सुनने से भी युक्त नही है ऐसा पूर्व पक्ष स्थापन करके यह उत्तर वर्णन किया है कि परमेश्वर ही सूर्य में व नेत्र में उपास्य है संसारी नही है किस प्रमाण से उस के धर्म के उपदेश से अर्थात् उस के परमेश्वर के धर्म का उपदेश है इस से जैसा यह कहा है कि उस का उदिति नाम है ऐसा सुना कर यह कहा है इस आदित्य पुरुष का नाम है वह यह सब पापों से रहित है ऐसा सब पापो से रहित होने अर्थ से उदिति नाम का निर्वचन श्रुति वर्णन करती है, सब पापों का न होना परमात्मा ही में सुना जाता है ॥ यथा–

य आत्मा अपहतपाप्मा ॥

अर्थ–जो आत्मा पापरहित है इत्यादि, इत्यादि हेतुओं से परमात्मा ही उपास्य है। यह सिद्धान्त है "जो यह सूर्य में" इत्यादि इस श्रुतिवाक्यका शब्दार्थ व विशेष व्याख्यान यह है कि सूर्य्य में व नेत्र में हिरण्मय अर्थात् प्रकाशमय प्रकाशमयश्मश्रु (डाढ़ी) प्रकाशमय केश जिसके हैं नखपर्यन्त सब प्रकाश ही रूप है ऐसा जो यह पुरुष देखा जाता है उस के जैसे कप्यास पुण्डरीक ऐसे नेत्र हैं। कप्यास शब्द के कपि व आस दो अवयव हैं क शब्द का अर्थ जल है व पीङ धातु पीना अर्थ वाचक है इससे जल को जो पीवै वह कपीवाच्य होता है नपुंसक- लिङ्ग में ह्रस्व होने से कपि होता है जल पीता हुआ स्थित ऐसा अर्थ कप्यास शब्द का होता है अर्थात् अपने मूल व नाल से जो जल को पीता है अर्थात् मूल व नाल से जल को खींच कर आर्द्रता वा प्रफुल्लता को प्राप्त है व स्थित है वह कप्यास है ऐसा जो कमल उस के समान नेत्र हैं अर्थात् अपने नाल से भिन्न मुरझाया शोभा की न्यूनता को प्राप्त नही किन्तु नाल में स्थित पूर्ण शोभा को प्राप्त जो कमल है वैसे उस के नेत्र हैं अथवा क जल वाचक शब्द और अपि उपसर्ग पूर्वक आस

धातु है—वष्टिभागुरिरल्लोपमवाप्योपपसर्गयोः इस वचन से अपि के अकार का लोप हो गया इस प्रकार से भी जल में स्थित यह अर्थ होता है अथवा सूर्य अपने किरणों से जल को खींचता है इस से कपि शब्द का अर्थ सूर्य है आस का अर्थ मण्डल है अर्थात् कप्यास का अर्थ सूर्य्यमण्डल वा हृदयपुण्डरीक परमात्मा के उपासना के स्थान हैं वैसे ही उस उपासक के नेत्र हैं उस पुरुष का उदिति नाम है अर्थात् उत् यह नाम है उत् इति का उदिति होजाता है अब उत् नाम का निर्वचन श्रुति वर्णन करती है कि, सो यह सब पापों से उद्गत है अर्थात् सब पापों के मेल से रहित है शांकरभाष्य के टीका में श्रीगोविन्दानन्द ने—

तस्य यथाकप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी ॥

इति । श्रुतिवाक्य के अवयव का ऐसा अर्थ वर्णन किया है कि कपि अर्थात् मर्कट का आस जो पुच्छ का भाग अतितेजवान् है उस के समान रंग का जो पुण्डरीक है ऐसे उस पुरुष के नेत्र हैं अर्थात् लाल का फलाहुआ लाल कमल के समान नेत्र हैं यह अर्थ ग्रहण के योग्य नहीं है क्योंकि इसमें बानर की बैठने की जगह के समान लाल कमल की उपमा देने में बीभत्स अर्थ की प्राप्ति है और श्रुतिवक्ता का अन्य कोई उत्तम उपमा न कह सकने का दोष विदित होता है और कपि के मुख व आस का लाल रंग से भिन्न रंग होना भी संभव है पुण्डरीक सित कमल (शुक्ल रंग का कमल) का नाम है अरुण कमल का पुण्डरीक नाम भी नहीं है इस से उत्तम न होने वा असंगत होने से स्वीकार करने योग्य नहीं है ॥

अनुकृतेस्तस्य च अ० १ पा० ३ सू० २२

उस की अनुकृति से भी अ० १ पा० ३ सू० २२

वेदान्तदर्शन में प्रथम अध्याय में तीसरे पाद में दहर अधिकरण में अर्थात् हृदयपुण्डरीक स्थान में दहर शब्द वाच्य की उपासना वर्णन में "दहर उत्तरेभ्यः" यहां से आरम्भ करके "अनुकृतेस्तस्य च" इस सूत्र पर्य्यन्त विचार करके हेतुओं से दहराकाश शब्द से परब्रह्म ही उपास्य है यह निश्चय किया है—"दहर उत्तरेभ्यः" इस का अर्थ यह है कि दहर अर्थात् दहराकाश परब्रह्म है किस हेतु से उत्तरों से अर्थात् उत्तरवाक्य में प्राप्त हेतुओं से । तात्पर्य यह है कि उत्तरवाक्य में यह वर्णन है कि यह आत्मा पापरहित जरारहित मृत्यु

रहित शोकरहित क्षुधारहित पिपासारहित सत्यकाम सत्यसंकल्प है इस प्रकार से निरुपाख्यात्मक होना पापरहित होना आदिक और सत्यकाम होना सत्यसंकल्प होना आदि गुण जो दहर आकाश में वर्णन किये गये हैं उन से यह ज्ञात होता है कि दहराकाश परब्रह्म है इत्यादि निरूपण करने के पश्चात् अन्त में "अनुकृतेस्तस्य च २२ अपिस्मर्यते" २३ यह दो सूत्र हैं उन में "अनुकृतेस्तस्य च" इस सूत्र का यह अर्थ है उस की अर्थात् दहराकाश शब्द से वाच्य परब्रह्म की अनुकृति से अर्थात् परब्रह्म के अनुकार से (समान गुण रूप होने से) यह पापरहित होना आदि युक्त बंधरहित जीवात्मा है—दहराकाश नहीं है क्योंकि मुक्त हुवे जीवात्मा का ब्रह्म के अनुकार होना सुना जाता है जैसा कि इस श्रुति में वर्णन है ॥

यदा पश्यः पश्यति रुक्मवर्णम् । इत्यादि

अर्थ—जब देखने वाला ज्ञानी प्रकाश रूप कर्त्ता सब के कारण रूप सर्व समर्थ ब्रह्म पुरुष को देखता व जानता है तब वह विद्वान् मायारहित पाप पुण्य को नाश कर परब्रह्म की समता को प्राप्त होता इस से प्रजापति वाक्य में कहा गया जीव अनुकर्त्ता है अर्थात् समता का धारण करने वाला वा समरूप होने वाला है और ब्रह्म दहराकाश शब्द से वाच्य अनुकार्य है अर्थात् जिस की अनुकृति प्राप्त होने योग्य है वह है। कोई अनुकृति अनुमान है ऐसा कह कर "अनुकृतेस्तस्य च, अपिस्मर्यते" इन दो सूत्रों का भिन्न अधिकरण मानते हैं और ऐसा वर्णन करते हैं कि उसी प्रकाश करते हुये के पीछे वा समान सब प्रकाशित होता है इस प्रकार वर्णन करने वाली जो यह श्रुति है यह परब्रह्म होना निर्णयकरने के लिये है परन्तु "अदृश्यत्वादि गुणको धर्मोक्ते, द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात्" इन दो अधिकरणो से पूर्व ही प्रकरण का परब्रह्म विषयक होना प्रतिपादन किया है और "ज्योतिश्चरणाभिधानात्" इत्यादि में परब्रह्म का प्रकाश रूप होना पूर्व ही होने से फिर पूर्वपक्ष का उठाना वा स्थापन करना नहीं होसक्ता इस से युक्त नहीं है और सूत्र के अक्षरों से भी विरुद्ध वा मेलरहित है इस से अयुक्त है। अनुकृति अनुमान ही है यह कहना भी अयुक्त है क्योंकि करोति (कर्ता है) भाति (प्रकाशित होता है) इन दोनों का एक अर्थ नहीं हो सक्ता २२, इसी पाद में ब्रह्मविद्या का अधिकार निरूपण विषयकनिम्न लिखित सूत्र हैं ॥

शुगस्य तदनादरश्रवणात् तदाद्रवणात्सूच्यते हि ॥

(उनके वा उसके अनादरवाक्य सुने से तब जाने से) (रैक्व प्रति जानेसे) वा उस को (शोक को) प्राप्त होने से इसका (जानश्रुति का) जिस से कि शोक सूचित किया जाता है ३४ इस का व्याख्यान यह है देवता आदि को भी ब्रह्मविद्या में अधिकार होने को निरूपण करके शूद्र का भी उस में अधिकार है वा नहीं यह विचार किया जाता है क्या युक्त है यह विचारने में अर्थी होने व सामर्थ्य होने में अधिकार के होने का विधान विदित होता है शूद्र का भी अर्थित्व वा सामर्थ्य संभव होने से अधिकार है यह सिद्ध होता है। इतिहास वा पुराणों में विदुर आदि तपोनिष्ठ हुये हैं और छान्दोग्य उपनिषद् में भी सम्वर्गविद्या में शूद्र का ब्रह्मविद्या में अधिकार है ऐसा प्रतीत होता है ब्रह्मविद्या के सुनने वा जानने की इच्छा करने वाले जानश्रुति को रैक्व आचार्य हे शूद्र ऐसा सम्बोधन किया है ब्रह्मविद्या उपदेश करने में इन गौओं को तू ने दिया इसी द्वारा हे शूद्र तू हम से ब्रह्मउपदेश कहलावेगा इत्यादि कथन है इस से शूद्र का भी अधिकार होना विदित होता है इस के उत्तर में यह सूत्रवाक्य है आशय यह है कि सम्वर्ग विद्या में रैक्व का जानश्रुति को हे शूद्र यह कहना जानश्रुति के शूद्र वर्ण सिद्ध होने का हेतु निश्चय करने योग्य नहीं है क्यों नहीं है वह हेतु सूत्र में वर्णन किया है सूत्र का अर्थ यह है कि उन के (हंसों के) वा हंसों से अनादर सुनने से इस को (जानश्रुति को) शोक उत्पन्न हुवा उसको जान कर रैक्व ने जानश्रुति से हे शूद्र ऐसा कहा है शूद्र शब्द से शोक प्राप्त यह रैक्व ने सूचित किया है अर्थात् अपने परोक्षज्ञान को जनाया है इस से रैक्व से कहे हुये शूद्र शब्द से इस का (जानश्रुति का) शोक सूचित किया जाता है कैसे शूद्र शब्द से शोक हुआ यह सूचित किया जाता है "तदाद्रवणात्" यह कहने से तदाद्रवणात् शब्द का अर्थ उस को प्राप्त होने से वा उस से आने से वा प्राप्त होने से यह होता है अर्थात् शोक को प्राप्त होने से अथवा शोक से (शोक होने से) रैक्व के पास आने वा प्राप्त होने से अर्थात् जानश्रुति में हंसों के वचन सुनने से शोक को प्राप्त हुआ वा शोक होने से रैक्व के पास आया शूद्र शब्द का अर्थ शोक को वा शोक से प्राप्त हुआ संभव होने से ऐसा आशय अनुमान से ज्ञात होता है। शुचेर्दश्च। इस सूत्र से रप्रत्यय होने व शुचधातु के दीर्घ होने व चकार का दकार हो जाने से शूद्र होता है अब यह व्याख्यान स्पष्ट समझ में आने के लिये छान्दोग्य उपनिषद् में जो जानश्रुति की कथा है उस को यहां संक्षेप से वर्णन करते हैं। जानश्रुति नामक

कोई बहुत द्रव्य व अन्न का देने वाला हुआ उस धर्मवालों में अग्रगामी जानश्रुति के धर्म से प्रसन्न हुये कोई महात्मा जानश्रुति के चित्त में ब्रह्म की जिज्ञासा उत्पन्न करने की इच्छा से रात्रि के समय में हंस रूप धारण करके उस के समीप प्राप्त होकर एक हंस ने दूसरे से कहा कि हे भल्लाक्ष (हंस) जिस जानश्रुति का तेज सूर्य्य की ज्योति के समान दीप्तिमान् फैल रहा है उस के पास न जाना व उस को न छूना ऐसा न हो वह तेज तुझे भस्म कर देवे। ऐसी जानश्रुति की प्रशंसा सुन कर दूसरे हंस ने कहा कि क्या तू इस नीच को सयुग्वान् (गाड़ी में स्थित व गाड़ी साथ रखने वाले) रैक्व ब्रह्मज्ञानी के समान श्रेष्ठगुण वर्णन करता है एक ब्रह्मज्ञानी रैक्व ही लोक में श्रेष्ठ गुणवान् प्रशंसा के योग्य है महाधर्मसंयुक्त होने पर भी ब्रह्मज्ञानरहित इस जानश्रुति का कौन ऐसा गुण है जिस से उत्पन्न हुआ तेज रैक्व के तेज के समान मुझे भस्म करेगा ऐसा कहने पर पहले हंस ने पूछा। वह रैक्व कौन है। इस के उत्तर में दूसरे हंस ने कहा कि लोक में जो साधुओं से अनुष्ठान किया गया कर्म है और सम्पूर्ण जो आत्मसम्बन्धी ज्ञान है वह दोनों जिस के ज्ञान व कर्म के अन्तर्गत हैं अर्थात् ऐसा कोई उत्तम कर्म व साधन नहीं है जो उस ने न किया हो और आत्मज्ञान व ब्रह्मज्ञान विषय में कोई विषय नहीं है जिसको वह न जानता हो वह रैक्व है ब्रह्मज्ञानरहित होने से अपनी निन्दायुक्त व रैक्व के प्रशंसा रूप ऐसा हंस का वाक्य जानश्रुति सुन कर उसी समय दूत को रैक्व के अन्वेषण (खोज) के लिये भेज कर व पता लगा कर उस के आने पर आप भी रैक्व के समीप प्राप्त होकर छः सौ गौ मोहरें घोड़ा रथ रैक्व को उपहार (नज़र) देकर यह प्रार्थना किया कि हे भगवन् जिस देवता की आप उपासना करते हैं मुझे भी उस का उपदेश कीजिये रैक्व ने अपने ज्ञान से यह जान कर कि हंस के अनादर वाक्य सुन कर शोक को प्राप्त होकर ब्रह्मविद्या का उद्योग किया है ब्रह्मविद्या के योग्य है विना बहुत काल की सेवा करने के इस जिज्ञासु के यथाशक्ति दान करने से। ब्रह्मविद्या की प्रतिष्ठा होगी यह समझ कर जानश्रुति पर अनुग्रह कर के उस के शोक होने व उपदेश के योग्य होने के वृत्तान्त को, हे शूद्र ऐसे शूद्र शब्द के सम्बोधन से जनाते हुये यह कहा कि यह गौओं सहित रथ आदि ले जा, तू अपने ही पास रख। इतने इसको देने से ब्रह्मविद्या की प्रतिष्ठा नहीं होती है आशय यह है कि बहुत काल तक ब्रह्मविद्या के लिये सेवा करे अथवा जितनी शक्ति हो उतना दान

या वेदविरुद्ध अद्वैत पक्ष सिद्ध हो सक्ता है ?-कभी नहीं । तथापि हम आप के बेपते लेखका अर्थ करके आप को दिखलाते हैं कि इसमें अद्वैत का क्या वर्णन है-

(आत्मनः आत्मा नेता) आप के ही लेखानुसार आत्मा अर्थात् शरीरेन्द्रियसंघात का नेता आत्मा है वही चेता मन्ता गन्ता उत्स्रष्टा आनन्दयिता कर्त्ता वक्ता रसयिता घ्राता द्रष्टा श्रोता और स्प्रष्टा है । भला इस से द्वैत अद्वैत का क्या सिद्ध हुवा ? और दूसरे वाक्य-

विभुर्विग्रहे सन्निविष्टा इत्येवंह्याह। अथ यत्र द्वैतीभूतं विज्ञानं तत्र हि शृणोति पश्यति जिघ्रति रसयति चैव स्पर्शयति सर्वमात्मा जानीतेति यत्राद्वैतीभूतं विज्ञानं कार्य्यकारणकर्मनिर्मुक्तं निर्वचनमनौपम्यं निरुपाख्यं किंतदवाच्यम् ॥

का अर्थ यह है कि-व्यापक आत्मा देह में घुसा है यह कहते हैं । जब द्वैतीभूत ज्ञान होता है तब समझा जाता है कि आत्मा सुनता देखता सूंघता चखता और छूता है तथा सर्व को जानता है परन्तु जब अद्वैत अर्थात् देहादि द्वितीय पदार्थों से सम्बन्ध छूट जाता है तब कार्य्य कारण कर्म से निर्मुक्त, वचन उपमा और नाम से रहित किम् और तद् शब्द का भी वाच्य नहीं होता । तात्पर्य्य यह है कि आत्मा में देखना सुनना आदि व्यवहार, निर्देश, देवदत्तादि नाम-शरीरसम्बन्ध से बनते हैं, केवल में नहीं । भला इससे जीव ब्रह्म की एकता अनेकता क्या निकलती है ? कुछ नहीं ॥

द० ति० भा० पृ० २७ पं० २५-दयानन्दजी ने सत्या० पृ० ६०१ में वेदों की ११२७ शाखा व्याख्यान रूप बताई हैं परन्तु गायत्री मन्त्र के अर्थ करने में किसी भी व्याख्यान की रीति से न लिखा । तथा वेदों की शाखा ११३१ हैं उन्हों ने महाभाष्य के विरुद्ध ४ न्यून लिखी हैं ॥

प्रत्युत्तर-स्वामीजी ने संक्षेप के कारण आप के समान तैत्तिरीय शाखा का पाठ नहीं भरा परन्तु जितना लिखा है वह सब तैत्तिरीय के अनुकूल ही है । हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि जो अर्थ स्वामीजी ने लिखे हैं वही आप ने भी लिखे हैं । हां, उन्हों ने प्रकरणानुकूल संक्षेप से और आप ने प्रकरणविरुद्ध विस्तार से लिखा है । वेदों की ११३१ शाखाओं में ४ संहिता मूल वेद भी अन्तर्गत गिनी हैं उन को पृथक् करके स्वामीजी ने ११२७ गिनाई हैं समझ कर देखिये ॥

द० ति० भा० पृ० २८ पं १ स्वामी जी ने सवितृ पद का व्याख्यान यह लिखा है जो (सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता) दयानन्दजी तौ अपने को निघण्टु निरुक्त का पण्डित मानते हैं फिर यह विरुद्ध अर्थ क्यों लिखा। क्योंकि निरु० अ० ५ खं० ४ में सवितृपद का व्याख्यान यह है कि (सविता षु प्रसवैश्वर्ययोः भ्वा० प० वृष्टि सविता सर्वं कर्मणां वृष्टिप्रदानादिना अभ्यनुज्ञाता) षु धातु प्रसव और ऐश्वर्य अर्थ में है। प्रसव नाम अभ्यनुज्ञान का है अर्थात् फल देने वाले कर्म का स्वीकार करना। सो सविता देव वृष्टि रूप फल देने वास्ते यावत् प्राणीवर्ग के कर्म को स्वीकार करता है और ऐश्वर्य नाम प्रेरणा का है सो सविता देव सर्वजन्तुमात्र को कर्म में प्रवृत्त करता है। तब निरुक्त के मत में "सुवतीति सविता" होना चाहिये और दयानन्दजी ने "सुनोति" यह प्रयोग रखकर "उत्पादयति" अर्थ लिखा है जो पाणिनिलिखित धात्वर्थ से विरुद्ध है। क्योंकि "सुनोति" धातु का अर्थ अभिषव है। "अभिषव" नाम कण्डन का है। सोमवल्ली का रस निकालने में उस का अभिषव नाम कण्डन होता है। स्वादिगणी षुञ् धातु का अर्थ उत्पादन नहीं। इस से पाणिनि के भी विरुद्ध है इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर—आप ने जो पाठ निरु० अ० ५ खं० ४ का लिखा है वह न तौ नैगम काण्ड अ० ५ खं० ४ में है और न दैवत काण्ड अ० ५ खं ४ मे लिखा है। अतः या तौ आप पता भूले वा अन्य कुछ कारण हो इस लिये जब तक निरुक्त में इस पाठ का पता पं० ज्वालाप्रसाद न लगायें तब तक उत्तर देना व्यर्थ है। रही यह बात कि निरुक्तकार के मतानुसार भ्वादिगणी षु प्रसवैश्वर्य्ययोः धातु का प्रयोग "सुवति" होता है "सुनोति" नहीं। इस का उत्तर यह है कि प्रथम तौ आप का लिखा निरुक्त का पाठ उस पते पर उपस्थित नहीं जो पता आप ने छापा है इस के अतिरिक्त निरुक्तकार ने कहीं धातुओं के गण भी नहीं बताये हैं कि भ्वादि आदि में से अमुकगणी धातु का प्रयोग है इस लिये आप का (भ्० प०) लिखना असङ्गत है। निरुक्त मे केवल प्रयोग से गण पहचाना जाता है सो आप के असत्य पते के निरुक्त में भी सुनोति वा सुवति इन दोनों में से कोई प्रयोग भी नहीं है तौ आप के लेखानुसार भी स्वामी जी का "सुनोति" प्रयोग निरुक्त के विरुद्ध नहीं प्रतीत होता। और पाणिनि का जो आप प्रमाण देते हैं कि पाणिनि ने स्वादिगणी षुञ् धातु का अर्थ अभिषव लिखा है, उत्पादन नहीं। इस का उत्तर यह है कि महात्माजी!

पाणिनि जी ने अभिषव अर्थ तौ लिखा है परन्तु यह तौ नहीं लिखा कि अभिषव का अर्थ उत्पादन नहीं वा कुछ अन्य अमुक अर्थ है? अर्थ समझना हमारा आप का काम है। सोमवल्ली के रस निकालने में इस धातु का प्रयोग होता है तौ यह तौ समझिये कि रस निकालना वा रस उत्पन्न करना इस में क्या भेद है? कुछ नही। रस निकालने का तात्पर्य्य भी तौ यही है कि सोमरस का उत्पन्न करना। इसलिये स्वामीजी का लेख पाणिनि के भी विरुद्ध नहीं। और आप ने जो "षु प्रसवैश्वर्ययोः" धातु को भू० प० लिखा क्या यह अदादि गण में नहीं है? जब षु धातु भ्वादि अदादि और स्वादि तीनों गणों में है तौ स्वादि गण में गण का आदि होने से मुख्य है। तौ "मुख्यामुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः" के अनुसार स्वादिगणी का ही ग्रहण भी चाहिये जैसाकि स्वामीजी ने किया है॥

द० ति० भा० पृ० २८ पं० १६ से लिखा है कि स्वामीजी ने देव पद की व्युत्पत्ति में "दीव्यति दीव्यते वा" यह दो प्रयोग लिखे हैं परन्तु दिव धातु परस्मैपदी है उस का दीव्यति प्रयोग होता है किन्तु आत्मनेपदी न होने से "दीव्यते" प्रलाप है। यदि कहो कि कर्म में प्रत्यय मानकर आत्मनेपद ठीक है सो भी नहीं क्योंकि ऐसा होता तौ स्वामीजी को "यः" के स्थान में कर्त्तृपद "येन" लिखना था। यदि कहो कि उस पक्ष में यः यह कर्मपद परमात्मा का वाचक है तौ प्रकाश्य जड जगत् है सो ऐसा करने से प्रकाश्यता से जडता ईश्वर में आवेगी क्योंकि ईश्वर प्रकाश का कर्ता हैं न कि प्रकाशित कर्म। और देवपद कर्त्तृप्रकरणस्थपचादि गण में पढा है कर्मवाच्य में नहीं। और (सब सुखों का देने हारा) यह देवपद का अर्थ नहीं होसक्ता क्योंकि दिवु धातु के १० अर्थों में सुखदेना अर्थ नही है। दयानन्द जी ने यह अर्थ कल्पना कर लिया इत्यादि॥

प्रत्युत्तर—दीव्यते प्रयोग यथार्थ में कर्मवाच्य है और यही कारण आत्मनेपद लिखने का है। और प्रकाश "प्रकट होने" को भी कहते हैं क्योंकि परमात्मा भक्तों के हृदय में प्रकट होते हैं इसलिये प्रकाश क्रिया के कर्म भी कहे जासक्ते हैं इस में कुछ दोष नहीं। पचादिगण में कर्त्तृवाच्य लिखने से हमारी हानि नहीं क्योंकि स्वामीजी ने कर्त्तृवाच्य अर्थ भी तौ लिखा ही है। कर्त्तृवाच्य अर्थ में "यः" है ही कर्मवाच्य में कर्त्तृपद अप्रयुक्त "येन" का अध्याहार हो जायगा। "सब सुखों का देने वाला" यह पदार्थ नहीं किन्तु भावार्थ है। दिवु धातु का "मोद—आनन्द" अर्थ है ही, बस स्वयम् आनन्दस्वरूप है

वही अपने भक्तों को सब सुख दे सक्ता है। इसलिये स्वामीजी का तात्पर्य्य निर्दोष है ॥

अथाचमनप्रकरणम् ॥

स्वामी जी ने जो आचमन का फल कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति लिखा है और जलाभाव में आचमन की उपेक्षा की है मार्जन से आलस्य दूर होना लिखा है उस पर द० ति० भा० पृष्ठ २९ पं० ९ से लिखा है कि "यदि आचमन का प्रयोजन यह है तो क्या सभी लोग सन्ध्याकाल में कफ पित्त ग्रसित होते है? और सब को आलस्य और निद्रा ही बदाये रहती है? वह निद्रा का समय नही। और जल से कफ की निवृत्ति नहीं किन्तु वृद्धि होती है। और ऐसा ही है तो हाथ में जल लेकर ब्राह्मतीर्थ से ही आचमन की क्या आवश्यकता है। और आलस्य दूर करने को हुलास की चुटकी ही क्यों न सूंघ ली जावे? अथवा चांय वा काफी पीलेवें। वा एमोनियां की शीशी पास रक्खें। और स्नान करने से ही आलस्य न गया तो मार्जन से क्या होना है। इससे स्वामी जी का लिखना मिथ्या है। मनु के अनुसार आचमन की विधि नीचे लिखते है कि आचमन से आभ्यन्तर शुद्धि होती है। यथा—अ० २

ब्राह्मेण विप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत् ॥
कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन ॥५८॥
अङ्गुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मंतीर्थं प्रचक्षते ॥
कायमङ्गुलिमूलेग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः ॥ ५९ ॥

इत्यादि ६०। ६१ और ६२ तक श्लोक हैं जिन का तात्पर्य यह है कि विप्र को ब्राह्म काय वा दैव तीर्थ से आचमन करना, पित्र्य से नही। ५८। अङ्गुष्ठ मूल में ब्राह्म, अङ्गुलिमूल मे काय, अङ्गुलियों के अग्र भाग में दैव और उन के नीचे पित्र्य तीर्थ है। ५९। प्रथम तीन आचमन करे फिर दो बार मुख धोवे और जल से इन्द्रियां देह और शिर को छुवे।६०। फेन और उष्णता रहित जल से उचित तीर्थ से धर्मवेत्ता शौच चाहने वाले को सदा एकान्त में उत्तरमुखस्थ होकर आचमन करना चाहिये।६१। ब्राह्मण हृदयगत जल से, क्षत्रिय कण्ठगत, वैश्य जिह्वागत और शूद्र स्पर्श से शुद्ध होता है। ६२। आप के चेले तो कोट पतलून पहर कर सन्ध्या करेंगे फिर स्नान कौन करेगा और

मनसा परिक्रमा किस की करें आप की या सत्यार्थप्रकाश की ? क्योंकि निरकार ईश्वर की परिक्रमा असंभव है। (अपां समीपे) मनु में लिखा है कि जलाशय पर गायत्री जपे परन्तु आप के मत में तौ कफने घेरा हुआ पुरुष कोठी बंगले ही में करेगा इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर–कण्ठस्थ कफ की निवृत्ति कण्ठ में थोड़ा जल पहुंचने से अवश्य होती है। स्वर स्पष्ट हो जाता है। जल कफरोग को बढ़ाता है परन्तु यह किसी रोग का तौ इलाज नहीं किन्तु सामान्य प्रकार से कण्ठ शुष्क रहता और मन्त्रोच्चारणादि में वहां का शुष्क कफ बाधक होता है वह निवृत्त हो जाता है। यदि जल तर होने से कफरोग को उत्पन्न करता है यह नियम हो तौ जितने वैद्यक के प्रयोगों में मिश्री गुड़ शहद गुडूची आदि तर वस्तु खांसी के रोग में प्रयुक्त की हैं सब व्यर्थ होजावें। यथार्थ में तरी के द्वारा दोष का नाश नहीं करना है किन्तु उसे शान्त रखना अभीष्ट है। और आपने जो मनु के श्लोक लिख दिये उस से स्वामी जी के लिखे फल का निषेध तौ नहीं आया किन्तु आचमन के प्रकार का वर्णन है। और ब्राह्मणादि वर्णों की उत्तरोत्तर न्यून जल से शुद्धि का प्रयोजन यह है कि अपने २ वर्णानुसार उन को उतनी २ शुद्धि भी न्यूनाधिक ही अपेक्षित है। ब्राह्मण को उत्तम होने से जितनी शुद्धि अपेक्षित है अन्यों को क्रमशः उस से न्यून अपेक्षित है, इत्यादि प्रकार से कारणवाद सर्वत्र खोजा जासक्ता है। हम आप से यह पूंछते हैं कि स्वामी जी ने कर्म तौ वे २ लिखे ही जिन्हें आप भी मानते हैं परन्तु उस की पुष्टि के लिये यदि स्वामी जी ने कुछ युक्ति भी लिख दीं तौ क्या दोष होगया ? और स्वामी जी के लिखने को तौ आप न मानियेगा परन्तु वेदवचन को कैसे न मानियेगा। देखिये यजुर्वेद। ३६। १२ ॥

शन्नो देवीरभिष्टय आपोभवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥

इस का आध्यात्मिक अर्थ तौ पञ्चमहायज्ञविधि के लिखे अनुसार है परन्तु आधिदैविक और भौतिक अर्थ पर दृष्टिपात कीजिये–देव्य आपः नः पीतये शंभवन्तु। नोऽस्मान् अभिष्टये शंयोरभिस्रवन्तु। अर्थात् दिव्यजल हमारे पीने के लिये सुखदायक हो और वह हम को मनोवाञ्छित सुख को वर्षावे। तात्पर्य्य यह है कि उत्तम दिव्य जल से (जैसा कि मनु अ० २ श्लोक ६१ में स्वच्छ जल से आचमन लिखा है) आचमनादि करने से सुख की प्राप्ति होती

है। अर्थात् शारीरक सुख तृप्ति शान्ति आदि के लिये जल को प्रयोग में लाना चाहिये। यही कारण इस मन्त्र के आचमन करने में विनियोग होने का है। और आलस्यनिवृत्यर्थ मार्जन पर जो आप ने लिखा कि क्या इन को आलस्य दबाये रहता है? और स्नान से आलस्य दूर न हुवा तो मार्जन से क्या होगा। महाशय! प्रथम तो यह बात है कि जल के छींटा पड़ने से जैसी चेतनता होती है उस प्रकार की स्नान से नहीं होती दूसरी बात यह भी है कि भला प्रातः सन्ध्या में तो स्नान करके बैठते हैं परन्तु सायंसन्ध्या में स्नान का नियम नहीं देखा जाता और तीसरी बात यह है कि जाड़े में भी एक बार नित्य स्नान करना उत्तम कर्म है और गरमी आदि में दो बार वा जितने बार से देह शुद्ध रहे। परन्तु स्नान की कर्त्तव्यता, सन्ध्या की कर्त्तव्यता के बराबर नहीं रक्खी गई। जिस प्रकार मानवधर्मशास्त्र में—

नतिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्चपश्चिमाम्॥सशूद्र-
वद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः । २ । १०३ ॥

दोष लिखा है कि "प्रातः सायं सन्ध्या न करे उसे शूद्रतुल्य बाहर किया जावे" इस प्रकार मन्वादि किसी धर्मशास्त्रकार ने प्रातःसायं स्नान न कर सकने वा न करने वालों को बाह्य करना नहीं लिखा। इस से हमारा यह तात्पर्य्य नहीं है कि स्नान कर्त्तव्य नहीं किन्तु सन्ध्या के बराबर नहीं। अर्थात् स्नान १ के स्थान में १० बार भी करे और सन्ध्या न करे तो पतित ही हो जायगा परन्तु स्नान न करके भी सन्ध्योपासन कर लेने वाला पतित नहीं हो सक्ता। तो सन्ध्या के अङ्ग आचमन मार्जनादि में स्नान से व्यर्थता लिखना ठीक नहीं। ब्राह्मतीर्थ से सुगम और उत्तम रीति से आचमन हो सक्ता है और धर्मशास्त्र ने भेद भी भिन्न२ कर्मों के कर दिये हैं इस लिये ब्राह्म तीर्थ से आचमन करना अन्य रीति की अपेक्षा उत्तम है। हुलास की चुटकी से आलस्य दूर करने की विधि सन्ध्याकाल में सच्छास्त्रों में होती तो वह भी माननीय होती। परन्तु स्वामी जी का तो प्रयोजन यह था कि जो कुछ विधि शास्त्रानुकूल हैं उन को अनुकूल तर्क से पुष्ट किया जावे न कि नई बात चलावें। स्वामीजी के चेले कोट पतलून पहर कर तो सन्ध्या कर लेंगे परन्तु आप के चेले तो वेद शास्त्र सन्ध्या आदि सभी से छुट्टी पागये और पाते जाते हैं। यदि स्वामीजी महाराज का पुरुषार्थ न होता तो अंगरेज़ी शिक्षा

के फैलते ही सब कर्म धर्म दूर हुवा था। धन्य है स्वामीजी को जो कोट पतलून वालों को गिरजों से बचाकर सन्ध्या सिखलाई। परिक्रमा मन से परमात्मा की हो सक्ती है। परिक्रमा का वह अर्थ नहीं जो आप ठाकुरजी की परिक्रमा समझते हैं कि बीच में ठाकुरजी को धरके उन के चारों ओर घूमना। किन्तु परि=सब ओर, क्रम=घूमना अर्थात् सब ओर मन जावे और जहां जावे वहां परमात्मा को ही पावे, पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर ऊपर नीचे सर्वत्र परमात्मा को ही पावे। यह परिक्रमा है। (अपां समीपे०) जलाशयों के किनारे हरित वृक्ष पत्र पुष्पादि से रम्यस्थान में सन्ध्या करे। और आप कोठी बंगलों पर क्यों चिढ़े हैं। यदि कोठी बंगलों में सुन्दर फव्वारे लगे हों, एकान्त हो, पुष्पादि के घमलों से सुसज्जित हो तो क्या हानि है। इस प्रसङ्ग में शास्त्रीय प्रमाणों से काम न लेकर आपने ठठोलबाजी बहुत की है अतः हम को अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं॥

द० ति० भा० पृ० ३० पं० २२ से लिखा है कि स्वामीजी ने जो दो ही काल में सन्ध्या अग्निहोत्र करना लिखा है सो क्या अधिक करने में कोई पाप है? परमेश्वर का नाम जितना अधिक लिया जाय श्रेयस्कर है इसलिये स्वामीजी का दो ही काल में सन्ध्या अग्निहोत्र का विधान ठीक नहीं॥

प्रत्युत्तर—जब आप को त्रिकाल सन्ध्या का कोई प्रमाण न मिला तो धन्य! यही लिख दिया कि परमेश्वर का नाम श्रेयस्कर है। हम भी तो कहते हैं कि परमेश्वर का जितना अधिक स्मरण करो अच्छा है परन्तु प्रसङ्ग तो यह है कि जिस सन्ध्योपासन के विना किये द्विज पतित हो जाता है उस का विधान तो स्वामीजी के लेखानुसार ही शास्त्र से केवल दो काल में सिद्ध है। यूं तो "अधिकस्याधिकं फलम्" के अनुसार त्रिकाल सन्ध्या की अपेक्षा भी समस्त दिन उसकी उपासना करो तो क्या पाप है? तब आप की त्रिकाल सन्ध्या जो वेद और धर्म शास्त्र की मर्य्यादा से भिन्न आप में प्रचरित है उस की निर्मूलता स्वामीजी ने लिखी सो ठीक है॥

द० ति० भा० पृ० ३० पं० २६ से लिखा है कि सत्या० पृ० ४२ पं० १५ स्वाहा शब्द का यह अर्थ है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही बोले। समीक्षा—यह स्वाहा शब्द का अर्थ कौन से निरुक्त से निकाला भला ऊपर जो आप ने लिखा है कि "प्राणाय स्वाहा" तो इसका यह अर्थ हुवा कि प्राण अर्थात् परमेश्वर के अर्थ जैसा ज्ञान आत्मा में होवे वैसा बोले। भला यह क्या बात हुई

इससे हवन की कौन सी कला सिद्ध होती है। सुनिये स्वाहा अव्यय है जिस के अर्थ हविस्त्यागन करने के हैं जो देवता के उद्देश से अग्नि में हवि दिया जाता है उस में स्वाहा शब्द का प्रयोग होता है जैसे " प्राणाय स्वाहा " प्राणों के अर्थ हवि दिया वा प्राणों के अर्थ श्रेष्ठ होम हो ॥

प्रत्युत्तर—स्वाहा शब्द के उक्त स्वामीजीकृत अर्थ में प्रमाण सुनिये जो उन्होंने " पञ्चमहायज्ञविधि " में लिखा भी है:—

स्वाहा कृतयः स्वाहेत्येतत्सुआहेति वा स्वावागाहेति वा स्वं प्राहेति वा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा तासामेषा भवति ॥

निरु० दैवत कां० अ० ८ खं० २० ॥

इस में से "स्वा वागाहेति" का अर्थ भी "पञ्चमहाय०" में लिख दिया है कि "या स्वकीया वाग्ज्ञानमध्ये वर्त्तते सा यदाह तदेव वागिन्द्रियेण सर्वदा वाच्यम्"। अर्थात् जैसा ज्ञान मन में हो वैसा कहे किन्तु बाहर भीतर में भेद करके कपटव्यवहार न करें। यह तो प्रमाण हुवा। अब यह भी सुनिये कि प्राण नाम परमेश्वर का है तो "प्राणायस्वाहा" का क्या अर्थ हुवा। इस का यह अर्थ हुवा कि परमेश्वर के लिये अर्थात् उस की प्रसन्नता के लिये सत्य ही बोलना कपट न करना। और आपने जो आहुति देना अर्थ लिखा है वह भी ठीक है और वह स्वामी जी ने भी " पञ्चमहायज्ञविधि " में निरुक्त के "स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा" इस वाक्य का प्रमाण देकर लिखा है परन्तु यहां सत्यार्थप्रकाश में यह समझ कर कि पञ्चयज्ञ का विधिपूर्वक लेख तो पञ्चमहायज्ञविधि में है ही वहां सब लोग पढ़ कर जानलेंगे इसलिये संक्षेप से सन्ध्योपासनादि की शिक्षा के प्रसङ्ग में थोड़ासा लिख दिया। संक्षेप के कारण जैसा " पञ्चमहा० " में स्वाहा शब्द के कई अर्थ निरुक्त के प्रमाण से लिखे हैं वे विस्तारभय से यहां नहीं लिखे। और " स्वाहा अव्यय है " यह जो आप ने लिखा तो क्या स्वामी जी ने इस के अव्ययत्व का निषेध किया है? यदि नहीं किया तो व्यर्थ आप क्यों पुस्तक बढ़ाते हैं? ॥

द० ति० भा० पृ० ३१ पं० ८ से अग्निहोत्रविषयक सत्यार्थप्र० के लेख पर इतने आक्षेप हैं:—

१—यज्ञपात्रों की आकृति वेदविरुद्ध है।

प्रत्युत्तर—आप कृपा करके वेदोक्त आकृति लिखते तो जाना जाता कि

स्वामी जी ने वेदविरुद्ध लिखा। परन्तु आप के प्रमाणशून्य कथनमात्र से कोई नहीं मान सक्ता ॥

२-यदि अग्निहोत्र का फल जल वायु की शुद्धि है तो थोड़ीसी आहुतियों से क्या होगा किसी आढ़तिये की दुकान में आग लगा देनी चाहिये। जल वायु की शुद्धि तो प्राकृत नियम से ही होती है वन में अनेक सुगन्धि पुष्प वायु में प्रसरण को स्वयं ही प्राप्त होते हैं। वायुशुद्धि गन्धक से हो सक्ती है। जलशुद्धि निर्मली के बीज से होसक्ती है ॥

प्रत्युत्तर-हम भी आप से कह सक्ते हैं कि यदि अन्न से क्षुधानिवृत्ति होती है तो क्या किसी हलवाई की दुकान लूट खाइयेगा वा अनाजमण्डी का चर्वण करलेना उचित होगा? जैसे आप किसी की घृत की दुकान में आग लगाने से कहते हैं। प्राकृत नियम से जैसे दुर्गन्धयुक्त पदार्थों के बदले सुगन्ध का प्रसाद परमात्मा करते हैं वैसे ही मनुष्यों के उत्पन्न किये दुर्गन्ध फैलाना रूप पाप की निवृत्ति के लिये वा अग्नि वायु जल आदि भौतिक देवक्षय की निवृत्ति करने अर्थात् जलादि अशुद्ध को शुद्ध करने के लिये परमात्मा ने वेद में हम को हवन का फल बताया है। यथा-

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोसि० ॥

इत्यादि। यजुः अ० १ मं० २

"यज्ञो वै वसुः" शतपथ १।५।४।९। वसु जो यज्ञ है वह पवित्र है। दिव्यगुणयुक्त है। विस्तारयुक्त है। वायुशोधक है। मूल मन्त्र में मातरिश्वा शब्द वायु के लिये है। "मातरिश्वा वायुः" निरु० ७। २६॥ इत्यादि शतशः प्रमाण वेदों में यज्ञफलसूचक हैं जिन्हें विस्तारभय से यहां कहां तक उद्धृत करें। गन्धक में सुगन्ध है वा दुर्गन्ध जो यह भी नहीं जानता उस से क्या कहा जावे। सुगन्ध मिष्ट पुष्ट रोगनाशक चार गुणों वाले पदार्थों के सामने गन्धक की गन्ध आप ही को भावेगी। निर्मली से जल की मट्टी ही केवल नीचे बैठ सक्ती है अन्य रोगकारक वस्तु नहीं। परन्तु वायु और मेघों तक की शुद्धि करके यज्ञ संसारभर का उपकार करता है। यदि प्रत्येक मनुष्य पूर्वकालिक ऋषियोंके समान गौ आदि पाले और नित्य हवन यज्ञ करें तो थोड़ी आहुति न रहें किन्तु भारत के २० करोड़ आर्य्यवंशियों की १०।१० आहुति मिलकर २ अरब आहुति से समस्त देश में आनन्द मङ्गल हो जावे। परन्तु वेद में तो देवतों (जल वायु आदिकों) का दूत "अग्नि" लिखा है जैसा कि हम नीचे लिखेंगे

और आप स्वयं देवदूत बनकर सूर्य चन्द्रादि भौतिक देवों के नाम की सामग्री पुजवा कर अपने घर लेजाने की ही परिपाटी स्थिर रखना चाहते हैं तब भला यह लोकोपकार कैसे हो ॥

३-यदि मन्त्रपाठ का कारण यह है कि मन्त्रों में हवन के फल का वर्णन है तो "गायत्री और विश्वानिदेव०" इन मन्त्रों से आप ने क्यों आहुति लिखी इन मन्त्रों के अर्थ तो अग्निहोत्र के फल को नहीं बताते ॥

प्रत्युत्तर-मुख्यमन्त्रों में जैसे अग्नयेस्वाहा। सोमायस्वाहा। वायवेस्वाहा। वरुणायस्वाहा। प्राणायस्वाहा। इत्यादि में वायु जल प्राण आदि के अर्थ तो हैं ही परन्तु हवन की सामग्री विशेष हो तो गायत्री आदि मन्त्रों से परमात्मा की स्तुतिप्रार्थनोपासना करता जावे और शेष सामग्री को अग्नि में चढ़ा देवे यह तात्पर्य्य स्वामीजी का है। किसी मुख्य यज्ञ की कोई आहुति विशेष तो गायत्री से स्वामीजी ने नहीं लिखी। जो अग्निहोत्र के विशेष मन्त्र "समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन्हव्या जुहोतन" इत्यादि हैं उन में तो अग्नि में समिधाहोम घृतहोमादि का अर्थ स्पष्ट है ही। दुर्गापाठ के तुल्य-

"गर्ज २ क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम्" मदिरा की आहुति वेद में नहीं लिखीं ॥

४-गायत्री से प्रथम चुटिया बन्धवाई फिर रक्षा की फिर जप किया अब घी फूंका। आगे२ इंजिन लगाकर रेल चलावेंगे इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर-स्वामीजी ने यदि रक्षादि कार्य्य किये तो अनर्थ क्या किया परन्तु आप तो अपने बड़ों को मानते हैं कि उन्होंने गायत्री के जप से ही इतना सामर्थ्य बढ़ाया था कि धोती निराधार आकाश में सुखाते, जल से अग्नि जलाते, किसी का प्राण चाहते तो लेलेते इत्यादि। और इस में सन्देह नही कि हम आप के समान गायत्री को सामर्थ्यहीन नहीं समझते। जैसा आप का भाई धर्म से विधर्म होजावे तो आपकी गायत्री गङ्गा यमुना आदि कुछ नहीं कर सकीं। यहां यह बात नहीं, किन्तु आप के मुरादाबाद में और अन्यत्र शतशःपतित भाइयों का उद्धार इस सामर्थ्यवान् गायत्रीमन्त्र से हम ने किया और देखिये आगे२ क्या करेंगे। घबराते क्यों हो। गायत्री की विचित्र शक्ति को देखना क्या२ काम देती है। कदाचित् आप भी तो भूत प्रेत गायत्री से दूर किया करते हैं और यजमानों से दक्षिणा लिया करते हैं। फिर बिना

दक्षिणा मांगे स्वामीजी ने गायत्री से रक्षा और होमादि का विधान किया तो बुरा क्या किया ॥

५-जलवायु की शुद्धि प्रयोजन है तो प्रातःसायं का नियम क्यों? स्नानादि की आवश्यकता क्या है? पात्रों की क्या आवश्यकता है चूल्हे वा भट्टी में झोंकदें। और मन्त्रपाठ विना हवन करो तब भी कण्ठस्थ रह सक्ता है ॥

प्रत्युत्तर-प्रातःसायं ही सब कामों के प्रथम और सब के पश्चात् प्रधान कार्य्य करने चाहियें। तथा वेदने भी "सायं सायं गृहपतिर्नो० प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो०" (अथर्ववेद कां० १९ अनु० ७ मं० ३।४॥) प्रातःसायं ही इस का विधान किया है। समय भी यही ऐसा है जिस में प्रायः चित्त स्थिर शान्त और अन्यकामों से निश्चिन्त होता है इत्यादि अनेक कारण हैं जिन से प्रातः सायं समय ही उत्तम है। शुद्धिकारक कर्म करते हुवे क्या देह को शुद्ध करना आवश्यक नहीं जो स्नान को व्यर्थ बताते हो। पात्रों के विना वह कार्य्य वैसा ठीक सिद्ध नहीं होता जैसा उस कार्य्य के लिये बनाये हुए विशेष पात्रों से। और यूं तो कड़ाही का काम तवे और थाली का तंबिये आदि से अभाव में लिया ही जाता है और अभाव में हवन भी स्थण्डिल पर करते ही हैं परन्तु जिस२ कार्य्य के लिये जो२ पात्र बनाये गये हों वह२ कार्य्य उन२ पात्रों से जैसा उत्तम होता है वैसा अन्यथा कदापि नहीं हो सक्ता इस कारण पात्रविशेष का लिखना सार्थक है ॥

६-यजुर्वेद के अ० ५ मं० ३७ अ० ११ मं० मं० ३५। ३७ और उन का अर्थ लिख कर कहते हैं कि ये मन्त्र परलोक स्वर्ग प्राप्त्यर्थ अग्नि की स्तुति विधान करते हैं। अग्नि देवदूत है। अग्नि हमारा धन सम्पादन करो। संग्रामों को विदीर्ण करो। अन्न हमें देओ। शत्रु को जीतो। देवतों को हवि पहुंचाओ। यजमान का कल्याण करो। अपने लोक में ठहरो। पुष्कर पर्ण पर भले प्रकार बैठो इत्यादि अग्नि की स्तुति लिखी है ॥

प्रत्युत्तर-हम आप के किये अर्थों को मानलें तब भी कोई हमारे पक्ष की हानि नहीं क्योंकि जल वायु की शुद्धि से शौर्य धैर्य आरोग्य बल पुष्टि आदि बढ़ते हैं जिस से धन, जय, अन्न, कल्याण की प्राप्ति होती है। इस से वह बात खण्डित नहीं होती जो हम ने ऊपर यजुः अ० १ मं० २ से वायु की शुद्धि यज्ञ द्वारा सिद्ध की है। और अग्नि को देवदूत अर्थात् वायु आदि देवतों को उन के लिये दिया हुवा भाग पहुंचाने और उस से उन को प्रसन्न अर्थात्

स्वच्छ शुद्ध अनुकूल करने वाला तो हम भी मानते हैं स्वामी जी ने भी माना है। परन्तु आप तो अग्नि के स्थान में अग्निमुख ब्राह्मणों (नाममात्र) के ही द्वारा सब देवतों की पूजा सामग्री के चढ़ कराने की रीति ही अच्छी समझते हैं। अग्नि के द्वारा (जो देवदूत है) देवभाग उन को प्राप्त कराना तो आप "आग में झोंकना फूंकना" आदि कठोर शब्दों से व्यवहार करते हुवे अच्छा ही नहीं समझते। और द० ति० भा० पृ० ३२। पं० २१ और पृ० ३३ पं० ३ में जो मनु के अ० ३ श्लोक ७६। ७४। ७५ से यह लिखा है कि "विद्या पढ़ने पढ़ाने, व्रत, हवन, ३ वेद पढ़ने और यज्ञादि के करने से ब्रह्म प्राप्ति के योग्य होता है। अग्नि में डाली आहुति सूर्य्य को प्राप्त होती उस से वृष्टि, वृष्टि से अन्न अन्न से प्रजा की उत्पत्ति करती है। ७६। अहुतजप, हुत हवन, प्रहुत भूतबलि, ब्राह्महुत श्रेष्ठ ब्राह्मण की पूजा, प्राशित श्राद्ध। ७४। अग्निहोत्र में युक्त होय तो जगत् को धारण करता है" इत्यादि का उत्तर यह है कि वेदादि के पढ़ने से आभ्यन्तर और हवनयज्ञ से बाह्य जलादि की शुद्धि हो कर अन्तःकरण की शुद्धिपूर्वक मनुष्य, परब्रह्म की प्राप्ति के योग्य होता है इस में विवाद ही किसे है। परन्तु आप स्वामी जी के विरुद्ध वायु आदि की शुद्धि को हेतुता नहीं ऐसा कोई फल यज्ञ का बतावें। किन्तु आप तो आहुति से वर्षा और अन्नादि द्वारा प्रजा का धारण पोषण मनु के प्रमाण से लिखते हैं जिसे स्वामी जी और हम लोग निर्विवाद मानते हैं और वह वायु की शुद्धि वृद्धि हो कर अन्नादि शुद्ध पदार्थ खाने योग्य उत्पन्न होवें तभी संसार का धारण पोषण हो सक्ता है सो ठीक ही है। हमें आप के समान पक्षपात नहीं कि ठीक बात आप लिखें और स्वामी जी के लेख की पुष्टि करें तब भी हम न मानें। श्लोक ७४ में अहुत, प्रहुत, हुत, प्राशित, ब्राह्महुत ये पञ्चमहायज्ञों के नामान्तर हैं इस से हमारा कोई विरोध नहीं, आप की विशेष इष्टसिद्धि नहीं, व्यर्थ पुस्तक बढ़ाई गई है। और पृ० ३३ पं० १४ में मनु के श्लोक से जो संध्या और हवन से पापनिवृत्ति लिखी है सो ठीक है संध्या के द्वारा आभ्यन्तर राग द्वेषादि और हवन से वायुविकारादि बाह्य दोष निवृत्त होते हैं इस में स्वामी जी का खण्डन ही आपने क्या किया। देवयज्ञ का विशेष मण्डन देखना हो तो मेरा व्याख्यान "वैदिकदेवपूजा" देखिये॥

अथ स्त्रीशूद्राध्ययनप्रकरणम् ॥

द० ति० भा० पृ० ३३ पं० २१ से पृ० ३४ पं० २५ तक सत्यार्थप्र० पृ० ४३ । ३४ । ७५ । ७४ के लेख उद्धृत कर के शङ्का की है कि स्वामी दयानन्दस० जी मन्त्रभाग छोड़ शूद्र को पढ़ना सुश्रुत से प्रमाणित कर के फिर "यथेमां" आदि मन्त्र से शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार लिखते हैं । और "तुम कुवे में पड़ो" इस को दुर्वचन बता कर उलाहना दिया है ॥

प्रत्युत्तर–अधिकार शब्द के दो अर्थ हैं १ 'योग्यता' २ 'स्वत्व'। स्वामी जी ने वा अन्य किसी ऋषिने जहां २ शूद्र को मन्त्रसंहिता छोड़ कर अन्य सब कुछ पढाना लिखा है उस का तात्पर्य्य योग्यतापरक है अर्थात् शूद्र मन्त्रसंहिता पढ़ने के अयोग्य है वा उस के पढ़ने की योग्यता से रहित है । जैसे स्कूल में सब विद्यार्थी ऊंची क्लास में पढ़ने को योग्य नहीं होते किन्तु कोई २ होते हैं । जो नहीं होते उन्हें कहा जा सक्ता है कि वे ऊंची कक्षा (क्लास) के योग्य नहीं वा उन्हें उस कक्षा में पढ़ने का अधिकार नहीं है ॥

'स्वत्व' अपनापन को कहते हैं । और जहां २ वेदमन्त्रों ऋषिवाक्यों और सत्यार्थप्र० में वेद पढ़ने का शूद्र को अधिकार है यह लिखा है उस का तात्पर्य्य स्वत्व (इस्तहक़ाक़) परक है । अर्थात् जैसे ईश्वररचित अन्य पदार्थों से उपकार ग्रहण करने का योग्यतानुसार सब को स्वत्व (अधिकार वा इस्तहक़ाक़) है उसी प्रकार वेद जो ईश्वर का दिया ज्ञान है उस पर भी सब का स्वत्व (हक़) है । तदनुसार शूद्र का भी अधिकार (हक़) है ॥

योग्यता और स्वत्व में भेद है । योग्यता न होने से अयोग्य पुरुष उस पद पर बैठाया भी जावे तो भी अशक्त होवे । और स्वत्व न होना वह कहाता है कि चाहे योग्य भी हो तब भी स्वत्व न होने से उस पद पर नहीं बैठाया जा सके । जैसे देवदत्त के धन का स्वत्व (हक़) उस का पुत्र ही रखता है। अन्य किसी का पुत्र चाहे इस योग्य है कि वह उस धन को लेकर वर्त्त सके परन्तु अधिकारी (हक़दार) नही हैं । बस इसी प्रकार शूद्र अपनी अयोग्यता के कारण अनधिकारी है परन्तु स्वत्व के कारण अधिकारी (मुस्तहक़) है । क्योंकि एक ही पिता परमात्मा की वेदविद्या होने से उस के पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि सब ही अधिकारी (मुस्तहक़) हैं । जैसे किसी पिता के चार पुत्रों में से योग्यता के तारतम्य (कमी बेशी) से कोई अधिकारी हो और कोई न हो परन्तु स्वत्व सब को है अर्थात् जब ही उन में से कोई

अयोग्य अपनी अयोग्यता दूर करले तब ही अधिकारी हो जायगा। परन्तु दूसरे पुरुष का पुत्र पूर्वोक्त अन्य पिता के धनादि का अधिकारी योग्यता होने पर भी नहीं हो सक्ता। इसी प्रकार परमात्मा के चारों पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र हैं उन में से जो अयोग्य है वह कोष का फल नहीं पाता परन्तु अयोग्यता दूर करके योग्य होने पर सब को उस पर अधिकार (इसतहकाक) अवश्य प्राप्त है। जैसे अन्य किसी का पुत्र अन्य किसी के धनादि का अधिकारी योग्यता होने पर भी नहीं होसक्ता। वैसे परमात्मा की वेदसंपत्ति का अधिकारी योग्य होने पर भी कोई (शूद्रादिकुलोत्पन्नहोने मात्र से) न हो यह नहीं होना चाहिये, न हो सक्ता है॥

द० ति० भा० पृ० ३५ पं० ३

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च। शारीरक सूत्र ३६

अ० १ पा० ३

विद्या पढ़ने के लिये उपनयनादि संस्कार सुनने से शूद्र वेदविद्या पढ़ने का अधिकारी नहीं इत्यादि॥

प्रत्युत्तर-हम पूर्व लिख चुके हैं कि अनधिकार का जहां २ वर्णन है वह योग्यता के अभाव से है॥

द० ति० भा० पृ० ३५ पं० ७ से मनु के अ० २ श्लोक १७१।१७२ से लिखा है कि उपनयनसंस्कार से पूर्व वेद पाठाधिकार नहीं॥

प्रत्युत्तर-अयोग्य दशा में शूद्र को अपनी अयोग्यता के कारण अधिकार नहीं। अयोग्यता से योग्यता को पहुंचने की सन्धि में यद्यपि शूद्र शब्द का प्रयोग पूर्वावस्था के अभ्यास से रहो परन्तु योग्यता प्राप्त होते ही वह अधिकारी हो जाता है जैसा कि आप के ही लिखे मनु के वक्ष्यमाण श्लोकों से सिद्ध है:-

न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति॥
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम्॥१०।१२६॥
धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः॥
मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च॥१२७॥
यथा यथाहि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः॥
तथा तथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः॥१२८॥

अर्थ—न शूद्र में कुछ पातक है, न वह संस्कारयोग्य है, न उस का धर्म में अधिकार है, न धर्म करने का उसे निषेध है ॥ १२६ ॥ धर्म की इच्छा वाले तथा धर्म को जानने वाले शूद्र मन्त्र से रहित हो करके भी सत् पुरुषों के आचरण करते हुवे दोषों को नहीं प्राप्त होते किन्तु प्रशंसा को प्राप्त होते हैं॥ १२७ ॥ निन्दा को न करने वाला शूद्र, जैसा २ अच्छे पुरुषों के आचरणों को करता है वैसा २ इस लोक तथा परलोक में उत्कृष्टता को प्राप्त होता है ॥१२८॥ यह श्लोक तथा अर्थ हम ने द० ति० भा० का ही उद्धृत किया है हम कुछ देर के लिये इसी को ठीक मान लेते हैं और पाठकों से निवेदन करते हैं कि ये श्लोक और इन का अर्थ स्वामी जी के सत्यार्थप्रकाशस्थ सिद्धान्त को पुष्ट करता है वा पं० ज्वालाप्र० जी के सिद्धान्त को?। १२६ वे श्लोक में स्पष्ट कहा है कि शूद्र को न धर्म का अधिकार न धर्म का निषेध है। अर्थात् साधारणतया अयोग्यता के कारण जिन २ धर्मकार्य्यों को वह नहीं कर सक्ता उन्हीं का अधिकार नहीं परन्तु जिन २ धर्मकार्य्यों की योग्यता उस में होती जावे उन २ को करता जावे क्योंकि धर्मकार्य्य का निषेध भी नहीं है। १२७ और १२८ वें श्लोकों में इसी को और भी स्पष्ट किया है कि धर्मज्ञ शूद्र, जैसे २ सदाचार (धर्म) को करता है वैसे २ इस लोक और परलोक में उत्कृष्टता को प्राप्त होता है। हम पं० ज्वालाप्र० जी से पूछते हैं कि परलोक की उत्कृष्टता तो आप कहेंगे कि स्वर्ग प्राप्त होता है देवयोनि प्राप्त होती है परन्तु इस लोक की उत्कृष्टता इस के अतिरिक्त क्या है कि शूद्र, शूद्र, न रहे। तात्पर्य्य यह है कि यद्यपि शूद्र अयोग्यता के कारण धर्माधिकारी नहीं होता परन्तु जैसे २ योग्यता बढ़ाता जावे वैसे २ अधिकारी होता जावे और अपने से उत्कृष्ट (वर्ण) पद को प्राप्त होता जावे इस में कोई धर्मशास्त्र का निषेध (रोक टोक) नहीं है।

द० ति० भा० पृ० ३५ पं० २६ अब वेद मन्त्र का अर्थ सुनिये (यथेमां) इस से पूर्व यह मन्त्र है:—

अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सन्नमतामदो वायुश्चान्तरिक्षं च सन्नते ते मे सन्नमतामद आदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते मे सन्नमतामद आपश्च वरुणश्च सन्नते ते मे सन्नमतामदः सप्तस७ँसदोऽअष्टमीभूतसाधनी सकामाँ२॥ अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना॥

यजुः ६।१॥ अग्नि—पृथिवी, वायु-अन्तरिक्ष, आदित्य-द्यौः, आपः—वरुण

ये ८ दो दो परस्परसम्बद्ध हैं । वे मेरे काम को वश करो तथा हे परमात्मन् पञ्चज्ञानेन्द्रिय ६ मन ७ बुद्धि ८ वाणी आप का आयतन हैं तात्पर्य्य यह है कि इसी आठवीं वाणी की अनुवृत्ति (यथेमां०) मन्त्र में आती है इस लिये इस मन्त्र में उस वाणी का वर्णन है जो यज्ञ के अन्त में यजमान (दीयताम्=दीजिये । भुज्यताम्=खाइये) बोलता है । वेदवाणी का प्रकरण नहीं । यह द० ति० भा० का आशय है ॥

प्रत्युत्तर—आप इस मन्त्र में वाणी का प्रयोक्ता यजमान को बताते हैं परन्तु आप के माननीय महीधर अपने भाष्य में इस ऋचा को ब्राह्मी गायत्री लिखते हैं जिस का तात्पर्य्य यह है कि इस ऋचा का ब्रह्म वा ब्रह्मा देवता और गायत्री छन्द है । तब बताइये कि आप का लेख महीधर के विरुद्ध कैसे माना जावे । नहीं २ आप का लेख तो अपना कुछ है ही नहीं किन्तु आप ने तो महीधर से ही लिया है महीधर को भी यह न सूझा कि प्रथम मन्त्र के आरम्भ में तो इस द्वितीय मन्त्र को गायत्री ब्राह्मी लिखा फिर टीका करते समय एक अर्थ में स्मरण रक्खा द्वितीय में भूल गये । इस से पूर्व मन्त्र का अर्थ महीधर ने प्रथम इस प्रकार लिखा है:—

परमात्मानं प्रत्युच्यते। हे स्वामिन्! यस्य तव सप्तसंसदनानि अधिष्ठानानि अग्निवाय्वन्तरिक्षादित्यद्युलोकाम्बुवरुणाख्यानि तत्राष्टमी भूतसाधनी पृथ्वी भूतानि साधयति उत्पादयति भूतसाधनी भूमिं विना भूतोत्पत्तेरभावात्० इत्यादि ॥

अर्थ—परमात्मा के प्रति कहा जाता है कि हे स्वामिन् ! जिस आप के ७ अधिष्ठान १अग्नि, २वायु, ३अन्तरिक्ष, ४आदित्य, ५द्युलोक, ६जल, ७वरुण हैं। उनमें ८ वीं पृथ्वी है जो कि भूतसाधनी है क्योंकि भूमि के विना भूतोत्पत्ति असम्भव है इस कारण पृथ्वी को भूतसाधनी कहा ॥

आगे चलकर महीधर ने दूसरा अर्थ किया कि:—

विज्ञानात्मा वोच्यते। यस्य तव सप्त संसदः पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि मनोबुद्धिश्चेति सप्तायतनानि अष्टमी भूतसाधनी भूतानि साधयति वशीकरोति भूतसाधनी वाक्० इत्यादि ॥

अर्थ—अथवा विज्ञानात्मा के प्रति कहा जाता है कि जिस आप के ७

आयतन हैं ५ ज्ञानेन्द्रियां ६ मन ७ बुद्धि । इन में ८ वीं वाणी है जो भूतसाधनी अर्थात् भूतों को वश में करने वाली है ॥

अब विचार करना चाहिये कि मूल मन्त्र "अग्निश्च पृथिवी च" इत्यादि में अग्नि आदि ७ अधिष्ठानों के नाम और ८ वीं पृथ्वी का नाम स्पष्ट आया है फिर खेंच तान करके भी ५ ज्ञानेन्द्रिय ६ मनु ७ बुद्धि ८ वाणी यह अर्थ कैसे हो सकता है और महीधर ने ज्ञानेन्द्रियादि अर्थ किया तो उसे योग्य था कि अग्नि आदि ८ पदों से जो मन्त्र में आये हैं अपने अभीष्ट अर्थों को व्याकरण निरुक्त आदि किसी प्रमाण से सिद्ध करता और महीधर ने नहीं किया तो उस को मानने और उस के सहारे से अपना प्रयोजन सिद्ध करने वाले पं० ज्वाला प्र० जी को वह अर्थ किसी प्रकार सिद्ध करना था ऐसा न करके केवल अप्रामाणिक लेखमात्र से ७ ज्ञानेन्द्रियादि और ८ वीं वाणी अर्थ लेना सर्वथा असंगत है। हम कोई दूसरा अर्थ भी नहीं करते किन्तु महीधर ने जो प्रथम एक अर्थ मूलमन्त्र के अक्षरानुकूल किया है उसी के ऊपर पं० ज्वालाप्र० जी तथा पाठकों को ध्यान दिलाते हैं कि यहां वाणी का वर्णन नहीं फिर उसी वाणी की अनुवृत्ति से जो (यथेमां वाचम्०) इस अगले मन्त्र में वेदवाणी का ग्रहण नहीं करते सो ठीक नही हैं। और पूर्वमन्त्र में यदि मनघडन्त अर्थ में से वाणी की अनुवृत्ति लाई भी जावे तो सामान्य करके विज्ञानात्मा की सामान्य वाणी का ग्रहण होगा परन्तु यजमान की दीयताम् भुज्यताम् आदि वाणी का अर्थ करना तो महीधरकल्पित द्वितीय अर्थ से भी असंगत है॥

हमारे पक्ष में दोनों मन्त्रों की सङ्गति इस प्रकार हो जाती है कि पूर्व मन्त्र में अग्नि वायु पृथिवी आदि शारीरक उपकार करने वाले ८ पदार्थों का वर्णन करके अगले मन्त्र में कृपालु परमात्मा ने आत्मिक उपकारार्थ वेदका वर्णन करके आत्मा के उपकार का मार्ग बताया और कहा कि मैंने तुम को यह कल्याणी वाणी दी है, तुम ब्राह्मण क्षत्रियादि सब लोगों को इस का उपदेश करो यह ज्ञान की दक्षिणा है इस दक्षिणा का दाता देवों का प्रिय होता है इत्यादि ॥

यहां तक हमने इन के और महीधर के द्वितीय अर्थ की असङ्गति तथा स्वामी जी कृत अर्थ की सङ्गति दिखायी अब जो तर्क इन्हों ने स्वामीजी के अर्थ पर किये हैं उन का प्रत्युत्तर देते हैं ॥

१—यदि वेद "वाणी" है तो उस के वक्ता का शरीर भी होगा और अग्नि

वायु आदित्य अङ्गिरा के हृदय में वेद का प्रादुर्भाव मानना भी न बनेगा और शूद्र को वेद के पठन पाठन का अधिकार मानना अशुचि में शुचि बुद्धि रूप अविद्या है ॥

प्रत्युत्तर—वेद को वाणी शब्द से व्यवहार करना, भाविनी संज्ञा को लेकर है अर्थात् परमात्मा जानते हैं कि हमारे उपदेश किये मन्त्रों को ऋषि लोग वाणी द्वारा संसार में फैलायेंगे तब यह उपदेश वेदवाणी कहलायगा। भाविनी संज्ञा इस को कहते हैं जैसे कोई पुरुष भीत चिनते समय प्रारम्भ की ईंट रखता हो और उस से कोई पूंछे कि क्या करते हो तो वह भाविनी=आगे होने वाली संज्ञा का प्रयोग करके कहता है कि भीत चिनता हूं सो यद्यपि उस को "इष्टका चीयते" कहना था परन्तु "भित्तिश्चीयते" कहता है। इसी प्रकार तार पूरने वाला कहता है कि कपड़ा बुनता हूं क्योंकि तार पूरने से कपड़ा बन जायगा और ईंट चिनने से भीत बन जायगी। इसी प्रकार परमात्मा भी यह जानते हुवे कहते हैं कि ऋषियों के हृदय में उपदेश करने से उन की वाणी द्वारा प्रचार होगा। इसलिये शरीर की शङ्का करना व्यर्थ है। सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम्० यजुः ४० । ८। इत्यादि अनेकशः प्रमाण इस विषय के हैं कि परमात्मा अकाय=शरीर रहित है। शूद्र को अध्ययन करना अशुचि को शुचि मानना नहीं किन्तु अज्ञानी अशुचि जीव को पवित्र वेदोपदेश के द्वारा शुचि करना है॥

२—स्वामी जी ब्राह्मणादि वर्णों को गुणकर्मस्वभावानुसार मानते हैं तो इस मन्त्र में आये हुए ब्राह्मणादि पद जातिपरक हैं वा गुणकर्मस्वभावपरक? यदि जातिपरक हैं तो तुम्हारी सिद्धान्तहानि है और गुणकर्मस्वभावपरक हैं तो उपदेश करना व्यर्थ है?

प्रत्युत्तर—इस मन्त्र में आये ब्राह्मणादि पद गुणकर्मस्वभावानुकूल वर्णों के सन्तानपरक हैं और पिछली तथा होने वाली संज्ञापरक हैं। और हम भी तो आप से पूंछेंगे कि ब्राह्मणादि पद केवल जन्मपरक हैं वा गुणकर्मस्वभावानुगत जन्मपरक हैं। यदि केवल जन्मपरक हैं तो ईसाई मुसल्मानादि मतों में गये हुए जन्म के ब्राह्मणों को भी ब्राह्मणत्व प्राप्त है। यदि गुणकर्मस्वभाव और जन्म सब मिला कर ब्राह्मणादि पद का वाच्य कोई पुरुष होता है तो आप के मत में भी वही शङ्का रहेगी, कि उपनयनादि संस्कारों के समय वेदोपदेश के पूर्व विना गुणकर्मस्वभाव के आप भी ब्राह्मणादि पदों

का व्यवहार कैसे करेंगे? केवल सावित्री संज्ञा वा माता पिता की संज्ञा से। इसलिये जो उत्तर आप का होगा वही यहां हमारा भी जानिये ॥

३–यह यजुर्वेद के २६ वें अध्याय का मन्त्र है इस से पूर्व भी वेद है और आगे भी। इस प्रकार का उपदेश आदि वा अन्त में चाहिये था मध्य में नहीं। क्यों "इमाम्"=इस वाणी को–ऐसा निर्देश समीपस्थ में होता है दूरस्थ में नहीं ॥

प्रत्युत्तर–"इमाम्" का अर्थ यह है कि "इमामुक्तांवक्ष्यमाणां च" अर्थात् यह वाणी जो पूर्व कही और आगे कहेंगे। इस मन्त्र से पूर्व और पश्चात् जो वेद और उन के मन्त्र हैं वे समीपस्थ तो हैं ही आप दूरस्थ कैसे समझते हैं। जब कि इस दूसरे मन्त्र से प्रथम का मन्त्र पूर्व समीप है और तीसरा मन्त्र आगामी समीप है तो दूर कहां हुवा? यदि कहो कि अन्य मन्त्र तो दूर रहे, तो ४ वेदों के आदि वा अन्त में कहने पर भी समस्त वेद समीप न रहता किन्तु सन्निहित मन्त्र और उस के पद और प्रथमाक्षर वा अन्तिमाक्षर के बीच में आते ही अन्य सब वेद दूर हो जाता। धन्य, आप की दूर समीप का अर्थ समझने वाली बुद्धि को। जब आप मार्ग में चलते हुवे कहते हैं कि अमुक नगर यहां से समीप है तो उस नगर के द्वारस्थ गृह को छोड़ अन्य घर दूर रहेंगे और उस एक गृह का नाम नगर नहीं हो सक्ता तो भला बुद्धि से सोचें तो सही कि नगर के समीपत्व की विवक्षा थी वा नगर के एक देश गृह वा उस की सब से उरली भींत वा सब से समीप भींत के पलास्टर की?। इस प्रकार २६ वें अध्याय के दूसरे मन्त्र से पूर्व और पश्चात् आये और आने वाले समस्त वेद की विवक्षा है वा समीप कहने से केवल वेद के आदिस्थ वा अन्तस्थ अक्षरमात्र की? धन्य!

४–अरण शब्द से स्वामी जी ने अतिशूद्र लिया है उस को तो वेदोपदेश सर्वथा निष्फल है। जैसे ऊपर में में बीज बोना ॥

प्रत्युत्तर–ऊषर में बीज बोया हुवा उपजना असम्भव है परन्तु अतिशूद्र का उपदेश करने से कुछ न कुछ समझना सम्भव है इसलिये ऊषरभूमि का दृष्टान्त असङ्गत है ॥

द० ति० भा० ३७ सं० १८:–

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम। गोपाय मा शेवधिष्टे०

इत्यादि निरुक्त लिख कर शङ्का की है कि इस से नीच कुटिल शूद्रों को कदापि विद्या नहीं देनी । स्वामी जी इस निरुक्तस्थ ऋग्वेदमन्त्र को गड़ाप कर गये इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर-प्रथम तौ इस निरुक्त में विद्या का लेख है, वेद का लेख नहीं और यदि विद्या शब्द से वेद का ही ग्रहण करो तौ शूद्र का नाम तक यहां नहीं आया फिर शूद्र को वेदानधिकार कैसे सिद्ध होगया, कुछ भी नहीं। निरुक्त अ० २ खं० ४ का पाठ और अर्थ यह है:-

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेहमस्मि।
असूयकायाऽनृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम् ॥

(विद्या हवै ब्राह्मणमाजगाम) विद्या विद्वान् के पास आई [और बोली कि] (गोपाय मा) मेरी रक्षा कर (अहंते शेवधिरस्मि) तेरा निधि मैं (खज़ाना) हूं (असूयकाय) चुगलख़ोर (अनृजवे) कुटिल और (अयताय) जो यती नहीं उस को (न मा ब्रूयाः) मेरा उपदेश मत कर (वीर्यवती तथास्याम्) इस में मैं वीर्यवती होऊं ॥ एक तौ पं० ज्वालाप्र० जी ने इस को पा० २ पते से लिखा है। निरुक्त में अध्याय और खण्ड हैं, पाद नहीं हैं। यदि पाद शब्द खण्ड की जगह भूल से लिखा गया तौ दूसरे खण्ड में भी यह पाठ नहीं किन्तु चतुर्थ खण्ड में है। दूसरी बात यह है कि आपने "शेवधि" का अर्थ "सुखनिधान" किया है परन्तु निरुक्त में स्पष्ट लिखा है कि "निधि. शेवधिरिति" शेवधि का अर्थ निधि=खज़ाना है ॥ तीसरी बात यह है कि यहां कुटिल, अजितेन्द्रिय, चुगलख़ोर को विद्यादान का निषेध है परन्तु शूद्र का कुटिलत्वादि दोषयुक्त होना आवश्यक नहीं न यहां शूद्र पद आया है। यदि किसी ब्राह्मण के सन्तान में भी कुटिलत्वादि दुर्गुण हों तौ उस दुष्ट को शिष्य न करे यह तात्पर्य्य है ॥ तात्पर्य ही नहीं किन्तु अगले निरुक्त में स्पष्ट विप्र शब्द आया है। यथाः-

आध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्ते विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा।
यथैव ते न गुरोर्भोजनीयास्तथैव तान्न भुनक्ति श्रुतं तत् ॥ नि० २।४॥

जो पढ़ाये हुवे विप्र, मन वचन कर्म से गुरु का आदर नहीं करते जैसे वे गुरु के भोजनीय नहीं वैसे उन का पढ़ा हुवा सफल नहीं। इस से स्पष्ट है कि कुटिल शिष्यों की निन्दा का प्रकरण है वर्ण वा जाति निन्दा का प्रकरण ही नहीं। पूर्व पृ० पं० में मनु के श्लोक में सदाचारी कौटिल्यरहित शूद्र को

आर्यव्यापारीमण्डली—बुकसेलर, पब्लीशर एण्ड कमीशन एजेन्ट—सदर—मेरठ ॥

हमारे विदेशी आर्य महाशयों के सुभीते के लिये यहां के आर्य महाशयों ने उक्त मण्डली स्थापन की है जो महाशय यहां की चीजें खरीद करना चाहें हम उमदा और सस्ती खरीद के भेज सक्ते हैं बाजार के माल पर रु० १) पर एक आना कमीशन ले के भेज सकते हैं। यहां बड़ी उमदा कैंची दरजी के काटने की बनती है जो विलायत तक जाती है ॥) से ५) तक की होती है। सुजनी की टोपी रेशम की तथा कलाबत्तू की बड़ी ही उत्तम होती है जो हजारों रुपये की देसावरों में जाती हैं। यहां पर घोड़े और बघी का चमड़े का साज भी बड़ा उत्तम बनता है। तथा काले कम्बल २) से १०) तक के बनते हैं इत्यादि जो वस्तु चाहें भेज सकते हैं। हमारे यहां सर्व प्रकार का गरी के तेल का उत्तम २ सुगन्ध का देशी साबुन बनता है एक दरजन का ।॥) मूल्य है। आज कल यहां पर गुड़ बहुत फसल से होता है भाव रु० ३।॥) मन है और भी फसली चीजें हम भेज सकते हैं इस पर सैकड़े रु० १) लिया जायेगा नगद रुपये आने पर हम भेजेंगे। जो महाशय अपने यहां की पुस्तकें कमीशन पर विक्रयार्थ भेजेंगे। हम अपनी तौर पर विज्ञापन देके बड़ी शीघ्रता से बिक्री कर देंगे हमारे यहां पर श्री १०८ स्वामी दयानन्द जी कृत, पं० लेखराम जी कृत उर्दू पुस्तकें, पं० भीमसेन जी कृत, पं० तुलसीराम जी कृत, पं० कृपाराम जी के कुल उर्दू ट्रैक्ट, नं० चिम्मनलाल जी कृत तथा वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड की पुस्तकें आदि विक्रयार्थ उपस्थित हैं। जो महाशय चाहें वी० पी० मंगवा लेवें हम क्रिकेट खेलने के बाल (गेंद) भी भेज सकते हैं।

तकजीबबुराहिनअहमदिया का २ भाग १) पं० लेखराम जी कृत छप गया है। तथा १ भाग १।) भी फिर से छप गया है। सबूतेतनासुख १।) नुसखे खब्त-एहमदिया ।॥) हुज्जतुलइस्लाम ॥) रदेखलतइस्लाम -)॥ जहाद ≡) तारीख दुनिया दोनों भाग ।≡) शहीदगंज ।-) हकीकतराय नाटक =)॥ सन्ध्या उर्दू)।

श्री स्वामी दयानन्दसरस्वती महाराज की टीन पर बनी अमेरीका की तस्वीर मूल्य ।॥) जो मुद्दतों से नहीं बिकती थी थोड़ी हमारे पास आई हैं शीघ्र मंगवावें। पूजा की योग आसन की तस्वीर ।॥) लेथो की सादी -) रंगीन -)॥ गायत्री मन्त्र अर्थ सहित)॥ ओ३म्)॥ रंगीन -) नमस्ते)॥

नारायणीशिक्षा अर्थात् गृहस्थाश्रम मू० १) जो कै महिनों से छपता था

तैयार होगया उर्दू में १॥) वीर्य्यरक्षा ≡) गर्भाधान विधि ≡) नीतिशिरोमणि (विदुरनीति) अर्थ सहित ।≈) सत्यनारायण की कथा ≈) प घनश्याम श्री कृत

यह बड़े उत्तम २ उपन्यास देखने योग्य हैं—अमलावृतान्तमाला मू०॥) जिस में रिशवत लेने वाले अमलों की बड़ी मट्टी पलीत की है और सत्य और धर्म का जय दिखाया है। मधुमालती ॥) सुवर्णलता ॥) दीपनिर्वाण ॥) चितोड़ की चातकी ॥) इला ॥≈) प्रमिला ॥≈) अक्षर ।) जया ॥) वीरनारी ।-) चन्द्रकला ।) अद्भुतलाश ।≈) संसारदर्पण २) शिवा जी का जीवनचरित्र ।) बुद्धिमती ।-) कुन्नदेवी -)॥ अंगरेजीकीसीढ़ी ।≈) हारमोनियमगाईड पहिला भाग ।≈) दूसरा भाग ।≈) पांच सो व्यापार १) उर्दू १) ओ३म् बड़े ही उत्तम खूबसूरत टोपी और कोट में लगने योग्य कारीगर से बनवाये हैं बहुत बिकते हैं पीतल के ।) गिलिट के ।-) स्त्रीधर्मनीति १)—

सामवेदभाष्य ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य पूर्ण होकर ग्राहकों को दृष्टिगत हुआ तब विशेष कर और सामान्यतया पूर्व भी हम को बहुत से आर्य्य महाशयों ने कहा और पत्र भी लिखे हैं कि छान्दोग्य बृहदारण्यक सामवेद अथर्ववेद इन पुस्तकों पर इसी शैली का भाष्य करिये। और हमारा भी विचार था कि छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक पर लिखकर फिर सामवेद का आरम्भ करें॥ परन्तु आर्य्यसिद्धान्त इटावा १।११।०७ के विज्ञापन में श्रीमान् पण्डित भीमसेन शर्मा जी ने छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक के लिये शीघ्र क्रमशःभाष्य करने का पुनरपि विचार प्रकट किया है। और एक २ पुस्तक पर दो २ भाष्यादि बनाना सर्वसाधारण का विशेष उपकारक नहीं है इस लिये हमने अब प्रथम सामवेद का भाष्य करना ही उत्तम समझा। सामभाष्य ठीक हमारे श्वेताश्वतर की शैली पर ४० पृष्ठ का १ अङ्क मासिक निकलेगा वार्षिक अग्रिम मूल्य ३) परन्तु १०० ग्राहकों का मूल्य आने पर फिर ४) होजायगा ॥ ३०।११।०७

नोट—जिन महाशयों ने वेदप्रकाश को ११ मास से नियत तिथि पर प्रकाशित होते देखा है उन्हें इस में संशय न होना चाहिये कि "सामभाष्य" नियत समय पर न निकला करेगा ॥ १०० ग्राहकों का मूल्य आने पर छपेगा

पता—पं० तुलसीराम स्वामी सम्पादक "वेदप्रकाश"

स्वामियन्त्रालय—मेरठ

ओ३म् तत्सत् परमात्मने नमः

भारतोद्धारक ॥

"दृते दृंहह मा मित्रस्य मा चक्षुष सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित "वैदिकपुस्तक-प्रचारकफण्ड" का प्रकाशित मासिक पत्र—सदर मेरठ

इस मासिक पत्र की रजिष्ट्री कई है इस लिये इस में के विषय किसी को छापने का अधिकार नहीं है ।

२ वर्ष	आर्य्य संवत्सर १९७२९४९००० नवंबर १८९८	सं० २

(१) वार्षिक मूल्य अग्रिम साधारण से डाकव्यय सहित २) धनाढ्य रईसों से ४) राजा महाराजों से १०) श्रीमती गवर्नमेंट के सन्मानार्थ २०) पलटन के सिपाही, स्कूल के विद्यार्थी जो एक पाकट में १० प्रति एक साथ मंगावें उन से १) मेरठ वालों से २) लिया जायगा पश्चात् दूना लिया जायगा । यह मूल्य २८ फरवरी ९८ ई० तक अग्रिम गिना जायगा ॥ फुटकर अङ्क चार आना

(२) जो महाशय "भारतोद्धारक" पत्र के सहायतार्थ रु० २५) दान देंगे उन के नाम धन्यवाद सहित टाईटिल पेज के प्रथम पृष्ठ पर ३ मास तक, ५०) छ मास रु० १००) एक वर्ष तक छपा करेंगे। देखें कौन महाशय इस धर्मकार्य्य में सहायता देता है ॥

विषय—(१) ऐतिह्यपरीक्षण द्वितीय भाग (२) श्री १०८ स्वामीविरजानन्दसरस्वती महाराज का जीवनचरित्र (३) भास्करप्रकाश ॥

३० । ११ । ९८

(सामने पर)

The Swami Prses

ब्राज़िल व मैक्सको ज्ञात हुये विना कब रह सके थे वैसे ही अष्टाध्यायी के मिल जाने पर उस की व्याख्या महाभाष्य जो अष्टाध्यायी से घना सम्बन्ध रखती है विरजानन्द के हाथ लग गई। तथा इन्हीं दो पुस्तकों के मनन ने उन को दो और ज्योतिःस्तम्भ जिन का नाम निरुक्त और निघण्टु है दर्शा दिये। तथाच वे संसार को आर्यों की सभ्यता, आर्यों के शास्त्र आर्यों की विद्याओं और कलाओं तथा सर्वोन्नतियों और उन विद्याओं और कलाओं के नित्य स्रोत रूपी वेदों तक का मार्ग और श्रेष्ठ मार्ग अष्टाध्यायी महाभाष्य, निघण्टु और निरुक्त को बतला रहे हैं। उन का परोपकारी, परिश्रमी, सत्यप्रिय आत्मा इस अमूल्य धन को सर्वसाधारण तक पहुंचाने का विचार कर रहा है ॥

तथा इसी कारण से विरजानन्द ने अपनी आयु संवत् १९१४ से लेकर मरण पर्यन्त ऋषिकृत ग्रन्थो के प्रचार के लिये व्यतीत किया ॥

मिस्र देश की पुरानी सभ्यता और प्राचीनता के विषय में पश्चिमीय भूभाग (योरोप देश) ने तब से ठीक २ विश्वास किया कि जब रोज़ीटो-स्टोन उन के हाथ लगा। कहते हैं कि जब नेपोलियन के सिपाही मिस्र में जा रहे थे तो एक बूशर नामी सिपाही ने रोज़िटा स्थान पर यह पत्थर प्राप्त किया जिस का नाम अब सांसारिक इतिहास में रोज़ीटा का पत्थर है। इस पर विचित्र (अनोखी) भाषा व चिह्नों द्वारा कुछ लिखा हुआ था तथा यूनानी भाषा में भी कुछ बातें थीं। डाक्टर टामसनेग और फ़ेन फ़्रांसिस ने लगातार प्रयत्न करते२ इस को पढ़ा। इस लेख का पढ़ना ही था कि योरोप देश को मिस्र की पुरानी भाषा का पता लगगया। जिसे सिखाने वाला अध्यापक अब कोई जीवित नहीं। इस पत्थर की लिखत ने जादू का काम किया तथा सर्व पश्चिमी भूभाग वालों ने एक मत हो निस्सन्देह कह दिया कि मिस्र देश अत्यन्त उच्च कक्षा का सभ्य और विद्याओं तथा कलाकौशलादि का एक मात्र अनुपम घर था। यदि यह पत्थर उन विवेचना करने वाले पश्चिम भूभागियो के हस्तगत न होता तो फिर प्राचीन मिस्र के विषय में लोगों को सिवाय इस के और कुछ विचार न होता कि वे (मिस्र देशीय) अर्द्धशिक्षित और महामूर्ख थे। इस पत्थर की प्रतिष्ठा पश्चिम देशीय ही जानते है तथा अब इङ्गलैंड देश को घमण्ड (फ़ख़्र) है कि

यह पत्थर अन्त में उस के भूपति श्री महाराजा जार्ज३ तीसरे के हाथ आ गया ॥

बड़े ऊंचे २ स्तम्भ (मीनार) वाले देश का पुराना इतिहास जैसे इस पत्थर की सहायता बिना जानना कठिन था वैसे ही वरन उस से सहस्रगुणी अधिक कठिनता सुवर्णमयी आर्यावर्त्त की प्राचीन विश्वासजनक तथा मनुष्य मात्र की अमूल्य सम्पत्ति (मीरास) वेद को जानना विवेचकों के लिये था। ऋषि मुनियों का पुराना समय तथा उस समय के प्राचीन मुख्य धारा वेद के स्वरूप को लोग कैसे जान सके। यदि विरजानन्द अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु और निरुक्त का पारस पत्थर न खोज देते, इस पारस पत्थर का पता लगाने वाले विरजानन्द का नाम संसार के इतिहास में अति प्रतिष्ठा से लिया जायगा। इस पारस पत्थर के मिलने का ही यह फल हुआ कि संसार को पता लग गया कि वेदों में मूर्त्तिपूजा, मनुष्यपूजा, अग्नि और अन्य तत्व पूजा नहीं हैं। यह वेद जिन को कि अन्धेरे में टटोलने वाले पुरुषों ने केवल प्रार्थनाओं की व्यर्थ पुस्तक समझ लिया था इस पारस पत्थर की सहायता से विद्या रूपी ज्योति के अनुपम प्राकृतिक सूर्य जाने गये हैं। तमोमयी संसार को सच मुच सुवर्णमयी कर दिया और इसी कारण हम अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु और निरुक्त का नाम पारस पत्थर रखते हुये विरजानन्द के बाधित हैं। ऋषियों की भाषा तथा वेदों का अर्थ समझने के लिये हर एक विवेचक को इस पारस पत्थर की आवश्यता है। और जितने भाष्य मैक्समूलर, विलसन आदि साहबों ने इस पारस पत्थर की सहायता बिना किये हैं वह मनुष्य को किसी सुवर्णमयी समय का पता देने की जगह में लोहे के तुल्य अन्धकारमय समय की ओर आकर्षण करते है। संसार के प्राचीन इतिहास को जान ने के लिये इस पारस पत्थर की प्रत्येक सत्यप्रिय को आवश्यकता है। मनुष्य की सच्ची स्वाभाविक भाषा समझने केलिये इस की सहायता उपयोगी है। तथा इस पारस पत्थर का ज्ञात होना सांसारिक इतिहास में एक बड़ा भारी स्मारक रहेगा ॥

जब कि मथुरा में यह घटना हो चुकी तो इस के षट् मास पश्चात् कृष्ण शास्त्री के विद्यार्थी लक्ष्मण ज्योतिषी बहुत बीमार हुए और उन का पाप उन को भय देने लगा। कहते हैं कि जब मृत्युप्राय थे तो उन्होंने सेठ जी से

कहा कि कदाचित् दण्डी जी ने मुझ पर कोई मारण मोहन का मन्त्र चलाया है। उन को प्रसन्न करना उचित है। तदनुसार सेठ जी ने दण्डी जी को कहला भेजा कि आप ५००) की जगह १०००) सहस्र रुपये ले लें और क्षमा करें। दण्डी जी ने उत्तर दिया कि हमारा यह धर्म नहीं है। किसी मनुष्य के करने से कुछ नहीं होता यह तुम को केवल भ्रम है। यदि वह मेरे उद्योग से बच जावे तो मैं सहस्र अपने पास से देने को उद्यत हूं। अनन्तर दूसरे दिन लक्ष्मण ज्योतिषी की मृत्यु हो गई अष्टाध्यायी और महाभाष्य की महिमा को जानने पर वे अपने व्यतीत परिश्रम को जो कि सिद्धान्त-कौमुदी आदि तुच्छ ग्रन्थों के पढ़ाने में व्यय हुआ व्यर्थ बीता समझते थे। जिस सूत्र ने प्रथम उन को शास्त्रार्थ निमित्त सत्य साक्षी दिया वह यह है—

" कर्त्तृकर्मणोः कृति"

सूर्य का दर्शन करने वाले का चित्त जैसे बनावटी धुयेंदार ज्योति (चिराग) से घृणा करने लगता है—इसी प्रकार दण्डी जी का हाल हुआ॥

मनोरमा, शेखर, न्याय, मुक्तावली, सारस्वत, चन्द्रिका, "पञ्चदशी" आदि नवीन बनावटी ज्योतियों के तुच्छ, प्रकाश को अष्टाध्यायी आदि ऋषि मुनि कृत सूर्य ग्रन्थों के सामने (मुकाबले) बिलकुल व्यर्थ ही समझने लगे। अपनी पाठशाला में ऋषिकृत ग्रन्थों को पढ़ाते व तुच्छ ग्रन्थों की ओर से मनुष्यों के चित्त को हटाते थे। उस समय उन के विद्यार्थी पुण्डरीक, गोपीनाथ दक्षिणी सोमनाथ चौबे गङ्गादत्त तथा रङ्गदत्त आदि थे।

तदनन्तर संवत् १९१५ में युगलकिशोर, चिरञ्जीवलाल सोहनलाल, गोपाल ब्रह्मचारी, नन्दन जी चौबे हुए। और ये सब अष्टाध्यायी, महाभाष्य पढ़ते थे। परन्तु ऋषि विरजानन्द की पूर्ण अभिलाषा परोपकार करने की थी। वे चाहते थे कि जिस प्रकार होसके संसार भर में ऋषिकृत ग्रन्थों और ईश्वरकृत वेदों का प्रचार हो जिस से भूला हुआ संसार सन्मार्ग को पा सके। उन को यह बात अच्छे प्रकार विदित हो चुकी थी कि मेरे वश में सूर्य का प्रकाश है। जिस के सामने कोई बड़ी चमकीली भी ज्योति नहीं ठहर सकती। परन्तु इस प्रकार के सामान पास वर्त्तमान न थे कि वे अपने महानुभाव को पूरा करने

में सफलकार्य होते । तथापि यह अपना मन्तव्य (इरादा) उन्होंने कई बार प्रकाश किया । तथा च एक वार्त्ता (वाक़या) उन के इस अभिप्राय प्रमाण में अत्यन्त ही अद्भुत है ॥

संवत् १९१७ के अन्त और संवत् १९१८ के आदि में आगरा नगर में राजाओं का दर्बार हुआ था जिस के उत्सव में महाराज रामसिंह जी जयपुराधीश भी आगरा में पधारे थे । उन्हों ने दण्डी जी महाराज को बुलाया और सत्कार पूर्वक अपने यहां ठहराया तीसरे दिन जब महाराज जयपुर से दण्डी जी का मिलाप (मुलाक़ात) हुआ तो उस समय पं० केदारनाथ शास्त्री बूंदी के पं० पुरन्दरसिंह रीवां के पं० राजजीवन ओझा त्रिहुत के नैयायिक ये सब महाराजा के पास सुशोभित थे जब दण्डी जी गये इन्हें देख कर महाराज अपने सिंहासन से नीचे उतर द्वार तक आकर स्वयं दण्डी जी का हाथ पकड़ के अपने साथ ले गये तथा राजसिंहासन पर उन को बैठा कर आप उन का मान रखते हुए नीचे बैठे । उस समय दण्डी जी के साथ दो विद्यार्थी युगलकिशोर व जगन्नाथ चौबे थे ॥

विद्यार्थियों ने जाकर महाराज की सेवा में दण्डी जी की ओर से एक यज्ञोपवीत एक नारियल और कुछ मथुरा के पेंड़े भेंट किये । भेंट स्वीकार करने के पश्चात् महाराजा ने दण्डी जी से वार्त्तालाप करना आरम्भ किया । अन्य बातें करते हुये यह प्रार्थना किई कि किसी प्रकार आप हमें व्याकरण पढ़ा दो कि जिस से हम को वेदार्थ का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो तथा आधुनिक सम्प्रदाय का विषय हमारे मन से दूर हो । दण्डी जी ने कहा कि आप नहीं पढ़ सक्ते । हां यदि ३ घण्टा प्रतिदिन परिश्रम करो तो पढ़सक्ते हो । यदि आप ऐसी प्रतिज्ञा करैं तो हम पढ़ाने का वचन (वादा) दे सक्ते हैं । जिस पर महाराजा रामसिंह जी मौन हो रहे और कुछ जवाब न दिया । फिर महाराजा बोले कि अष्टाध्यायी और महाभाष्य मुझे नहीं आ सक्ते, परन्तु आप अन्य ग्रन्थ बना कर उन की जगह में पढ़ावैं । तब दण्डी जी ने कहा कि इन का कोई अन्य ग्रन्थ नही बन सक्ता । जैसे सूर्य्य के प्रतिबिम्ब को कोई तोड़ कर नया नहीं कर सक्ता यही अवस्था ठीक २ इन ग्रन्थों की है । तब महाराजा रामसिंह जी ने कहा कि कोई ऐसा उपाय बताओ कि जिस से मेरी कीर्त्ति

हो, दण्डी जी ने उत्तर दिया कि आप सार्वभौम सभा करें। तीन लक्ष रुपये आप का व्यय होगा। गवर्नर जेनेरल साहब से प्रथम आज्ञा ले लें तत्पश्चात् जब सब पृथिवी के पण्डित एकत्र हों तो पण्डितों के लिये उचित दक्षिणा नियत करना योग्य है और शास्त्रार्थ का विषय यह हो कि अष्टाध्यायी महाभाष्य व्याकरण के मुख्य ग्रन्थ हैं तथा कौमुदी मनोरमा आदि ग्रन्थ मनुष्य कृत और अशुद्ध हैं। तथा न्याय मुक्तावली आदि और भागवतादि पुराण रघुवंशादि काव्य, वेदान्त में पञ्चदशी आदि और नवीन सम्प्रदायी जितने ग्रन्थ हैं सब अशुद्ध हैं ॥

जब सब विद्वान् एकत्र होंगे तो सब के सामने हम दो घण्टे में सब को निश्चय करा देंगे, तथा आप को विजयपत्र दिलवा देंगे। अतएव ऐसे शास्त्रार्थ की सफलता में विक्रमादित्य सदृश आप के नाम का शक (संवत्) प्रवृत्त करा देंगे तब राजा ने प्रतिज्ञा किई कि मैं सार्वभौम सभा करूंगा। इस समय महाराजा के दीवान प० शिवदीनसिंह बोले कि आप जयपुर पधारें। दण्डी जी ने उत्तर दिया कि आप न कहें यदि राजा रामसिंह जी कहें तो हम चलें परन्तु महाराजा रामसिंह जी ने कुछ उत्तर न दिया चुपके सुनते रहे। उस समय दण्डी जी ने यह भी कहा कि यदि तुम इस काम को करोगे तो तुम्हारी कीर्त्ति होगी। नहीं तो जिस प्रकार कुत्ते और गधे मर जाते हैं उसी प्रकार तुम्हारे मरने पश्चात् तुम्हें कोई भी याद न करेगा। इतना कह कर दण्डी जी उठ खड़े हुये। चलते समय महाराजा रामसिंह जी ने २००) रुपये दो सुवर्ण मुद्रा (अशर्फ़ी) और एक दुशाला भेंट किया परन्तु उन्हों ने नहीं लिया, और यह कह कर चल दिये कि हम रुपये लेने को नहीं आये इस की हमें कुछ परवाह नहीं। षट् मास पश्चात् महाराजा रामसिंह जी ने दो सौ रुपये और दुशालादि सब वस्तुयें मथुरा में भेज दिया और ॥) आठ आना प्रतिदिन इन के व्यय के निमित्त दिये जाने की आज्ञा कर दिई। इसी प्रकार ।) प्रति दिवस महाराज विनयसिंह जी भी दिया करते थे और दण्डी जी इस में अपना जीवन निर्वाह कर लेते थे ॥

परोपकारी विरजानन्द जी विद्यार्थियों को पिता के समान पढ़ाया

करते थे ॥ उन के सुधार के लिये उन को दण्ड देते और शुभाचरण की ओर नित्य रुचि दिलाते थे। परन्तु उन की अत्यन्त इच्छा यह थी कि मेरा कोई भी विद्यार्थी ऐसा उत्कृष्ट हो सके जो परोपकार के लिये अपना जीवन लगाता हुआ मनुष्य जाति और प्राणिमात्र के कल्याण का मार्ग विस्तृत कर सके। संवत् १९१७ के चैत्र मास में एक सत्य के जिज्ञासु विद्यार्थी स्वामी दयानन्द नामी उन के समीप आगये। जिस प्रकार रेखा गणित (उकुलेदिस) से अनभिज्ञ मनुष्य अफ़लातून का शिष्य नहीं हो सका था उसी प्रकार व्याकरण का न जानने वाला विरजानन्द का शिष्य नहीं हो सक्ता था। व्याकरण जानने के कारण ही ऋषि विरजानन्द ने विद्यार्थी दयानन्द को शिष्य बनाया। तत्पश्चात् कौमुदी आदि ग्रन्थ जो उन के पास थे, यमुना नदी में फेंकवा दिये। और जब दयानन्द जी यमुना में निश्चय ग्रन्थ बहा कर आ गये तो ऋषि ने कहा कि अपनी बुद्धि से भी इन ग्रन्थों के विचार को पृथक् कर दो। तब अष्टाध्यायी पढ़ाऊंगा। दण्डी जी ने यह निश्चय कर लिया था कि भागवतादि पुराणों और सिद्धान्त आदि अनार्षग्रन्थों ने संसार में अत्यन्त मूर्खता और स्वार्थपरता का राज्य फैला रक्खा है। इसी कारण वे इन भ्रष्ट ग्रन्थों के कर्त्ताओं की ओर से अपने विद्यार्थियोंको अत्यन्त घृणा दिलाना चाहते थे। तथाच इस कार्य की पूर्ति के लिये उन्हों ने एक जूता रख छोड़ा था और सिद्धान्तकौमुदी के कर्त्ता भट्टोदीक्षित की मूर्त्ति को वे सब विद्यार्थियों से जूते लगवाते थे। क्योंकि उन का कथन था कि इसी नीच ने संस्कृत विद्या की कुञ्जी अष्टाध्यायी के प्रचार को रोकने के लिये यह क्षुद्र ग्रन्थ बना रक्खा है। कभी भागवत पुराण की पुस्तक को यह कहते हुये, अपने पांव लगा देते थे कि इन पुराणों ने ही भ्रम जाल फैला कर लोगों को विद्या बुद्धि और पुरुषार्थ से हीन कर दिया है। सब से बढ़ कर उच्च कक्षा की प्रतिष्ठा वे वेदों की किया करते थे तथा इन्हीं को सूर्यवत् स्वतः प्रमाण कहते थे ॥

अष्टाध्यायी, महाभाष्य व्याकरण में दण्डी जी ने पूर्ण योग्यता प्राप्त किई कि भारतवर्ष में कोई भी इन की तुल्यता का घमण्ड नहीं कर सक्ता था। इन की तीव्र बुद्धि और स्मरणशक्ति उच्च कक्षा की थी। नियमपालन में ऐसे पक्के

थे मानो नियम के अवतार ही थे। सत्य से प्रेम और असत्य से अति घृणा इन के मन का मुख्य था। इन की विद्या की ख्याति दूर २ तक फैली थी तथा मथुरा की अद्भुत वस्तुओं में यात्री लोग इन दण्डी जी को भी मानते हैं,

इन की श्रेष्ठ विद्वत्ता की प्रशंसा से आकर्षित हो कर ही स्वामी दयानन्द ने इन को अपना गुरु धारण किया था और निश्चय दयानन्द ऐसे महात्मा की वृद्धि ऐसे ही विद्या के सूर्य से हो सकती थी ॥

एक बार प्रिन्स आफ़ वेल्स श्री महारानी राजराजेश्वरी के युवराज मथुरा में आये, और इन्हों ने यहां के पण्डितों को अपने समीप बुलाया, दण्डी जी अपने विद्यार्थियों सहित गये। यहां अङ्गरेज़ों ने उन से कुछ पूछा तथा एक अङ्गरेज़ ने जो स्यात् उच्चाधिकारी था, वेद की श्रुति बहुत भद्दे और अशुद्ध उच्चारण से पढ़ी। सुनते ही दण्डी जी ने कहा कि न जाने ऐसे अशुद्ध उच्चारण करने वाले को वेद पढ़ने का अधिकार किसने दे दिया, दण्डी जी का सत्य कथन सुन के वह अङ्गरेज़ महाशय अप्रसन्न नहीं हुये। वरन् उन्हों ने इन की वीरता का बखान किया और कहा कि हम ने ऐसा साहसी पुरुष कोई नहीं देखा ॥ संवत् १९२० में गोपाललाल गोस्वामी गोकुल वाले ने दण्डी जी को बुलाया क्योंकि उन के यहां बम्बई के विख्यात पण्डित गट्टूलाल जी अष्टावधानी ठहरे थे ॥

दण्डी जी गयाप्रसाद व दामोदरदत्त विद्यार्थियों सहित वहां गये। इस समय इन्होंने गट्टूलाल जी से दण्डी जी का सम्भाषण कराया और शास्त्रार्थ का विषय "एधितव्यम्" था। दण्डी जीने एधितव्यम् वाला श्लोक चौबे दामोदरदत्त से लिखवाया और स्वयं भाष्य किया जिस से गट्टू जी को परास्त किया। इस पर गोसाईं जी ने इन का बहुत ही आदर सत्कार किया व कहा कि मथुरा जी दूर नहीं तो हम प्रत्येक दिन आकर दर्शन करते व पढ़ते। काशी में जो कि पण्डितों की राजधानी थी दण्डी जी की अद्भुत विद्या और शास्त्र बल की चर्चा फैल गयी तथा जिन विद्यार्थियों की कठिनतायें काशी में न्यून नहीं हो सकी थीं वे काशी छोड़ कर मथुरा में विरजानन्द जी का शरण लेने लगे और देशदेशान्तरों के विद्यार्थी तथा पण्डित लोग इन से लाभ उठाने के लिये

आने लगे। तथा ब्रजकिशोर विद्यार्थी जो बराबर सात वर्ष काशी में पढ़े थे, काशी छोड़ कर दण्डी जी से मथुरा में अष्टाध्यायी का आरम्भ किया। तदनन्तर पं० उदयप्रकाश पं० हरिकृष्ण पं० दीनबन्धु पं० गणेशीलाल ये सब दण्डी जी के विद्यार्थी बने ॥

इन्हीं दिनों का वृत्तान्त है, कि ग्वालियर के विख्यात वैयाकरण पं० गोपालाचार्य्य महाराज मथुरा में पधारे, सेठ गुरुसहायमल ने इन की वैयाकरण पदवी की शोभा सुन कर इन्हें एकसौ रुपया भेंट किया ॥

स्वामी विरजानन्द जी ने सेठ जी से कहा कि पण्डित समझ कर आप जितना चाहें इन्हें दान दें, परन्तु यदि आप वैयाकरण पदवी के विचार से देते हो तो हमें भी निश्चित करादें कि वे निस्संदेह वैयाकरण हैं। गुरुसहाय ने इस का कुछ उचित उत्तर न दिया परन्तु विश्वेश्वर शास्त्री ने जो कि काशी के पण्डित थे उस समय मथुरा में वर्त्तमान थे, इस बात को उचित समझा और गोपालाचार्य्य जी से दण्डी जी का शास्त्रार्थ ठहराया। इस विख्यात शास्त्रार्थ के मध्यस्थ रङ्गाचार्य्य हुवे। तथा वृन्दावन में रङ्गाचार्य्य जी के मन्दिर में दोनों दल एकत्र हुवे। विषय यह था कि दो प्रकार के भाव महाभाष्य में लिखे हैं। आभ्यन्तर और बाह्य। गोपालाचार्य्य कहते थे कि महाभाष्य में नहीं हैं। दण्डी जी कहते थे कि महाभाष्य में हैं, तत्पश्च दण्डी जी ने रङ्गाचार्य्य को सब पण्डितों के सामने दोनों भाव आभ्यन्तर और बाह्य महाभाष्य के " सार्वधातुके यक् " इस सूत्र में बतला दिये। जिस से दण्डी जी की विद्वत्ता का यश सब पण्डितों में फैल गया। व इस से भी रङ्गाचार्य्य जी ने दण्डीजी की अत्यन्त ही प्रशंसा की। इस महान् विजय से दण्डी जी को और भी दृढ़ निश्चय हो गया कि ऋषिकृत ग्रन्थों के सामने मनुष्यकृत ग्रन्थ नहीं ठहर सक्ते और जहां तक हो सके संसार में वेद वेदाङ्ग उपाङ्ग का प्रचार करना उचित है ॥

दण्डी जी जैसे कौमुदी आदि व्याकरण के तुच्छ ग्रन्थों का खण्डन बड़ी पुष्टता से करते थे उसी प्रकार अतिपुष्टता से मथुरा ऐसे स्थान में रहकर भी जो हिन्दुओं का विख्यात मूर्त्तिस्थान है, मूर्त्तियों पन्थों तथा सम्प्रदायों और इन सब के मूल पुराणों का भी खण्डन करते थे ॥

जब कहीं किसी सम्प्रदाय का झगड़ा होता था तो लोग सम्प्रदाय का मूल जानने के लिये दण्डी जी की सहायता लेते थे। तथाच महाराजा

रामसिंह जी के यहां से प्रायः दण्डी जी की सेवा में निमन्त्रण आया करते थे और दण्डी जी सम्प्रदायियों के खण्डन के विषय में पत्र लिखा करते थे। इन के पत्रों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि कई सम्प्रदायी लोग राजाज्ञा से देश से निकाल दिये गये ॥

बड़े २ विख्यात पण्डित शास्त्री नैयायिक महाराज के निकट देश देशान्तरों से अपना बल दिखाने आये और शास्त्रार्थ में पराजय को प्राप्त हुए ॥

एक समय का वृत्तान्त है कि कोई तीव्रबुद्धि (ज़हीन) पण्डित दण्डी जी की बुद्धि की तीव्रता सुन के ईर्ष्या से पीड़ित दण्डी जी का पराजय करने के हेतु आया और इस ढंग से वार्त्तालाप आरम्भ किया कि अपने आप को बहुत थोड़ा कहना पड़े और दण्डी जी को बहुत। जब दण्डी जी कह चुकते तो यह तीव्रबुद्धि पण्डित कह देता कि महाराज आप ने कौन सी बढ़िया बात कही है यह तो हम को भी विदित है। तथा दण्डी जी के कथन के एक२ शब्द को सुना देता, थोड़े ही मिनटों में दण्डी जी ताड़ गये कि यह कोई चालाक पण्डित है। फिर जो कुछ कथन किया उस में दण्डी जी ने साधारण संस्कृत शब्दों के स्थान में उन के ही समान वेदशब्द जो गणपाठ में आये हैं अधिकता से रक्खे तब चुप हो गये गणपाठ का संस्कार इस चालाक पण्डित ने पूर्व नहीं सुना था अतएव तीव्र होने पर भी सारा कथन तो क्या आधे को भी याद न रख सका। और कहने लगा कि महाराज आप निश्चय विद्या के सूर्य हैं। मैंने कई बड़े से बड़े पण्डितों को इस ढङ्ग से पराजित करदिया था परन्तु आप की प्राचीन संस्कृत तथा वैदिक शब्दों की योग्यता मुझ को एक पग भी चलने नहीं देती। जिन शब्दों का मुझे संस्कार ही नहीं और न जिन के अर्थ समझ सका हूं उन को मेरी बुद्धि कैसे स्मरण रख सक्ती ॥

मुड़सान में रङ्गाचार्य्य के गुरु अनन्ताचार्य्य से दण्डी जी का एक बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ जोकि तीन मास तक होता रहा परन्तु अन्त को अनन्ताचार्य्य भाग गये और ज़बानी शास्त्रार्थ करने की शक्ति न रख कर कहने लगे कि अब गृह को जाकर पत्र द्वारा शास्त्रार्थ करूंगा ॥

बालब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होने के कारण उन का मस्तिष्क एक पुस्तकालय का काम देता था, जिस ग्रन्थ को ध्यानपूर्वक एक बार सुना बस वह उन का हो गया, वे अपनी सारी विद्या कण्ठ रखते थे, कविता करने में ये बड़े प्रवीण

थे परन्तु इन को ऋषि कृत ग्रन्थों के प्रचार की अभिलाषा थी अतएव कोई अपनी नवीन रचना नाम के निमित्त छोड़ना कदापि न चाहते थे। दुःखों और शारीरिक कष्टों को इन्हों ने अखण्ड ब्रह्मचर्य्य के कारण सहा ही नहीं बरन जीता हुआ था। तथा यह अखण्ड ब्रह्मचारी ही होने का कारण था कि उन्हों ने संसार की काया पलटाने के लिये ऋषियों के सदृश वैदिकप्रकाश को दर्शा दिया॥

दण्डी जी का भोज्य सदा साधारण ही रहा है। आदि में वे कई बार दूध या केवल खरबूजा या केवल पूरी या केवल नारङ्गी और कई बार सौंफ दूध में पका कर कुछ दिन ही नहीं बरन एक मास तक खाया करते थे। दण्डी जी मालकङ्गनी और लौङ्ग अधिक खाया करते और कहते थे कि यह बुद्धि वर्द्धक वस्तुयें हैं। भिन्न २ ऋतुओं में वैद्यक शास्त्रानुसार कोई २ विशेष वस्तु खाना छोड़ देते थे॥

एक बार जब कि उन का सब शरीर सूज गया था तो गङ्गा के किनारे वैद्यकशास्त्र में लिखी एक औषध * का सेवन करते थे यहां तक कि शरीर के ऊपरी भाग की बहुत खाल उतर गयी और फिर दुबारा कञ्चनकाया हो गई। वे कभी २ मेंथी का साग आध पाव घी डाल कर खाते व कभी सवासेर दूध और छटांक सोंठ का सेवन करते थे॥

छुहारे की गुठली कुटवा कर दूध में डाल कर उस दूध को पीते थे॥ एक समय सन्दूक में सङ्खिया पड़ा हुआ था सेंधा नमक के विचार से तोला भर संखिया खा गये। खाने के थोड़ी देर पश्चात् विष चढ़ने लगा। मकान पर चार बड़े मटके पानी के भरे हुये थे। शनैः २ उन मटकों में से लोटे से पानी निकाल कर सर पर डालते रहे। संध्या तक यही क्रिया करते रहे जिस से सर्वथा क्लेशरहित हो गये॥

मिस्टर पोस्टली साहब जब स्वल्पकालिक कलक्टर हो कर मथुरा में आये तो एक दिन सैर करते हुए विरजानन्द जी के गृह के नीचे से निकले। उन के सहवर्त्ती ने दण्डी जी की विद्वत्ता की अतिप्रशंसा की। जिस को सुन कर वे दण्डी जी से मिलने को गये और दण्डी जी से कहने लगे कि यदि हमारे करने योग्य कोई कार्य हो तो आज्ञा कीजिये। दण्डी जी ने कहा कि यदि हमारी सेवा कर सकें हो तो भट्टो जी दीक्षित के जितने बनाये

---

* नोट—भिलावां इस औषध का नाम प्रायः ज्ञात होता है। ठीक २ पढ़ा नहीं जाता (आत्माराम)

हुये कौमुदी के ग्रन्थ हैं उन को भारगर्भ में या केवल मनुष्य से लेकर आग में फूंक दो या यमुना में प्रवाह कर दो ॥

एक समय आधी रात के लगभग चिरकाल से हुये किसी सूत्र का समाधान मन में ठीक होगया । मारे हर्ष के गृह से उठे और विद्यार्थी युगलकिशोर के गृह के द्वार पर आ कर पुकारा । गुरु जी का शब्द सुन वह आया और पूछने लगा कि महाराज आज्ञा कीजे । कहने लगे कि इस समय मुझे अमुक सूत्र का समाधान याद आया है जो अब तक भी नहीं हो सका है । यह हर्ष सूचना देने आया हूं । ऐसा न हो कि भूल जाऊं इसलिये उचित है कि लिख लो । तथाच उस ने लिख लिया ॥

उन का जंचान (कद) मियाना (मध्यम) और वर्ण गौर मिश्रित था । जब ८१ वर्ष के हुये तो अपनी सब पुस्तकें बरतन, कपड़े और तीन सौ रुपया नकद यानी सब ५२५) के द्रव्य को अपने विद्यार्थी युगलकिशोर के नाम र-जिष्ट्री करा दी । कहते हैं कि मृत्यु से दो वर्ष पूर्व योगी विरजानन्द ने वि-द्यार्थियों से कह दिया था कि मैं शूल की पीड़ा से अमुक दिन शरीर त्यागूं-गा । और जो एक दो सेठ मरने से कुछ दिन पूर्व मिलने को आये उन से कहा कि भविष्य में यहां न आना ॥

ऋषियों के छोड़े हुये ग्रन्थ रूपी धन का प्रेमी, वेदों की निष्कलङ्क ज्योति को ऋषिकृत ग्रन्थों के सहारे से दर्शाने वाला ब्रह्मचारी, यौगिक शब्दों के सच्चे पारस पत्थर से तमोमयी लोहे को चमकते हुये सुवर्ण में बदलने वाला ऋषि, मूर्त्तिपूजा के गढ़ में रहकर मूर्त्तिपूजा की जड़ पर कु-ल्हाड़ा मारने वाला वीर, योगसमाधि से आत्मशक्तियें बढ़ाने वाला महात्मा परोपकार की रक्षा से विद्यार्थियो के मन में वैदिकज्योति पहुंचाने वाला गुरु बिना शोक के परलोक गमन को उद्यत होता है ॥

तथा कुंवार के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को सोमवार के दिन विक्रमीय संवत् १९२५ में अपने पाञ्चभौतिक शरीर को छोड़ कर सज्जनों के हृदय अ-पने वियोग से सदैव के लिये भेदन कर जाता है ॥

इस ऋषि का विद्यारूपी प्रकाश उन के सब विद्यार्थियों के लिये स-मान था-परन्तु मही व कांच पर एक ही प्रकाश का भिन्न२ प्रभाव पड़ता है ऋषि के अनेक विद्यार्थियों में से केवल एक दयानन्द सरस्वती के ही शुद्ध

(शेष आगे)

(गत अङ्क पृष्ठ ११२ से आगे ऐतिहासिकनिरीक्षण)

वंश में ६०० राजा थे तथा प्रश शब्द उस के जाति पवांर या परमरा या पूरा या पवाराश्श का मूनानी बनाया हुआ है, तथा वर्ष का ऐक्य (मुताविकत) भी है क्योंकि आगस्तस अगस्टस सन् २७ ई० में शासन करता था। (कैरुलमुल्कहूनीन व चेहल जवाव ऐतिहासिक पृष्ठ ९३ से), तथा ऐसा ही कालिदास के ज्योतिर्विदाभरण में लिखा है ॥ देखो अध्याय २२ श्लोक १८—

यो रूमदेशाधिपतिं शकेश्वरं जित्वा गृहीत्वोज्जयिनीं सभायाम्।
सर्वप्रजामङ्गलसौख्यसंपद्बभूव सर्वत्र च वेदकर्म ॥

ज्योतिर्विदाभरण ॥

जो रूम देश के शकों के राजा को जीत कर सुन्दर उज्जैन पुरी का मालिक था, सब प्रजा को मङ्गल सुख और आनन्द था तथा सब जगह वैदिककर्म होता था और विक्रमादित्य का दूसरा नाम शकारि भी विख्यात है अर्थात् शकों का शत्रु ॥

(४ प्रमाण) एक और पत्थर गोंदा नाम गांव जो खमालिया राज्य जामनगर काठियावार देश में है वहां से निकला है, जिस को राजा रुद्रसिंह ने एक तालाब बनाने के उत्सव पर लगाया था, उस में संवत् १०३ विक्रमी खुदा हुआ है ॥

(५ प्रमाण) इसी प्रकार एक और पत्थर राजकोट प्रान्त के जसरन में से निकला है, यह एक काठी का गांव है। वहां से दो कोस दूरी पर एक धार है, उस पर एक बड़ी शिला पड़ी है, जो एक तालाब या कूप के उत्सव पर खुदाया गया था। उस में लिखा है कि राजा रुद्रसेन के शासन समय में संवत् १२७ विक्रमी में यह खुदवाया गया ॥

(६ प्रमाण) मुख्य द्वारिका में लायब्रेरी (पुस्तकालय) के पास एक पत्थर की शिला है। जिस पर संवत् १३२ विक्रमी और नाम राजा रुद्रसेन का अङ्कित है। यह भी किसी ऐसे ही उत्सव पर खुदवाया गया है ॥

(७ प्रमाण) राजा विक्रम से १३५ वर्ष पीछे शालिवाहन हुआ। जिसने अपना सिक्का चलाया ॥

(८ प्रमाण) गांव आकोड़ी रियासत जामनगर के पास से एक और पत्थर की शिला खुदी हुई निकली है। जिस पर संवत २२१ विक्रमी अङ्कित है॥ यह शिलाङ्क (कुतबा) भी किसी धर्मार्थ काम के वास्ते बनाया गया था, ये सब शिलाङ्क (कुतबे) और इन के मुख्य पत्थर स्थान राजकोट देश काठियावार गुजरात के सरकारी लायब्रेरी में मौजूद हैं। जिस का जी चाहे पढ़ देखे।

(९ प्रमाण) एक और शिलाङ्क को हम यहां उद्धृत करते हैं जिसे "सर विलियम जून्स" अपने वर्कस (पुस्तक) भाग ६ छापा लण्डन सं० १८०७ पृष्ठ ३५० में नकल करते हैं, जो देहली की लाट पर लिखा हुआ वर्त्तमान है॥

आविंध्यादाहिमाद्रेर्विरचितविजयस्तीर्थयात्राप्रसंगादुद्ग्रीवेषु प्रहर्त्ता नृपतिषु विनमत्कन्धरेषु प्रसन्नः। आर्यावर्त्तं यथार्थं पुनरपि कृतवानूम्लेच्छविच्छेदनाभिर्देवः शाकम्भरीन्द्रो जगति विजयते वीसलः क्षोणिपालः॥

आविंध्यादाहिमाद्रेर्विष्वविनविजय आर्यावर्त्तं यथार्थं पुनरपि कृतवानूत्तं संप्रति वाहमानतिलकः शाकं भस्माभिः करदं व्यधायिहिमवद्विन्ध्या संवत् श्री विक्रमादित्य १२३ वैशाखशुदिव्हिमायमहामन्त्री राजपुत्र श्री सल्लक॥

यह पद्द लेख वैशाख शुदि संवत् १२३ विक्रमी का है। विवेचक लोग कहते हैं कि यह शिलाङ्क राजा अनलदेव के पुत्र विशाल देव शाकंभरी के राजा का है जो वैशाख शुक्लपक्ष तिथि ५ को लिखा गया था॥

भावार्थः—विन्ध्या व हिमाद्रि तक यह कीर्ति में कम न था—आर्यावर्त्त को इस ने फिर वैसा ही बनाया जैसा कि उस के नाम से प्रकट होता है। और उस के मरने के पश्चात् "वाहमान तिलक" शाकभरी का राजा है। इस से हिमवत् व विन्ध्या का प्रान्त सहायक देश बनाया गया है। और श्री विक्रमादित्य संवत् १२३ में वैशाख के शुक्लपक्ष में। महामन्त्री राजपुत्र श्री सल्लक॥

(१० प्रमाण) शाहजहांपुर से २५ मील पर बांसखेड़ा ग्राम में एक खेतिहार को इस के खेत में एक तांबे की पट्टिका मिली है जिस पर संस्कृत अक्षरों में एक मुहर (छाप) लगी हुई है जो महाराजा हरशोधन जिन की राजधानी थानेश्वर थी उन का दिया हुआ है, जिन्होंने संवत ६६१ विक्रमी से ६६७ तक राज्य किया। इस पट्टिका पर एक जगह जो दो ब्राह्मणों के नाम अपने मरने से दो साल पहिले अर्थात् संवत ६६५ विक्रमी में रामनगर जागीर जो कि रुहेलखण्ड में आंवला के निकट है उन के दान के विषय में लिखा है॥

पण्डित ज्वालासहाय साहब एम० ए० ने पञ्जाब प्रान्त के लुधियाना स्थान से जो विषय सं० १८८१ ई० के नवें कांग्रेस में लण्डन स्थान को भेजा था, उस में भी संवत् के बारे में उन्होंने बड़े २ प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है। तथा विरोधियों के सिद्धान्तों का अत्युत्तमता से खण्डन किया है। इसलिये हम वह विषय जैसे का तैसा अनुवाद करते हैं ॥

प्रथम उक्त कांग्रेस के सेक्रेटरी (मन्त्री) उस विषय पर अपनी ओर से एक रिमार्क (टिप्पणी) देते हैं कि "यह कागज़ जो पूर्वी भाषा जानने वालों के एक जातीय कांग्रेस में जो स्थान लण्डन सन् १८८१ ई० में हुवे पढ़ा गया ॥

(१) साल संवत् विषयक (पुस्तक) पण्डित ज्वालासहाय लुधियाना निवासी कृत ॥

(२) भारत मार्तण्ड अर्थात् इण्डियन ड्रामा ट्रैक्स पण्डित एच एच ध्रुव बरदवा निवासी कृत। यह दोनों कागज़ जो हिन्दुस्तान के विख्यात विद्वानों के लिखे हुवे हैं हिन्दुस्तान के ऐतिहासिक विषयों में एक और समय बताते हैं तथा प्रोफ़ेसर हूटमी के वाक्य की नई पुष्टि करते हैं कि जो हिन्दुस्तान के विद्यासम्बन्धी इतिहास योरूपीय विद्वानों के कल्पनानुसार स्थिर किये गये हैं वह दोबारा ध्यान दिये जाने योग्य हैं ॥

विक्रमादित्य के इतिहास के बारे में विख्यात सर्वसम्मत कथा यह है कि विक्रमादित्य और उस के ९ रत्न जिन में से १ कालिदास शाकुन्तल के कर्ता बड़े विख्यात हुये हैं सन् ईसवी से पूर्व प्रथम शताब्दी में हुये हैं और इस संवत् का प्रथम वर्ष जूलियस कैसर के ब्रटेनदेश (इङ्गलैण्ड स्काटलैण्ड आयर्लैण्ड) पर आक्रमण के समकालीन होता है ॥

कुछ साल बीते युरोप के पूर्वी भाषा की विद्वन्मण्डली ने सर्वसम्मत गाथा को छोड़ कर मन गढ़ित सिद्धान्त और कल्पनाओं द्वारा इस बात को सिद्ध करने का उद्योग किया कि विक्रमादित्य निश्चय ६ वा ७ वीं शताब्दी में हुये और इस पक्ष को सिद्ध करने के लिये जो युक्तियां दी गईं वे कदापि माननीय न हुईं। तथा इस भयङ्कर सिद्धान्त पर निर्भर है कि किसी पुस्तक की तिथि उस के विषयों से जानी जा सकी है कि उस में नये वा पुराने विचारांश लिखे हैं ॥

प्रोफ़ेसर मैक्समूलर ने उपनिषदों की लिपि लिखने समय प्रकट किया था कि यह एक बड़ा भयङ्कर सिद्धान्त है। उन्हों ने लिखा है कि उन सब धार्मिक और शास्त्र के पुस्तकों की तिथियों के बारे में कुछ अधिक न मालूम हो हम नहीं कह सके कि इन पुस्तकों के रचने वाले आचार्यों के विचार कैसे थे। असम्भव बातों के लिये उद्योग करना धीरता तो है, परन्तु यह विद्वानों का काम नहीं है ॥

विक्रम के ईसा से ६०० वर्ष पश्चात् होने का जो प्रमाण दिया गया है वह यह है कि "क्यों कि कालिदास विक्रमादित्य के समकालीन हैं और इस के मत का ढङ्ग एक बनावटी है। इस लिये कुछ २ वर्तमान की है तथा सं० ई० की ७ वीं शताब्दी ऐसी प्राचीन काल नहीं है; अतएव कालिदास और विक्रमादित्य लगभग ७ वीं शताब्दी में हुये हैं" ॥

इस युक्ति की भूल प्रकट करने की अधिक आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह शङ्का जिस से यह सम्भव है अब दूर होती जाती है। और विद्वानों की यह मति होती जाती है जैसा कि पहिले डाक्टर बोह्लर और डाक्टर पेटर्सन ने प्रकट किया था कि हिन्दुस्तान की सर्वसम्मत राजा विक्रमादित्य के संवत् विषयक बहुधा ठीक है। दूसरे यह मति प्रकट की गई है। और प्रोफ़ेसर वेबर साहब ने पुष्ट किया है कि संवत् के आरम्भ की वही अवस्था है जो जूलियस और ग्रिगरी के जन्त्री के हिसाब की। विक्रमादित्य का उस के संवत् के प्रथम वर्ष में होना ऐसा ही निर्मूल है जैसा कि जूलियस कैसर और पोप ग्रिगरी का उन के जन्त्री के पहिले वर्ष में होना। परन्तु यह मति ठीक नहीं है, क्योंकि संवत् के वर्ष की अवस्था जूलियस और ग्रिगरी के जन्त्री की अवस्था से अत्यन्त विरुद्ध है। क्योंकि ग्रिगरी का सन् या विक्रमादित्य की जन्त्री कोई नहीं कहता। इसलिये यह मिलान आदि से ही निर्मूल है अतएव सब युक्तियां जो इस पर होना सम्भव है व्यर्थ हैं ॥

प्रोफ़ेसर वेबर ने प्रकट किया है कि हम को ज्ञात नहीं है कि संवत् के वर्ष आरम्भ होने का क्या कारण है तथा उस का फल हिन्दुस्तान के गाथाओं को अमाननीय ठहराना है परन्तु ठीक वही अवस्था सन् ईसवी की है। क्योंकि पादरियों ने ईसा का जन्म सन् ईसवी से चार वर्ष पूर्व स्थिर किया है। परन्तु इस मूल पर कोई यह नहीं कहता कि "जूलियस कैसर" इत्यादि या

आलेमन का मानसिक या तथा विक्रमादित्य का ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी से हटा कर ६ वीं में बताना ठीक वैसा ही है ॥

अब हम पं० ज्वालासहाय जी के उस विषय को उद्धृत करते हैं जो इन्हों ने लण्डन की कांग्रेस में भेजा था

संवत्। गत वर्षों में यूरोपीय विद्वानों ने महाराजा विक्रमादित्य के संवत् विषयक बहुत लेख किये हैं। जिन (विक्रम) की देशी कवियों ने विद्या वृद्धि में सहायता देने के कारण अत्युत्कृष्ट प्रशंसा की है। तथा जिन का राजदर्बार विख्यात नौरत्नों से सर्वदा शोभायमान रहता था॥

कोई २ कहते हैं कि इन्हों ने सं० ई० से ५७ वर्ष पूर्व राज्य किया। अन्य इस बात को न मानते हुये यह पक्ष सिद्ध करते हैं कि कालिदास की कविता का जैसा ढङ्ग है उस प्रकार के लेख का समय मसीह की छठी शताब्दी से पूर्व का नहीं। जो (समय) कि संस्कृत के पुनर्वार प्रफुल्लित होने का है॥

इन लोगों की कल्पनानुसार विक्रमादित्य जिन की रक्षा में कालिदास और शङ्कु जैसे कवि हुए ई० ६०० ही शताब्दी में उन्नत हुये। इस मति को स्थिर करने वाली सभा (पार्टी) के प्रधान डाक्टर फर्गुसन हैं। इन का सिद्धान्त (दावा) है कि विक्रमादित्य का संवत् सन् ५४४ ई० से आरम्भ हुआ। यद्यपि वह हिन्दुओं (आर्य्यों) के ज्योतिष के अनुसार मसीही सन् से ५७ वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ। प्रोफ़ेसर मैक्समूलर पूर्व मति को पुष्ट करते हुये यह कहते हैं कि यदि एक पत्थर या सिक्का भी हम को प्राप्त हो जा सके जिस पर ५४३ ई० में विक्रमादित्य का समय लिखा हो तो यह सब कल्पनायें दूर हो जावेंगी॥

होल्टजमन् की मति से जो नीचे लिखी जाती है डाक्टर वेबर महाशय सहमत हैं। (वह यह कि)—विक्रमादित्य की उन्नति को इन के संवत् के प्रथम वर्ष से गणना करने में हम ऐसी भारी भूल पर हैं जैसी कि पोप गृगरी तेरहवीं को ग्रिगोरियन संवत् या जन्त्री के १ पहिले वर्ष से (गणना) करने में भूल पर होते। या जूलियस सीजर को ज्यूलियस के समय के प्रथम वर्ष से (गणना करने में) जो कि उस के नाम से विख्यात है अर्थात् मसीह से ४७१३ वर्ष पूर्व गणना करने में॥

प्रोफ़ेसर पेटर्सन महाशय का यह कथन है कि उक्त मति अब स्थिर नहीं रह सकी है तथा एक पत्र में जो उन्हों ने रायल एशियाटिक सोसाइटी ब-

स्वर्ग में पढ़ा था यह प्रकट करते हैं कि जिस प्रकार की कविता कालिदास की पुस्तकों में पाई जाती है वह सन् ईसवी की प्रथम शताब्दी में भी पुरानी हुनर (कला) समझी जाती थी ॥

पद्यरचना प्रचार कम से कम सन् ७८ ईसवी तक अवश्य था। जब कि किंशका के समय में अश्वघोष नामी ब्राह्मण ने बौद्धमत अङ्गीकार करके बुद्ध की आयु का वृत्तान्त लिखा ॥

प्रोफ़ेसरपैटर्सन के विचारानुसार तीन बड़े वैयाकरण पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि सब के सब कवि भी थे और इसी कारण इन का विचार है कि उन कहावतों का विश्वास न करना अनुचित है। जिन से यह प्रकट होता है कि विक्रमादित्य और इन का दर्बार मसीह से ५७ वर्ष पूर्व था तथा उस समय विख्यात कवि भी थे ॥

डाक्टर बोलर ने यह फल (नतीजा) निकाला है कि संवत् सं० ५४४ ई० से पूर्व प्रचरित था। तथा डाक्टर किलहार्न भी इन के सहमत हैं। मुझ को भी इन पिछले तीन ऐतिहासिकों से ऐक्यमत होने में कुछ भी विवाद नहीं है। तथा नीचे लिखी हुई कुछ टिप्पणियां (नोट) इस मति को और अधिक पुष्ट करने के लिये लिखता हूं ॥

ज्योतिर्विदाभरण की एक विख्यात कथा से ज्ञात हुआ कि कालिदास विक्रमादित्य के दर्बार के एक विख्यात कवि थे। उन के काव्य और नाटकों से जाना जाता है कि वे संस्कृत भाषा की प्रत्येक विद्या से पूर्ण अभिज्ञ थे। उन के रचित ग्रन्थों में वैदिकशिक्षा हिन्दू फिलासफी पौराणिक कहानियां तारागण की विद्या आदि का इतना वृत्तान्त है कि इन का छन्दविद्या में श्रुतबोध और ज्योतिष में ज्योतिर्विदाभरण का लिखना कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं। तथा च वे लिखते हैं:—

*शंकादिपण्डितवराः कवयस्त्वनेके। ज्योतिर्विदास्
*भवनाश्च वराहपूर्वाः। श्री विक्रमस्य बुधसंसदि
*भाज्ञबुद्धैः। तैरप्यहं योसखा किल कालिदासः॥

काव्यत्रय वर्ति० वर्षे सिन्धु

उक्त श्लोकों में से अन्त का श्लोक भली प्रकार प्रकट करता है कि कलियुग के ३०६८ वर्ष में यह पुस्तक लिखी गई। कलियुगी संवत् अब ५००४ वर्ष

हैं। इस लेख से पुस्तक लिखे हुये १९२५ वर्ष व्यतीत हुये। ज्योतिष विद्या स-म्बन्धी बहुतेरी पुस्तकों से प्रकट होता है कि विक्रमादित्य कलियुग के सं० ३०४४ में राजसिंहासन पर बैठा। तथा कालिदास के ज्योतिर्विदाभरण शास्त्र बनाने से २४ वर्ष पहिले राज्य आरम्भ किया ॥

ऊपर के वृत्तान्त से गणित विद्या द्वारा अच्छे प्रकार सिद्ध होता है कि विक्रमादित्य का संवत् उस के राज्य पाने के समय से आरम्भ होता है।

इस के अतिरिक्त कुछ काल व्यतीत हुआ कि मुझ को हाथ की लिखी हुई एक संस्कृत पुस्तक मिली है जिस का नाम "गुर्जरदेश भूपावली" है। जिस में के विषय इस प्रकार की शङ्काओं को दूर करने के लिये बहुत सहा-यता करते हैं। इस पुस्तक में १०० श्लोक हैं और संवत् १८६५ में एक जैनीरङ्ग विजय नामी ने इस को लिखा था ॥

संस्कृत भाषा की इतनी कम पुस्तकें हमारे हस्तगत हुई हैं कि एक छोटीसी ऐतिहासिक पुस्तक भी वर्त्तमान समय के अन्वेषण कर्त्ताओं के लिये एक बड़ा भारी पदार्थ (ग़नीमत) है ॥

इस पुस्तक के कर्त्ता गुजरात देश के राजाओं का समाचार व्याख्या स-हित (तफ़सीलवार) महावीर जैनमत के गुरु के मृत्यु से लेकर भारतवर्ष में मुग़लिया राज्य के अवनति तक का वर्णन करते हैं ॥

जो कुछ वे हिन्दू राजाओं के विषय में लिखते हैं उस का संक्षेप में यहां लिखता हूं ॥

जिस रात्रि को महावीर तीर्थङ्कर का देहान्त हुआ उसी रात्रि को पा-लक राज्यासन पर बैठा और ६० वर्ष तक राज्य किया। इस के पदानुयायी नौनन्द हुए। जिन का अधिकार १५५ वर्ष तक रहा। इस के पश्चात् चन्द्रगुप्त के मोरियन वंश का शासन रूपी चक्र आरम्भ हुआ। जिस के वश में गुज-रात का राज्य १०८ वर्ष तक रहा। इस के पश्चात् पुष्पमित्र, बालमित्र और निर्वाहन के नाम आते हैं जिन के शासन का समय १३० वर्ष होता है ॥

गिर्दभील जिस ने केवल १३ वर्ष तक राज्य किया, श्यामाचारी सरस्वती की सङ्गति से राज्य खो देने वाला समझा जाता है। इस के पश्चात् यह देश चार वर्ष स्थान (शक लोगों) के वश में रहा। जिन के पीछे से विक्रमादित्य उज्जैनाधीश ने वहां से निकाल कर स्वयं महावीर की मौत से ४७० वर्ष पीछे राज्य किया। उस के स्वतन्त्र विचार और उदारता की बहुत ही प्रशंसा की

गई है। उस ने एक नया संवत् स्थापन किया। तथा ८६ वर्ष राज्य किया। इस के पश्चात् उस का पुत्र युवराज हुआ परन्तु इस के संवत् से १३५ वर्ष पश्चात् एक और राजा शालिवाहन नामी बलवान् हुआ और शक संवत् स्थापित किया।

मैं उचित समझता हूं कि जो कुछ पुस्तक कर्त्ताकी सम्मति विक्रमादित्य और शालिवाहन के विषय में है उसे यहां प्रकाशित करूं॥

वीरमोक्षाच्च सप्तत्या युते वर्षचतुः शते।
व्यतीते विक्रमादित्य उज्जयिन्यामभूदितः॥
सत्वसिध्यग्निवेतालप्रमुखानेकदेवता।
विद्यासिद्धो मन्त्रसिद्धः सिद्धः सौवर्णपुरुषः॥
धैर्यादिगुणविख्यातः स्थाने स्थाने नराः परैः।
परीक्षकश्च पाषाणनिघृष्टसत्वकांचनः॥
ससन्माना इहश्रीयां? दानाय नृणां खिलाम्।
कृत्वा संवत्सराणां सः आसीत् कर्त्ता महीतले॥
षडशीतिमितं राज्यं वर्षाणां तस्य भूपतेः।
विक्रमादित्यपुत्रस्य ततो राज्यं प्रवर्त्तितम्॥
पञ्चत्रिंशद्युते भूपाद्वत्सराणां शते गते।
शालिवाहनभूपाभूद्वत्सरे शककारकः॥

शालिवाहन के राज्यशासन के ५० वर्ष पश्चात् बालमित्र परिसा का राज्याभिषेक हुआ और १०० वर्ष पर्य्यन्त राज्य किया। संवत् २०५ से पुस्तक कर्त्ता राजा हरिमित्र, प्रियमित्र, भानुमित्र के नाम लिखता है। जिन्हों ने ५५७ संवत् तक राज्य किया इस के पश्चात् आमा और भजा का भाग्योदय हुआ (दौर दौरा रहा) तथा इन के पश्चात् चांच का और था जिन्हों ने २४५ वर्ष शासन किया। चोर वंश में से वनराज प्रथम मनुष्य हुआ है जो गुजरात पर ६० वर्ष पर्य्यन्त शासनाधिकारी रहा है जिस बीच उस ने पट्टननगर बसाया। चोर वंश के शेष राजाओं के नाम नीचे लिखे जाते हैं॥

(शेष आगे)।

योगराज ३५ वर्ष क्षेमराज २६, भादोराज २९ भद्रसिंहराजा २५, रत्नादित्य १५, सामन्तसिंह ७ साल ॥

चार वंश ने सब मिला कर १९६ वर्ष शासन किया। अब इस के पश्चात् संवत् ९९८ में मूलराजने गुजरात का राज्य लिया और ५५ वर्ष पर्यन्त शासन किया। वह निस्सन्देह चालुक वंश में से प्रथम राजा था। इस के पश्चात् उसी वंश का शासन रहा। इस वंश ने सब मिलाकर २४५ वर्ष शासन किया॥

इस वंश का अति विख्यात राजा कुमारपाल था। जो संवत् ११९९ से १२३० में हुआ है। इस के बुद्धिमान् (होशियार) मन्त्री वाहिरने भृगुपुर में जीना पति का मन्दिर बनवाया। संवत्१२९८ मेंवृहद्धौल राज्यासन पर बैठा॥ तथा दशवर्ष पश्चात् मरगया। इस के पश्चात् चार राजाओं ने गुजरात पर ६३ वर्ष शासन किया। इन में से सब का अन्तिम कर्णदेव था जिसने १३६१ से १३६८ पर्यन्त राज्य किया। इस का उत्तराधिकारी खिज़िर खान खिलजी हुआ। इस समय से गुजरात देश मुसलमान राजाओं के हाथ में चला गया और पुस्तककर्त्ता आगे मुग़लवंशी राजा शाहआलम के समय तक के विषय में वर्णन करता है। ऐसा भासित होता है कि पुस्तककर्त्ता ने यह सर्ववृत्तान्त इतिहास से लेकर लिखा है। यद्यपि ब्राह्मणों के पुस्तकों में ऐतिहासिक विद्या अति न्यून रह गई है तथापि कुछ वर्षों के परिश्रमों से ज्ञात हुआ है कि जैन पुस्तकालय में बहुत कुछ प्राचीन इतिहास वर्त्तमान है। इस समय के अन्वेषण कर्त्ताओं ने यह भी प्रकट कर दिया है कि बौद्ध और जैन मतों के आरम्भ होने का भी समय एक ही है। तथा जैन और बौद्ध दोनों प्रत्येक स्वयं सम्मिलित फकीराना ढङ्ग से जारी रहे। व यह फकीराना ढङ्ग मसीह से ६०० छह सौ वर्ष पूर्व था॥

गुर्जरभूपावली के अनुसार जैन मत के २४ वें तीर्थङ्कर महावीर का मसीह से ५२७ वर्ष पूर्व देहान्त हुआ था। मुझ को जैन धर्म के एक गुरु ने बतलाया था कि महावीर की मृत्यु बौद्ध मत के आदि प्रचारक (बानी) से १६ वर्ष पश्चात् हुई थी। यदि बौद्ध मत के इस इतिहास का जो इस समय भी उन में प्रचरित है कुछ भी विश्वास किया जावे तो बौद्ध मत के आदि प्रचारक (बानी) को मरे हुए २४३४ वर्ष व्यतीत हुए॥

पालक राजा जिस का इस पुस्तक में वर्णन है प्रायः (गालबन) वही राजा है जिस का वृत्तान्त "शूद्रक का अन्वेषण" नामी ड्रामा (नाटक) में आया है। ये मसीह से ४६७ वर्ष पहिले मरे थे। नौनन्दन ने मसीह से ३१२ वर्ष पूर्व शासन किया। गुजरात मूरिया वंश के वश में मसीह से ३१२ से २५४ वर्ष पूर्व तक रहा। तदनन्तर* पुष्पमित्र का शासन आरम्भ हुआ और प्रायः (गालबन) यह वही है कि जिस का वृत्तान्त पतञ्जलि ऋषि के भाष्य में है। इस के कुछ काल पीछे विक्रमादित्य के पिता का पता लगता है॥

विक्रमादित्य जिस को इस समय शकारि अर्थात् शकों का शत्रु भी कहते हैं, उस राजा को निकालकर जिस के वश में ४ वर्ष तक वह देश रहा है, मालवा तथा इस के निकटवर्ती देशों तथा गुजरात देश के राज्यासन पर सुशोभित हुआ। प्रायः (गालबन) इस बड़ी जय के स्मारक उसने अपने राज्याभिषेक के दिन से एक नया संवत् स्थापित किया। विक्रमादित्य के राज्याभिषेक के संवत् से १३५ वर्ष पश्चात् शालिवाहन एक बलवान् शासन कर्ता हुआ। अपना नया शक स्थापित किया। यह स्मरण रखने योग्य है कि विक्रमादित्य और शालिवाहन के हाथों से सन्धियां वा शकों का पराजित होना संवत् और शाका दोनों के स्थापित होने का कारण है॥

गुर्जर देश भूपावली के कर्त्ता ने, इन हिन्दू राजाओं का समाचार जिन्हों ने विक्रमादित्य से पूर्व और पश्चात् शासन किया, ऐसे विस्तार से और एक के पश्चात् दूसरा करके (तरतीबवार) वर्णन किया है कि पाठकों को अवश्य विश्वासजनक प्रतीत होगा। यदि डाक्टर फ़र्गुसन के मतानुसार यह मान लिया जावे कि विक्रमादित्य सन् ईसवी की छठी शताब्दी में हुआ है तो वे राजा लोग कहां से आयेंगे जिन्हों ने मसीह के ५७ वर्ष पूर्व से ८६ वर्ष पश्चात् पर्यन्त राज्य किया तथा शकों को भारी पराजय दिया। कोई २ इतिहासज्ञ यह कल्पना कर लेंगे कि स्यात् एक से अधिक विक्रमादित्य हुये हों तथा बड़े बलवान् भी रहे हों परन्तु इस हाथ की लिखी हुई पुस्तक से केवल एक ही विक्रमादित्य का होना ज्ञात होता है जिस का दूसरा नाम शकारि भी था॥

*नोट—यहां भूल से पतञ्जलि के भाष्यवाला नहीं है क्योंकि महाभाष्य भारत से पहिली पुस्तक है विस्तार के लिये देखो ऐतिहासिक निरीक्षण १. भाग॥

इस के अतिरिक्त यह भी अब सिद्ध होचुका है कि शालिवाहन का शक सन् ७८ ई० में आरम्भ हुआ तथा रांगा विजया वर्णन करता है कि यह विक्रमादित्य के संवत् से १३५ वर्ष पश्चात् आरम्भ हुआ। यह विषय केवल इस हाथ से लिखी हुई पुस्तक से ही प्रमाणित नहीं माना गया वरन उन प्राचीन लेखों से भी सिद्ध होता है जो कि प्रत्येक ज्योतिष के ग्रन्थ में पाये जाते हैं वा संस्कृत तिथिपत्रों के आदि में भी प्रायः लिखे रहते हैं ॥

मैं इ सज्योतिष के प्रमाण (रवायत) से संवत् और शाका के विषय में जिस की जैनियों के ग्रन्थों से भी पुष्टि होती है इनकार करने के लिये कोई कारण नहीं देखता ॥

यह मानने के लिये कि संवत् का आरम्भ भी ग्रिगोरियन और जूलियस संवत् के अनुसार हुआ है कोई प्रमाण भारतवर्ष के पुराने इतिहासों में नहीं मिलता तथा यह एक कहने मात्र का पक्ष (दावा) है। इस के अतिरिक्त इस पुस्तक का कर्त्ता आमा, भूजा और राजाओं का जिन्हों ने संवत् ५५७ से ८०२ तक शासन किया वर्णन करता है। यदि आमा के शासन समय को ८५ वर्ष भी कल्पना कर लिया जावे तो भूजा का राज्याभिषेक अवश्य संवत् ५४२ में हुआ होगा, तथा यह इतिहास भोज के राज्याभिषेक होने के ठीक अनुसार (मुताबिक) है कोंकि एक और हिन्दू इतिहासिज्ञ कथन करता है। जिस का पक्ष है कि भोज विक्रमादित्य से ५४२ वर्ष पश्चात् हुआ है। यह हिन्दू इतिहासज्ञ जिस का ऊपर कथन हुआ है अवश्य इसी भोज का वर्णन करता है जिस ने छठी शताब्दी के आदि में राज्य किया। तथा मसीह से ५७ वर्ष पूर्व से लेकर इस समय तक ५४२ वर्ष गिनता है ॥

अन्त में इन उक्त विषयों के होने पर मैं साहस से कह सकता हूं कि विक्रमादित्य का संवत् प्रमाणित करने के लिये किसी पत्थर या सिक्के की आवश्यकता नहीं है परन्तु इतना वर्णन किये देता हूं कि डाक्टर ...... के पृष्ठ ३१ से ३९ तक एक ऐसे शिलाङ्क का वर्णन है कि जिस में मसीह से पूर्व ५२ वर्ष के बराबर में संवत् ५ लिखा है ॥

फिर एक और विद्वान् लिखता है कि "उज्जैन बहुत पुराना नगर है।" शास्त्रों में इस का नाम उज्जयिनी तथा अवन्ती लिखा है। यह स्थान समुद्र से एक सहस्र सात सौ फीट ऊंचा और १३ दरजा ११ दकीका (......) उत्तर

चौड़ान तथा ७६ दरजा ३५ दकीका पूर्व लम्बान में सपरा नदी के दक्षिण तट पर ग्वालियर से २६० मील दक्षिण पश्चिम के ओर दक्षिण को झुकता हुआ बसा है ॥ वहां की पृथिवी खोदने से दूर २ तक के प्राचीन काल के बस्ती के चिह्न मिलते हैं । यह नगर महाराजा विक्रम के समय बहुत शोभित था। पण्डित ज्योतिषी शास्त्रानुसार अपनी लम्बाई की गणना इसी नगर से करते हैं ॥ एक गृह यहां राजा भर्तृहरि की समाधि (गोशे इबादत) विख्यात है। वह किसी पुराने प्रासाद (हवेली) का एक टुकड़ा ज्ञात होता है, जो मट्टी के नीचे दब गया हो । महाकाल महादेव का मन्दिर यहां बड़ा नामी और विख्यात है, परन्तु जो मन्दिर महाराजा विक्रमादित्य के समय का बना था उस को सुलतान शम्सुद्दीन अलतमश ने जो १२१० ई० में राज्यासन पर बैठा था, तोड़ डाला ॥

विक्रमादित्य, सन् ईस्वी से ५६ वर्ष पूर्व सुरा अर्थात् पवार वंश में उज्जैन के राज्यासन पर बैठा था (जामें जहानुमा भाग दो पृष्ठ ४ तथा भाग ३ पृ ८२, ८३ सन् १८६१ ई० लाहौर) जिस से कि (चूं कि) शङ्कराचार्य शिव के अवतार और शैव मत प्रवर्तक विख्यात हुये इस लिये उन के समय से शैव मत का आरम्भ होकर दिन प्रति दिन बढ़ना आरम्भ हुआ । उन के समय से रामानुज के समय तक साधारणतः (उमूमन) शैवमत का बल रहा और जो राजा हुये वे भी उसी मतावलम्बी हुये । महाराजा विक्रम और इन के बड़े भाई भर्तृहरि भी इसी मत के अनुयायी थे, वरन यह विख्यात विषय है कि शङ्कराचार्य्य के किसी शिष्य से भर्तृहरि ने उपदेश लिया तथा संन्यासी हो गये ।।

जिस से कि उन्हों ने बौद्ध मत को अति हानिकारक धक्का लगाया । इस से लोगों ने उन्हें शङ्कर का अवतार ठहराया । भर्तृहरि जी के शतक से भी कुछ २ यह वार्त्ता झलकती है । कोई २ संस्कृत विद्या से अनभिज्ञ कहते हैं कि भर्तृहरि ६५० ई० में मृत्यु को प्राप्त हुये । अतएव विक्रमादित्य भी ६५० ई० के पश्चात् हुये। परन्तु यह असत्य है। जैसे कि कोई गौतम न्याय शास्त्र के कर्त्ता को गौतम बुद्ध मान लेवे और धोके में पड़ जावे, ठीक वैसे ही यह अवस्था भी है । क्यों कि जो भर्तृहरि ६५० ई० में मरे थे वे बौद्ध मत को

मानने वाले नास्तिक थे। और पूर्वकथित वेद मत के मानने वाले आस्तिक, सो इन के बीच पृथिवी आकाश कीसी विरुद्धता है॥

श्लोक।

तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान्हर्षपराभिधः।
एकछत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्यराड्भूत् ॥ १ ॥
म्लेच्छोच्छेदाय वसुधां हरेरवतरिष्यतः।
शकान् विनाश्य येनादौ कार्यभारो लघुः कृतः॥

भाषार्थः—वहां उज्जयिन नगरी में श्रीमान् हर्ष सम्पादक, राज्य मुकुट धारी, अनुपम, महान् चक्रवर्ती विक्रमादित्य था॥

म्लेच्छों को नष्ट करने के लिये मानो अवतार धारण कर के जिस ने आदि में शकों को नष्ट कर पृथिवी पर जो दुष्ट राजाओं के कारण भूमि कर बोझ होता है उसे न्यून किया॥

यह भी लिखा है कि काश्मीर राज्य पर विक्रमादित्य ने अपने शरणागत मातृ गुप्त का अभिषेक किया॥

—*—

पुस्तकों का अन्वेषण

वेदों के विषय में

वेद चार हैं जिन्हें ऋक्, यजुः, साम, अथर्व कहते हैं। जैसे बीज, वृक्ष, फूल, और फल या १ कर्म, २ उपासना, ३ ज्ञान, ४ विज्ञान। बीज और ज्ञान की ४ कक्षा हैं। जैसे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यास। मनुष्यता के उन्नति की कक्षा के ४ पड़ाव हैं। इसी प्रकार वेद चार है। ज्ञान के विचार से तो वेद एक है अर्थात् चारों का नाम केवल वेद है परन्तु कक्षा और उच्च पदवी के विभाग के विचार से वेद के चार भाग हैं॥

वेद संसार में सब से पुराने ग्रन्थ हैं। क्या ज्ञान के विचार से और क्या लेख से। वेदों से पुराना ग्रन्थ संसार में अन्य नहीं तथा यही वेद आर्यों की धर्म पुस्तकें हैं, तथा यही धर्म संसार के सब मतों से प्राचीन और उचित (माकूल) हैं। पदार्थविद्या (साइन्स) से इस धर्म को विशेष प्रीति है। सब इतिहासज्ञ एक मत हैं कि आर्य लोग प्राचीन काल से फिलासफी (दर्शन

शास्त्र) के प्रेमी रहे । गणित तथा प्राकृतिक दर्शन तथा (आबेयात) मोक्ष मार्ग के प्रथम आचार्य ये ही हैं ॥

वेदों में ईश्वर के तौहीद (एकत्व) के विषय में अति ही उत्तम वर्णन है । मूर्त्तिपूजा, पशुपूजा, या तत्वोपासना उस में कदापि नहीं है । वेद में श्रेष्ठ कला के इखलाक (सभ्यता और सज्जनता) की आज्ञा है ॥

वेद की शिक्षा सारे संसार के लिये एकसां प्रभाव रखती है । अवतार या देवता के पूजने का वेदों में कोई सङ्केत (इशारा) नहीं है । राम कृष्ण वामन, परशुराम, व्यास, नृसिंह या किसी और अवतार, राजा, ऋषि या मुनि की कोई कथा वेद में नही हैं । "एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति" यह नवीन वेदान्तियों का कथन भी वेद के विरुद्ध है । सती होने के भी वे विरोधी हैं । मांस मदिरा व्यभिचार तथा द्यूतकर्म आदि को, वेदों ने अति पापकारी कहा है । वाममार्ग के भी वेद बहुत विरोधी हैं । ब्रह्म, विष्णु, महादेव को वेद ने तीन देवता नहीं बतलाया किन्तु स्पष्ट कहा है कि परमात्मा के ये तीन नाम ३ गुणों के कारण हैं । ब्रह्मा अर्थात् सब से बड़ा, विष्णु सर्वव्यापक, महादेव अर्थात् सब का प्रकाशक तथा ऐसे ही परमात्मा के सहस्रों नाम । आर्य्य लोग वेदों को ईश्वर वाक्य (इलहामी) अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं । जो, मनुष्य सृष्टि के आदि में, चार ऋषियों (अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा) द्वारा प्रकट हुआ ॥

व्यास, जैमिनि, गौतम, कणाद, पतञ्जलि, कपिल, इन छः विख्यात दार्शनिकों (फिलासफरों) ने जो भिन्न२ समयों में हुये हैं वेदों को ईश्वर कृत माना है, तथा इस विषय में बड़े २ युक्ति युक्त प्रमाण दिये हैं । मनु, पतञ्जलि, शङ्करस्वामी, कृष्ण, राम, वाल्मीकि आदि सब ऋषिमुनियों ने वेदों को ईश्वरकृत माना है ॥

वेद स्वयं भी (अपने को) ईश्वर कृत होना सिद्ध करते हैं । उपनिषदों के तत्वज्ञ तो आचार्यों (मुसन्निफों) ने भी वेदों को ईश्वरीय विद्या माना है "महर्षेव ब्रह्म २ सर्वं सर्वे वेदाः प्रणीयन्ते", अर्थात् सब से बड़ा मालिक (ईश्वर) जो परमात्मा है उसी से चारों वेद प्रकट हुये । तथा चारों वेदों का मुख्य तात्पर्य ब्रह्म की प्राप्ति है ॥

इतिहासज्ञ मार्शमीन साहब कहते हैं कि "वेदों का मुख्य सिद्धान्त ईश्वर की एकता है और पञ्चतत्त्व तथा छोटे देवता केवल उपमालङ्कार में परमात्मा की प्रकृति के प्रकट होने के विषय में प्रयोग किये गये हैं। यह तो सच है कि देवताओं के नाम उन में हैं परन्तु किसी देवता को अत्युत्कृष्ट नहीं कहा गया। और यह भी नहीं कहा गया कि उन की तुम पूजा करो। कृष्ण और शिव की कथाओं का उस में कहीं पता नहीं लगता है। निस्सन्देह उस आदि समय में न तो किसी मूर्त्ति का होना ज्ञात होता है और न कोई ऐसी वस्तु या मन्त्र है जिस से वह पूजा करें। (अर्थात् मूर्त्तिपूजा किसी प्रकार की कदापि न थी) यद्यपि यह कहा जाता है कि हिन्दू अपने रीति व्यवहारों को बहुत कम बदलते हैं। तथापि बड़े आश्चर्य की बात है कि इस देश में जहां के निवासी वेदों को बड़ी प्रतिष्ठा से धर्म की धारा मानते हैं उन को भी वैदिक रीतें इतनी दूर पिछड़ गई हैं कि यदि कोई वेदोक्त रीति से भक्ति किया चाहे तो वह आज कल के लोगों के मतानुसार धर्मविरोधी (काफ़िर) समझा जावेगा। (हिस्ट्री मार्शमीन, अध्या० १ पृष्ठ ५ सन् १८६३ ई०

विवेचक "कालब्रूक" महाशय का कथन है कि "उन शूर वीर पुरुषों और साहसी लोगों में से जिन का वेद में तो नाम तक नहीं परन्तु आज कल के हिन्दुओं के देवताओं में श्रेष्ठ माने जाते हैं, जैसे रामकृष्णादि उन में से किसी को वेद में कदापि देवता नहीं वर्णन किया गया वरन् उन देवताओं का भी जिन के ये अवतार है कहीं नाम मात्र भी नहीं देखा जाता" (पुस्तक तहक़ीक़ात हालात एशियाय जिल्द ८ पृष्ठ ३९५—३९७)

प्रोफ़ेसर विलसन साहब वर्णन करते हैं कि वेद से मूर्त्तिपूजा का प्रचार और उपासना सम्बन्धी वस्तुओं के प्रत्यक्ष (साकार) चिह्नादि का बनाना सिद्ध नहीं होता। (देखो उनका लेक्चर आक्सफोर्ड स्थान का छपा हुआ)

इसी प्रकार आनरेबिल अल्फिन्स्टन "जूनिस" तथा मौलवी ज़काउल्लाह महाशयों ने भी अपने २ इतिहासों में इस विषय को वर्णन किया है। और जिन बुराइयों की इस समय आर्य्यसमाज विरुद्धता करता है, उन को सारे के सारे विवेचक वर्णन कर चुके हैं कि यह वेद में कहीं नहीं। चारों वेद छन्दों में हैं जो बड़े प्रभाव डालने वाले ढङ्ग पर गान किये जा सके हैं। वेद की संस्कृत अतिउत्तम प्रकार की है ॥

किसी ऋषि का किया हुआ काव्यादि उन (वेदों) की बराबरी नहीं कर सक्ता। सामवेद मुख्य कर के गानविद्या की खान है। वेदों में भिन्न २ विद्याओं और कलाओं आदि का भी सिद्धान्तों के तुल्य वर्णन है। सब विद्वान् ऋषि सब विद्याओं का आधार वेद को बतलाते हैं। वेदों का विभाग मण्डलों, अध्यायों या काण्डों के विचार (लिहाज़) से इस प्रकार से है॥

ऋग्वेद				दूसरा विभाग			
संख्या मण्डल	अनुवाक	सूक्त	मन्त्र	न० अष्टक	अध्याय	वर्ग	मन्त्र
१	२४	१९१	१९७६				
२	४	४३	४२९	१	८	२६५	१३०५
३	५	६२	६१७	२	,,	२२१	११७२
४	५	५८	५८९	३	,,	२२५	१२०९
५	६	८७	७२६	४	,,	२५०	१२८८
६	६	७५	७६५	५	,,	२३८	१२६४
७	६	१०४	८४१	६	,,	२३१	१३४४
८	१०	१०३	१७२३	७	,,	२४८	१२५६
९	७	११४	११०८	८	,,	२४६	१२८१
१०	१२	१९१	१७५४				
सब का जोड़ १०	८५	१०२८	१०५१८	सब का जोड़ ८	६४	२०२४	१०५१८

ऋग्वेद में सब १० मण्डल आठ अष्टक चौंसठ अध्याय, पचासी अनुवाक १०२८ एक सहस्र अट्ठाईस सूक्त, दो सहस्र चौबीस वर्ग, दश सहस्र पांच सौ अट्ठारह मन्त्र, एक लक्ष तिर्पन सहस्र सात सौ बानवे शब्द (१५३७९२) वा चार लक्ष बत्तीस सहस्र (४३२०००) अक्षर हैं॥

इस के अतिरिक्त ऋग्वेद में छन्दों का विभाग इस नीचे लिखे प्रकार से है।

और आपकी बनाई संस्कारविधिके अनुसार व्याह करावे, यह तो बड़ीही अलौकिक बात कही जब आपकी संस्कारविधि नहीं थी, तो काहेके अनुसार विवाह होताथा, भला अब तो आप कहते हो ब्राह्मणोंने ग्रन्थ कल्पना कर लिये पूर्व ऋषि मुनि विवाहक्रिया कौन से ग्रन्थके अनुसार करते थे क्योंकि यह आपकी पुस्तक तो जबतक बनी ही नहीथी, तो उनके विवाहादिक भी अशुद्धही हुए और स्वामीजीने उसमें बनाया हीक्या है वेदमन्त्र तो पूर्वकालसेही थे, आपने उसमें भाषा लिखदी है और पठनपाठन विधि में सब भाषा ग्रन्थ त्याज्य माननेसे यहभी भाषा मिश्रित होनेसे त्याज्य ही है कार्य्य मन्त्रोंद्वारा होता है भाषासे कुछ प्रयोजनही नहीं फिर दयानन्द जी ने उसमें क्या बनाया और जहां अब भी यह संस्कारविधि नहीं हैवहांके लड़का लड़की क्या क्वांरेही रहें और संस्कारविधि की शिक्षा देखो उत्तम है "पुरुष स्त्री की छाती पर हाथ धरके स्त्री पुरुष के हृदय पर हाथ धरके कहें तुम मेरे मन में सदा बसते रहो" जहां कुटुम्बी वृद्ध बैठे हों, वहां नारियों की यह ढीठता, यह आपका कन्या की अधिक अवस्था का विवाह और नियोग यह दो लज्जानाशक व्यभिचार के खंभ हैं ॥

प्रत्युत्तर—विवाह करने की इच्छा, प्रयोजन, तथा अन्य सर्वसाधारण के सामने न पूछने योग्य कई बातें सम्भव हैं, क्या वे निर्लज्जता से सब के सामने पूछी जाती, तब सनातनधर्म पूरा होता ? क्या रोगादि की परीक्षा करना कराना आदि भी आप अधर्म समझते हैं ? । यदि वर, वधू के पोषणादि का प्रण न करे तो क्या ?

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद्बृहस्पतिः

अर्थात् मुझे इस (वधू) का पोषण करना योग्य होगा, मुझे तुझे परमात्मा ने दिया है ॥

इत्यादि विवाहमन्त्रों को भी आप न मानते होंगे ? फिर आप शास्त्र को उल्लङ्घन करके कैसे लिखते हैं कि निर्धन पुरुष खान पान का प्रबन्ध न कर सकेंगे । क्या निर्धन वा अल्पधनी लोग गृहस्थ का निर्वाह नहीं करते ? अड़तालीस वर्ष के ब्रह्मचारियों का दर्शन आप को नहीं हुवा, नहीं तोः—

ब्रह्मचार्य्येति समिधा समिद्धः

कार्ष्णं वसानो दीक्षितोदीर्घश्मश्रुः ॥

ब्रह्मचारी जो अग्निवत् देदीप्यमान, कृष्णाजिनधारी, दीक्षित, लम्बी मूंछों वाले, सिंह तुल्य पुरुषों को, अरामुख न यलशाते ॥

संस्कारविधि का अर्थ क्या आप वैदिकप्रेस के छपे पुस्तक विशेष ही को समझते हैं। जिस में संस्कारों का विधान हो, उसी पुस्तक से तात्पर्य्य है। जब कि आप स्वयं स्वीकार करते हैं कि "वेदमन्त्र तो पूर्वकाल में ही थे, आप ने उस में भाषा लिख दी है" तो फिर उन्हीं मन्त्रों से पूर्वकाल में विवाह होता था। अब समस्त लोग वेदभाषा को नहीं समझते इस लिये समझाने को भाषा लिखनी पड़ी, तो स्वामी जी की भाषा वेदमन्त्रों की भाषा विवृति हुई और उन ब्राह्मग्रन्थों में नहीं आसक्ती, जो विहारी की सतसई जैसे वेदविरोधी पुस्तक हैं ॥

"पुरुष स्त्री की छाती पर हाथ धर के स्त्री पुरुष के हृदय पर हाथ धर के कहे तुम मेरे मन में सदा बसते रहो"

इस इबारत पर आप का क्या कटाक्ष हो सक्ता है जब कि विवाह में मन्त्र ही है कि-

मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु। इत्यादि

इसी का अर्थ स्वामी जी ने लिख दिया। आप ने इतनी विशेषता अपनी ओर से कर दी कि "हृदय पर" के स्थान में "छाती पर" लिख दिया।

तनक अपनी विवाहपद्धति को भी देख लेना था। उस में भी तो-

मम व्रते ते हृदयं दधामि।

यह मन्त्र लिखा है। और लिखा है कि-

वध्वा दक्षिणस्कन्धस्योपरि स्वदक्षिण-
हस्तं नीत्वा तस्या हृदयमालभते॥

अर्थ-वधू के दहने कन्धे पर अपना दहना हाथ लेजाकर उस का हृदय छूता है।। फिर उसी में देखिये-

वध्वाः सीमन्ते वरः सिन्दूरं ददाति॥

अर्थ-वधू की मांग में वर सिन्दूर देता है। फिर-

ततोऽग्नेः प्राच्यां दिश्युदीच्यां वा अनुतप्तः
आगारे आनुडुहे चर्मणि० इत्यादि

अर्थ-अग्नि से पूर्व वा उत्तर दिशा के ठण्डे कमरे में बैल के चर्म पर वधू को लेटावे ॥

ज़रा बतलाइये तो यह क्या होता है । फिरः-

विवाहादारभ्य त्रिरात्रमक्षारलवणाशिनौ
स्यातां जायापती इत्यादि ॥

विवाह से ३ रात्रि तक क्षारलवणवर्जित भोजन करें स्त्री और पुरुष । इतना ही नहीं, आगे और भी देखियेः-

"एकपात्रे सहाऽश्नीतः"

एक पात्र में साथ दोनों खावें । थोड़ा और देखियेः-

अथ खट्वादिरहिते भूभागे कटादिना स्वास्तृते त्रिरात्रमेव शयीयातां समग्रं संवत्सरं विवाहादारभ्य न मिथुनमुपेयाताम् । द्वादश रात्रं च त्रिरात्रं चेति ॥

अर्थ-फिर खाट वाट कुछ न हो, किन्तु चटाई बिछाकर पृथिवी पर केवल ३ रात्रि तक दोनों सोवें । फिर १ वर्ष तक मैथुन को न प्राप्त होवें । वा १२ रात्रि तक वा ३ रात्रि तक ही ॥

महात्मा जी ! यह तो स्पष्ट विदित होता है कि आपकी विवाहपद्धतियों पर अब तक "अष्टवर्षा भवेद्गौरी" का प्रभाव नहीं पड़ा है । तभी तो उस में ऐसे व्यवहार लिखे हुवे हैं जो ऋतुमती ही के विवाह में घट सक्ते हैं ॥ अब आप का द्विरागमन किधर खिल गया ? भलेमानुषो ! ज़रा समझ कर क़लम उठाया करो ॥

द० ति० भा० पृ० ६९ पं० १६ से पृ० ७० पं० २३ तक सत्यार्थप्रकाश के गार्हस्थ्य विषयक लेख को बड़ी निर्लज्जता से लिखा है । स्वामी जी का तात्पर्य्य तो समयनिर्धारण से था कि जो २ व्यवहार स्त्री पुरुषों में होते तो हैं ही किन्तु ठीक समय पर हों । इसलिये उन का लेख कर दिया है । अस्तु स्वामी जी का तात्पर्य्य तो समय पर दाम्पत्य व्यवहार के प्रचार का था, जिस के कुसमय होने से दीन हीन आर्य्यजाति इस दुरवस्था को प्राप्त हुई । परन्तु आप टुक महाभारत को तो देखें जो पुराणों का बाबा है ! ! ! आदि पर्व अध्याय १०४ में । उतथ्य की स्त्री ममता थी । उतथ्य से गर्भवती ही को छोटे

भाई बृहस्पति ने जा घेरा। एक गर्भ तो स्थित है दूसरे की तैयारी ! और भीतर वाला एडी लगा कर रोकता है ! धन्य है महाभारत से वेदों का धर्म यही फैलाया जाता है ?

अथोतथ्य इतिख्यातः आसीद्धीमानृषिः पुरा। ममता नाम तस्यासीद्भार्या परमसम्मता ॥ ८ ॥ उतथ्यस्य यवीयांस्तु पुरोधास्त्रिदिवौकसाम्। बृहस्पतिर्बृहत्तेजा ममतामन्वपद्यत ॥ ९ ॥ उवाच ममता तन्तु देवरं वदतांवरम्। अन्तर्वत्नी त्वहं भ्रात्रा ज्येष्ठेनारम्यतामिति ॥ १० ॥ अयं च मे महाभाग कुक्षावेव बृहस्पते। औतथ्यो वेदमत्रापि षडङ्गं प्रत्यधीयत ११ अमोघरेतास्त्वं चापि द्वयोर्नास्त्यत्र संभवः। तस्मादेवं च नत्वद्य उपारमितुमर्हसि ॥१२॥ एवमुक्तस्तया सम्यग्बृहस्पतिरुदारधीः। कामात्मानं तदात्मानं न शशाक नियच्छितुम् १३ स बभूव ततः कामी तया सार्धमकामया। उत्सृजन्तं तु तं रेतः सगर्भस्थोऽभ्यभाषत ॥ १४ ॥ भोस्तात मा गमः कामं द्वयोर्नास्तीह संभवः। अल्पावकाशोभगवन्पूर्वं चाहमिहागतः ॥१५॥ अमोघरेताश्च भवान्न पीडां कर्तुमर्हसि। अश्रुत्वैव तु तद्वाक्यं गर्भस्थस्य बृहस्पतिः ॥ १६ ॥ जगाम मैथुनायैव ममतां चारुलोचनाम्। शुक्रोत्सर्गं ततोबुध्वा तस्या गर्भगतो मुनिः ॥ पद्भ्यामरोधयन्मार्गं शुक्रस्य च बृहस्पतेः ॥ १७ ॥

अर्थात् प्राचीनकाल में एक उतथ्य नाम ऋषि होता भया, ममता नाम्नी बड़ी अच्छी उस की स्त्री थी ॥ ८ ॥ उतथ्य का छोटा भाई देवतों का पुरोहित महातेजस्वी बृहस्पति ममता के पास गया ॥ ९ ॥ उस बड़े मधुरभाषी देवर से ममता बोली कि मैं तो आप के बड़े भाई से गर्भवती हूं इस लिये आप रहने दीजिये ॥ १० ॥ और हे बड़भागी ! यह उतथ्य का पुत्र मेरी कुक्षि में है। हे बृहस्पते ! इस ने यहां भी छः अङ्ग वाला वेद पढ़ा है ॥ ११ ॥ और आप का वीर्य भी व्यर्थ नहीं जा सक्ता और यहां दो की गुञ्जाइश नहीं, इस

लिये आज तो मेरे पास आना योग्य नहीं है ॥ १२ ॥ इस प्रकार उस बड़ी बुद्धि वाले बृहस्पति से उस (ममता) ने कहा भी परन्तु वह अपने काम को न रोक सका ॥ १३ ॥ निदान वह कामी उस कामरहित के शिर हुआ और जब .... करने लगा तो वह गर्भस्थ बोला कि ॥ १४ ॥ चचा ! काम के वशीभूत न हूजिये । यहां दो की गुंजाइश नहीं है, जगह थोड़ी है और मैं पहले आ पहुंचा हूं (इस लिये मेरा कब्जा है) ॥१५॥ और आप का शुक्र भी वृथा नहीं जा सक्ते । इस लिये तकलीफ न दीजिये ॥ परन्तु बृहस्पति ने उस गर्भस्थ की एक न सुनी ॥ १६ ॥ और उस से मैथुन के लिये पहुंच ही गया । क्योंकि उस की आंखें बड़ी अच्छी थीं ॥ जब गर्भगत मुनि ने शुक्रपात होते जाना तो बृहस्पति के शुक्र का मार्ग दोनों पैरों की एडियों से रोक दिया ॥ १७ ॥ यदि ऐसी घिनौनी शिक्षा से भी (जिस में वेदवेत्ता ऋषियों की इस प्रकार निन्दा है) आप को घृणा नहीं आती । और उसे छोड़ आप वेदोक्त धर्म के अनुयायी बनना नहीं चाहते, तो भाग्य !!

द० ति० भा० पृ० ७० प० २४ से–

"अनुपनीतं शूद्रमध्यापयेत्" विना यज्ञोपवीत शूद्र को वेद पढ़ावे । तो संस्कार की क्या आवश्यकता है । जब ४८ वर्ष उपरान्त ब्रह्मचर्य्य हो चुकेगा तब वर्णों में योग्यता से कर दिया जायगा । इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर–सत्यार्थप्रकाश में आप का लिखा ऐसा संस्कृत और ऐसी भाषा कहीं नहीं, आप रचना करते हैं । किन्तु वहां सुश्रुत का प्रमाण है कि–

"शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके ।"

"और जो शूद्र कुलीन शुभलक्षणयुक्त हो तो उस को मन्त्रसंहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे" ॥

इस में " वेद पढ़ावे " नहीं है । किन्तु वेद छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे, यह लिखा है । इस लिये आप का अनुवाद ठीक नहीं । और आप के लिखे समान संस्कृत पाठ भी ठीक नहीं है । रही यह शङ्का कि गुण कर्म स्वभावानुसार वर्णव्यवस्था में छोटे बालकों के वर्ण की व्यवस्था नहीं हो सकेगी । इस का उत्तर यह है कि प्रत्येक मनुष्य में प्रत्येक अवस्था में कुछ गुण कर्म स्वभाव अवश्य होते हैं, क्या बालकों में कोई भी गुण कर्म स्वभाव नहीं होते ? प्रायः अपने माता पिता के तुल्य ही गुण कर्म स्वभावों का बीज बालकों के हृदय में होता है और यदि उन्हें उपयुक्त शिक्षा मिले तो उसी

की वृद्धि हो कर पूर्ण द्विजत्व को प्राप्त होसक्ता है। इस लिये द्विजों के बालकों में भावी द्विजत्व और शूद्र के बालक में भावी शूद्रत्व की संभावना रहती है। इस लिये जब तक कि कोई सन्तान अपने आप को अपने पिता आदि के गुण कर्म स्वभाव से विरुद्ध प्रमाणित न करदे, तब तक अन्य वर्ण नहीं माना जा सक्ता। परन्तु यदि शूद्र को कुछ भी न पढाया जावे तो उस की उन्नति का द्वार ही बन्द हो जावे। इस लिये स्वामी जी सुश्रुत के प्रमाण से उन को भी प्रथम अन्य शास्त्रों के पढाने को मार्ग दिखाते हैं ॥

द० ति० भा० पृ० ७० पं० २९ से "हे बालक मैं तुझे मधु घृत का भोजन देता हूं। तुझे मैं वेद का ज्ञान देता हूं। हे बालक भूलोक अन्तरिक्ष लोक स्वर्गलोक का ऐश्वर्य तुझ में धारण करता हूं" विचार ने की बात है क्या यह स्वामी जी का तन्त्र नहीं है। इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर—आप सत्यार्थप्रकाश छोड़ संस्कारविधि में पहुंचे। वहां भी आप की लिखी इबारत कहीं नहीं लिखी। आप स्वामी जी पर आक्षेप करते हैं और उन के ग्रन्थ के विरुद्ध कल्पना करते हैं। हां, उन्हों ने—

प्र ते ददामि मधुनोघृतस्य। इत्यादि

मन्त्र लिखा है सो क्या आप की सम्मति में स्वामी जी ने रच लिया है। क्या आप की माननीय पद्धतियों में—भूस्त्वयि दधासि। इत्यादि नहीं है? देखो दशकर्मपद्धति जातकर्म। यथार्थ में बालक में ज्ञानशक्ति और ग्रहणशक्ति जन्म से ही नहीं किन्तु जब से जीवात्मा प्रवेश करता है तभी से होती है। किन्तु उसी शक्ति द्वारा उस का अनुभव जैसे २ बढ़ता जाता है वैसे २ वह ज्ञाता होता जाता है ॥

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते॥ मनु० ४।२०॥

यथार्थ में संसार में किसी प्राणी को कोई ज्ञान एक साथ बड़ी अवस्था ही में प्राप्त नहीं हो जाता, ज्ञानदृष्टि से देखा जाय तो प्रत्येक बालक जन्म से ही कुछ न कुछ सीखता है। कुछ न कुछ जानता है। तदनुसार जन्मते ही उसे परमेश्वर और वेद के समर्पण करना बालक के कुछ न कुछ सुधार का कारण अवश्य है। तथा माता पिता का विशेष चेष्टित होना और वैदिक श्रद्धालु होना भी सन्तान और मा बाप दोनों का संस्कारक है। आप संस्कार को माने वा न माने परन्तु उस मन्त्र को तो मानते ही होंगे, जिस का यह अर्थ है ॥

और ऐश्वर्य्य की इच्छा मनुष्य में स्वाभाविक है। और सब से अधिक मनुष्य अपना ऐश्वर्य्य चाहता है। यदि संसार में अपने से अधिक ऐश्वर्य्य कोई किसी का चाहता है तो वह अपनी सन्तान का चाहता है। वही स्वाभाविक इच्छा मन्त्र से प्रकट होती है॥

द० ति० भा० पृ० ७१ पं० १३ से (त्रीणि वर्षा०) इस श्लोक का अर्थ यह किया है कि—" जिस कन्या के पिता मातादि न हों वह ऋतुमती होने पर तीन वर्ष तक (उदीक्षेत) अपने कुटुम्बियों की प्रतीक्षा करे कि यह विवाह कर दें जब यह समय भी बीत जाय तो अपनी जाति के पुरुष को जो अपने गुण गोत्र के सदृश हो उसे वरण करे यह आपद्धर्म है। अन्यथा स्त्री को स्वयं वरण का नृपकुल छोड़ कर अधिकार नहीं है।" इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर—इस आप के अनर्थ को हटाने के लिये एक श्लोक इस के पूर्व का भी लिखे देते हैं ॥

काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि। न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ ९ । ८९ ॥ त्रीणिवर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती। ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ मनुः ९ । ९० ॥

अर्थ (कन्या) पुत्री (ऋतुमती) रजस्वला हुई (कामम्) चाहे (आमरणात्) मृत्यु पर्य्यन्त (अपि) भी (तिष्ठेत्) रहे (तु) परन्तु (एनाम्) इस को (गुणहीनाय) गुणरहित के लिये (न चैव) नहीं (प्रयच्छेत्) देवे ॥८९॥ (कुमारी) क्वारी कन्या (ऋतुमती) रजस्वला (सती) होती हुई (त्रीणिवर्षाणि) तीन (उदीक्षेत) खोज करे (तु) और (एतस्मात् कालात्) इस समय से (ऊर्ध्वम्) ऊपर (सदृशम्) तुल्य (पतिम्) पति को (विन्देत) प्राप्त हो ॥९०॥

इस में 'पिता माता न हों, और कुटुम्बियों की प्रतीक्षा' की अनुवृत्ति कहां से आई? और क्षत्रियकन्याओं के पतिवरण स्वयं करने और अन्य वर्णों को न करने के विधि निषेध का कोई वाक्य किसी पुराण का ही दिया होता। या अपनी ही चलाते हो॥ धाय के गुण दोष जानने को सुश्रुत उपस्थित है। क्या सत्यार्थप्रकाश ही में सब बातें लिखी जातीं? जो दरिद्र हैं उन को धायी का नियम स्वयं स्वामी जी ने नहीं किया। क्या आपने सत्यार्थप्रकाश में नहीं देखा कि—

" जो कोई दरिद्र हो धायी को न रख सकें तो वे गाय वा बकरी के दूध में उत्तम ओषधि जो कि बुद्धि पराक्रम आरोग्य करने हारी हों उन को शुद्ध जल मे भिजा ओटा छान के दूध के समान जल मिलाके बालक को पिलावें । " देखते तो आप ऐसा न लिखते कि " एक मा सब को कथन करना वृथा है " इत्यादि ॥

द० ति० भा० पृ० ७१ पं० २५ से वेदशास्त्रानुसार कन्या से वर दूना होना उत्तम है ड्योढ़ा मध्यम है । इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर—आप तो "अष्टवर्षोऽष्ट०" प्रमाण से तिगुणा वर कहते हैं अब फिर वही आगये कि ८ वर्ष की कन्या से ड्योढ़ा १२ वर्ष का वर । और ड्योढ़े ही का नियम है तो २ दिन की कन्या से ३ दिन का वर भी ड्योढ़ा होता है । परन्तु यह ड्योढ़ आगे नही रहती । ८ वर्ष की कन्या से १२ वर्ष का वर ड्योढ़ा हुआ परन्तु वही कन्या जब १६ वर्ष की होगी तब वर २० वर्ष का होगा तो ड्योढ़े का सवाया ही रह जायगा । और आगे २ सवाया भी न रहेगा । क्या विवाह समय की ड्योढ लगाई जायगी वा युवावस्था की ?

—※—

वर्णव्यवस्था प्रकरणम् ।

द० ति० भा० पृ० ७२ पं० २१ से:—

किं गोत्रोनुसौम्यासीति सहोवाचनाहमेतद्वेदभोयद्गोत्रोहमस्म्यपृच्छं मातरᳬसामांप्रत्यब्रवीद्वहं चरंती—परिचारिणीयौवनेत्वामलभेसाहमेतन्नवेद यद्गोत्रस्त्वमसि जाबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामोनामत्वमसीति सोहᳬसत्यकामोजाबालोस्मि भोइति । तᳬहोवाच नैतदब्राह्मणो वक्तुमर्हति समिधᳬसौम्याहरेति । छान्दोग्ये०

कि हे सौम्य तेरा क्या गोत्र है । जाबालि बोले यहमें नहीं जानता मेने मातासे यह पूछाथा उसने कहा मैं घरके कामकाजमें फसीरहैथी युवावस्थामें तेरा जन्म हुआ पिता परलोकको सिधारे मुझे गोत्रकी खबर नही तुम्हारा नाम सत्यकाम मेरा नाम जाबाला है । यह बात सुन गौतमजीने जाना कि ब्राह्मण विना सत्ययुक्त छल रहित ऐसे वाक्य और कोई नहीं कहसक्ता क्योंकि "ऋजवो हि ब्राह्मणाः" ब्राह्मण स्वभावसे सरलहोते हैं, इससे उसे निश्चय ब्राह्मण मानकर कहा कि समिधा लेआ । और विधिपूर्वक उपनयन कराकर विद्या पढ़ाई"

प्रत्युत्तर-स्वामी जी ने तो जाबालि का नाम ही लिखा था । आप ने प्रमाण सहित ब्यौरा लिख दिया । जाबालि की माता के इस कहने से कि न जाने तू किस से पैदा हुआ मैं नहीं जानती । और ऐसा ही जाबालि ने गोतम जी से स्वीकार किया तो सत्यवादित्व और सरलत्व जो ब्राह्मण के गुण हैं उन्हीं से तो गोतम ने उसे ब्राह्मण मान लिया । और कह दिया कि समिधा लेआ । बस ठीक है । जो ऐसा सत्यवादी और सरलस्वभाव तू है तो फिर चाहे जिस गोत्र में उत्पन्न हुवा है, गुण कर्म स्वभाव से ब्राह्मण ही है ॥ आप यदि जाबालि के वीर्यदाता पिता का पता लगा देते कि वह ब्राह्मणकुलोत्पन्न था तो आप का पक्ष सधता । जिसे आप नहीं साध सके ॥

और गोत्र शब्द की ध्वनि यहां वर्णपरक है । गोत्र के ऋषि परक नहीं । क्योंकि गोतम का तात्पर्य वर्ण बूझने से था, तभी तो ब्राह्मणत्व का निश्चय करके प्रश्न समाप्त हो गया ॥

विश्वामित्र का तप कर के ब्रह्मा द्वारा ब्राह्मण बनाया जाना आप स्वयं भी लिखते हैं । यही हम कहते हैं कि यदि कोई नीचा वर्ण तपः आदि शुभ गुण कर्म स्वभावयुक्त होजावे तो चतुर्वेदविद् ब्रह्मा संज्ञक विद्वान् की दी हुई व्यवस्था से वह ब्राह्मण हो जाना चाहिये । उत्तम विद्या वाला ब्राह्मण के योग्य होता है, इस से यह नहीं निकलता कि क्षत्रिय वैश्य विद्याहीन होते हैं । विश्वामित्र विद्वान् थे परन्तु क्षत्रिय पद योग्य विद्वान् थे । फिर ब्राह्मण पद योग्य तप करने से ब्राह्मण कहलाये ॥ केवल विद्या पढ़ने से ब्राह्मण होना सत्यार्थप्रकाश में भी नहीं लिखा किन्तु शम दमादि सर्व लक्षण संपन्न होने से माना है ॥ तप करने का तात्पर्य भी यह होता है कि "स्वाध्यायस्तपः शमस्तपो दमस्तपः" शम दम स्वाध्यायादि तप कहाते हैं । स्वामी जी ने भीः-

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैः । इत्यादि मनु० २ । २८

चतुर्थ समुल्लास में स्वाध्यायादि सब गुण कर्म स्वभावों से ब्राह्मणत्व माना है, न केवल पढ़ने से ॥

यदि आप के कथनानुसार सहस्रों वर्ष का तप सत्य माना जाय तो आप ही के कथनानुसार उस युग में अधिक अवस्था थी तब सहस्रों वर्ष के तप की आवश्यकता थी, अब अल्प आयु में अल्प तप से ब्राह्मणत्व होजाना चाहिये ॥ सब ही उच्च वर्ण को प्राप्त होसकते हैं, यह तो स्वामी जी ने भी नहीं माना । किन्तु कोई भी नहीं होसकता, ऐसा भी नहीं । किन्तु जो २

उन २ लक्षणों से युक्त हों वे २ अवश्य पूर्व भी हुवे और अब भी होने चाहियें ॥

द० ति० भा० पृ० ७४ पं० १४ से

यथाकाष्ठमयो हस्ती यथाचर्ममयोमृगः यश्चविप्रोनधीयानस्त्रयस्तेनाम बिभ्रति ॥ अ० २ श्लो० १५७ ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ॥ तस्मै हव्यं न दातव्यं नहि भस्मनि हूयते ॥ अ० ३ श्लो० १६८

जैसे काठ के हाथी चमड़े के मृग नाम-मात्र होते हैं इसी प्रकार बेपढ़ा ब्राह्मण केवल नाम का ब्राह्मण है १५७ बेपढ़ा ब्राह्मण तृनकों की अग्नि की तरह से शान्त होजाता है उसे हव्य कव्य न देनी चाहिये उसे देना राख में होम करना है १६८

प्रत्युत्तर–ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने से जिस का नाम प्रथम उपनयनादि के समय ब्राह्मण था वह चमड़े का मृग और काठ के हाथी के समान लड़कों के खिलौने रूप ब्राह्मण है। अर्थात् बालकों के समान अज्ञानी पौराणिक लोग उसे ब्राह्मण ही मानते रहते हैं, परन्तु वह तृण की अग्नि के समान जन्मते समय तो भावी आशा पर ब्राह्मण कहाया, पर गुण, कर्म, स्वभाव हीन होते ही जैसे तृणाग्नि से भस्म होजाती है। वैसे वह ब्राह्मण से अन्य होजाता है। जैसे तृणाग्नि फिर अग्नि नहीं रहता किन्तु भस्म निस्तेज होजाता है। ऐसे ही निस्तेज होजाना है। जैसे भस्म को अग्नि मान कर उस में होम करना वृथा है ऐसे ही उस जन्म के ब्राह्मण और पीछे से अब्राह्मण को ब्राह्मण मान कर हव्य दानादि देना वृथा है। इस में न देना चाहिये ॥

द० ति० भा० पृष्ठ ७४ पं० २९ और पृष्ठ ७५ प० २ से—

अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे। आत्मासि पुत्रमामृथाः सजीवशरदः शतम् ॥ १॥ आत्मावैजायते पुत्रः ॥

इन दो वाक्यों के प्रमाण से यह सिद्ध करना चाहा है कि जब अङ्ग २ से पिता के पुत्र उत्पन्न होता है तब ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण ही होगा इत्यादि ॥

प्रत्युत्तर–यह ठीक है कि पिता माता के अङ्ग २ से सन्तान उत्पन्न होता है। परन्तु सन्तान का देहमात्र उत्पन्न होता है। आत्मा नहीं। इस लिये आप यदि कोई ऐसा प्रमाण देते जिस में देह का नाम ब्राह्मण

होता तौ ब्राह्मण देह से दूसरे ब्राह्मण देह की उत्पत्ति माननीय होती। जिस प्रकार आम के बीज से आम ही उपजता है इसी प्रकार मनुष्य के वीर्य से मनुष्य ही उपजेगा। यह नियम तौ ठीक है। परन्तु ब्राह्मण से ब्राह्मण ही उपजे यह अधिक संभव तौ है किन्तु इस के विरुद्ध कभी न हो सके यह नियम नहीं॥

द० ति० भा० पृ० ७६ पं० १० से-

यत्पुरुषंव्यदधुः कतिधाव्यकल्पयन् मुखङ्किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरूपादाउच्येते। यजु० अ० ३१ मं०१०

(प्रश्न) जिस परमेश्वर का यजन किया उस की कितने प्रकारों से कल्पना हुई उस का मुख भुजा उरू कौन हुए, और कौन पाद कहे जाते हैं, इस के उत्तर में (ब्राह्मणोऽस्येति) यह मन्त्र है जिस का भाष्य दयानन्द जी अशुद्ध करते हैं इस का अर्थ यह है कि (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (अस्य) इस परमेश्वर का (मुखम्) मुख (आसीत्) हुआ (राजन्यः) क्षत्री (बाहुःकृतः) बाहु रूप से निष्पादित हुआ (अस्य यत् ऊरू तत् वैश्यः) इस की जो ऊरू हैं तद्रूप वैश्य हुआ (पद्भ्यां) चरणों से (शूद्रः) शूद्र (अजायत) उत्पन्न हुआ। इस प्रकार से इस मन्त्र का अर्थ है।।

प्रत्युत्तर-और तौ आप ने सब अर्थ ठीक किया परन्तु (पद्भ्याम्) चरणों से, यह पञ्चमी का अर्थ ही ठीक नहीं क्योंकि आप ही पूर्व मन्त्र में (पादा उच्येते) प्रथमा विभक्ति का अर्थ कर चुके हैं कि " कौन पद कहे जाते हैं, तौ इस उत्तर देने वाले मन्त्र में भी पञ्चमी विभक्ति नहीं किन्तु-

व्यत्ययो बहुलम्

इस पाणिनि के सूत्रानुसार यही अर्थ करना चाहिये कि "शूद्र पाद कहा जाता है" न यह कि "चरणों से शूद्र उत्पन्न हुआ,,

और जब कि आप स्वयं लिखते हैं कि "उस की कितने प्रकारों से कल्पना हुई" तौ यह स्पष्ट है कि स्वामी जी के लिखने अनुसार ब्राह्मणादि ४ वर्ण मुखादि के तुल्य कर्म करने से पुरुष के मुखादि कल्पना किये जाने चाहियें। इस के अतिरिक्त मन्त्र में भी कल्पनावाचक (व्यकल्पयत) पद वर्तमान है। इस से यह समझना अयुक्त है कि परमेश्वर के यथार्थ में मुखादि अवयव हैं वा उस के मुखादि उपादान कारण से ब्राह्मणादि वर्ण उत्पन्न

हुवे। यही कल्पना (चन्द्रमा मनसो जातः) इत्यादि में भी समझनी चाहिये, यूं तौ ब्राह्मणादि सभी वर्ण मुखादि सब अङ्गों से काम करते हैं। परन्तु इतने से वर्णसङ्कर नहीं होता। किन्तु प्रधानता से जो जिस काम को करता है वह काम वर्णव्यवस्था के कारण होते हैं। जैसे दुष्टों को दण्ड देने आदि प्रबन्ध करना मेजिस्ट्रेट का काम है तौ क्या अपने बालकों को थोड़ा दण्ड देने से मा बाप आदि वा (मास्टर) अध्यापक लोगों की मेजिस्ट्रेट संज्ञा हो सक्ती है? कदापि नहीं।

इसी प्रकार व्यापारादि निमित्त वा अन्य कार्य्यार्थ इधर उधर जाने आने मात्र से सब की वैश्य संज्ञा नहीं होती ॥

यह कहना कैसी अज्ञानता की बात है कि निराकार परमेश्वर होता तौ उस से निराकार ही सृष्टि होती, साकार नहीं।

क्या कुम्हार मृण्मय नही है तौ मृण्मय पात्र नहीं बना सक्ता? क्या स्वर्णमय आभूषण बनाने वाला सुनार भी सुवर्णमय ही होता है। क्या आप परमात्मा को जगत् का उपादान कारण समझते हैं?

न तस्य कार्य्यं करणं च विद्यते। श्वेताश्वतर ॥

उस परमात्मा का कोई कार्य नहीं। अर्थात् वह किसी का उपादान कारण नहीं, फिर यह शङ्का कब रह सक्ती है॥ मनुष्यादि प्राणियों को परमात्मा ने अव्यक्त प्रकृति को व्यक्त करके उसी से बनाया और वेदों का प्रकाश ऋषियों के हृदय में किया इस से आप का साकारवाद निर्मूल है ॥

आप ही के पृ० १८ पं० २ में कहे (अपाणिपादोजव०) इत्यादि प्रमाण से सिद्ध है कि वह व्यापकता से विना हस्त पादादि की सहायता से ही सब काम कर सक्ता है ॥

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः। मनु॰

इस का भी आशय वही है जो ऊपर (ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्) इत्यादि मन्त्र से वर्णन किया गया।

क्या योनि से उत्पत्ति में योनि उपादान कारण है? जो तत्तुल्य सन्तान की आशङ्का करते हो। नही २ योनि केवल उत्पत्ति द्वार है और उपादान कारण तौ अङ्ग २ है जैसा कि ऊपर आप ही लिख चुके हैं कि:—

अङ्गादङ्गात्संभवसि ॥ इत्यादि

द० ति० भा० पृ० ७९ पं० ९ से-

(दयानन्द जी ब्राह्मी का अर्थ यह करते हैं कि " ब्राह्मण का शरीर बनता है" यह अशुद्ध है क्योंकि ब्राह्मण का शरीर तौ माता पिता से बनता है॥

प्रत्युत्तर-महात्मा जी! ब्राह्मी का अर्थ "ब्रह्म प्राप्ति के योग्य" नहीं है। क्योंकि वहां "तनुः" पद भी है फिर शरीर सहित आत्मा ब्राह्मण बनता है यही भाव हुवा॥ और आप के लिखने अनुसार पाठ भी सत्यार्थप्रकाश में नहीं है किन्तु "(इयम्) यह (तनुः) शरीर (ब्राह्मी) ब्राह्मण का (क्रियते) किया जाता है" ऐसा पाठ है जिस की ध्वनि स्पष्ट है कि शरीर भी अभिप्राय में है॥

द० ति० भा० पृ० ७९ पं० १२ से-गृह्योक्त मन्त्रो से सुवर्ण की शलाका से मधु घृत चटावे॥

प्रत्युत्तर-आप तौ पूर्व संस्कारविधिस्थ मधु घृत प्राशन का खण्डन कर चुके थे। अब मनु के श्लोक का अर्थ करते कैसे बकार उठे?॥

जन्म से संस्कार करने का प्रयोजन पूर्व बता चुके हैं॥

द० ति० भा० पृ० ८० में जो वाक्य ब्राह्मणादि के भिन्न २ यज्ञोपवीतादि विषय में लिखे हैं वे सब जन्म से ब्राह्मणादि के पुत्रों के विषय में हैं। जिस प्रकार दीवार चिनने वाला पहली ईंट रखते समय भी यही व्यवहार करता है कि मकान चिनता हूं। यद्यपि पहली ईंट का नाम मकान नहीं। इसी प्रकार भावी ब्राह्मणत्वादि जो अनुमान में हैं उन्हीं के अनुसार सब व्यवस्था गुण कर्मानुसार मानने में भी ठीक रहती है। आप के समान ही संस्कारविधि के नोट में ये सब बातें लिखी हैं॥

द० ति० भा० पृ० ८२ पं० ११ और जो पढ़ावे तौ प्रायश्चित लगै।

प्रत्युत्तर-भला (संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः) इस में प्रायश्चित्त का अर्थ कहां से आगया? किन्तु संस्कार की विशेषता से अन्य वर्णों का ब्राह्मण गुरु है। इतना ही अर्थ है॥ जब कि आप-

वैश्यकर्मस्वभावजम्॥ गीता०

शूद्रस्याऽपिस्वभावजम्॥ गी०

क्षात्रकर्मस्वभावजम्०॥ गी०

ब्रह्मकर्मस्वभावजम्॥ गी०

इन चारों वाक्यों को स्वयं लिख चुके हैं और इन में कर्म और स्वभाव शब्द स्पष्ट आये हैं तौ स्वामी जी के गुण कर्म स्वभावानुसार वर्ण गिनने पर क्यों आक्षेप करते हैं। जो जिस का स्वाभाविक काम है वह उस के विपरीत नहीं हो सक्ता। बस जो लोग जिस वर्ण में उत्पन्न हुये हैं वे यदि उस २ पितृवर्ण का काम न करें तौ जानना चाहिये कि यह इन का स्वाभाविक कर्म नहीं है, स्वाभाविक होता तौ उस के विपरीत न कर सक्ते। इसलिये जो स्वाभाविक रीति पर प्रधानता से जिस कार्य्य में रत हैं उन का वही वर्ण समझना चाहिये ॥

ब्राह्मण ही के छः कामों को सब नहीं कर सक्ते। और तौ क्या! स्वयं ब्राह्मणकुलोत्पन्न ही सब नहीं कर सक्ते। न करते हैं। फिर यह कहना कितना निर्मूल है कि बड़ा बनना सब चाहते हैं। इसलिये सब ब्राह्मण ही बन जायगे। ब्राह्मण होना तौ बहुत कठिन है किन्तु छोटा मोटा राजा बनना उतना कठिन नहीं है, क्योंकि विषयों के ग्रहण से विषयों का त्याग अत्यन्त कठिन है। और प्रायः प्रत्येक मनुष्य संसार का यह चाहता है कि मैं राजा होजाऊं, परन्तु क्या इच्छामात्र से कोई बन सक्ता है? यदि विषयग्राही राजा ही नहीं बन सक्ता तौ विषयत्यागी ब्राह्मण बनना कितना कठिन है ॥

पढ़ेमात्र का नाम ब्राह्मण स्वामी जी ने भी कहीं नहीं लिखा, इसलिये यह कहना व्यर्थ है कि यदि पढ़े का नाम ब्राह्मण हो तौ क्षत्रिय वैश्य भी ब्राह्मण ही हो जाते ॥

परशुराम को ब्राह्मण कहने का कारण यही था कि उन्हों ने राज्यप्रबन्ध कभी नहीं किया। क्या क्रोध भर कर बहुतों के प्राण लेने मात्र से क्षत्रिय हो सक्ता है? द्रोणाचार्य्य अस्त्रविद्या के प्रधान आचार्य्य थे। इसी से वे भी पढ़ाने आदि प्रधान गुण कर्म स्वभावानुसार ब्राह्मण माने गये।

कर्ण जब परशुराम से पढ़ने गया तब उस ने इसलिये नहीं पढ़ाया होगा कि उन्हें क्षत्रियों के अनर्थ के कारण उन पर क्रोध था। और त्रेता के परशुराम जी से द्वापरान्त के कर्ण का पढ़ने जाना भी चिन्त्य है। यदि पुराणों के अनुसार त्रेता के पुरुषों की १०००० वर्ष की आयु भी मानें तब भी द्वापर के अन्त तक परशुराम जी की स्थिति असम्भव है। जब आप कहते हैं कि "कर्ण में कौन से गुण क्षत्री के नहीं थे सब ही थे" तौ सिद्ध हुवा कि क्षत्रिय गुणों से

परशुराम जी ने उसे क्षत्रिय जान ब्राह्मण बताने के झूंठ बोलने पर नहीं पढ़ाया। कर्ण को द्रौपदी आदि ने क्षत्रिय नहीं माना तब यदि कर्ण में पूर्ण क्षत्रियत्व होता तो पौरुष दिखाता। उस ने लज्जित हो धनुष रख दिया इस से उस की निर्बलता स्पष्ट है तभी तो द्रौपदी ने नहीं वरण किया। गरुड़ के कण्ठ में ब्राह्मण न पचना आदि साध्य हैं। सिद्ध का दृष्टान्त होना चाहिये। विद्या पढ़ाने के आरम्भ में वर्ण उस के पिता के गुण कर्म स्वभावानुसार पुत्र का भी अनुमान किया जाता है। पश्चात् जैसा हो। यदि वर्ण अटल हो तो जो लोग म्लेच्छादि संसर्ग वा म्लेच्छ मत ग्रहण कर लेवें वे भी पूर्व के आर्य्य वंशानुसारी वर्ण में बने रहें॥

शूद्रोब्राह्मणतामेति॥

इत्यादि अखण्डनीय प्रमाण को देख कर द० ति० भा० पृ० ८५ पं० १८ से कहते हैं कि-

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते। अश्रेयान्श्रेयसींजातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात्। मनु १०।६४

शूद्रा में ब्राह्मण से पारशवाख्य वर्ण उत्पन्न होता है जो स्त्री उत्पन्न हो और वह ब्राह्मण से विवाही जाय और उस से कन्या हो वह ब्राह्मण से विवाही जाय तो वह पारशवाख्य वर्ण सातवें जन्म में ब्राह्मणता को प्राप्त होता है। इत्यादि। फिर पं० २७ में यहां (ता) प्रत्यय सदृश अर्थ में है। इत्यादि॥

प्रत्युत्तर-अच्छे रहे! जो बात एक जन्म में न मानी वह सात जन्म में मानी। यह पारशवाख्य अनोखा वर्ण जब शूद्रा को ब्राह्मणों से ७ वार तक विवाह कर ७ ब्राह्मण शूद्रा से विवाह करने से भ्रष्ट बने तब एक ब्राह्मण सातवें जन्म में बने। ७ ब्राह्मण अपना ब्राह्मणत्व खोवें शूद्रा को घर में डालें तब यह आप की वर्णोन्नति हो। और जातः अश्रेयान् इन पुलिङ्ग पदों से कन्या अर्थ वा स्त्री जन्म कर ७ वें तक ब्राह्मण से विवाही जाय। यह अर्थ कहां से आया। तथा "आसप्तमात्" का अर्थ "सातवें जन्म में" कैसे हुवा आङ् के अर्थ मर्यादा और अभिविधि हैं। तो यह अर्थ होगा कि सात तक (अश्रेयान्) नीचा वर्ण (श्रेयसीं जातिम्) उच्च जाति को प्राप्त होता रहता है, न यह कि पहले छः नीच रहें और सातवां उच्च बने। इसलिये

यह श्लोक ब्राह्मणों के बिगाड़ने का है। और ब्राह्मणता में (ता) भाव-अर्थ में है, सदृश अर्थ में कोई व्याकरण का नियम ता का नहीं। यदि हो तो बतावें। भाव अर्थ में "ब्राह्मणतामेति" का अर्थ यह होगा कि "ब्राह्मण भाव को पाता है" अर्थात् ब्राह्मण हो जाता है। खैंचातानी वृथा है ॥

द० ति० भा० पृ० ८६ पं० ३ से—

भाष्यभूमिका में आप ने लिखा है कि कुचर्या अधर्माचरण निर्बुद्धिमूर्खता पराधीनता परसेवादि दोष दूषित विद्या ग्रहण धारण में असमर्थ हो वो ही शूद्र है यथा हि "यत्र शूद्रो नाध्यापनीयो न श्रावणीयश्चेत्युक्तं तत्रायमभिप्रायः शूद्रस्य प्रज्ञाविरहित्वाद्विद्यापठनधारणविचारासमर्थत्वात्तस्याध्यापन श्रावणव्यर्थमेवास्ति निष्फलत्वाच्च" यह स्वामी जी की संस्कृत है कि शूद्र प्रज्ञा (बुद्धि) न होने से विद्या पठन धारण विचार में असमर्थ होने से पढ़ना सुनना निष्फल ही है ॥

इस लेख से स्पष्ट है कि शूद्र उस को कहते हैं जिस पर पढ़ाये से कुछ न आवे और उस का पढाना भी मिथ्या है फिर आप ही वेद पढ़ने की आज्ञा देते हो जैसा लिखा है कि (शूद्रायावदानि-शूद्र को भी यह वेद पढ़ावे) तो भला जो अध्ययन के योग्य ही नहीं वोह कैसे वेद पढ़े अब यह मन्त्र (यथेमां वाचं) इस में शूद्रपद कर्मानुसार है या जन्म से जाति मानी है यदि कर्म से जाति मानते हो तो शूद्र कैसे वेद पढ़सकता है, जन्म से जाति मानते ही नहीं अब आप के लेख में कौन बात सत्य मानी जावे जो शूद्र को पढ़ाना मानें तो जाति जन्म से हुई जाती है जो कर्म से मानें तो शूद्र को वेद पढ़ना बनता नहीं (प्रज्ञाविरहितत्वात्) क्योंकि जो पढ़ने के योग्य न हो उस को पढ़ाने की आज्ञा देने वाला मूर्ख ही गिना जायगा और शूद्र महामूर्ख को मानते हो तो (शूद्रो ब्रा०)(और अधर्मचर्यादि) मनु और आपस्तम्ब के वचनों के आप ही के किये अर्थ मिथ्या हुए जाते हैं क्योंकि जब शूद्र में धारणा ही नहीं तो पढ़ेगा कैसे और उत्तम वर्ण को विना पढ़े कैसे प्राप्त होगा इस से शूद्रपद सदा जन्म से ही लिया है और आपस्तम्ब सूत्र के भी यही अर्थ हैं कि यह पुरुष उत्तम कर्म करै तो पुनर्जन्म में क्रमानुसार श्रेष्ठ वर्ण को प्राप्त होजाता है और जो उत्तम वर्ण अधम कर्म करे तो पुनर्जन्म में नीच वर्ण होजाता है और एक आदर का भी

ओ३म् तत्सत् परमात्मने नमः

भारतोद्धारक ॥

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित "वैदिकपुस्तक-प्रचारक फण्ड" का प्रकाशित मासिक पत्र—सदर मेरठ

२ वर्ष } आर्य्य संवत्सर १९७२९४९००० { सं० ३
मार्च सन् १८९९

(१) वार्षिक मूल्य अग्रिम सर्वसाधारण से डाकव्यय सहित २) धनाढ्य रईसों से ४) राजा महाराजों से १०) श्रीमती गवर्नमेंट के सन्मानार्थ २०) पलटन के सिपाही, स्कूल के विद्यार्थी जो एक पाकट में १० प्रति एक साथ मंगावेंगे उन से १) मेरठ वालों से २) लिया जायगा, पश्चात् दूना लिया जायगा । यह मूल्य २८ फरवरी ९९ ई० तक अग्रिम गिना जायगा ॥ फुटकर अङ्क चार आना

(२) जो महाशय "भारतोद्धारक" पत्र के सहायतार्थ रु० २५) दान देंगे उन के नाम धन्यवादपूर्वक टाईटिल पेज के प्रथम पृष्ठ पर ३ मास तक, ५०) छ मास तक, रु० १००) एक वर्ष तक छपा करेंगे देखें कौन महाशय इस धर्मकार्य्य में सहायता देता है ॥

२७ । ३ । ९९

The Swami Prses meerut

ब्रह्मी बूटी ! ब्रह्मी बूटी ! ! ब्रह्मी बूटी ! ! !

यह बूटी शुद्ध हिमालय के पवित्र वायु से उत्पन्न हुई है इस के गुण से चरक सुश्रुत आदि ग्रन्थो ने पृष्ठ रंग डाले हैं बुद्धि बल बढ़ाने के लिये इस से अधिक कोई ओषधि नहीं है जिस का सेवन ऋषि मुनि करते थे और श्री १०८ स्वामी दयानन्दसरस्वती महाराज ने भी किया था। और दूसरों को करने का उपदेश देते थे, मूल्य इस का ।।≈) पौण्ड अर्थात् आध सेर का रक्खा है भारतोद्धारक के प्रबन्धकर्त्ता सदर मेरठ से या देवीचन्द्र भ्राता धर्मशाला-पञ्जाब से मिलेगी ।। मैनेजर भारतोद्धारक सदर मेरठ

हारमोनियम ! हारमोनियम ! !

यह जुबिली फल्युटहारमोनियम "एन डबल्यू पी ट्रेडिङ्ग कम्पनी लिमिटेड मेरठ" से मिल सक्ते हैं और सब कम्पनियो से सस्ता भी पड़ता है स्वर भी बड़े उत्तम हैं सैकड़ों हारमोनियम बिक गये हैं ३ सप्तक (आकटेव) ३ चाबी के ३२) रु० दूसरा ३४) रु० स्टानर्ड हारमोनियम अर्थात् चाहे कुरसी पर बैठ के पैर से हवा देके बजावें या हाथ से बजावें इस में दोनों तरह की युक्तियां रक्खी हैं ३ सप्तक (आकटेव) ३ चाबी ४०) है यह हारमोनियम २ तरह के स्वर के बने हैं एक मधुर और एक ऊंचे स्वर का जैसा २ महाशय लिखेंगे भेज दिया जावेगा। साथ एक प्रति उर्दू या नागरी की हारमोनियमगाइड भी भेज देवेंगे । मिलने का पता-

मैनेजर भारतोद्धारक सदर मेरठ

समालोचना

(१) फलित ज्योतिष परीक्षा मूल्य -) अर्थात् पुराण और नवीन गणित ज्योतिष वेदशास्त्र अनुभवादि के अनुसार फलित ज्योतिष पर विचार श्रीयुत बा० विहारी लाल बी, ए, जबलपुर निवासी ने बड़ा ही उत्तम पुस्तक बनाया है फलित ज्योतिष के भ्रमजाल में फसे हुये को ओषधि सम है॥

(२) ब्रह्मकीर्तन मूल्य)॥ यह पुस्तक भी उक्त महाशय जी का बनाया है शास्त्र और उपनिषदों द्वारा ब्रह्म का कीर्तन दिखाया है ।।

(३) कर्म वर्णन मूल्य)॥ यह पुस्तक भी उक्त महाशय जी का बनाया है इस में मनुष्यों के कर्मों का वेदशास्त्र और उपनिषदों के प्रमाण दे के वर्णन किया है ये तीनों पुस्तक भारतोद्धारक के प्रबन्धकर्ता के पास सदर मेरठ से मिलेंगी ।।

ओ३म्

भारतोद्धारक

(ऐतिहासिकनिरीक्षण द्वितीय भाग)

१	त्रिष्टुप्	४३०३	१२	शक्करी	२६
२	गायत्री	२५०१	१३	अतिजगती	१७
३	जगती	१३६३	१४	द्विपदा	१७
४	अनुष्टुप्	८५५	१५	अनाधृष्टि	८
५	उष्णिक्	३४१	१६	अतिशक्करी	८
६	पङ्क्ति	३१२	१७	एकपदा	६
७	महाव्याहृति	२५१	१८	अष्टि	६
८	प्रगाथ कर्ता	१८४	१९	धृति	२
९	बृहती	१८१	२०	अतिधृति	२
१०	अत्यष्टि	८४			
११	ककुभ्	५५	२०	छन्द और	१०५२२ मन्त्र

नोटः—यह छन्दों की गणना अभी विचारसाध्य है ऐतिहासिकनिरीक्षण नं० ३ में हम इस के विषय में पूरे प्रमाण देंगे। (तीसरा भाग छपने ही न पाया कि धर्मवीर श्रीयुत पं० लेखराम जी स्वर्ग को सिधारे। शोक कि उन का अन्वेषण उन के साथ गया (अ० जगदम्बाप्रसाद)

यजुर्वेद

अध्याय	मन्त्र	अध्याय	मन्त्र	अध्याय	मन्त्र	अध्याय	मन्त्र
१	३१	११	८३	२१	६१	३१	२२
२	३४	१२	११७	२२	३४	३२	१६
३	६३	१३	५८	२३	६५	३३	९७
४	३७	१४	३१	२४	४०	३४	५८
५	४३	१५	६५	२५	४७	३५	२२
६	३७	१६	६६	२६	२६	३६	२४
७	४८	१७	९९	२७	४५	३७	२१
८	६३	१८	७७	२८	४६	३८	२८
९	४०	१९	९५	२९	६०	३९	१३
१०	३४	२०	९०	३०	२२	४०	१७
जोड़	४३०	जोड़	७८१	जोड़	४४६	जोड़	३१८

यजुर्वेद में सब मिला कर अध्याय ४० चालीस काण्ड १४ मन्त्र १९७५ हैं जिस में ९०५२५ वर्ण व १२३० ॐकार (ॐ) हैं ॥

सन्मूलो यजुराख्यवेदविटपी जीयात्समाध्यन्दिनिः ।
शाखा यत्र युगेन्दुकाण्ड १४ सहिता यत्रास्ति सा संहिता ॥
यत्राभ्राब्धि ४० लता विभान्ति शरशैलाङ्केन्दुभि १९७५ ऋग्दलैः ।
पञ्च द्वीषुनभोङ्क वर्णमधुपैः खाऽग्न्यर्क ॐगुंजितैः १२३० ॥१॥

सामवेद

पूर्वार्द्ध

अध्याय	साम	मन्त्र	अध्याय	साम	मन्त्र
१	१२	११४	५	११	११९
२	१२	११८	६	५	५५
३	१२	११९			
४	१२	११५			
			जोड़ ६	६४	६४०

सामवेद

उत्तरार्द्ध

अध्याय	साम	मन्त्र	अध्याय	साम	मन्त्र
१	१	१०			
२२	२२	४१४	जोड़ २३	२३	४२४

सब का जोड़ । २९ अध्याय, ८७ साम, १०६४ मन्त्र ॥

पूर्वोत्तरौ विभजतेऽखिलसामभागौ सामानि यत्र नगनाग ८७ मितानि सन्ति । अध्यायका नवकराः २९ श्रुतिगायकास्ते गायन्ति वेदरसयङ्क(?) १०६४*सितांश्च मन्त्रान् ॥

भावार्थः—सामवेद के पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध कर के प्रथम दो भाग हैं जिन में ८७ साम हैं तथा जिस में २९ अध्याय हैं व १०६४ मन्त्र हैं ॥

* न जाने कुतस्त्योऽयं श्लोकः । अत्रोक्तसंख्या अशुद्धाः प्रतिभान्ति । अस्मदीय सामवेदभाष्यादौ चक्रं द्रष्टव्यम् । तत्र १८७३ मन्त्रा आयान्ति ॥ तु० रा०

अथर्ववेद के मन्त्रों की सूची

नम्बर काण्ड	प्रपाठक	अनुवाक	वर्ग	मन्त्र
१	२	६	३५	१५३
२	२	६	३६	२०७
३	२	६	३१	२३१
४	३	८	४०	३२२
५	३	६	३१	३७६
६	३	१३	१४२	४५४
७	२	१०	११८	२८६
८	२	५	१०	२५९
९	२	५	१०	३०२
१०	२	५	१०	३५०
११	२	५	१०	३१३
१२	२	५	५	३०४
१३	१	४	४	१८८
१४	१	२	२	१३९
१५	१	२	१८	१४१
१६	१	२	९	९३
१७	१	१	१	३०
१८	२	४	४	२८३
१९		७	७२	४५६
२०		९	१४३	९६०
जोड़ २०	३४	१११	७३१	५८४७

अथ नख २० मितकाण्डैराजतेथर्वसंसद् ।
युगगुण ३४ वितताः प्रपाठकाश्चानुवाकाः ॥
अवनिविधुधरणयो १११ भूगुणागास्तु ७३१ वर्गाः ।
नगयुगवसुवाणां ५८४७ स्तत्र मन्त्रान् भजन्ते ॥

भावार्थ—अथर्ववेद की सभा के बीस काण्ड अर्थात् मनून चौंतीस प्रपाठक अर्थात् विद्वान् हैं। एकसौग्यारह अनुवाक अर्थात् धारणावाले, सातसौ इकतीस वर्ग अर्थात् भागों में पांच सहस्र आठसौ सैंतालीस मन्त्रों का भजन करते हैं ॥

सब चारों वेदों के मन्त्रों का जोड़

ऋग्वेद जो अग्नि ऋषि को अनुभव (इलहाम) हुआ १०५१८ मन्त्र हैं। यजुर्वेद जो वायु ऋषि को अनुभव हुवा १९७५ मन्त्र हैं। सामवेद जो आदित्य ऋषि को अनुभव हुआ १०६४ मन्त्र हैं। अथर्ववेद जो अङ्गिरा ऋषि को अनुभव हुआ ५८४७ मन्त्र हैं ॥ योग १९४०४

वेद केवल मन्त्र संहिता का नाम है और किसी ग्रन्थ का नाम नहीं ॥

संस्कृत में वेद के प्रति शब्द ये हैं—श्रुति, मन्त्र, ईश्वरीयज्ञान, छन्द, ऋचा, निगम, यजुः, साम, अथर्व, ब्रह्म, आगम, आम्नाय, त्रयीविद्या, शास्त्र ॥

वेदों को संसार के आदि से आर्य लोग कण्ठस्थ याद करते थे तथा ऐसे वेदों के कण्ठाग्र करने वालों को संस्कृत में श्रोत्रिय वेदपाठी कहते हैं। हर एक समय में ऐसे लोग लाखों होते हैं और होते रहेंगे। इसी कारण से वेद हर प्रकार के अदल बदल तथा घट बढ होने से बचे रहे (प्रक्षेपादि न होसका) ॥

यज्ञादि कर्मों में ऐसे लोगों की बड़ी प्रतिष्ठा और मान्य होता है तथा उन की आजीविका निमित्त सनातन से दक्षिणा का शुभकार्य प्रचरित है। १६ संस्कार जो प्रत्येक आर्य को विशेषतः और किन्हीं शूद्रों को भी साधारणतः करने पड़ते हैं उन में ऐसे विद्वान् श्रोत्रिय ('वेदों को कण्ठ रखने वालों) की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। गर्भाधान से मृतकपर्यन्त के वे १६ संस्कारविधिनामी विख्यात पुस्तक में लिखे हैं जिस के अनुसार विद्वान् लोग विशेषतः कार्य करते हैं ॥

आर्य्यावर्त्त में लिखना कब से चला

यह एक विद्यासम्बन्धी और ऐतिहासिक प्रश्न है। और जहां तक हमें ज्ञात हुआ इस के प्रश्नकर्त्ता प्रोफ़ेसर मोक्षमूलर महाशय हैं। वे "एशियाटिकरपर्ज़" में कहते हैं कि वैदिक समय में कोई लिखना नहीं जानता

था । वरन पाणिनि के समय में भी लोग इस विद्या से वञ्चित थे । इन्हों ने इस वैदिक समय को चार भागों में विभक्त किया है । पहिला वेदों की ऋचाओं के रचने का समय अर्थात् छन्दोयुग । दूसरा ऋचाओं के याज्ञिकमन्त्र स्वरूप में प्रकट होने का समय अर्थात् मन्त्रयुग । तीसरा ब्राह्मणों का वेद की टीका रूपी ब्राह्मण ग्रन्थ रचने का समय अर्थात् ब्राह्मयुग । चौथा कात्यायनादि ऋषियों के सूत्र रचने का समय अर्थात् सूत्रयुग । फिर वे कहते हैं कि पुरानी बाइबिल के बनने के समय में यहूदियों में लिखने की विद्या का प्रचार था । अब हम देखा चाहते हैं कि उक्त प्रोफ़ेसर महाशय का कथन कहां तक ठीक है तथा उन की विवेचना कहां तक सत्य है ॥

प्रकट हो कि पाणिनि का समय मसीह से ३५० वर्ष पूर्व प्रोफ़ेसर महाशय मानते हैं परन्तु ऐसा नहीं है वरन इस से बहुत पूर्व का है। क्योंकि पाणिनि ने अष्टाध्यायी बनायी है जिस पर पतञ्जलि ने महाभाष्य रचा । और उसी महात्मा (पतञ्जलि) ने योगशास्त्र रचा जिस पर व्यास जी ने योगभाष्य लिखा । अतएव पाणिनि अवश्य व्यास से बहुत पूर्व हुये । हम ने यथार्थ और पूरा अन्वेषण करके ऐतिहासिकनिरीक्षण १ भाग में और सदाकृत उसूल (सिद्धान्त की सचाई) तथा तालीम आर्य्य समाज १ भाग (शिक्षा आ० स०) में इस विषय को सिद्ध कर दिया है कि पाणिनि और पतञ्जलि व्यास जी से बहुत पूर्व हुये । और व्यास जी युधिष्ठिर के सहवर्ती थे जिन्हों ने वेदान्त शास्त्र और भारत बनाया । जिस को आज तक ४३०० वर्ष हुये । व्यास जी के समय में लेख क्रिया से लोग अभिज्ञ थे और इस का साधारणतः प्रचार था । पाठशालायें प्रचरित थीं । राज्य दर्बारों में प्रार्थनापत्र और आज्ञापत्र लिखे जाते थे । राजाओं के नाम सम्बन्ध बने रहने और प्रेम बढ़ने के निमित्त चिट्ठियां जाती थीं । शिलाङ्कादि खुदाये जाते थे । जब इन बातों के प्रमाण मिलते हैं तो कौन कह सक्ता है कि लेख विद्या या लिखना लोग नहीं जानते थे । महाभारत के आदि में लिखा है कि जब व्यास जी भारत रचने लगे तो उन्हों ने एक सुन्दर शुद्ध और शीघ्र लेख करने वाले का खोज किया । तथाच गणेश नाम का एक ब्राह्मण मिला जिस में ये उक्त गुण विद्यमान थे । व्यास जी श्लोक कहते जाते थे और वह लिखता जाता था । तथाच, वे मूल श्लोक यह हैं—

काव्यस्य लेखनार्थाय गणेशः स्मर्य्यतां मुने ॥
एवमाभाष्य तं ब्रह्मा जगाम स्वं निवेशनम् ॥७४॥
ततः सस्मार हेरम्बं व्यासः सत्यवतीसुतः ।
स्मृतमात्रो गणेशानो भक्तचिन्तितपूरकः ॥७५॥
तत्राजगाम विघ्नेशो वेदव्यासो यतः स्थितः ।
पूजितश्चोपविष्टश्च व्यासेनोक्तस्तदानघ ॥७६॥
लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक ।
मयैव प्रोच्यमानस्य मनसा कल्पितस्य च ॥ ७७ ॥
श्रुत्वैतत्प्राह विघ्नेशो यदि मे लेखनी क्षणम् ।
लिखतो नावतिष्ठेत तदा स्यां लेखको ह्यहम् ॥७८॥
व्यासोऽप्युवाच तं देवमबुद्ध्वा मा लिख क्वचित् ।
ओमित्युक्त्वा गणेशोऽपि बभूव किल लेखकः ॥७९॥
ग्रन्थग्रन्थिं तदा चक्रे मुनिर्गूढकुतूहलात् ।
यस्मिन् प्रतिज्ञया प्राह मुनिर्द्वैपायनस्त्विदम् ॥८०॥

आदि पर्व १ अध्याय

इस के अतिरिक्त महाभारत में और भी सैंकड़ों स्थान पर लिख धातु का प्रयोग होता है अतएव स्पष्ट सिद्ध है कि व्यास जी के समय में लोग लिखना जानते थे। इस का साधारणतः प्रचार था। कात्यायन महात्मा के समय में भी लिखने का प्रचार था। वे कहते हैं :-

यत्र पञ्चत्वमापन्नो लेखकःसहसाक्षिभिः।

का० संहिता

अर्थ—जहां लिखने वाला गवाहों सहित मर गया हो॥

पाणिनि जी महाराज अपने धातुपाठ में स्पष्टतः कथन करते हैं:—

लिख अक्षर विन्यासे। लिप उपदेहे॥ कृते ग्रन्थे।

अष्टाध्यायी अ० ४ पाद ३ सू० ११९

इसी प्रकार अध्याय ४ पाद १ सूत्र ५० में यूनानियों के अक्षरों और लिखने का वर्णन है। परन्तु मोक्षमूलर महाशय को जब ४, ३, ११९ से स्पष्ट निश्चय कराया गया कि पाणिनि के समय में लिखने की विद्या सिद्ध होती है तो कैसी दुर्बल युक्ति देते हैं कि यह सूत्र ही पाणिनि का नहीं है। परन्तु इन को यह ज्ञात नहीं है कि इस से इन्कार करना मानो पाणिनि और पतञ्जलि के अस्तित्व से इन्कार करना है। कारण यह कि पतञ्जलि महाराज ने इस सूत्र पर वार्तिक और भाष्य लिखा है और तब से अब तक व्याकरण सम्बन्धी जिस ने कुछ लिखा है इस सूत्र को अङ्गीकार किया है। इस के न होने से इस का आगे का सम्बन्ध भी टूट जाता है। तथा जब कि मोक्षमूलर के अतिरिक्त और सब सहमत हैं (कि यह सूत्र पाणिनि का है) तो हम उन की मति मात्र की कुछ तुलना नहीं कर सके और फिर पतञ्जलि के सामने ? (कदापि नहीं)

पाणिनिव्याकरण में एक और भी सूत्र है 'परःसन्निकर्षः संहिता' जिस का अर्थ यह है कि भले प्रकार वर्णों अर्थात् अक्षरों की समीपता या मिलाप जिस में हो उस को संहिता कहते हैं तथा जब लों वर्ण वा अक्षर लिखे न जायें वे न तो मिलते और न सङ्गति खा सके हैं ॥

न धातुलोप आर्द्धधातुके ॥ अष्टा० अ०१ पाद १ सू०५

अदर्शनं लोपः। अष्टा० अ० १ पाद १ सू ६२

सिद्धशब्दो ग्रन्थान्ते मङ्गलार्थम् ॥

जिस का अर्थ यह है कि लोप होना न दिखलाई पड़ने वाले का नाम है न कि सुने न जाने का। तथा वर्णों का नाम भी 'वर्ण' इसी वास्ते है कि दिखलाई पड़ते हैं। और ग्रन्थ के अन्त में सिद्ध शब्द ऐसा लिखो क्योंकि यह मङ्गल है॥ मनुस्मृति में लिखा है:—

बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद् यच्चापि लेखितम्।
सर्वान् बलकृतानर्थानऽकृतान् मनुरब्रवीत् ॥ म०अ०८

बलात्कार दिया गया, बलात्कार खिलाया गया, और बलात्कार लिखाया गया हो तो ऐसे बलपूर्वक किये हुये कार्य बर्ताव योग्य नहीं (यह मनु जी कहते हैं) इस श्लोक के 'लेखितम्' शब्द पर कुल्लूकभट्ट का यह कथन है:—

यल्लेखितं चक्रवृद्धि पत्रादि।

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठाः ग्रन्थिभ्यो धारिणापराः।
धारिभ्यो ज्ञानिनःश्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः॥ म०अ० १२ श्लोक १०३

न जानने वाले से पुस्तकों का रखने वाला अच्छा है। तथा शिक्षा पाने वाला उस से उत्तम है। और शिक्षित होकर समझने (विचारने) वाला श्रेष्ठ है और समझ बूझ वाले से न भूलने वाला श्रेष्ठ है। कुल्लूक ने भी ऐसा ही अर्थ किया है तथा महात्मा बृहस्पति जी ने लेख विद्या की रचना (ईजाद) का कारण भी बतलाया है:—

षाण्मासिकेऽपि समये भ्रान्तिः संजायते यतः।
धात्राक्षराणि सृष्टानि पत्रारूढान्यतः पुरा॥

छः मास में ही पहिले की बातें अच्छे प्रकार स्मरण नहीं रहतीं इस का विचार करके ब्रह्माने पत्रों पर अक्षर लिखने के नियम को प्रकट (ईजाद) किया॥

वाल्मीकीय रामायण में भी लिखने का वर्णन है:—

ये लिखन्ति हि च नरास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे॥
रा० यु० स० १३० श्लो० १२०

अर्थात् जो इस को पढ़ता है और जो सुनता है व जो लिखता है इन सब की अच्छी गति होती है। आशय यह है कि अच्छे उपदेशों और इतिहासों के सुनने से उन का चाल चलन ठीक होजाता है॥ महात्मा याज्ञवल्क्य के ग्रन्थ में लिखने का वर्णन है—

प्रमाणं लिखितं भुक्तिःसाक्षिणश्चेति कीर्त्तितम्।
एषामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते॥ या० अ० २

भावार्थः—लिखित पत्र, भोग, साक्षी, ये तीन प्रमाण हैं; इन ३ में से यदि एक का भी अभाव हो तो शपथ से कहना भी प्रमाण है।

बुद्ध के समय में भी लोग लिखना जानते थे तथाच ललितविस्तार में लिखा है कि बुद्धदेवने चन्दन के कलम से आचार्य के उपदेशानुसार अ, आ, आदि वर्णमाला के अक्षर लिखना आरम्भ किया॥

विद्वद्वर्यपण्डित श्यामकृष्ण वर्मा जी एम० ए० बैरिस्टर ऐटलाने भी एक गम्भीर व्याख्यान इसी विषय पर विलायत में दिया था जो सन् १८८४ ई० में लेह-

अब इन्द्रियों के सदृश आत्मा एक भिन्न वस्तु है या नहीं, उस का विचार करते हैं। प्रत्येक अवयव में २ आत्मा नहीं होते, सर्व अवयव मिल के आत्मा होता है। फूल लाल सुगन्धिमय और कोमल है उसे देखने का और निरीक्षण करने का कार्य पृथक् २ अवयवों का है। इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इन्द्रियां कुछ आत्मा नहीं हैं, तद्वत् मन को जानो। जिस तरह आंख की शक्ति देखने की है उसी तरह मन की शक्ति जानने की है। मन यह साक्षात् जीव नहीं है। तात्पर्य केवल इतना ही है कि जीव इन्द्रियों से सर्वथा भिन्न है ॥

तीन पदार्थ के अन्तर्गत सर्व पृथिवी का समावेश हुआ है, ऐसा ऋग्वेद में लिखा है "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। इत्यादि" वे तीन पदार्थ प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा हैं। जीव शरीर से भिन्न है, शरीर का नाश होता है परन्तु जीव का नाश नहीं होता, वह अनाद्यन्त है "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः" अर्थात् अग्नि, जल, वायु या शस्त्र उस का नाश कोई नहीं करसक्ता। इस से सिद्ध होता है कि जीव यह स्वतन्त्र है। चींवटी से हाथी पर्यन्त सर्व में जीव है "अहमस्मि" "आई एम" "मैं हूं" ऐसे प्रत्येक मनुष्य कहता है। अपने २ जीव के रक्षणार्थ प्रत्येक प्राणी प्रयत्न करता है। यही बताता है कि जीव का अस्तित्व सर्वमान्य है ॥

"इवोल्यूसन थीयोरी" और सांख्य शास्त्र में सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में वर्णन किया है। इस विषय में चार्लस, डार्वन, हर्बर्ट स्पेन्सर, बहुत ही गहरे उतरे हैं। मालूम होता है सर्व पदार्थ का सूक्ष्म २ विचार कर पश्चात् सांख्य शास्त्र में आत्मा का विषय अति उत्तम रीति से समझाया है। जैसे अन्न से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी, और घी से वाष्प इत्यादि अनेक रूपान्तर होते हैं इसी तरह शरीर की स्थिति भी है। अन्न से वीर्य, वीर्य से गर्भ, गर्भ से उत्पत्ति, पश्चात् बाल्यावस्था, शिशुवस्था, किशोरावस्था, स्थविरावस्था, वृद्धावस्था, और अन्त में मृत्यु। ऐसे शरीर के अनेक रूपान्तर होते हैं। सर्व शरीर में आत्मा रहा हुआ है। उस के अनस्तित्व का अभाव है। हम सब पदार्थों को जानते हैं और जानना यह एक चैतन्य शक्ति का गुण है और वह चैतन्य शक्ति आत्मा के विना नहीं होती।

सूर्य होवे तब ही प्रकाश होता है रात्री को सूर्य्याभाव से प्रकाश का अभाव होता है। प्रकाश दृष्टिगोचर होता है तब सूर्य्य होना चाहिये ऐसा मानना चाहिये। तद्वत् हम जानते हैं अर्थात् हमारे में चैतन्य शक्ति है इस से आत्मा है ऐसा स्पष्ट ज्ञान होता है। चैतन्यशक्ति है इसी से शरीरसम्बन्धी सर्व व्यापार होता है। वह जो न होवे तो तत्क्षण सर्व शान्त होजावे। जब साम्प्रत काल के डाक्टरों को जीव है या नहीं। यह संशय भी बड़ी बात ज्ञात होती है तब हमारे प्राचीन विद्वान् वैद्य जो इस विषय में उत्तम ज्ञान रखते थे, चरकसुश्रुत ग्रन्थों में अष्टधातु का वर्णन करते हैं, उस में जीव को भी एक गिना है। साम्प्रत विद्वद्वर्य्य सज्जनों की बुद्धि साकार पदार्थ को जान सक्ती है। परन्तु निराकार पदार्थ जानने के लिये वह कुंठित हो जाती है। जिस पदार्थ का ज्ञान इन्द्रियों से होने का नहीं है उस के लिये इन्द्रियों का उपयोग करना, तो उस में हमारी कितनी बड़ी भूल है। अपने पेट में दुःखता होवे तो वह हम आंखों से देख नहीं सक्ते अथवा कान से सुन नहीं सक्ते उस को जानने के लिये बुद्धि की आवश्यकता है। तद्वत् अतीन्द्रिय आत्मज्ञान से ही सूझनी चाहिये ।।

वैशेषिकशास्त्र में कहा है कि "आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम्" अर्थात् मन और आत्मा इन दोनों का विशेष सम्बन्ध होने से आत्मा का ज्ञान यथार्थ होता है। उस का विशेष सम्बन्ध न हुआ होवे तो यह ज्ञान नहीं होता। आत्मा और मन का सम्बन्ध सदा से है परन्तु उस सम्बन्ध से आत्मा का बोध नहीं होता। ऐसा कणाद ऋषि का कथन है। सम्प्रति जेनटल मैन के सदृश पारसियों के होटलों में जाके आईस सोडा शरबत इत्यादि वस्तुओं का उपभोग करके व्यर्थ गप्प मारने वाले ऐसे पूर्व समय में नहीं थे। परन्तु उदर पोषण निमित्त धान्य का एक २ कण चुन के निर्जन वन में रह के जनसमूह को अतिउपयोगी ऐसे परमात्मा के विषय के विचार में अहर्निश कालक्रमण करते थे। अपनी सर्व आयु ऐसे सूक्ष्म विचार में हमारे लाभ के लिये व्यतीत किया है, इस से ऐसे महात्माओं के विचार अति अमूल्य और महत्व के होने चाहियें। "हर्बर्ट स्पेनसर" जैसे ग्रन्थकारों के एक दो पुस्तक पढ़ के हाल के तरुण विद्वान् हमारे प्राचीन ऋषियों की निन्दा करते हैं

यह कितना शोकजनक है। हमारे ऋषियोंने जो २ मार्ग और जो २ शिक्षा दर्शाई हैं उन का अवलम्बन न कर के जब हमारे में जीवात्मा है कि नहीं ऐसी शङ्कायें उन के बताये मार्ग को देखे विना निकालें तो आताओ। इस में दोष हमारा कि हमारे प्राचीन गुरुजनों का? मेरे हाथ में यह एक लकड़ी है उसे एक अन्धे पुरुष को दिखाई जावे और उस के विषय में उसे बहुत कुछ कहा होवे तथापि उस की कल्पना में वह न उतरे तो उस से क्या हम ऐसा मान लें कि यह वस्तुतः लकड़ी नहीं है। अन्ध को दृष्टि नहीं है इस में हमारा उपाय, तद्वत् हम को आत्मा के विषय में ज्ञान नहीं होता। इसीलिये ऐसा नहीं कहा जाता कि आत्मतत्त्व नहीं है। उसे न समझना इस में दोष हमारा ही है। हम आत्मविषयक विषयका यथायोग्य विचार नहीं करते हैं परन्तु एक दम यथारुचि निश्चय कर बैठते हैं। यह कुछ उत्कृष्ट मार्ग नहीं है। सम्प्रति डाक्टरों का यह मत है कि "चैतन्यशक्ति" ब्रेन में (मस्तिष्क में) रहती है। क्रियाजनक और ज्ञानजनक ऐसी दो तन्तु ब्रेन में से निकल शरीर के सर्व भागों में फैली हुई हैं और उसी से सर्व व्यवहार चलता है। उन महाशयों से हम को इस विषय में यह पूछना है कि जब शरीर में ज्ञानतन्तु फैली हुई है तब ऐसी कल्पना करो कि हमारे हाथ में महाव्यथाकारक एक गांठ हुई है उस का दर्द जाग्रत् अवस्था में होता है परन्तु जब हम गाढ़ निद्रावश होते हैं तब उस दुःख का स्मरण नहीं रहता है, उस का क्या कारण? उस समय ज्ञानतन्तु वहां होती है और निद्रा में दुःख का भान नहीं होता। इस से हम सबों को ठीक ज्ञात होजायगा कि ज्ञानतन्तु और जीवात्मा भिन्न २ वस्तु हैं। मस्तिष्क में ज्ञानशक्ति है यह डाक्टरों का कथन भूल भरा हुआ है। इन्हीं लोगों के कथन से शरीर के प्रत्येक परमाणु ४० दिवस में अपना स्थान छोड़ कर दूसरे स्थान पर जाते हैं यह उन की क्रिया एकसी अव्याहत है। हाथ के पहुंचे के परमाणु कितनेक वर्ष में पांव के तलुवे में या शरीर के किसी दूसरे भाग में दृष्टिगोचर होते हैं तद्वत् ७ वर्ष में वे सब परमाणु बिलकुल निकल जा के उन के स्थान पर दूसरे नूतन उत्पन्न होते हैं। यदि एक पुरुष ने एक वर्ष अथवा षट्मास पर्यन्त नित्य प्रति पांच सेर पेड़े खाये थे उस क्रम के अनुसार कितने मन

पेड़े उस के पेट में होने चाहियें? और उस का पेट कितना फूल जाना चाहिये? परन्तु ऐसा नहीं होता। जैसे गङ्गा का जल आगे बढ़ता है और उस के स्थान पर नया जल आता है तद्वत् हमारे शरीर की सर्वथा स्थिति है अर्थात् प्रत्येक वस्तु का रूपान्तर होके अन्त में वह नाश को प्राप्त होता है। इसी तरह सात वर्ष में जब शरीर के सब परमाणु निकल के दूसरे नूतन उत्पन्न होते हैं तब जो दृष्टान्त अब मैं कहूंगा उस के साथ कितने अंश में यह यथार्थ होता है, उसे देखें॥

एक ब्राह्मण के ६ वर्ष का एक पुत्र वेदाध्ययन के लिये काशी गया था, वह वहां साठ वर्ष की आयु तक रहके अध्ययन पूर्ण करके अब स्वदेश को पीछा लौटा है। बाल्यावस्था में जो जो वस्तु उस के देखने में आई थीं उन २ वस्तुओं का स्मरण सम्प्रति उसे है। इतना अधिक समय व्यतीत होने पर भी उस की ज्ञानशक्ति और स्मरणशक्ति का नाश नहीं हुआ है। ऐसे प्रसंग पर डाक्टरों के मत की सत्यता कितनी है यह स्पष्ट रीति से दिखाई देता है। एक बार दोबार इसी रीत्यनुसार क्रमशः दस बार जब ज्ञानतन्तु नवीन उत्पन्न होते हैं तब स्मरण शक्ति रहनी न चाहिये परन्तु यथार्थरीत्यनुसार यह सत्य नहीं है। यदि परमाणु ज्ञानतन्तु होवें तो ज्ञान का नाश होना चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं होता। ज्ञानतन्तु और आत्मा भिन्न है। अब स्पष्ट दिखाई देगा कि परमाणु शरीर में से निकलते हैं और आत्मा निकलता नही है वह तो सही सलामत है और उसी से केवल ज्ञान होता है। यह तद्विषयक ज्ञानप्राप्ति अतिश्रमसाध्य है॥

वैदिक लोग ऐसा मानते है कि जीव की उत्पत्ति या नाश नहीं है। क्रिश्चियन और मुसलमान लोग जीव को साद्यन्त मानते हैं। उन का कथन सृष्टिनियमविरुद्ध है कारण कि जिस की उत्पत्ति उस का नाश है। ऐसा नियम है। जीव को जो अविनाशी मानते हैं वे पुनर्जन्म को भी मानते हैं और बहुत से पुनर्जन्म को नही मानते हैं परन्तु यह विषय बड़ा सूक्ष्म है। संस्कृत में इस विषय पर एक ग्रन्थ है जो हाल के हमारे बी० ए० हैं उन को भी समझना कठिन है॥

ईश्वर, जीवात्मा, पुनर्जन्म, इत्यादि न मानने वालों से हमारा प्रश्न है कि तुम्हारी शङ्का का मूल हेतु क्या है? प्रश्न करने में चार उद्देश का समावेश होता है। प्रथम उस की ज्ञानप्राप्ति के लिये, द्वितीय अनुमति लेने के सम्बन्ध में, तृतीय उस का ज्ञान दूसरे को करवाने के लिये, और चतुर्थ केवल कुत्सित रीति से दोष निकालने के सम्बन्ध में। इन चार प्रकार में से तुम्हारा प्रश्न कौन से प्रकार का है? सच्चे धर्मजिज्ञासु बन के पूछने वाले बहुत ही न्यून होते हैं परन्तु केवल निन्दा का उद्देश रखके पूछने वाले असंख्य होते हैं। जगत् में सृष्टिनियमानुसार प्रत्येक वस्तु का रूपान्तर होता है तद्वत् जीव का रूपान्तर क्या न होना चाहिये? सूक्ष्म रीति से और शान्त चित्त से विचार करने वाले को तत्काल ज्ञात होजायगा कि पुनर्जन्म है या नहीं है। जैसे शरीर में रज, मांस, उत्पत्ति, वृद्धि, नाश, इत्यादि भिन्न २ रूपान्तर होता है तद्वत् जीव के भी होने चाहियें। और वही पुनर्जन्म है। एक जन्म छोड़ कर दूसरा जन्म धारण करना यह जीव का रूपान्तर कहाता है। पुनर्जन्म न मानने वालों का यह आक्षेप है कि "पुनर्जन्म यदि होता है तो हम को पूर्व जन्म का स्मरण क्यों नहीं होता जब हम को पिछले जन्म की स्मृति नहीं रहती है तब पुनर्जन्म नहीं है, ऐसा मानना चाहिये" यह उन का कथन ऊपर से ठीक लगता है परन्तु इस शङ्का का समाधान किस रीति से होता है उसे देखोः—

जीव जिस स्थान से आता है उस स्थान का उसे ज्ञान नहीं होता। मुसलमान लोग ऐसा मानते हैं कि जीव को ईश्वर ने स्वर्ग से इस संसार में भेजा है वहां से वह माता के गर्भ में प्रवेश करता है, परन्तु वह कहां से आया इस का ज्ञान उसे नहीं होता है। जीव का ज्ञान जब जीव का हेतु नहीं है तब क्या हम को यह मानना योग्य है कि जीव नहीं है? परन्तु जब हम छः मास के बालक थे तब हमारी माता पिता तथा बहिन कौन हैं यह नहीं जानते थे। तब क्या हमारे माता पिता भाई बहिन इत्यादि कोई नहीं हैं, क्या ऐसा मानना योग्य है? इसी रीति पर पुनर्जन्म सम्बन्ध में समझना चाहिये। जैसे बीज में वृक्षत्व रहा है परन्तु जब उस को पानी से सींच के बड़ा न करेंगे और उस की उचित व्यवस्था न करेंगे तो उस का

वृक्ष होना न होना हो जाता है। तद्वत् जीव को भी समझना चाहिये। जीव की दो शक्तियां हैं, एक सामान्य दूसरी विशेष। जाग्रत् अवस्था में सामान्य शक्ति और विशेष शक्ति यथास्थित होती है, स्वप्नावस्था में विशेष शक्ति सूक्ष्म स्वरूप में होती है और सुषुप्ति में उस का लय होता है। इस से उस को समझने की शक्ति नहीं रहती। जब तक जीव की शक्ति बराबर ठिकाने पर रहती है तब तक वह सब जान सक्ता है, परन्तु जब वह ठिकाने पर ही नहीं होती तब वह कुछ भी नहीं जान सक्ता, बाल्यावस्था में जो बातें होती हैं इस का हम को स्मरण नहीं रहता है तब उस समय कुछ हुआ ही नहीं, अथवा जीव न था, क्या ऐसा मानना योग्य है? उस समय में ज्ञानशक्ति अति सूक्ष्मावस्था में होती है ॥

पतञ्जलि ऋषि के योग से पुनर्जन्म जाना जाता है ऐसा निवेदन करते हैं, महाभारत में इस विषय के सम्बन्ध में अनेक दृष्टान्त हैं, पिछले जन्म की बातें जानने के लिये योगशक्ति बहुत बढ़ानी चाहिये, परन्तु हमारे जैसे मध्यम स्थिति के मनुष्यों से वह बन नहीं सक्ता, कितनेक केवल एक विषय के अंग्रेजी ग्रन्थ पढ़के दूसरे के मन में अपने सत्य असत्य विचारों को धूर्तता से विद्वत्ता का घमण्ड दिखा के प्राचीन ग्रन्थ सब झूठे हैं ऐसे कहने वालों को हमारे प्राचीन शास्त्र में क्या उत्तम सिद्धान्त है उस की उन्हें क्या मालूम? हमारे पूर्वज मूर्ख थे और हमारा धर्म झूठा है, हमारे में कुछ भी पुरुषार्थ न था, ऐसे शब्द संप्रति के विद्वान् श्रेणि के मनुष्यों के मुख से निकलते हैं और उन्हें सुनते हैं क्या यह थोड़े दुर्दैव की बात है? जब हम को एक अंग्रेज़ी प्रामाणिक ग्रन्थकार हमारी बाल्यावस्था कौशल के विषय में बड़े उच्च विचार रखता है और अपने ग्रन्थ में स्पष्ट रीति से सिद्ध करता है कि इस देश में से ही सर्व विद्या हमारे यहां पर आई। तब हमारे भाई (अल्पज्ञानी) निन्दक मात्र ग्रन्थों को पढ़ के हमारी निन्दा करते हैं, यह कितना शोकजनक है। प्राचीन काल में आर्यावर्त्त सर्व कला कौशल का मुख्य स्थान था, उस के विषय में प्रसिद्ध राजकवि राजा भर्तृहरि ऐसा कहते हैं कि:—

पुरा विद्वत्तासीदुपशमवतां क्लेशहतये।

गता कालेनासौ विषयसुखसिद्ध्यै विषयिणाम् ॥
इदानीन्तु प्रेक्ष्य क्षितितलभुजः शास्त्रविमुखान् ।
अहो कष्टं सापि प्रतिदिनमधोऽधः प्रविशति ॥१॥

अर्थ—प्रथम विद्वत्ता का प्रयोजन शान्ति, और दुःख का नाश था। फिर समय पाय विषयियों के विषय सुखार्थ विद्या हुई। और अब तो मूर्ख राज्य करते हैं यह देख कर शोक कि प्रतिदिन वह भी नीचे ही को गिरती है ॥१॥

एक ईसाई मिशनरी बिशप ने अपने व्याख्यान में कहा था कि यद्यपि हमारे धर्मशास्त्र (बाइबिल इञ्जील) में पुनर्जन्म सम्बन्ध में कुछ भी वर्णन नहीं किया तथापि पुनर्जन्म मानने वालों को हमारे से कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं हो सक्ता। ईश्वर न्यायी है ऐसा जगत् के सर्व शास्त्रों का सिद्धान्त है उससे कालत्रय में भी अन्याय नहीं हो सक्ता, तब कोई अन्धा, कोई लङ्गड़ा, कोई दरिद्री, ऐसे अनेक लोग दुःखी देखने में आते हैं इस का क्या कारण है ? ईश्वर के न्यायी राज्य में बिना कारण ऐसा क्या कभी हो सक्ता है ? अपने शुभाशुभ कृत्य के अनुसार सर्व को न्याय की रीति से शिक्षा मिलनी चाहिये। और जब वह इस जन्म के कर्मानुसार न होवे तब वह अन्य जन्मकृतकर्म का परिणाम होना चाहिये। और पुनर्जन्म न मानने वालों से यह प्रश्न है कि जो पुण्य करता है उस को स्वर्ग प्राप्त होता है और जो पाप करता है उसे नरक होता है तब जो पुण्य भी नहीं करता और पाप भी नहीं करता और मध्य स्थिति में रहता है उस की मरने के पश्चात् कैसी स्थिति होगी ? स्वर्ग प्राप्त होवे ऐसा पुण्य न करने से जब स्वर्ग नहीं प्राप्त होता, और नरक प्राप्त होवे ऐसा पापाचरण न करने से नरक भी नहीं मिल सकता। तब उन की आगे क्या गति होगी ? इस प्रश्न का उत्तर कोई दे सके ऐसा है ? उसे पुनर्जन्म मानना पड़ेगा, इस से ही पूर्वजन्म है यह स्पष्ट है, दूसरी अनेक युक्तियों से यह सिद्ध हो सक्ता है परन्तु समय अधिक हो जाने से अब विशेष विवेचन करना मैं योग्य नहीं समझता ॥

इति शम् ॥

(गत अङ्क से आगे विरजानन्द का जीवनचरित्र)

हृदय ने उस प्रकाश को अपने अन्तर प्राप्त करके फिर अपने में से उस प्रकाश को निकाल जगत् में फैला दिया ॥

ऋषि विरजानन्द का महत्त्व और श्रेष्ठता उन वचनों से प्रकट हो सकती है जो कि उन की मृत्यु के समाचार सुनने पर उन के योग्य विद्यार्थी स्वामी दयानन्दसरस्वती ने अपने मुख से इस प्रकार निकाले थे कि " आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया" ॥

हीरा (मणि) की महिमा सर्राफ़ (रत्नपरीक्षक) से पूछिये । सुकरात की योग्यता अफ़्लातून जानता है । ऋषि विरजानन्द की महिमा ऋषि दयानन्द पहिचानता है । यदि किसी मिथ्याप्रशंसक (खुशामदी) के ये वचन होते तो हम उस को अयुक्त कह सकते थे परन्तु ऋषि दयानन्द का उन को सूर्य कहना कुछ कारणवश सम्भव है। योगी विरजानन्द का महत्त्व इस से भी बढ़ कर हम को तब प्रतीत होता है जब हम को यह ज्ञात होता है कि परोपकारी बाल ब्रह्मचारी आर्यसमाज का आदिकर्त्ता (बानी) वैदिकधर्म का दर्शक महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के अन्त और वेदभाष्य के प्रत्यङ्क की समाप्ति में अपने को अभिमान (फ़ख़्र) से स्वामी विरजानन्द सरस्वती का शिष्य लिखता है ॥

विवेचक लोग स्वामीदयानन्द के गुरु परम*विद्वान् ऋषि विरजानन्द के परोपकार को नहीं भूल सके । तथा सत्यप्रिय लोगों के ज्ञाननेत्रों के सम्मुख महात्मा विरजानन्द निष्कलङ्क ज्योति का प्रकाश करने के निमित्त पुराणादि मिथ्या कपोलकल्पित और कौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थों के विघ्नों को शूर वीर के सदृश आर्ष ग्रन्थ रूपी खड्ग बल के द्वारा एक हाथ से काटता है और दूसरे से वेदशास्त्रों के गुप्तकोषों की यौगिक कुञ्जी जो कि महाभारत के घोर युद्ध पश्चात् लुप्तप्राय हो गई थी मनुष्य मात्र के हाथ में देने के लिये एक अद्भुत परोकारी विद्यार्थी स्वामी दयानन्द को सौंपता हुआ सच मुच ऋषि के रूप में दृष्टिगोचर होगा ॥

इति

द०—जगदम्बाप्रसाद वर्मा प्रयाग निवासी अनुवादक

---

* १ सत्यार्थप्रकाश के अन्त में यह शब्द स्वयं दयानन्द जी ने उन के महत्त्व में प्रयोग किया है ॥

पतिव्रताधर्ममाला

कुरूपो वा कुवृत्तो वा सुस्वभावोथ वै पतिः ।
रोगान्वितः पिशाचो वा क्रोधनो वाथ मद्यपः ॥ १ ॥

अर्थ–पति कुरूप, दुराचारी, उत्तम स्वभाव का, रोगी, पिशाच जैसा, क्रोधी, मद्यप, (शराबी) ॥१॥

वृद्धो वाप्यविदग्धो वा मूकोऽन्धो बधिरोपि वा ॥
रौद्रो वाथ दरिद्रो वा कदर्यः कुत्सितोपि वा ॥२॥

वृद्ध, बुद्धिहीन, गूंगा, अन्धा, बहिरा, विकराल, दरिद्री, कदर्य, निन्दित ॥२॥

कातरः कितवो वापि ललनालंपटोपि वा ।
सततं देववत्पूज्यः साध्व्या वाक्कायकर्मभिः ॥ ३ ॥

डरपोक, कपटी, अथवा परस्त्रीलंपट, होवे तथापि पतिव्रता स्त्री मन, वचन, और कर्म से उस का देव के सदृश पूजन करे ॥ ३ ॥

अहंकारं विहायाथ कामक्रोधौ च सर्वथा ।
मनसो रञ्जनं पत्युः कार्यं नान्यस्य कुत्रचित् ॥ ४ ॥

अर्थ–अहंकार काम तथा क्रोध को सर्वदा त्याग के स्त्री को अपने पति का मन रंजन करना परन्तु अन्य पुरुष का नहीं ॥ ४ ॥

सकामं वीक्षिताप्यन्यैः प्रियवाक्यैः प्रलोभिता ।
स्पृष्टा वा जनसंमर्दे न विकारमुपैति या ॥ ५ ॥

अर्थ–अन्य पुरुष कामवासना से देखे, मधुर वचन से लोभ देवे, मनुष्यों की भीड़ में स्पर्श करे, तथापि जिस स्त्री को विकार न होवे ॥ ५ ॥

यावन्तो रोमकूपाः स्युः स्त्रीणां गात्रेषु निर्मिताः ।
तावद्वर्षसहस्राणि नाकं सा पर्युपासते ॥ ६ ॥

अर्थ–वह स्त्री शरीर में जितने जितने रोमके छिद्र हैं उतने सहस्र वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में निवास करती है ॥ ६ ॥

पुरुषं सेवते नान्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ।

लोभितापि परेणार्थैः सा सती लोकभूषणा ॥ ७ ॥

अर्थ—पर पुरुष द्रव्य से ललचावे तथापि मन, वचन और काये से पर पुरुष का सेवन न करे वह स्त्री इस लोक को शोभा देने वाली सती जाननी ॥७॥

दौत्येन प्रार्थिता वापि बलेन विधृतापि वा ।
वस्त्राद्यैर्भूषिता वापि नैवान्यं भजते सती ॥ ८ ॥

अर्थ—दूती द्वारा प्रार्थना की हुई अथवा बलात्कार से पकड़ी हुई अथवा वस्त्रादिक से शोभायमान होते भी सती स्त्री परपुरुष को सेवन नहीं करती ॥ ८ ॥

वीक्षिता वीक्षते नान्यैर्हासिता न हसत्यपि ।
भाषिता भाषते नैव सा साध्वी साधुलक्षणा ॥ ९ ॥

अर्थ—अन्य पुरुष कटाक्ष से देखे, हास्य करावे, बुलावे, तथा वह पुरुष के सामने देखे नही, हँसे नही और बोले भी नही, वही स्त्री पतिव्रता जाननी ॥ ९ ॥

रूपयौवनसंपन्ना गीते नृत्येतिकोविदा ।
स्वानुरूपं नरं दृष्ट्वा न याति विकृतिं सती ॥ १० ॥

अर्थ—गान विद्या और नृत्य में कुशल, रूपवती तथा युवति होते भी अपने जैसे स्वरूपवान् को देख कर जिस स्त्री को विकार नहीं होता उसे सती जाननी ॥ १० ॥

सुरूपं तरुणं रम्यं कामिनीनां च वल्लभम् ।
या नेच्छति परं कान्तं विज्ञेया सा महासती ॥ ११ ॥

अर्थ—उत्तम स्वरूपवान्, युवा, रम्य, और कामनी स्त्री को प्रिय, ऐसे पुरुष की भी जो स्त्री इच्छा नहीं करती उसे महा सती जाननी ॥ ११ ॥

देवो मनुष्यो गन्धर्वः सतीनां नाऽपरः प्रियः ।
अप्रियं नैव कर्त्तव्यं पत्युः पत्न्या कदाचन ॥ १२ ॥

अर्थ—सती स्त्री को अपने पति के सिवाय पर पुरुष देव गन्धर्व के सदृश होवे तथापि उसे प्रिय नहीं लगता । इस लिये स्त्री को किसी प्रकार से भी पति का अप्रिय नहीं करना ॥ १२ ॥

भुङ्क्ते भुक्ते तथा पत्यौ दुःखिते दुःखिता च या ।
मुदिते मुदितात्यर्थं प्रोषिते मलिनाम्बरा ॥ १३ ॥

अर्थ—पति जो भोजन करे वह उसे करे । पति के दुःख को दुःख और उस के सुख को सुख माने । पति विदेश गया होवे तो उत्तम वस्त्र को पहिरे नहीं ॥ १३ ॥

नान्यं कामयते चित्ते सा विज्ञेया पतिव्रता ।
भक्तिं श्वशुरयोः कुर्यात्पत्युश्चापि विशेषतः ॥ १४ ॥

अर्थ—मन में परपुरुष की कामना न करे, सास श्वशुर की भक्ति करे, और स्वामी की भक्ति विशेष करके करे उसे पतिव्रता जाननी ॥ १४ ॥

धर्मकार्येऽनुकूलत्वमर्थकार्येपि संचये ।
गृहोपस्करसंस्कारे सक्ता या प्रतिवासरम् ॥ १५ ॥

अर्थ—धर्म और अर्थ कार्य में तथा संचय करने में अनुकूल होना और नित्यप्रति गृह के साहित्य की यथायोग्य व्यवस्था करने में तत्पर रहना ॥१६॥

क्षेत्राद्वनाद्वा ग्रामाद्वा भर्तारं गृहमागतम् ।
प्रत्युत्थायाभिनन्देत आसनेनोदकेन च ॥ १६ ॥

अर्थ—खेत में से या वन में से अथवा ग्राम में से स्वामी जब घर पर आवे तब उठके खड़े हो के उस के सन्मुख जलपात्र रख पति का सत्कार करना ॥

प्रसन्नवदना नित्यं काले भोजनदायिनी ।
भुक्तवंतं तु भर्तारं न वदेदप्रियं क्वचित् ॥ १७ ॥

अर्थ—नित्य प्रसन्नमुख रखना, समय पर भोजन देना, और जब पति भोजन करने बैठे उस समय कुछ भी अप्रिय नहीं कहना ॥ १७ ॥

गृहव्ययनिमित्तं च यद् द्रव्यं प्रभुणार्पितम् ।
निर्वृत्य गृहकार्यं सा किंचिद्बुद्ध्यावशेषयेत् ॥ १८ ॥

अर्थ—पति ने घर में व्यय करने के लिये जो कुछ द्रव्य दिया होवे उस में से व्यय करके बचाना चाहिये ॥ १८ ॥

अन्यालापमसंतोषं परव्यापारसंकथाः ।

अतिहास्यमतिरोषं च क्रोधं च परिवर्जयेत् ॥ १९ ॥

अर्थ–परपुरुष के साथ बातें न करनी, असंतोष नहीं रखना, दूसरे की बातें नहीं करनी, अधिक हंसना नहीं, तद्वत् रोप और क्रोध का त्याग करना ॥१९॥

यच्च भर्ता न पिबति यच्च भर्ता न खादति ।
यच्च भर्ता न चाश्नाति सर्वं तद्वर्जयेत्सती ॥ २० ॥

अर्थ–पति जिस का खान पान अथवा भोजन न करे उस का सती स्त्री ने त्याग करना ॥ २० ॥

तैलाभ्यङ्गं तथा स्नानं शरीरोद्वर्त्तनक्रियाम् ।
मार्जनं चैव दन्तानां कुर्यात्पतिमुदे सती ॥ २१ ॥

अर्थ–पति का मनरञ्जन करने के लिये दांत घिस के साफ रखना उबटन मल के स्नान करना और सुगंधित तैल लगाना ॥ २१ ॥

नावलोक्या दिशः स्वैरं नावलोक्यः परोजनः ।
विलासैरवलोक्यं स्यात् पत्युराननपंकजम् ॥ २२ ॥

अर्थ–चारों तरफ मरज़ी आवे वैसी आंखे नहीं फिरानी, परपुरुष के सामने दृष्टि नहीं करनी, विलास करते समय पति के मुखारविन्द का दर्शन करना ॥ २२ ॥

कथ्यमाना कथा भर्त्रा श्रोतव्या सादरं स्त्रिया ।
पत्युः संभाषणस्याग्रे नान्यत्संभाषयेत् स्वयम् ॥ २३ ॥

अर्थ–स्वामी जो बात कहे उसे आदर पूर्वक सुननी, स्वामी के बोलने से पूर्व कुछ भी नहीं बोलना ॥ २३ ॥

आहूता सत्वरं गच्छेद्रतिस्थानं रतोत्सुका ।
पत्यौ गायति सोत्साहं श्रोतव्यं हृष्टचेतसा ॥ २४ ॥

अर्थ–स्वामी बुलावे उसी समय शयनगृह में उत्साह से जाना, पति गान करे तब आनन्दयुक्त मन से और उत्साह से उसे श्रवण करना ॥ २४ ॥

गायन्तं च पतिं दृष्ट्वा भवेदानन्दनिर्वृता ।
भर्तुः समीपे न स्थेयं सोद्वेगं व्यग्रचित्तया ॥ २५ ॥

शब्द है जैसे कोई धर्मात्मा को कह देते हैं कि यह तो धर्म के अवतार हैं इसी प्रकार जाति में उत्तम कर्म करने वालों को आदर पूर्वक उच्च नाम से उच्चारण करने लगते हैं परन्तु वह जाति में अपनी ही रहते हैं और अपनी जाति में बड़े गिने जाते हैं ॥

प्रत्युत्तर—स्वामी जी के इस लक्षण से कि जिसे पढ़ाने से भी कुछ न आसके यह शूद्र का लक्षण है, कोई दोष नहीं आता । क्योंकि पढ़ाने से ही तो यह विदित होगा कि यह पढ़ाने से भी नहीं पढ़ सकता । यदि पढ़ाया ही न जावे तो यह कैसे जाना जावे कि यह पढ़ाने से भी नहीं पढ़ सक्ता । बस (यथेमां वाचम्०) के अनुसार शूद्र के पुत्र को भी पढ़ा कर देखाजाय यही उस की चरितार्थता है ॥

अधर्मचर्यया जघ०

इस का तात्पर्य दूसरे जन्म में नीच होने का है तो जो लोग इसी जन्म में ईसाई मुसलमान हो जाते हैं वे पतित न होने चाहियें क्योंकि आप तो अधर्म वा धर्म को अगले जन्म में फलप्रद मानते हैं ॥

द० ति० भा० पृ० ८६ पं० २७ से—

धर्मोपदेशदर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः ।
तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥ मनु० ८ । १७२

प्रत्युत्तर—तात्पर्य तो यह है कि जो शूद्र होने से अज्ञानी पुरुष ज्ञानियों का उपदेशक बन जावे और घमण्ड कर के अधर्म का उपदेश करे तो राजा उसे दण्ड दे । इस से यह तो नहीं सिद्ध होता कि वह शूद्र जन्म से होता है वा कर्मादि से ॥

द० ति० भा० पृ० ८७ पं० २ से—

अतएव शतपथे । सर्वे न सर्वेण संवदेत, देवान्वा एष उपावर्त्तते, यो दीक्षते स देवानामेको भवति, न वै देवाः सर्वेणेव संवदन्ते, ब्राह्मणेन वैव राजन्येन वा वैश्येन वा, ते ह यज्ञियास्तस्माद्यद्येन शूद्रेण संवादो विन्देदेतेषामेवैकं ब्रूयादिमम् ॥

प्रत्युत्तर—इस का अक्षरार्थ यह है कि कि—"वह सब से संवाद न करे, क्योंकि वह देवों के काम में है जो कि दीक्षित हो कर यज्ञ करता है वह अकेला देवतों का हो जाता है, और देवता सब से संवाद नहीं करते किन्तु ब्राह्मण वा क्षत्रिय वा वैश्य से ही करते हैं क्यों कि (ये ३) यज्ञ वाले

हैं। शूद्र से संवाद नहीं प्राप्त होवे किन्तु इन (ब्राह्मणादि ३) में से ही किसी एक से बोले ॥

इस में भी जन्म से वा कर्म से कुछ नहीं लिखा इस लिये आप के पक्ष का पोषक नहीं। और शतपथ का पता भी नहीं लिखा॥

द० ति० भा० पृ० ८१ पं० १३ में-जैसे दीवार तस्वीरों सहित दीवार ही रहती है परन्तु वोह अच्छी कही जाती है॥

प्रत्युत्तर-जैसे दीवार लिपी पुती तस्वीर टंगी उत्तम होती है वैसे ही पढ़ा लिखा सुभूषित मनुष्य मनुष्य ही रहता है परन्तु अच्छा अर्थात् ब्राह्मणादि उत्तमपद को प्राप्त हो जाता है। और ढई फूटी विकृत दीवार भी दीवार तो कहाती है परन्तु वह ढुंढस खंडल आदि दुर्नामों से पुकारी जाती है ऐसे ही कुपढ़ मनुष्य भी शूद्रादि नामों से॥

द० ति० भा० पृ० ८१ पं० १७ से-

बार्हद्गिरं ब्राह्मणस्य ब्रह्म साम कुर्यात्, पार्थुरश्मं राजन्यस्य, रायोवाजीयं वैश्यस्य॥

प्रत्युत्तर-ये सामवेद के स्थल नहीं हैं किन्तु इस २ नाम के साम हैं जो साम वेद की संहितास्थ ऋचाओं में से निकले हैं। तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण यज्ञ करे तो उसे "बार्हद्गिर" नामक साम पढ़ावे, क्षत्रिय को पार्थुरश्म, वैश्य को रायोवाजीय, शूद्र को इस लिये नहीं कहा कि वह अयोग्य होने से यज्ञकर्ता ही नहीं होता। इस में भी जन्म वा कर्म कुछ नहीं कहा और आपने यह पता भी नहीं दिया कि यह किस ब्राह्मण के किस स्थल का पाठ है। संस्कारे च, तत्प्रधानत्वात्। वेदे निर्देशात्। इत्यादि का उत्तर देने की आवश्यकता ही नहीं क्योंकि ये तो बे पते कहीं का संस्कृत पाठ उठाकर रखदिया है। न ग्रन्थ का नाम, न उन से जन्म वा कर्म का वर्णन॥

द० ति० भा० पृ० ८७ पं० २४ से-

"पद्युहवा एतत् श्मशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रे नाध्येतव्यम्"॥

प्रत्युत्तर-यह भी बेपते प्रमाण है। और शूद्र के समीप बैठ कर वेद न पढ़े, इस का तात्पर्य यह है कि क्लास भिन्न २ रहनी चाहिये, शूद्र शूद्रों में बैठें, ब्राह्मणादि ब्राह्मणादिकों के साथ अपनी क्लास (कक्षा) में बैठ कर पढ़ें। यह पढ़ने का क्रम है। जाति वा वर्ण का जन्म वा कर्मादि से होना इस में नहीं कहा॥

शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः ।

इन सूत्र वार्त्तिकों में शूद्र का प्रयोग है। परन्तु शूद्रत्व जन्म से है वा कर्म से, यह कुछ भी नहीं लिखा, अतः आप का पक्षपोषक नहीं ॥

द० ति० भा० पृ० ८८ पं० १३ से—

"तेनतुल्यंक्रियाचेद्वतिः" सर्वे एते शब्दा गुणसमुदायेषु वर्तन्ते ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्र इति अतश्चगुणसमुदाये एवह्याह ।

तपः श्रुतं च योनिश्चएतद्ब्राह्मणकारणम् । तपः श्रुताभ्यांयोहीनोजातिब्राह्मणएवसः १ तथागौरः शुच्याचारः पिङ्गलःकपिलकेशइति ॥

सब यह शब्द गुण समुदायोंमें वर्तते हैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इति तप करना वेद पढ़ना श्रेष्ठ कुल यह ब्राह्मणका (कारकम्) लक्षण है जो ब्राह्मण इन कर के हीन है केवल (योनि.) ब्राह्मणकुलमें जन्म मात्र है वोह जातिसे ब्राह्मण है लक्षण उसमें नहीं हैं क्योंकि गौर वर्ण पवित्राचरण पिङ्गलकपिलकेश यहभी ब्राह्मणके लक्षण हैं यदि यह न हों और वोह ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न है तो वोह जातिसे ब्राह्मण है यह भाष्यकार मानते हैं "जातिहीने सन्देहाद्गुरूपदेशाच्च ब्राह्मणशब्दोवर्तते" और जातिहीन गुणहीनमें भी सदेहसे ब्राह्मण शब्द वर्तता है । गुणहीने यथा " अब्राह्मणोयं यस्तिष्ठन्मूत्रयति " यह अब्राह्मण है जो खड़ा होकर मूत रहाहै । सन्देहमें ऐसे कि गौर वर्ण पवित्राचार पिङ्गलकपिलकेश पुरुष देखकर बोध होताहै कि यह क्या ब्राह्मण है पीछे जाननेसे यदि वोह जाति ब्राह्मण हो तो अब्राह्मणोयमिति ऐसा कहाजाता है यदि भाष्यकारको जाति शूद्रका मानना इष्ट न होता तो शुचि आचारादि युक्त पुरुषको यह ब्राह्मण है या नहीं ऐसा क्यों लिखते।

प्रत्युत्तर—इस में ब्राह्मण के लक्षण और कारण बताये हैं कि विद्या तप और जन्म (ब्राह्मणकुल में) ये ३ बातें ब्राह्मण होने का कारण है । परन्तु यह नियामक नहीं कि विद्या और तप न भी हों तब भी ब्राह्मण ही पूर्ण कहावे । जैसे जल अग्नि मृत्तिका ये घड़े के कारण हैं । परन्तु यह नियम नहीं कि मृत्तिका से घड़ा बने ही बने । किन्तु बनाना चाहें तो बन सक्ता है । अर्थात् ब्राह्मण कुल में जन्म लेना भी ब्राह्मण बनने के कारणों से एक कारण है क्योंकि सत्कारपूर्वक शरीर बनता है । परन्तु मिट्टी से घट बन सक्ता है किन्तु ईंट भी बन सक्ती है, ठीकरे भी बन सक्ते हैं । इसी प्रकार ब्रा-

क्षणकुल में जन्म लेने से ब्राह्मण भी बन सक्ता है और क्षत्रिय वैश्य वा शूद्र भी बन सक्ता है। और उस को जाति ब्राह्मण कहना ऐसा ही है जैसे कोई ब्राह्मण वा राजपुत्र ईसाई होवे तब भी उसे जाति का ब्राह्मण वा राजपुत्र कहते हैं किन्तु उस के साथ सहभोज्यादि काम नहीं करते। ऐसे ही जन्म मात्र के ब्राह्मण जाति ब्राह्मण हैं अर्थात् दानाध्यापनादि कार्य योग्य नहीं। अर्थात् जन्ममात्र व्यर्थ है। उस अकेले से कोई काम नहीं। और जो जन्म तप विद्यादि सब गुणों से युक्त हो, केवल रङ्ग उस का काला हो, क्या उसे आप ब्राह्मण नही कहते वा मानते? हमारी समझ में तो गौर वर्ण होना इत्यादि बाह्य गौण चिह्न हैं, मुख्य नहीं। क्योंकि यदि रंगत पर ही वर्णव्यवस्था हो तो किसी देश में सर्वथा काले ही और किसी में गोरे ही होते हैं, तो फिर देश मात्र में एक ही वर्ण होना और मानना चाहिये क्या?

द० ति० भा० पृ० ८९ पं० २ से-

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः।

तस्यैवात्राधिकारोऽस्मिञ्ज्ञेयोनान्यस्य कस्यचित्। अ० १

प्रत्युत्तर-तृतीयपाद का पाठ ऐसा है कि "तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन्" आप का पाठ ठीक नहीं। और इस में भी जन्म वा कर्मादि का वर्णन नहीं है किन्तु मनुजी अपने पुस्तक मनुस्मृति के पढ़ने का अधिकारी उस पुरुष को ठहराते हैं कि जिस के गर्भाधान से अन्त्येष्टिपर्यन्त संस्कार होते हों अन्य ऐरे ग़ैरे को नही॥

द० ति० भा० पृ० ८९। पं० ८ से-

पुनः गोपथब्राह्मणे पूर्वभागे २३ ब्राह्मणम्

सान्तपनाइदंहविरित्येष ह्वै सान्तपनोऽग्निर्यद्ब्राह्मणो यस्य गर्भाधान पुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनगोदानचूडाकरणोपयनाप्लवनाग्निहोत्रव्रतचर्यादीनिकृतानिभवन्तिससान्तपनोऽथ योऽयमनग्निकः सकुम्भेलोष्टः (तद्यथा) कुम्भेलोष्टः प्रक्षिप्तो नैवशौचार्थायकल्पते नैवशस्यंनिर्वर्तयति एवमेवायंब्राह्मणोऽनग्निकस्तस्यब्राह्मणस्यानग्निकस्यनैवदैवं दद्यान्नपित्र्यं नचास्य स्वाध्यायाऽशिषो नयज्ञआशिषः स्वर्गङ्गमाभवंति।

अर्थ-जिस ब्राह्मण के जन्म से गर्भाधान पुंसवन सीमन्तोन्नयन जातकर्म नामकरण, निष्क्रमण (बाहर निकलना तीसरे दिन) अन्नप्राशन, गोदान चूडाकरण उपवीत अग्निहोत्र ब्रह्मचर्यादि संस्कार हुवे हैं वो ब्राह्मणजाति

और गुण कर्म से यथार्थ है उसी को सान्तपन कहते हैं जिस ब्राह्मण के ये संस्कार नहीं हुवे वह ऐसा ही है जैसा घड़े में मिट्टी का ढेला, क्योंकि वह फेंका हुआ ढेला पवित्रता नहीं करता न कुछ (शस्य) खेती का कार्य बनाता है इसी प्रकार से अग्नि रहित और संस्कार रहित ब्राह्मण है ऐसे ब्राह्मण को देवता और पितृसंबन्ध में कुछ भी न देना न वेद आशिष न यज्ञ आशिष इस को स्वर्ग ले जानेवाली होती हैं॥

प्रत्युत्तर—इस में केवल ब्राह्मण पिता से जन्मने वाले की निन्दा है। अर्थात् जो ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी गर्भाधानादि संस्कारों से रहित है उसे ब्राह्मण मान कर दानादि नहीं देना चाहिये। यदि ब्राह्मण जन्म से ही होता तो ऐसे लोग भी दानादि लेने के अधिकारी होते जैसा कि आज कल गया के पण्डे आदि हो रहे हैं॥

द० ति० भा० पृ० ९७ में यह आक्षेप है कि गुण कर्म स्वभावानुसार वर्ण व्यवस्था मानने में यह अनर्थ होगा कि पिता के धनादि पदार्थों का दायभाग छूट जायगा॥ इत्यादि॥

प्रत्युत्तर—अब भी तो ईसाई मुसल्मानादि होने से दायभाग छूटता ही है। राजव्यवस्था हो जाने पर कुछ अनर्थ नहीं हो सक्ता।

द० ति० भा० पृ० ९७ पं० २४ से—

ज्येष्ठ एवतु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः। इत्यादि॥

प्रत्युत्तर—क्या किसी के दो पुत्र हों, और बड़ा बेटा धर्म त्याग दे तो वह पिता के धन का अधिकारी हो सक्ता है? कदापि नहीं। इसी प्रकार राजकीय व्यवस्था हो जाने पर वर्ण त्यागने पर भी दायभागादि सब काम ठीक चल सक्ते हैं॥

द० ति० भा० पृ० ९१ पं० १९ से २५ तक में (स्वाध्यायेनव्रतैः०) इस श्लोक का यह तात्पर्य निकाला है कि स्वाध्यादि कर्मों से ब्राह्मण नहीं होता किन्तु मुक्ति प्राप्ति के योग्य होता है॥

प्रत्युत्तर—मुक्ति योग्य होना तो ब्राह्मण होने से भी ऊंचा है। क्योंकि ब्राह्मणों में भी सहस्रों में कोई ही मुक्ति का अधिकारी होता है। भला जो मुक्ति योग्य हो गया वह ब्राह्मण वा संन्यास के योग्य क्यों नहीं हुवा॥

द० ति० भा० पृ० ९२—९३ में यह आशय है कि—"येनाऽस्य पितरो या-

ता:" इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि बाप दादे के मत को न छोड़े। जो ब्राह्मणादि ईसाई मुसलमान हो जाते हैं वे भी जाति के ब्राह्मणादि ही कहाते और रहते हैं, किन्तु नीचों के साथ भोजनादि करने से पतित कहाते हैं॥

प्रत्युत्तर--यदि बाप दादे का मत न छोड़ना अर्थ है तो ५० वर्ष ठहरे रहो, जो लोग आर्यसमाज में आगये फिर उन की सन्तान को कभी मत कहना कि अपना मत छोड़ दो। आज कल जिस थियोसाफिकलसोसाइटी से भूत प्रेतादि हिन्दूपने के अन्ध विश्वासों को मानने के कारण धर्मसभाओं का बड़ा मेल जोल है और समस्त हिन्दू शिक्षित लोग मिसेस एनीबेसेन्ट को हिन्दू क्या ब्राह्मणी से भी अधिक मानते हैं। आप की क्या राय है?॥

निन्दा स्तुति प्रकरणम्—

द० ति० भा० पृ० ८३-८४ में लिखा है कि यदि दोषों को दोष कहना भी स्तुति है तो (सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्। मनु०) से विरोध आवेगा। क्योंकि अप्रिय दोषों का सत्य कहना भी बुरा है। इत्यादि

प्रत्युत्तर-सत्यंब्रूयात्० इत्यादि श्लोक सभ्यतामात्र धर्म का प्रतिपादक है। अर्थात् ऐसा करने वाले साधारण भलेमानुष कहाते हैं। परन्तु यथार्थ तो यही है कि "शत्रोरपि गुणावाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि" शत्रु के भी गुणों की प्रशंसा और गुरु के भी दोषों का कथन करना। परीवादात्खरो भवति० इत्यादि श्लोक असत्य दोषारोपण का फल कहता है। इति॥

द० ति० भा० पृ० ८५ पं० १५ से-

समीक्षा—अब यहांसे स्वामीजी लोपलीला चलाते हैं यहां पितर देवता ऋषि सब एकही प्रकार और एकही अर्थमें घटाते हैं इन श्लोकोंमें यहसब पृथक् २ हैं इसलिये देवऋषि पितरों को एकही कहना युक्त नहींहै क्योंकि ऋषियज्ञ देवयज्ञ भूतयज्ञ नृयज्ञ पितृयज्ञ इन को यथाशक्ति न जाने दे, पढना पढाना ब्रह्मयज्ञ, तर्पण श्राद्ध पितृयज्ञ, होमादिक देवयज्ञ, और भूतबलि भूतयज्ञ, और मनुष्ययज्ञ अतिथिभोजनादिक यह पांच है, वेदाध्ययनसे ऋषियोंका पूजन करें होमसे देवताओं का श्राद्धसे पितरोंका अन्नसे मनुष्योंका, और भूतोको बलि कर्म कर पूजन करे॥

"कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेनवा। पयोमूलफलैर्वापिपितृभ्यःप्रीति-

मावहन् अ० ३ श्लो० ८२ मनु० ॥ एकमप्याशयेद्विप्रंपित्रर्थेपांचयज्ञिके"

पितरोंसे प्रीति चाहनेवाला तिल यव इन करके और पय मूल फल जल इनसे श्राद्ध करै पितरके अर्थ एक ब्राह्मण भोजन करावे जबकि वेदाध्ययनसे ऋषि, होमसे देवता, श्राद्धसे पितर, अन्न से मनुष्यों का पूजन करै, यदि यह भेद एकही होते तो पृथक् २ वस्तुओंसे पृथक् प्रसन्न होने वाले कैसे होते यदि देवता विद्वानोंही को कहते हैं तो क्या वोह हवनसे प्रसन्न होतेहैं तो उनकी प्रसन्नताके वास्ते हवन कर देना चाहिये यदि विद्वान भूखे आवैं तो थोड़ासा होम करदेना वे झट प्रसन्न हो जायंगे इससे विद्वान तृप्त होते देखे नहीं जाते इसकारण विद्वानोंकाही देवता नाम और कोई पृथक् जाति नहीं है यह कहना स्वामीजीका झूंठ है वेदोंमें देवजाति पृथक् लिखी है यथाहि "अग्निर्देवता वातोदेवतासूर्योदेवता चन्द्रमादेवता" इत्यादि

प्रत्युत्तर—स्वामी जी ने ऋषि देवता पितर का एक ही अर्थ नहीं किया किन्तु देवता=सामान्य विद्वान्, पितरः माता पिता आदि ज्ञानी पालक, ऋषि= पढ़ानेहारे। यह तीनों भिन्न२ लिखे हैं। आप का एक समझना भूल है॥

आप पढ़ने वालों को भ्रम में डालते हैं कि स्वामी जी ने ऋषियज्ञ देवयज्ञ पितृयज्ञादि को एक कर दिया। स्वामी जी ने (ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा०) इस श्लोक के भिन्न २ पांच यज्ञों के ५ यजनीयों की गिनती वहां नहीं की है किन्तु अगले पितृयज्ञार्थ तर्पण में जो देव ऋषि पितरों का तर्पण है, उस तर्पण के ३ अङ्गों के वर्णन में तीन प्रकार के पुरुषों का तर्पण लिखा है। इसीलिये—

एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थे पाञ्चयज्ञिके।

इस श्लोक का अर्थ यह हुवा कि पञ्च महायज्ञों में जो तीसरा पितृयज्ञ है और पितृयज्ञ के अन्तर्गत माता पिता आदि वृद्ध ज्ञानियों के अतिरिक्त देव और ऋषि तर्पण भी सम्मिलित है। उस पितृयज्ञान्तर्गत देवतर्पण वा ऋषितर्पण में एक ही विद्वान् को भी तृप्त कर देना पर्य्याप्त है॥

देवता विद्वानों ही को कहते हैं यह स्वामी जीने नहीं लिखा, किन्तु पितृयज्ञ के अन्तर्गत जो देव ऋषि पितर इन तीनों में देव शब्द है, उस का तात्पर्य विद्वान् लोगों से है। और देवयज्ञ जो होम से किया जाता है, उस के देवता तो अग्नि, वायु, जल, मेघ, सूर्य्य, चन्द्र, वनस्पति आदि ३३ देवा-

न्तर्गत स्वामी जी ने भी माने ही हैं। इसलिये पितृयज्ञान्तर्गत देव शब्द से "अग्निर्देवता-वातो देवता" को लगाना बड़ी अज्ञान की बात है॥

स्वामी जी ऋ० भूमिका में स्वयं ३३ देवों का व्याख्यान किया है। विद्वान् लोगों को देवता कहने से स्वामी जी का तात्पर्य शतपथ ब्राह्मणानुसार यह नहीं है कि विद्वानों से पृथक् कोई देवता नहीं हैं, किन्तु अपने २ प्रकरण होमादि में वायु आदि देवता हैं, परन्तु पितृयज्ञ में विद्वान् ही देवता हैं यह तात्पर्य है॥

इसी से "वाग्वैब्रह्म" का उत्तर होगया कि वाणी को ब्रह्म कहने का भी यह तात्पर्य नहीं है कि ब्रह्म शब्द से वाणी ही का ग्रहण किया जाय। किन्तु वाणी के प्रकरण में ब्रह्म शब्द से वाणी का ग्रहण इष्ट है॥

देवतों का व्याख्यान विस्तार पूर्वक देखना चाहें तो हमारे बनाये "वैदिकदेवपूजा" नामक पुस्तक को देखें, यहां ग्रन्थ बढ़ेगा॥

देवतों को ३३ करोड़ मानना भूल है। समस्त वेद शास्त्रों के शब्द भी ३३ करोड़ गिनती में नहीं, फिर वितने देवतों के नाम कहां? किन्तु ३३ देवों की ३३ कोटि अर्थात् समुदाय हैं। इसी कोटि शब्द का अर्थ अज्ञान से करोड़ समझ लिया है। शत और सहस्र शब्द निघण्टु ३। १ में बहुत के अर्थ में कहे हैं। तदनुसार ३३ शत वा ३३ सहस्र का अर्थ भी गणना परक नहीं, किन्तु ३३ की संख्या को जातिपरक बहुत होना बताया गया है॥

ऋ० भूमिका में शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण से अग्न्यादि ८ वसु, १२ आदित्य चैत्रादि, ११ रुद्र प्राणादि, अशनि अध्यर्ध, ये ३३ वा ३ वा २ वा १ देवता हैं। सब की व्याख्या स्पष्ट लिखी है, तब कौन भ्रम कर सक्ता है कि स्वामी जी ने विद्वान् के अतिरिक्त देवता नहीं माने॥

आत्मैवैषां रथो भवत्यात्माश्व आत्मायुधमात्मेषव
आत्मा सर्वं देवस्य देवस्य। निरु० ७। ४॥

इस निरुक्त का अर्थ यह है कि वायु आदि भौतिक देवों का परमात्मा ही, रथ, घोड़ा, आयुध, बाण आदि सब कुछ है अर्थात् परमात्मा रूप सवारी में ही ये वायु आदि चलते फिरते हैं, परमात्मा के दिये सामर्थ्य से बल धारण करते हैं, किन्तु इन में स्वतन्त्र देवतापना नहीं है। सो ठीक ही है क्योंकि-

न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमाविद्युतो भान्ति

कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ कठोप० ॥ ५ । १५ ॥

न परमेश्वर के सामने सूर्य्य का प्रकाश कुछ वस्तु है, न चन्द्रमा, न तारे, न बिजुलियां, फिर इस अग्नि का तो कहना ही क्या है । प्रत्युत उसी के प्रकाशित होने से यह सूर्यादि देवगण प्रकाशित है और उसी के प्रकाश से प्रकाशित है ॥

द० ति० भा० पृ० ९७ पं० २८ से—रूपंरूपंमघवा इत्यादि ॥ ऋ० और पृ० ९८ पं० ३ यद्यद्रूपं कामयते । इत्यादि निरुक्त० ॥

प्रत्युत्तर—ऊपर लिखे निरुक्त का यह तात्पर्य नहीं है कि परमेश्वर स्वयं भिन्न २ रूपों को धारण करता है और न यह सिद्ध होता है कि अग्नि वा इन्द्र देवता उस के अंश हैं । यदि ऐसा हो तो परमात्मा एकरस भी न रहा तथा उस को एकरस, निर्विकार, निराकार प्रतिपालन करने वाले मन्त्रों और उपनिषदों का क्या अर्थ करोगे ? यथार्थ निरुक्त में उद्धृत ऋग्वेद के मन्त्र का अर्थ यह है । यथा—

यद्यद्रूपं कामयते तत्तद्देवता भवति । रूपं रूपं मघवा बोभवीति इत्यपि निगमो भवति । निरु० अ० १० खं० १७॥

अर्थ—जिस २ रूप की परमात्मा बनाने की इच्छा करते हैं वह वह देवता होता है अर्थात् परमात्मा जिस २ देवता को जिस २ रूप में बनाना चाहते हैं बनाते हैं । उन की कामनामात्र से यह विचित्र सृष्टि सूर्य्यादि ३३ देवतों से युक्त बनी है । इस विषय में निरुक्तकार नीचे लिखे ऋग्वेद के मन्त्र का प्रमाण देते हैं । यथा—

रूपं रूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं१ परि स्वाम् । त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्तमागात्स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥
मं० ३ सू० ५३ मं० ८ ॥

अन्वयः—यत् अनृतुपा ऋतावा स्वां तन्वं परि मायाः कृण्वानः सन् मघवा स्वैर्मन्त्रैर्मुहूर्त्तं दिवस्त्रिः पर्य्यागात् रूपं रूपं बोभवीति ॥

(यत्) जो कि (अनृतुपाः) किसी विशेष ऋतु में ही नहीं किन्तु सदा

सोमादि ओषधिरसों का पीने वाला (ऋतावा) ऋत नाम उदक वा जल वाला [सोमादि ओषधियों का रस रूप जल जिस के किरणों में पृथिवी से उड़ कर जाता है । ऋतम्=उदकम् निघं० १ । १२] (स्वां तन्वं परि) अपने पिण्ड देह के चारों ओर को (मायाः कृण्वानः) बुद्धियों को करता हुवा [प्रकाश से तम निवृत्त होकर बोध बुद्धि वा जागरण होता है, रात्रि में अन्धकाररूप तमोगुण से निद्रा उत्पन्न होती है, निद्रा में बुद्धि तिरोभूत हो जाती है, सूर्य्य अपने उदय से फिर बुद्धियों का प्रादुर्भाव करता है। माया= प्रज्ञा बुद्धि निघं० ३ । १०] (मघवा) इन्द्र=सूर्य्य (स्वैर्मन्त्रैः) इन्द्र देवता वाले मन्त्रों से (दिवः) सूर्य्य लोक और जहां तक उस का प्रकाश जाता है वहां से (मुहूर्त्तम्) क्षण मात्र में (त्रिः) प्रातः सवन माध्यन्दिनसवन और सायंसवन इन यज्ञ के तीनों सवनों में तीनों वार (परि आ अगात्) व्याप्त होता है (रूपंरूपम्) प्रत्येक रूप को (बोभवीति) अतिशयता से हुवाता है अर्थात् बनाता है [सूर्य्य आग्नेय है, अग्नि की तन्मात्रा रूप है, इस लिये प्रत्येक रूप सूर्य से उद्भूत होता, सूर्य्य के विना रूपोत्पत्ति नहीं हो सकी, आंख से रूप देखते हैं। आंख का भी इन्द्र देवता है तथा इन्द्र की सहायता से ही आंखें देख सकी हैं। इन्द्र उस देवता का नाम है जो सूर्य्य अग्नि दीपकादि समस्त चमक वाले पदार्थों में चमक है] आशय यह है कि परमात्मा अपनी इच्छा से इन्द्र देवता अर्थात् चमक को बनाते हैं वह चमक मुख्य कर अधिकता से सूर्य में रहती है अतः सूर्य को भी विशेष कर इन्द्र कहते हैं। वही इन्द्र हर एक रूपवान् पदार्थ में रूप का कारण है, उस के विना कोई रूप नहीं हो सका। इस लिये वही सब रूपों को बनाता है यह कहा गया । अब बुद्धिमानों को विचारना चाहिये कि इस से किसी देवता का मृण्मयादि मूर्त्ति में ही आना सिद्ध नहीं होता। किन्तु मूर्त्ति ही क्या सभी रूपवान् पदार्थों में इन्द्र देवता जिस का नाम चमक है विराजमान है। परन्तु ध्यान रहे कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने वेदभाष्यभूमिका में इन्द्रादि ३३ देवता अवश्य माने हैं परन्तु वे परमात्मा के तुल्य वा कुछ न्यून भी उपास्य देव नहीं हो सकते, क्योंकि जड़ हैं ।।

द० ति० भा० पृ० ९८ पं० १४ से—पुनः केन उपनिषद् में देवताओं का परस्पर संवाद है—ब्रह्मह देवेभ्योविजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त

तऐक्षन्ताऽस्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायंमहिमेति ॥ केन उ०

ईश्वर ने देवताओं को जय दी उसको कटाक्ष कृपा से सब देवता महिमा को प्राप्त होते हुए और फिर यह जाना कि यह सब जगत् हमारा ही जय किया है और हमारी ही महिमा है तब ईश्वर यक्ष रूप अवतार ले प्रगट हुए और वे देवता परस्पर उनका वृत्तान्त पूछने लगे (तेग्निमब्रुवन्) इ-त्यादि वाक्य हैं कि उन्हों ने अग्नि वायु आदि से पूछा तुम इन को जानते हो ? उन्हों ने कहा नहीं इसी प्रकार देवता अनेक विधि से सूचित होते हैं और देवताओं का लोक पृथक् प्रतीत होता है जैसे इन्द्र का स्वर्ग से आना लिखा है ॥

यत्रब्रह्मचक्षत्रञ्च सम्यञ्चौचरतः सह ।

तल्लोकम्पुण्यम्प्रज्ञेषं यत्रदेवाः सहाग्निना ॥ यजु० अ० २० मं० २५

जहां ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति संग मिले रहते हैं और जहां देवता अग्निके साथ वास करते हैं उस पवित्रलोक को मैं देखूं यजमान का वाक्य है

यत्रेन्द्रश्चवायुश्च सम्यञ्चौचरतः सह।तंल्लोकम्पुण्यम्प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न्नविद्यते य० अ० २० मं० २६" जिस लोक में इन्द्र वायु देवता मिले हुए विचरते हैं जिस लोक में दुःख नहीं है उस लोक को मैं प्राप्त करूं ॥

प्रत्युत्तर—इस में देवतों का संवाद नहीं है, प्रत्युत यह दिखाया गया है कि कभी २ अज्ञानवश ऐसा प्रतीत होने लगता है कि अग्नि वायु सूर्यादि देवतों की ही महिमा दृष्टि पड़ती है ब्रह्म तो विषय में ही नहीं आता, बस देवतों का ही जय है । परन्तु इन देवतों का भी सामर्थ्य परमात्मा के अधिकार में है, उस के विना ये कुछ नहीं कर सके । और आप तो स्वयं "अग्निर्देवता" इत्यादिलिख चुके है फिर भला वायु अग्नि आदि देवता बात चीत संवाद कैसे कर सके हैं ?

(यत्र ब्रह्म०) इस मन्त्र का अर्थ आप का किया ही ठीक है कि जिस लोक अर्थात् देश में ब्राह्मण और क्षत्रिय परस्पर विरोध नहीं करते मिले रहते हैं उन पवित्रलोक को मैं देखूं । इस से तो यही ब्राह्मण क्षत्रियों का लोक सिद्ध होता है, न कि अन्य कोई ॥ क्योंकि यहां अग्नि सहित देवता भी वास करते हैं और ब्राह्मण क्षत्रिय भी रहते हैं, यजमान की प्रार्थना यह है

कि अग्निहोत्रादि देश में होते रहैं और विद्यावल तथा बाहुबल में मेल रहे। निरुक्त में स्पष्ट लिखा है कि-

अग्निः पृथिवीस्थानः। निरु० ७। ५॥

अग्नि देवता का स्थान पृथिवी है। फिर आप पृथिवी को देवलोक क्यों नहीं मानते? जब कि आप भी अग्निको देवता लिख चुके हैं। हां सूर्य्यादि अन्य देवों के अन्य लोक भी हैं, परन्तु पृथिवी भी देवलोक है, और पृथिवी स्वयं देवता है जैसा कि ८ वसुओं में पृथिवी को २ दूसरा वसु शतपथ १४। १६। ४ में लिखा है कि-

कतमेवसव इति। अग्निश्च पृथिवी च० ॥

(यत्रेन्द्रश्चवायुश्च) का भी यही तात्पर्य है कि यजमान चाहता है कि यज्ञ से मुझे ऐसा फल मिले कि इन्द्र बिजुली वा सूर्य वायु का जहां भला प्रभाव हो, वहां मुझे वास मिले। जहां मेघ, सूर्य, वायु, आदि की अनुकूलता से दुःख न हो, सुख हो। (अत्र, और यत्र) दोनों प्रयोग इस लोक के लिये आते हैं। जैसे-

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः ॥

क्या यहां भी (यत्र) पद का अर्थ अन्य लोक करोगे?

द० ति० भा० पृ० ९९ पं० ९ से २४ तक १-देवादि की पूजा प्रातः समय करे। २-देवतों वा ब्राह्मणों का दर्शन करे। ३-देवता काम सिद्ध करते हैं। ४-ऋषि सूक्ष्मदर्शी को कहते हैं। ५-देवता स्वर्ग में रहते हैं॥ ये ५ बातें कही हैं॥

प्रत्युत्तर-ठीक है भोजनादि से पूर्व ही पूज्यों की पूजा करे। २-देवता सूर्य्यादि वा विद्वान् लोगों और ब्राह्मण ब्रह्मवेत्ताओं का दर्शन करे। देव दर्शन का तात्पर्य यज्ञशाला में जाना, यज्ञ करना भी है, क्योंकि आप भी लिख चुके है कि "होमो दैवो बलिर्भौतः" होम करना देवयज्ञ है। ३-सूर्य जल वायु आदि देवता ज्ञानी लोगों के काम प्रत्यक्ष रेल तार विमान चक्की आदि में कर रहे हैं॥

४-ऋषि ठीक सूक्ष्मदर्शी को कहते हैं। ५-स्वर्ग सुख वा द्युलोक का नाम है। सो विद्वान् पुरुष सुख में रहते और सूर्य्यादि भौतिक देव द्युलोक अर्थात् स्वर्ग लोक में रहते हैं। इस से हमारी सिद्धान्तहानि नहीं॥

द० ति० भा० पृ० ९९ पं० २५ से—

स्वामीजीने जो सत्यार्थप्रकाश पृ० ९९ पंक्ति २८ में विद्वांसोहिदेवाः यह लिखा है कि विद्वानों का नाम देवता है (यहां यहभी रहस्य लिखा है) जो साङ्गोपाङ्ग चारों वेदोंको जाननेवाले हो उन का नाम ब्रह्मा और उनसे न्यून हों उनकाभी नाम देव विद्वान है ऐसा लिखा है यह लेख बुद्धिमान् विचारेंगे कितना निर्मूल है देवता शब्द और वे किस प्रकार के होके रहते हैं यह सब कुछ हम पूर्व कथन कर चुके हैं पर यह लक्षण देवता का नहीं देखा कि चारों वेदों को उपाङ्ग सहित जाननेसे ब्रह्मा होता है यह तो कहिये कि आप वेदोंके उपाङ्गऋषिकृत और वेदके पश्चात् बने बताते हो जिस समयतक कि वेदाङ्ग नहीं बनेथे संहितामात्र वेद था तो उस समय ब्रह्मा संज्ञाही न होनी चाहियेथी फिर अथर्ववेद में लिखाहै (भूतानांप्रथमो ब्रह्मा ह जज्ञे) सृष्टि में सब से पहले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए बिना उपांग इन्हें ब्रह्मा किसने बनादिया जो आपकाही नियम होता तो वेदाङ्ग बनाने वालों का नाम महाब्रह्मा होता, क्योंकि पढ़ने वालों से ग्रन्थकर्त्ता बड़े होते हैं और जो सांग वेद जाननेसे ही ब्रह्मा कहावे तो रावणको ब्रह्मा वा देवता क्यों नहीं कहते मालूम तो ऐसा होता है आप ने यह ढंग अपने को ब्रह्मा और देवता कहलाने का निकाला था परन्तु सिद्ध न हुवा कोई भी ऐसा भक्त चेला न हुआ जो आप को ब्रह्मा नाम से पुकारता यदि वेदांग जानने से ब्रह्मा होते तो वसिष्ठ, गौतम, नारदादि सब ही ब्रह्मा हो जाते परन्तु आज तक एक ही ब्रह्मा सुने हैं। ऋषि अध्ययन से देवता हवन से पितर श्राद्ध और हवन से प्रसन्न होते हैं यह तीनों पृथक हैं। देवता आहुति से तृप्त होते हैं विद्वान भोजन से। देवताओं के आकार और मूर्त्ति तथा निवासस्थान वर्णन ११ वें समुल्लास में सिद्ध करेंगे यहां तो केवल उन का होना ही सिद्ध किया है ॥

प्रत्युत्तर—तो क्या आप (विद्वांसोहि देवाः) इस शतपथ को नहीं मानते? ब्रह्मा वही पुरुष हो सकता है जो चारों वेद जानता हो। क्योंकि यज्ञ में जब किसी विद्वान् का ब्रह्मा वरण किया जाता है तो उसे चारों वेदों के जानने की आवश्यकता पड़ती है। जैसा कि आपस्तम्बीयश्रौतसूत्र में लिखा है:—

ऋग्वेदेन होता करोति ॥१९॥ सामवेदेनोद्गाता ॥ २० ॥
यजुर्वेदेनाऽध्वर्युः ॥२१॥ सर्वैर्ब्रह्मा ॥२२॥

अर्थात् ऋग्वेद से होता काम करे, सामवेद से उद्गाता, यजुर्वेद से अध्वर्यु और सब (चारों) वेदों से ब्रह्मा ॥ इसलिये स्वामी जी का लिखना ठीक है ॥

ऋषियों ने वेदों में मूलमात्र सब विषयों का पाया उनी को अङ्ग उपाङ्गों में विस्तार पूर्वक लिखा । ब्रह्मा और उस का यज्ञ में काम नीचे लिखे ऋग्वेद के मन्त्र में वर्णित है और निरुक्तकार ने भी इस ऋचा को होता अध्वर्यु उद्गाता ब्रह्मा इन चारों ऋत्विजों के कामों के विनियोग में माना है और कहा है कि:—

इत्यृत्विक्कर्मणां विनियोगमाचष्टे। इत्यादि । निरु० १ । ८॥

फिर निरुक्तकारने ही यह नीचे लिखा मन्त्र दिया है जो अर्थ सहित हम नीचे लिखते हैं:—

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां, यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः ॥
ऋ० १० । ७१ । ११

अन्वित व्याख्यानम्—[त्व शब्दः सर्वनामसु पठित एक शब्द पर्य्यायः] एको होता (पुपुष्वान् ऋचां पोषमास्ते) स्वकर्माधिकृतस्सन् यत्र तत्र पठिता ऋचो यथाविनियोगविन्यासेन पोषयति सार्थकाः करोति (त्वः शक्वरीषु गायत्रं गायति) एक उद्गाता शक्वर्य्युपलक्षितासुच्छन्दोविशेषयुक्तास्वृक्षु गायत्रं गायत्रादिनामकं साम गायति (त्वो ब्रह्मा जातविद्यां वदति) एको ब्रह्मा, अपराधे जाते तत्प्रतीकाररूपां विद्यां वदति (त्वो यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ) एकोऽध्वर्युर्यज्ञस्य मात्रामियत्तां विमिमीते विशिष्टतया परिच्छिनत्ति ॥

अर्थात् एक होता ऋचाओं को विनियोगानुसार सङ्कटित करता है, एक उद्गाता शक्वर्य्यादिछन्दोयुक्त गायत्र गान करता है, एक ब्रह्मा यज्ञ में कुछ अपराध वा भूल चूक होने पर उस का प्रतीकार करता है और एक अध्वर्यु यज्ञ के परिमाण वा इयत्ता को निर्धारित करता है ॥

ऊपर लिखे ४ ऋत्विज् ४ वेदों के ज्ञाता यज्ञ को पूर्ण करते हैं। इन में से " १-होता " है जिस का यह काम है कि मन्त्रसंहिता में यथास्थान पठित मन्त्रों को उस यज्ञ विशेष में विनियोग के अनुसार ठीक ठाक करे। जैसे पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी में स्वाभिमत प्रकरणानुकूल सूत्र पढ़े हैं उन से वैयाकरण लोग जब कोई प्रयोग सिद्ध करते हैं तब विद्यार्थी को सिखलाते समय सलेट आदि पर विग्रह (असिद्ध रूप) लिख कर फिर जिन २ सूत्रों की उस प्रयोग के सिद्ध करने में आवश्यकता होती है उन २ सूत्रों का उच्चारण करते हुए उन २ सूत्रों के अर्थानुसार कार्य्य करके प्रयोग सिद्ध करते हैं, इसी प्रकार किसी यज्ञविशेष को सिद्ध करने के लिये होता नामक ऋत्विज् चाहिये जो यज्ञ को ठीक २ सिद्ध करे। २-" उद्गाता " है जो शक्वरी आदि वेद के छन्दोयुक्त सामादि का गान जहां २ अपेक्षित है वहां २ ठीक २ करे। ३-" अध्वर्यु " है जो यज्ञ की मात्रा (जैसे ओषधि की मात्रा ठीक हो तो आरोग्य करती है) का परिमाण निर्धारित करे। ४-" ब्रह्मा " है जो पहिले ३ ऋत्विजों के कार्य्यों में कृताकृतावेक्षण कर्म करे अर्थात् यज्ञ में कोई करणीय कर्म छूट न जावे तथा अकरणीय किया न जावे। यह दृष्टि रक्खे। और जब कभी कुछ अन्यथा कर्म हो जावे तब उस का प्रतीकार वा प्रायश्चित्त करे करावे। ब्रह्मा के कार्य्य को ऊपर लिखे वेदमन्त्र में देख कर ऋषियों ने अपने २ ग्रन्थों में और विशेष स्पष्टता से निरूपण किया है। यथाहि छन्दोगा आमनन्ति-

यज्ञस्य हैष भिषक् यद् ब्रह्मा यज्ञायैव तद्भेषजं कृत्वा हरति ॥

अर्थात् यज्ञ का यह वैद्य है जो कि ब्रह्मा है वह यज्ञ के लिये ही औषध बना के पहुंचाता है ॥ तथा-

यज्ञस्य विरिष्टं सन्दधाति भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवंविद् ब्रह्मा भवति॥ कौथुमशाखीय छान्दोग्य प्र० ४ खं० १७

अर्थात् ब्रह्मा यज्ञ को निर्दोष सन्धान करता है क्योंकि यज्ञ औषधकृत है जिस में ऐसा विद्वान् ब्रह्मा होता है ॥

यद्यृक्तो रिष्येत् भूः स्वाहेति गार्हपत्ये जुहुयात् ॥

कौषु० श्रौ० का० म० ४ सं० १७

जब किसी ऋचा का अपराध होने से दोष उत्पन्न हो तो ब्रह्मा "ओंभूः स्वाहा" इस मन्त्र से गार्हपत्य अग्नि में आहुति देकर उस का प्रतीकार वा प्रायश्चित्त करे।

आज कल वैदिककर्मकाण्ड के अश्रद्धालु पुरुष शङ्का करेंगे कि किसी ऋचा के पाठमात्र में कोई भूल चूक होजाना कितनी बड़ी बात है जिस के लिये ब्रह्मा को प्रायश्चित्त की आवश्यकता पड़े ? ॥

विचार करके देखा जावे तो किसी वेदमन्त्र के पाठ में भेद पड़ना बड़ा भारी अपराध है। क्या वे अश्रद्धालु पुरुष नहीं जानते हैं कि सम्प्रति राजकीय निर्धारित नीति (कानून) वा किसी उच्चाधिकारी (गवर्नरादि) वा राजा के व्याख्यान (स्पीच) का अनुवाद करते हुवे प्रयोजनीय विषय में भूल वा ज्ञान से कोई अन्यथा बोले, लिखे, समझे, समझावे, और तदनुसार भूल का काम करे, वा करावे, तो अवश्य अपराधी है।

अब यह सिद्ध हो चुका कि वेदानुसार ही श्रौतसूत्रादि में ब्रह्मा और उन के काम नियत किये गये है ॥

अथर्ववेद के (भूतानां ब्रह्मा०) वाक्य में ब्रह्मा पुरुष विशेष नहीं किन्तु परमात्मा का पर्याय है। जब कि परमात्मा जगत् रचता है तो प्रकृति को विकृत कर के भूतों को उत्पन्न करने से स्वयं भी प्रकट सा होता है। तब उस की ब्रह्मा संज्ञा होती है। रावण वेदविरुद्धाचार से राक्षस होगया। जो वेद पढ़कर तदनुकूलाचरण न करे वह पढ़ा वे पढ़े से भी नीच है। वसिष्ठ गौतम आदि भी किसी के यज्ञ में ब्रह्मा हुए होंगे। ११ वें समुल्लास में जहां आप देवतों की मूर्त्ति सिद्ध करेंगे तभी उत्तर भी वहीं दिया जायगा ॥

—○:※:○—

अथ श्राद्धप्रकरणम् ॥

स्मरण रहे कि स्वामी जी वा आर्यसमाज से जो कुछ श्राद्ध विषय में विवाद है वह यह है कि ब्राह्मणादि के भोजन कराने से मृत पितरों की तृप्ति हो सकी है वा नहीं। स्वामी जी का पक्ष है कि नहीं हो सक्ती और अन्य पौराणिक भाइयों का पक्ष है कि पहुंचता है। इसलिये जब तक कोई

मन्त्र मृत पितरों के श्राद्धभोजी लोग ऐसा न दिखलावें जिस में उन को भोजन कराना मृत पितरों की तृप्ति का हेतु वर्णन किया गया हो, तब तक इस विवाद में पौराणिक पक्ष सिद्ध नहीं हो सका। स्वामी जी और हम लोग जीवों का वास समस्त लोकों में जहां चेतन सृष्टि हो मानते हैं। यदि कोई प्राणी मर कर चन्द्र सूर्यादि लोकान्तर में कर्मानुसार जा कर जन्म लेते हैं तो इस से मृतकश्राद्ध सिद्ध नहीं होता। किन्तु हमारे भोजन कराये श्राद्धवस्तुओं से उन की तृप्ति होना जब तक सिद्ध न हो, तब तक इस विवाद का कुछ फल नहीं॥

पितृ शब्द निघण्टु ४। १ में पिता पद आया है। पितरः यह बहुवचनान्त पद तो निघण्टु में साक्षात् नहीं है। पिता का बहुवचन ही पितरः है। निरुक्त ४। २१ में पिता पद के व्याख्यान में नीचे लिखा मन्त्र ऋग्वेद १। १६४। ३३ का प्रमाण दिया है कि—

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र। इत्यादि॥

फिर निरुक्तकार इस के अर्थ करते हुवे पिता पद का अर्थ इस प्रकार करते हैं कि—

पिता पाता वा पालयिता वा॥

अर्थात् पिता पालने वा रक्षा करने से कहा जाता है। (द्यौर्मे पिता) मन्त्र में पिता शब्द सूर्य का वाचक है। ऐसा ही स्वामी जी ऋग्वेदभाष्य में लिखते हैं और ऐसा ही निरुक्तकार मानते हैं। तात्पर्य यह है कि रक्षा वा पालने वाले जनकादि मनुष्यवर्ग, राजा, सूर्य, चन्द्रकिरणें, वायुभेद, जिनका राजा यम कहाता है, इत्यादि रक्षकों और पालन करने वालों का नाम पितर है वेदों में बहुत स्थानों में यम पितरों का राजा लिखा है। जैसे मनुष्यों का राजा मनुष्य, मृगों का राजा मृगराज सिंह, ओषधियों का राजा सोम नामक ओषधि, ऋतुओं का राजा ऋतुराज वसन्त है, इसी प्रकार वायुभेद जो हमारे रक्षक और पालक हैं उन का राजा यम भी वायु ही है। आप ने भी पृ० १०१ पं० १२ में लिखा है कि—

माध्यमिको यम इत्याहुर्नैरुक्ताः तस्मात्पितॄन्माध्यमिकान्मन्यन्ते स हि तेषां राजेति॥

अर्थात् यम मध्यस्थान देवता है यह नैरुक्तों का मत है इस लिये पितृयों को भी मध्यस्थान देवता मान्ते हैं क्यों कि वह (यम) उन पितरों का राजा है। फिर निरुक्त ७। ५,

वायुर्वेन्द्रोवान्तरिक्षस्थानः ॥

वायु अन्तरिक्षस्थान अर्थात् मध्यस्थान देवता है। ऐसा ही आशय ऋग्वेद १०। १४। १३ में—

यमं ह यज्ञोगच्छत्यग्निदूतः।

अग्नि जिस का दूत लेजाने वाला है वह यज्ञ वायु को प्राप्त होता है यहां यम का अर्थ वायु है। और यजुः ८। ५७

यमः सूयमानो विष्णुः संभ्रियमाणो वायुः पूयमानः ॥

यहां भी यम नाम वायु का है ॥

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम्। ऋ० ८।२४।२२

यहां भी यम नाम वायु का है क्योंकि इस मन्त्र का देवता इन्द्र है और इन्द्र ऊपर लिखे निरुक्त ७। ५

वायुर्वा इन्द्रो वा अन्तरिक्षस्थानः।

के अनुसार वायु का भी नाम है ॥

बस जितने वेदमन्त्र द० ति० भा० में दिये हैं उन में प्रायः, अग्नि, हव्य, हवन आदि का संकेत है इस लिये वे वायुगत भेदभिन्न ऊपर लिखे पदार्थों की तृप्ति अर्थात् अनुकूलता के लिये होम करने के तात्पर्य्य में हैं ॥

इस के अतिरिक्त यह भी वेद की शिक्षा है कि प्रत्येक लिङ्गशरीरी जीवात्मा स्थूल शरीर छोड़ कर आकाश में १२ दिन तक १२ आकाशी पदार्थों से आप्यायित (डिवेलप) होता है तब इसे किसी लोक में कर्मानुसार जन्म मिलता है। हां, जिन का लिङ्ग शरीर भी छूट जाता है उन मुक्त पुरुषों को यह अवस्था नहीं है ॥

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीय आदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चम ऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे मित्रो नवमे वरुणो दशम इन्द्र एकादशे विश्वेदेवा द्वादशे ॥ यजुः ३९। ६ ॥

हे मनुष्यो! इस जीव को (प्रथमे) पहले (अहन्) दिन (सविता) सूर्य (द्वितीये) दूसरे दिन (अग्निः) अग्नि, तीसरे वायु, चौथे महिना, पांचवें चन्द्रमा, छटे वसन्तादि ऋतु, सातवें मरुत्, आठवें सूत्रात्मा, नवें प्राण, दशवें उदान, ग्यारहवें बिजुली, और बारहवें दिन, सब दिव्य गुण प्राप्त होते हैं ३९।६

अब इस से यह भी जाना जाता है कि सूर्य्य, अग्नि, वायु, चन्द्र, प्राण, उदान, बिजुली, और आकाशगत अन्य सब दिव्य पदार्थों का (जो देवता कहाते हैं) हवन करने से सुधार होता है इसी को तृप्ति और अनुकूलता भी कह सक्ते हैं और इन देवतों से आप्यायित होने वाले लिङ्गशरीरी जीवात्माओं का भी आप्यायित होना सम्भव है। इस से अग्नि में होम द्वारा पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीनों स्थानों की शुद्धि, वृद्धि, और तृप्ति, होने से आकाशगत लिङ्गशरीरी आत्माओं का भी उपकार सम्भव है। परन्तु वे किसी प्रकार परमात्मा की व्यवस्थानुकूल १२ दिन में भिन्न भिन्न नियत पदार्थों को छोड़ अन्यत्र कहीं नहीं जासक्ते और इस के अनन्तर स्थूल शरीर पाय जन्म लेकर भी एक लोक से दूसरे लोक में नहीं जा आ सक्ते। इस लिये वर्त्तमान प्रचलित श्राद्धदानादि कार्य्यों के पदार्थों की प्राप्ति ब्राह्मणों द्वारा पितरों को सर्वथा नहीं हो सक्ती। हां, अग्निहोत्र तीनों लोक का उपकारक है॥

इस व्यवस्था से सोचा जावे तो जो २ प्रमाण पं० ज्वालाप्रसाद जी ने वेद के दिये हैं, वे इस अग्नि द्वारा आकाशगत आत्माओं के आप्यायन से आगे अंशमात्र भी नहीं बढ़ते। और ब्राह्मणों के भोजनादि कराने से मृत पितरों की तृप्ति सिद्ध करना मन के लड्डू ही रह जाते हैं। क्योंकि उन के दिये किसी वेदमन्त्र में उन्हीं के किये अर्थानुसार भी ब्रह्मभोज पितृतृप्ति का कारण नहीं बताया गया है॥

और इन्हीं आकाशगत पदार्थों का तात्पर्य संस्कारविधिस्थ अन्त्येष्टि प्रकरणगत समस्त मन्त्रों में भी लग जायगा॥

द० ति० भा० पृ० १०२ में मन्त्र ३ यजुर्वेद अध्याय १९ मन्त्र ४५। ४६। ४७ दिये हैं जिन का अक्षरार्थ यह है—

ये समा॒नाः सम॑नसः पि॒तरो॑ यमरा॒ज्ये तेषाँ॑ल्लो॒कः स्व॒धा नमो॑ य॒ज्ञो दे॒वेषु॑ कल्पताम् अ० ॥ १९ मं० ४५

(ये) जो (समानाः) सदृश (समनसः) तुल्य विज्ञानयुक्त (पितरः) प्रजा

के रक्षक लोग (यमराज्ये) न्यायकारी राजा के राज्य में हैं (तेषाम्) उन का (लोकः) स्थान (स्वधा) अन्न (नमः) सत्कार और (यज्ञः) प्राप्त होने योग्य न्याय (देवेषु) विद्वानों में (कल्पताम्) समर्थ हो ॥ ४५ ॥

ये स॑मा॒नाः सम॑नसो जी॒वा जी॒वेषु॑ माम॒काः ।
तेषा॑ᳫं श्रीर्मयि॑ कल्पताम॒स्मिँल्लो॒के श॒तᳫं समाः॑ ॥४६॥

(ये) जो (अस्मिन्) इस (लोके) लोक में (जीवेषु) जीवते हुवों में (समानाः) समान गुण कर्म स्वभाव वाले (समनसः) समान धर्म में मन रखने वाले (मामकाः) मेरे (जीवाः) जीते पितर हैं (तेषाम्) उन की (श्रीः) लक्ष्मी (मयि) मेरे समीप (शतम्) सौ (समाः) वर्ष तक (कल्पताम्) समर्थ होवे ॥४६॥

द्वे सृ॒ती अ॑शृणवम्पितॄ॒णाम॒हन्दे॒वाना॑मु॒त मर्त्या॑नाम् ।
ताभ्या॑मि॒दं विश्व॒मेज॒त्समे॑ति॒ यद॑न्त॒रा पि॒तर॑म्मा॒तर॑ञ्च ॥४७॥

हे मनुष्यो ! (अहम्) मैं (पितॄणाम्) पिता आदि (मर्त्यानाम्) मनुष्यों (च) और (देवानाम्) विद्वानों के (द्वे) दो (सृती) मार्गों को (अशृणवम्) सुनता हूं (ताभ्याम्) उन दोनों मार्गों से (इदम्) यह (विश्वम्) जगत् (एजत्) चेष्टित हुवा (समेति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है (उत) और (यत्) जो (पितरम्) पिता और (मातरम्) माता को (अन्तरा) छोड़ कर अन्य माता पिता को प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥

द० ति० भा० पृ० १०२ प० २४ में लिखे ऋग्वेदमन्त्र का अर्थ—

उदी॑रता॒मव॑र॒ उत्परा॑स॒ उन्म॑ध्य॒माः पि॒तरः॑ सो॒म्यासः॑ ।
असुं॒ य ई॒युर॑वृ॒का ऋ॑त॒ज्ञास्ते नो॑ऽवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु ॥

ऋ० १० । १५ । १

बहुत मन्त्रों का अर्थ करना है इसलिये संस्कृत और भाषा दोनों में लिखने से ग्रन्थ बहुत बढ़ेगा इस कारण संक्षिप्त पदार्थमात्र ही लिखेंगे ।

(ये) जो (पितरः) पिता आदि रक्षक जन (परासः) बड़े (अवरे) छोटे (मध्यमाः) मध्यावस्था वाले हैं (ते) वे (पितरः) पालक रक्षक लोग (नः) हम को (उत् ईरताम्) उन्नत करें । (सोम्यासः) वे सौम्य लोग (असुम्) जीवन को (उत् ईयुः) उच्च [अधिक] प्राप्त हों । (अवृकाः) जो किसी से शत्रुता नहीं करते और (ऋतज्ञाः) सत्यज्ञानी हैं वे (हवेषु) जब २ हम पुकारें तब २

(उत् अवन्तु) उच्चभाव से रक्षा करें ॥ इस में मृतश्राद्धका वर्णन भी नहीं ॥

द० ति० भा० पृ० १०३ पं० १४ और २५ में लिखा है कि (वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य) ॥ ऋ० १० । १४ । १

यम को पितृराज होने में यह मन्त्र प्रमाण है ॥

प्रत्युत्तर—हां, यम वायुओं का राजा है, उसे हविष् से सेवन कर । इस से हवन सिद्ध होता है । मृतश्राद्ध नहीं ॥

द० ति० भा० पृ० १०३ से १०५ में यजुर्वेद अध्याय १९ के ७ मन्त्र हैं उन का अर्थ ठीक यह है—

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवीष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥
यजु० अ० १९ मं० ५१

(ये) जो (नः) हमारे (सोम्यासः) शान्त्यादि गुणों के योग से योग्य (वसिष्ठाः) अत्यन्तधनी (पूर्वे) पूर्वज (पितरः) पालन करने हारे ज्ञानी पिता आदि (सोमपीथम्) सोमपान को (अनूहिरे) प्राप्त होते और कराते हैं (तेभिः) उन (उशद्भिः) हमारे पालन की कामना करनेहारे पितरों के साथ (हवींषि) लेने देने योग्य पदार्थों की (उशन्) कामना करनेहारा (संरराणः) अच्छे प्रकार सुखों का दाता (यमः) न्याय और योगयुक्त संतान (प्रतिकामम्) प्रत्येक काम को (अत्तु) भोगे ॥

भावार्थ—पिताआदि पुत्रों के साथ और पुत्र पिताआदि के साथ सब सुख दुःखों के भोग करें और सदा सुख की वृद्धि और दुःख का नाश किया करें ॥५१॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्म्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीँरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्म्मघवा भवा नः ५२

हे (पवमान) पवित्र स्वरूप पवित्र कर्म कर्त्ता और पवित्र करनेहारे (सोम) ऐश्वर्य्ययुक्त सन्तान । (त्वया) तेरे साथ (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्वज (धीराः) बुद्धिमान् (पितरः) पिताआदि ज्ञानी लोग जिन धर्मयुक्त (कर्माणि) कर्मों को (चक्रु) करने वाले हुए (हि) उन्हीं का सेवन हम लोग भी करें (अवातः) हिंसाकर्मरहित (वन्वन्) धर्म का सेवन करते हुए सन्तान! तू (वीरेभिः) वीर पुरुष और (अश्वैः) घोड़े आदि के साथ (नः) हमारे शत्रुओं

की (परिधीन्) परिधि अर्थात् जिन में चारों ओर से पदार्थों का धारण किया जाय उन मार्गों को (अपोर्णु हि) आच्छादन कर और हमारे मध्य में (मघवा) धनवान् (भव) हूजिये ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग अपने धार्मिक पिताआदि का अनुकरण कर और शत्रुओं को निवारण करके अपनी सेना के अङ्गों की प्रशंसा से युक्त हुए सुखी होवें ॥ ५३॥

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
तऽआगताऽवसा शन्तमेनाथानः शंयोररपोदधात ॥५५॥

हे (बर्हिषदः) उत्तम सभा में बैठनेहारे (पितरः) न्याय से पालना करने वाले पितर लोगो ! हम (अर्वाक्) पश्चात् जिन (वः) तुम्हारे लिये (ऊती) रक्षणादि क्रिया से (इमा) इन (हव्या) भोजन के योग्य पदार्थों का (चकृम) सत्कार करते हैं उन का आप लोग (जुषध्वम्) सेवन करें और (शन्तमेन) अत्यन्त कल्याणकारक (अवसा) रक्षणादि कर्म के साथ आ, गत) आवें (अथ) इस के अनन्तर (नः) हमारे लिये (शयोः) सुख राखें (अरपः) सत्याचरण को (दधात) धारण करें और दुःख को सदा हम से पृथक् रक्खें ॥ ५५ ॥

आयन्तु नः पितरस्सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५८॥

जो (सोम्यासः) चन्द्रमा के तुल्य शान्त शमनादि गुणयुक्त (अग्निष्वात्ताः) अग्न्यादि पदार्थविद्या में निपुण (नः) हमारे (पितरः) अन्न और विद्या के दान से रक्षक, जनक, अध्यापक और उपदेशक लोग हैं (ते) वे (देवयानैः) आप्त लोगों के जाने आने योग्य (पथिभिः) धर्मयुक्त मार्गों से (आ, यन्तु) आवें (अस्मिन्) इस (यज्ञे) पढ़ाने उपदेश करने रूप व्यवहार में वर्त्तमान हो के (स्वधया) अन्नादि से (मदन्त) आनन्द को प्राप्त हुए (अस्मान्) हम को (अधि, ब्रुवन्तु) अधिष्ठाता होकर उपदेश करें और पढावें और हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥५८॥

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशन्तन्वङ्कल्पयाति ॥६०॥

(ये) जो (अग्निष्वात्ताः) अच्छे प्रकार अग्निविद्या के ग्रहण करने तथा (ये) जो (अनग्निष्वात्ताः) अग्नि से भिन्न अन्य पदार्थविद्या के जानने हारे वा ज्ञानी पितृ लोग (दिवः) विज्ञानादि प्रकाश के (मध्ये) बीच (स्वधया) अपने पदार्थ के धारण करने रूप क्रिया वा सुन्दर भोजन से (मादयन्ते) आनंद को प्राप्त होते हैं (तेभ्यः) उन पितरों के लिये (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान परमात्मा (एताम्) इस (असुनीतिम्) प्राणों को प्राप्त होने वाले (तन्वम्) शरीर को (यथावशम्) कामना के अनुकूल (कल्पयाति) समर्थन करे ॥ ६० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर से ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हे परमेश्वर! जो अग्नि आदि पदार्थविद्या को यथार्थ जान के प्रवृत्त करते और जो ज्ञान में तत्पर विद्वान् अपने ही पदार्थ के भोग से सन्तुष्ट रहते हैं उन के शरीरों को दीर्घायु कीजिये ॥ ६० ॥

और यदि अग्नि में डाले गये अर्थ को भी आप के कथनानुसार मान लें तो भी यह अर्थ होगा कि—"जो अग्नि में डाले गये और जो न डाले गये और आकाश के मध्य वर्त्तमान हैं, उन्हें स्वराट् परमात्मा शरीर देता है और वे अपने अन्नादि से (जहां जन्म होता है) आनन्दित होते हैं ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केनचिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥६२॥

हे (विश्वे) सब (पितरः) पितृ लोगो ! तुम (केनचित्) किसी हेतु से (नः) हमारी जो (पुरुषता) पुरुषार्थता है उस को (मा हिंसिष्ट) मत नष्ट करो जिस से हम लोग सुख को (कराम) प्राप्त करें (यत्) जो (वः) तुम्हारा (आगः) अपराध हमने किया है उस को हम छोड़ें तुम लोग (इमम्) इस (यज्ञम्) सत्कार रूप व्यवहार को (अभि, गृणीत) हमारे सम्मुख प्रशंसित करो हम (जानु) जानु अवयव को (आच्य) नीचे टेक के (दक्षिणतः) तुम्हारे दक्षिण पार्श्व में (निषद्य) बैठ के तुम्हारा निरन्तर सत्कार करें ॥ ६२ ॥

जिन के पितृ लोग जब समीप आवें अथवा सन्तान लोग इन के समीप जावें तब भूमि में घुटने टिका नमस्कार कर इन को प्रसन्न करें, पितर लोग भी आशीर्वाद विद्या और अच्छी शिक्षा के उपदेश से अपनी सन्ता-

नों को प्रसन्न कर के सदा रक्षा किया करें ॥ ६२ ॥

आसीनासोअरुणीनामुपस्थे रयिन्धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत तइहोर्जन्दधात ॥६३॥

हे (पितरः) पितृ लोगो ! तुम (इह) इस गृहाश्रम में (अरुणीनाम्) गौरवर्णयुक्त स्त्रियों के (उपस्थे) समीप में (आसीनासः) बैठे हुवे (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिये और (दाशुषे) दाता (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (रयिम्) धन को (धत्त) धरो (तस्य) उस (वस्वः) धन के भागों को (प्र, यच्छत) दिया करो जिस से (ते) वे स्त्री आदि सब लोग (ऊर्जम्) पराक्रम को (दधात) धारण करें ॥ ६३ ॥ ऐसे ही मन्त्र दायभाग का मूल हैं ।

वे ही वृद्ध हैं जो अपनी ही स्त्री के साथ प्रसन्न अपनी पत्नियों का सत्कार करने हारे सन्तानों के लिये यथायोग्य दायभाग और सत्पात्रों को सदा दान देते हैं और वे सन्तानों को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥६३॥

द० ति० भा० पृ० १०५ पं० ११

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेणशतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै।अ०१९ मं०३७

सोम के योग्य पितर पूर्णायु के दाता पवित्रता से मुझको शुद्ध करो पितामह मुझको पवित्र करो प्रपितामह पवित्र करो पितामह पूर्णायु के दाता पवित्रता से मुझ को शुद्ध करो प्रपितामह शुद्ध करो पूर्ण आयु को प्राप्त करूं ॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारम्पुष्करस्रजम् । यथेह पुरुषोऽसत् ॥
यजु० अ० २ मं० ३३

प्रत्युत्तर—पूर्वमन्त्र में तो पिता पितामह प्रपितामह से प्रार्थना है कि हमें पवित्रता का उपदेश और आचरण करावें। दूसरे का यह अर्थ है बड़ों को चाहिये कि (यथा) जिस प्रकार (इह) इस कुल में (पुरुषः) पुरुष (असत्) होवे उस प्रकार (पितरः) पिता लोग (गर्भम्) गर्भ का (आधत्त) आधान करें और (पुष्करस्रजम्) सुन्दर (कुमारम्) पुत्र को उत्पन्न करें ॥

इस में भी मृत पितरों के श्राद्धादि का कुछ भी वर्णन नहीं पाया जाता।

सूचना

भारतोद्धारक का वर्ष जनवरी सन् १८९९ ई० से गिना जायगा। अर्थात् यह तीसरा अङ्क मार्च का समझा जायगा। अभी तक हमारे ग्राहकों का मूल्य नहीं आया कृपा कर के शीघ्र भेज देवें॥

मूल्य प्राप्ति स्वीकार जनवरी से फ़र्वरी तक

सन् ९९

६ लाला घनश्यामदास गुप्त कलकत्ता १)
१२ बा० जयमङ्गल वर्मा जनक पट्टी २)
२३ मी० हीरालाल एम० वैश्य भरूच २)
४३ बा० गणेशीलाल मुख्त्यार बाढ़ २)
५६ मुं० अवधविहारीलाल दीवान रियासत पमरवां २)
१९३ पं० शिवराव मंगेशशर्मा मंजेश्वर २)

सन् ९८–९९

२६९ उपमन्त्री आर्यसमाज कलकत्ता ३)
२६० पं० मूलचन्दराव ट्यूटर खैरागढ़ ३)
२६१ एमएस साहू भट्ट बलवन्तगढ़ी ३)
२६२ बा० विट्ठलराव भंडारा २)
२६३ भक्त रोशनराम बज़ाज़ झंग १)
योग २३)

वैदिक पुस्तक प्रचारक फण्ड सदर मेरठ में प्राप्त पुस्तकों का सूची

(नागरी की पुस्तकें)

(१)	व्यापार भण्डागार	५)
(२)	चिकित्सासिन्धु	२)
(३)	विश्वकर्माप्रकाश	१।)
(४)	फोटोग्राफी अर्थात् चित्रविद्या	१)
(५)	पांचसो व्यापार	१)
(६)	स्त्री धर्म नीति	१)
(७)	सद्धर्मप्रकाश	१)
(८)	वैदिक धर्म प्रचार	।।।)
(९)	दीप निर्वाण	।।।)
(१०)	मधुमालती	।।।)
(११)	इला	।।=)
(१२)	प्रमिला	।।=)
(१३)	खेती विद्या के मुख्यसिद्धान्त	।।=)
(१४)	वेदान्त प्रदीप	।।)
(१५)	मुण्डकोपनिषद् भाष्य	।।)
(१६)	श्वेताश्वतर उपनिषद्	।≡)
(१७)	मांस भोजन विचार के तीनों भाग का उत्तर	।=)
(१८)	भास्कर प्रकाश १ भाग	।=)
(१९)	विदुर नीति भाषा टीका	।=)
(२०)	बहारे नैरंग १ भाग २ भाग	।=)
(२१)	हारमोनियम गाइड १ भाग	।=)
(२२)	” २ भाग	।=)
(२३)	गृहचिकित्सा	।=)
(२४)	सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	।=)
(२५)	सभाप्रसन्न चारों भाग	।)।।
(२६)	धर्माधर्मविचार	।)
(२७)	स्वधर्मरक्षा	।)
(२८)	आर्य्य समाज परिचय	।)
(२९)	अप्रतिम निरूपण	।)
(३०)	भामिनी भूषण	।)

(३१) चन्द्र कला ।)

(३२) कमलिनी ।)

(३३) अबला विनय ≡)॥

(३४) समीक्षा कर ≡)

(३५) प्रेमोदय भजनावली ≡)

(३६) ज्योतिष चन्द्रिका ≡)

(३७) सत्यार्थ प्रकाश संग्रह ≡)

(३८) वीर्य रक्षा =)॥

(३९) गर्भाधान विधि =)॥

(४०) भजनामृत सरोवर =)

(४१) सङ्गीत रत्नाकर =)

(४२) भर्तृहरिसार =)

(४३) सत्य नारायण की कथा =)

(४४) धर्म बलिदान आल्हा =)

(४५) पूरण भक्त की कथा -)॥

(४६) कुरीति निवारण -)॥

(४७) हित शिक्षा -)॥

(४८) योगमार्गोपदेशिका -)॥

(४९) हुक्म देवी -)॥

(५०) वीरता विषय व्याख्यान -)॥

(५१) पुत्रकामेष्टि पद्धति -)।

(५२) चाणक्यनीतिसार भा० टी० -)।

(५३) मनुमांसाशननिषेध -)

(५४) शास्त्रार्थ किराणा -)

(५५) „ नीमच -)

(५६) आर्य सिद्धान्त मार्तण्ड १ भाग -)

(५७) „ २ भाग -)

(५८) अमृतरस भजनावली -)

(५९) वैदिक देव पूजा -)

(६०) प्रश्नोत्तर रत्नमाला -)

(६१) ईश्वर और उस की प्राप्ति -)

(६२) संस्कृत भाषाप्रवेश अंग्रेजी -)

(६३) फलित ज्योतिष -)

(६४) साईंयाग की पोल -)

(६५) महात्मा मुरारी की मृत्यु -)

(६६) मालिकाधिकार)॥।

(६७) शिक्षाध्याय)॥।

(६८) भजनपुस्तक)॥

(६९) स्वामी विरजानन्द का जीवनचरित्र)॥

(७०) धर्म प्रचार)॥

(७१) भजनपचीसी)॥

(७२) अंक प्रकाश)॥

(७३) भजन पुस्तक)॥

(७४) भजनमुक्तावली)॥

(७५) भजन विवेक)॥

(७६) सदुपदेश)॥

(७७) शिक्षावली)॥

(७८) ब्रह्मजीसेस)॥

(७९) कर्मवर्णन)॥

(८०) गायत्री मन्त्र अर्थ सहित)॥

(८१) ओ३म् मनुष्य आकार)॥

(८२) नमस्ते)॥

(८३) श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज का योगाभ्यास का चित्र ॥।)

उर्दू पुस्तकें

२ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका १)

८ गुलदस्तेधर्म ।)॥

३ कासीफएरासर हकीकी ॥।)

१ मनुस्मृति उर्दू तरजुमा १।)

५ दीपनिर्वाण ।=)

६ मनोहरलता ।=)

४ भगवद्गीता ।।)

ओ३म्

भारत सुदशा प्रवर्त्तक ॥

आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद का प्राचीनपत्र, १९ वर्ष
से श्रीस्वामीजी महाराज की आज्ञानुसार
प्रकाशित होता है ॥
(प्रतिमास की २८ वीं तारीख को प्रकाशित होता है)
जिस में
वेदशास्त्रानुकूल धर्म्मसम्बन्धी, व्याख्या, स्त्रीशिक्षा, इतिहास, समाचार और
अनेक मनोरञ्जक विषय सरल भाषा में छपते हैं ॥

१९ वां भाग १२ वीं संख्या आषाढ़ सं० १९५५ वि० जून सं० १८९८ ई०

इस पत्र का उद्देश्य सत्य सनातन धर्म नागराक्षर तथा मातृभाषा की उन्नति व ख्याति करना है ॥

पं० गणेशप्रसाद शर्म्मा द्वारा सम्पादित होकर मुंशी नारायणदास जी मन्त्री आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद की आज्ञा से सरस्वती प्रेस—इटावा में छपा ॥

मूर्त्ति पूजा)। (२२) ईसाई शिक्षा का प्रभाव)। (२३) वर्णप्रकाश)॥ (२४) रचना बोधनी -)॥ (२५) पत्रप्रकाश =) इन में नम्बर १ से लेकर १० तक उर्दू में भी हैं इन के अतिरिक्त मेरे यहां श्रीमान् लालादेवराज सा० मनेजर कन्या महाविद्यालय की बनाई हुई भी सम्पूर्ण पुस्तकें मिलती है ॥

चिम्मनलाल वैश्य

तिलहर जि० शाहजहांपुर

समालोचना—विभाग ॥

सामवेद भाष्य ॥

श्री पं० तुलसीराम स्वामीकृत भाष्य प्रतिमास निकलना आरम्भ हो गया इस का भाष्य उसी शैली का है जैसा कि पण्डित जी ने श्वेताश्वतर उपनिषद् का किया है प्रथम मूल मन्त्र उस के नीचे पदपाठ पुनः संस्कृत में अर्थ पीछे भावार्थ—अनन्तर भाषार्थ स्पष्ट किया है। एक विशेषता यह है कि मन्त्रों के यथाप्रकरण दोनों अर्थ किये हैं, अर्थात् जैसे कि अग्नि शब्द का जहां उपासना काण्ड में प्रयोग आया वहां परमेश्वर और यज्ञ प्रकरण में आग (जलने वाली) का अर्थ किया है स्थल२ पर उन शंकाओं का निवारण भी करते गये जिनका उठना संभव जाना, हमारी अनुमति में यह भाष्य संस्कृत व भाषा अभिज्ञ दोनों को लाभकारी है विशेषतः थोड़ा संस्कृत पढे अपनी योग्यता बढ़ा सकते हैं। मूल्य २॥) साल है, दर्शित पण्डित जी के पास स्वामी प्रेस मेरठ में मिलता है, ग्रन्थ कर्त्ता ने इस में अपनी सुमति का जैसा अच्छा परिचय प्रथमाङ्क में दिया है उस से हम आशा करते है यह उत्तम रीति पर पूर्ण होगा वेद की पुस्तक अर्थात् परमात्मा का ज्ञान जो मनुष्य को उसने अपनी असित कृपा से दिया है उस का मर्म जानना मलिन अन्तःकरण वा स्वार्थी पुरुष का काम नहीं है, इसी से हमारी आन वेदों का भाष्य करना बहुत कठिन है महीधरादि भाष्य कर्त्ता यदि वेदों का सत्य २ अर्थप्रकाश करते तो कभी जैनमत न फैलता निर्भ्रम ज्ञान लोभादि रहित पवित्र अन्तःकरण में प्रकट होता है सुनते हैं कि पण्डित जी अब उपासना अधिक करते हैं क्या उसी का यह प्रभाव है, यहां पर हम पण्डित भीमसेन जी की भी प्रशंसा किये विना न रहेंगे जिनकी पवित्रवृत्ति व श्रम से ईशादि ९ उपनिषद् मनुस्मृति तथा गीता आदि अनुवा-

दित हुए हैं यदि साम व अथर्वभाष्यपर दोनों पण्डितों का मिलकर एक साथ श्रम हो तो बड़े हर्ष का स्थल होवे । इस दशा में वेदभाष्य और भी दृढ़ समझा जायगा श्री मतीपरोपकारिणी सभा भी तो शेष वेद भाष्य को पूर्ण कराना चाहती है तब प्रागुक्त पण्डितों को सहायता दे कर इस शुभ कार्य की ओर उत्तेजित करने का यत्न क्यों नहीं किया जाता ? ॥

विद्याविनोद ॥

इस नाम का नागरी भाषा का एक साप्ताहिक पत्र विद्याविनोदप्रेस लखनऊ से निकलना आरम्भ हुआ है, सामान्य टाइप में दो तखता रायल पर भरपूर छपता है समयोचित लेख व समाचारों से भूषित है परन्तु कागज चिकना होना चाहिये कि छपाव पूरीदाव पकड़ कर स्पष्ट जचे मूल्य ३॥) रु० वार्षिक है । दर्शनेच्छुकों को बाबू कृष्णबलदेव जी वर्मा सुपरनटेंडेट विद्याविनोदप्रेस केसरबाग लखनऊ को लिखना चाहिये—आप एक समय आर्यसमाज काल्पी के मन्त्री थे, आशाहै कि वैदिक धर्मको अपने पत्रमें दृढ़ करते रहेंगे ॥

जिला फर्रुखाबाद के समाचार ॥

इन दिनों श्रीयुत लाला नारायणदास जी मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद के स्थानपर उपनिषदोंकी कथा होरही है— ज्येष्ठ शुदि १० मी को आर्यसमाज खिमसेपुर जिला फर्रुखाबाद के उपप्रधान श्री ठाकुर हरबख्शसिंह जी के चि०पुत्र मर्दनसिंह का उपनयन संस्कार पं० गणेशप्रसाद शर्मा ने वैदिकविधि से कराया

सामाजिक संदेश माला

लेखराम पुस्तकालय—देरा इसमाइलखां आर्यसमाज की सम्मति से खुल गया— ब्रह्मचारी नित्यानन्द व स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी अब कुछ दिन बंगालविहार प्रतिनिधिस्थ समाजों में भ्रमण करेंगे

शाहपुरा आर्यसमाज के पदाधिकारी इस वर्ष नीचे लिखे अनुसार हुए

प्रधान—श्रीमान् राजाधिराज शाहपुराधीश महोदय मेवाड़ ॥

उपप्रधान—पुण्डरीक छत्रदत्त जी महाराज औदीच्य सहस्र पाठक ॥

मन्त्री—"लाला राधेलाल जी महाशय

उपमन्त्री—"श्री कुंवरसिंह जी म०

पुस्तकाध्यक्ष—बाबू पूर्णसिंह जी म०

कोषाध्यक्ष—बाबू मोतीसिंह जी०

बूढ़े वर से छुटाया

आ० प्र० सभा पञ्जाब के धर्म प्रचारक हरनाम सिंह जी ने ६५ वर्ष के बूढ़े के पल्ले ११ वर्ष की बंधती हुई कन्या को

बचाया आप के व्याख्यान व चेष्टा से वरात दरवाजे से लौट गयी बराती लोग प्रचारक महाशय को मारने गये धर्मने रक्षा कर ली धन्य !

श्री स्वामी लक्ष्मणानन्द सरस्वती जी का पता–

इन दिनों हरद्वार के निकट वर्त्ती स्थान कनखल जि० सहारनपुर ठिकाना राजा छिछरौली की हवेली है ॥

बनारस में धर्म का पार्लिमेण्ट

स्वामी विवेकानन्द जी जिन के धर्मोपदेशने शिकागो (एमरीका में) धर्म पार्लीमेंट के समय, युनाइटेडस्टेटस, में हिन्दू धर्म की ध्वजा स्थापित करदी थी आजकल नैनीताल में पधारे हैं। स्वामी जी के साथ मे उन के बहुत से शिष्य भी है उन शिष्यों में एक अंगरेजी तथा तीन एमरीकन स्त्रिया भी हैं हमारे पाठकों को इन युवतियो का एक हिन्दू साधू के साथ शिष्य होकर घूमना आश्चर्य जनक जान पड़ेगा पर यह कोई आश्चर्य की वार्त्ता नहीं है स्वामी जी के उपदेशों ने एमेरिका में इतना प्रभाव उत्पन्न किया है कि अब, वहा के निवासी भारत के प्रधान धर्म नगर काशी में धर्म का पार्लीमेण्ट देखने को उत्सुक हैं। शिकागो नगर में " न्यूयुनिटी " नाम का एक पत्र प्रकाशित होता है। उक्त पत्र अधिक उत्साह के साथ बलपूर्वक कहता है कि सन् १९०० में बनारस नगर में एक धर्म की पार्लिमेण्ट एकत्रित होने की अधिक आवश्यकता है।

महाराज कर्नलसरप्रताप सिंह जी वर्मा वहादुर को उपाधिदान ॥

श्रीमतिमहाराणी भारतेश्वरी के जन्मोत्सव २४ मै को, आर्य हिन्दू मुसलमान व अंगरेजो को उन की राजभक्ति के कारण उपाधि दान से सम्मिलित किया है उसी प्रकार श्रीमतीने महाराज जोधपुर को भी पश्चिमी युद्ध की विजयी वीरता दिखाने की कृतज्ञता में कम्पेनियन्स आफदीवाथ की पदवी प्रदान की है, समस्त आर्यसमाजों को इस समाचार से निस्सन्देह हर्ष व उल्लास हुआ है–आज उन के एक धर्मी परमबन्धु को इतना मान्य हुआ आर्यसमाज के लिये बड़े गौरव का स्थान है कि उस के सभ्य वृटिश सर्कार के सच्चे भक्त हैं, इसी प्रकार धौलपुर के श्रीमान् महाराजा राणाबहादुर और कूच विहार के महाराज बहादुर भी उक्त उपाधि से प्रतिष्ठित किये गये–भारतीय प्रजा की यह अटल राजभक्ति है —

हमे यह जान कर बहुत हर्ष हुआ कि श्रीमान् बाबू बैजनाथ साहब सब जज अगरवाल रायबहादुर की उपाधि से भूषित हुए ये महाशय भी सच्चे सु-जन और देश व स्वजाति की उन्नति के इच्छुक हैं—और उपकारी कामोंमें और० शिविलियनों की तरह डरपोक नहीं—जो धर्म से हटजावें ॥

अन्न का निकास ॥

आज कल गेहूं का भारतवर्ष से निकास धड़ा धड़ हो रहा है यहां अ-नुमान से प्रतिवर्ष लगभग पांच करोड़ सात लाख टन (२८ मन का एक टन होता है) पैदा होता है जिस में से पांच करोड़ तेतालीस लाख टन यहां कि लोगों के खाने में खर्च हो कर केवल १७ लाख टन बचता है—यदि यहां का अन्न बाहर न जावे तो १ साल का अ-काल प्रजा को बहुत न अखरे—छः सा-लकी बचत ७ वें अकाल को पूर्णकरदे॥

अलीगढ़ कालेज के सं-स्थापक—

सरसय्यद अहमदखां साहब के० सी० एस० आई० का परमधाम हो गया, उस समय मुसलमानों मे हतोत्साहके बदले, अधिक जोश बढ़ा वे लोग अब उक्त मुसलमा-नी कालेज़ को (जिस में कि हिन्दुओं का अधिक धन लगा है-) विश्वविद्या लयबनाने के लिये चेष्टा कर रहे हैं—दिल्ली में एक कमेटी इस कार्यनिमित्त चन्दा संग्रह करने को स्थापित हुई है

आर्य प्रतिनिधि सभा पश्चि-मोत्तर अवध के आर्य समाजों को आवश्यक सूचना ॥

कार्य की सुगमता के हेतु पश्चिमोत्तर व अवध के प्रान्त के उपदेश के कार्य का प्रबन्ध इस प्रकार श्रीमान् बाबू ल-खपतराय जी प्रधान व पं० भगवानदीन जी उपप्रधान के दर्मियान तक्सीम किया गया है कि रुहेलखंड व कमायू व मेरठ व आगरा की कमिश्नरियों में जितनी समाजें है उन को जब उपदेशक की आवश्यकता हो तो वे (मुझ को पत्र न लिखें) सीधे मु० लखपतराय जी प्रधान सभा वकील ग़ाज़ियाबाद जि० मेरठ को लिखें वह उपदेशको का प्रबन्ध करेंगे निम्नलिखित उपदेशक उन की निगरानी में प्रचार का कार्य्य करेंगे (१) पं० बद्रीदत्त जी शर्मा (२) पं० भूमित्र जी शर्मा (३) पं० रामदयालु जी शर्मा (४) पं० शंकर दयालु जी शर्मा (५) पं० मुसद्दीराम जी शर्मा (६) पं० मुकंदराम जी शर्मा (७) पं० जानकी प्रसाद जी शर्मा ॥

इसी प्रकार अवध देश के १२ जिलों और इलाहाबाद बनारस व गोरखपुर

की कमिश्नरियों में जिसकदर समाजें हैं वे लखीमपुर जिला (खीरी) के पते से पं० भगवानदीन जी उपप्रधान महाशय को लिखें वह मुनासिब इन्तज़ाम करेंगे उन की निगरानी में निम्नलिखित उपदेशक प्रचार का कार्य करेंगे ॥

(१) पं० गिरधारी लाल जी शर्मा
(२) पं० प्रयागदत्त जी शर्मा
(३) पं० लालमणी जी शर्मा

पं० नंद किशोर जी देव शर्मा डिपुटेशन के साथ फिरेंगे जिस का प्रबन्ध सभा के कार्यालय द्वारा होगा यदि कहीं डिपुटेशन भेजने अथवा बुलाने की आवश्यकता हो तो वह समाजें मुझे सूचित करें तकसीम केवल कार्य्य की सुगमता के अर्थ किया गया है आशा है कि इस में कामयाबी होगी ॥

नारायण प्रसाद मंत्री आर्य प्र० नि० सभा स्थान मुरादाबाद

डाक्टर इन्द्रमणि जी उ० प्र० आ० सु० लखनऊ से लिखते हैं।

प्रायः १ मास से कुछ ऊपर से डाक्टर गङ्गादीन जी एम० डी० महाशय जिन के नाम से प्रायः समस्त आर्यगण परचित हैं सो युरोप और अमेरिका में सैर विद्याध्ययन धर्मोपदेश कर अमेरिका समाज स्थापन कर लौट आये हैं इस नगर में उपस्थित है जिन की विद्या वक्तृता के कारण वहां के योग्य पुरुषों ने आप का असाधारण मान्य किया लैकचर सुने वैदिक विद्या की ओर उन के चित्त आकर्षित हुये उक्त महाशय ने हम लोगों की प्रार्थना पर कल के रोज एक व्याख्यान समाज मंदिर में पाताल निवासी और उन के धर्म भाव के विषय में अंग्रेजी भाषा में २ घंटे तक प्रभावशाली चित्ताकर्षक प्रायः ३०० सभ्य मनुष्यों से अधिक की उपस्थिति में दिया और वहां के स्टेशन होटल बाजार के पार्क और केवल वहां के सभ्यों ही का नहीं बल्के सरकारी कर्मचारियों का भी उदार भाव से आपस के लोगों ही से नहीं किन्तु परदेशियों के साथ भी व्यवहार करना प्रशंसा के योग्य उक्त महाशय ने बतलाया और यह भी बतलाया कि वहां के लोग जो मिशनरी लोगों को धन देकर यहां भेजते हैं उस का खास कारण यह है कि उन को धोखा में डाला गया है कि हिन्दुस्तान में लोग धर्म विषय में कुछ नहीं जानते हैं इस हेतु उन को उपदेश करना अति आवश्यक है मगर जिन २ ने इस बात को जाना कि वह धोखे में हैं हिन्दुस्तान की आत्मिक विद्या सब से यहां से उत्कृष्ट है वह पश्चात्ताप करते हैं और उस विद्या को जानने की अत्यन्त इच्छा

करते हैं उक्त महाशय ने यह बताया इस समय यदि आर्यसमाज अपने उपदेशकों को जो उस स्थान के योग्य हों भेज सकें तो अत्यन्त लाभ हो इस सभा के सभापति हमारे प्रसिद्ध बैरिस्टर पं० विष्णुनारायण दर थे उक्त महाशय ने व्याख्यान की समाप्ति पर कुछ कथन किया और यह बतलाया कि उन्नति करने का यत्न करने वाला शुद्ध वेदमार्ग ही है बैरिस्टर जी महाराज ने व्याख्यान दाता को धन्यवाद देकर सभा को विसर्जन किया महाशय डाक्टर जी के व्याख्यान बराबर होंगे आगामी रविवार को वेदों की तालीम इस विषय पर होगा आ० व० ४ जून

भारतसुदशा प्रवर्त्तक जून सन् १८९९

स्वदेशवस्तु प्रचार ॥

अंगरेजी पढ़ों को नौकरी का अभावसा होगया बड़े २ लायक बी०ए० एम० ए० चाकरी के उद्योग में व्यग्र होने लगे जब ग्रेज्युएट लोगों की यह दशा है तो मिडिल एन्ट्रेन्स वालों को कौन पूछता है शोक कि ८।१० वर्ष में मिडिलपास और ११। १२ वर्ष में एन्ट्रेन्स पास पीछे पछताना जितना खर्च करके लोग अगर ग्रेज्युएट होते हैं उतनी तक नौकरी उन्हें नहीं मिलती इस दशा में यही उचित है कि अब देशी लोग दस्तकारी सीखें और व्यापार करें जो वस्तु विलायत से आती हैं उन में से जितनी यहां बन सकें प्रतिदिन चिन्ता पूर्वक बनाने का उद्योग करते रहें—

हर्ष का विषय है कि अब नगर २ में इस ओर लोगों का ध्यान आकर्षित है यह कहावत बहुत सत्य है कि आवश्यकता सब की माता है अर्थात् जरूरत सब कुछ करा लेती है लखनऊ, कानपुर, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, बड़ौदा, जयपुर आदि स्थानों में जो २ देशी कारखाने हैं वे अच्छी तरह चलते हैं कलकत्ता लाहौर आदि में देशीवस्तु प्रचारक सभाएं स्थापित होगई हैं समाचार पत्र निकलने लगे हैं लाहौर का "स्वदेश वस्तु प्रचारक मासिक पत्र" अपने वित्तभर उत्तम कार्य करता है परन्तु एक छोटे से मासिकपत्र से क्या होता है हमारी समझ में इस कार्य के लिये साप्ताहिक समाचारपत्र की आवश्यकता है सो स्वदेश

वस्तु प्रचारक को मासिक के स्थान में साप्ताहिक कर देना चाहिये यदि उसके अधिकारियों को संकोच हो तो किसी दूसरे देशहितैषी को इस विषय में हाथ डालना चाहिये। इस पत्र में देशी स्कूल कारखाने और नई ईजादें तथा कोंपनियों की वार्षिक संक्षिप्त रिपोर्ट आदि छपा करें, बड़े शोक की बात है कि देश के लोग देशीतिजारत को तो बहुत कहते है परन्तु तद्विषयक उत्तेजनाका कोई प्रबन्ध नहीं करते उत्साह देने को जब कोई पत्र नही तब कैसे कार्यसिद्ध होसकता है? लाहौर की स्वदेश वस्तु प्रचारिणी सभा को इस ओर अधिक ध्यान देना चाहिये अभी जो एप्रिल के पत्र में स्व० व०प्र० में जो लिस्ट छपी है वह पंजाबी चीजोंकी समझना चाहिये बंगाल व बम्बई तथा पश्चिमोत्तर अवध की देशी वस्तु नाम मात्र लिखी हैं—सभा को उचित है कि भारतवर्ष में जहा २ जो २ देशीवस्तु उत्तम बनती है उन की फहरिस्त बना कर भारतवर्ष के नगर वरन गावों तक में प्रसिद्ध कर देवे, इसमें व्यय व संसय की अपेक्षा बहुत है, अतएव इस का खर्च देशी व्यापारियों से लेना चाहिये क्योंकि उन को लाभपूर्ण है, यद्यपि सभा के पत्र में देशी कारखानों व दूकानों के नाम छपते है परन्तु बहुत थोड़े और थोड़े ही बीच में वे प्रसिद्धि पाते है वस्तुतः ऐसे कामो में अधिक प्राकट्य की आवश्यकता है, ॥

अब हम इस सभा के उद्देश्य व नियमादि अपने पाठकों को उत्साह वर्द्धनार्थ नीचे प्रकाशित करते हैं, ॥

(१)—इस सभा का उद्देश्य यह है कि स्वदेशी वस्तुओं की उन्नति वृद्धि वा प्रचार किया जावे, ॥

(२)—इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये निम्नलिखित उपाय प्रयोग में लाये जायंगे ॥

क—स्वदेशी वस्तुओं को स्वयंवर्त्त कर उन की मांग बढाना ॥

ख—स्वदेशी वस्तुओं के वर्त्तने के लाभ और उन की उन्नति तथा वृद्धि के उपाय व्याख्यानों पत्रों पुस्तकों तथा अन्य साधनों द्वारा प्रकट करना ॥

ग—लाहौर में शिल्पशास्त्र तथा स्वदेशी वस्तु सम्बन्धी पुस्तक एकत्र करने स्वदेशी विविध वस्तुओं को दिखाने और उन की प्राप्ति के स्थानों का पता रखने के लिये एक दर्शनागार-[अजाइबघर] स्थापित करना ॥

घ—स्वदेश में कलाकौशल तथा अन्य साधनों द्वारा वस्तुओं के निर्माण और प्रचार का प्रबन्ध करना और कराना ।

(३) इस के सभासद वही पुरुष होंगे जो निम्नलिखित प्रतिज्ञा को धारण कर पालन करेंगे और प्रतिज्ञापत्र पर अपने हस्ताक्षर करेंगे—

प्रतिज्ञापत्र ॥

मैं दृढ़ प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं इस विषय में पूर्ण प्रयत्न करूंगा कि मेरे वस्त्र स्वदेशनिर्मित कपड़े के हों तथा मैं अन्य स्वदेशी वस्तुओं को यथाशक्ति वर्त्तने प्रचार करने का भी उद्योग करूंगा—इति

पाठकों को हर्ष का समाचार दिया जाता है कि १२ एप्रिल को लाहौर में " टेकनिकल इन्स्टीट्यूट " महारानी भारतेश्वरी की डाइमण्डजुबली के स्मरण में खुला है; इस के खोलने वाले श्रीमान् बाबू अतुलचन्द्र चटर्जी जज चीफकोर्ट पञ्जाब हैं इस शिल्पशाला में प्रथम टिनस्मिथ क्लास जिस में टीन की अनेक प्रकार की चीजें बनाना सिखाया जाता है और फ्रीहैण्ड ड्राइंग क्लास में चित्रकारी मोजे बुनना—बुककीपिं (मुनीमीहिसाब) आदि विद्या सिखाने का प्रबन्ध किया गया है । और १२ हिन्दू मिडिल पास बालकों को चार चार रुपया मासिक वृत्ति देकर कार्यसिखाने को भरती किया है परमेश्वर दर्शित शुभकार्य में सहायक हो—

मदरास के शिल्पविद्यालय में ५८८ विद्यार्थी ॥

गत वर्ष में पढ़ते थे उन में से प्रति सैकड़ा ७२ धनहीन श्रेणी के लोग थे

मदरास के सलेम नगर में भी एक देशी लोगों का कारखाना है वह अच्छा चलता है ॥

सब देशी चीजें मिलने का पता ॥

आयुर्वेदोक्त दवाइयां (जो ज्वर आदि रोगों की नाशक हैं)—महेश औषधालय लाहौर ॥

बैंक—चलते हिसाब, फिक्सडडिपाजिट अर्थात् मुकर्रर मुद्दत तक के लिये व्याज पर रुपया रखना, करज और सेविंगफंड खोलने के लिये—पंजाब नेशनल बैंक लिमिटिड—लाहौर

सूती कपड़ा अर्थात् लेंट्टा मलमल डबलजीन, डोरिया गेवरून दुसूती आदि, राधाकिशन लाहौर, अमीरचन्द्र कुन्दन लाल लाहौर, नेटिवस्टोसहाल बाजार अमृतसर। साथमैनफेकचरीफ कम्पनी लुधिहाना। स्वदेशी कम्पनी लाहौर॥

सूती कपड़े की मिलें—स्वदेशी मिल कम्पनी मुम्बई, देहली साथ ऐण्ड-जनरल मिल्स कम्पनी, मोरार जी गोकुलदास मिल्स वम्बई, रणछोड़लाल छोटालाल मिल्स अहमदाबाद, रायमेलाराम मिल्स लाहौर। कारपिट—कालीन देवीसहाय चम्बामल अमृतसर।

कटलरी छुरी चक्कू कैंची उस्तरे आदि जो शुक्रविद्यालय के बने हुए हैं—महेश औषधालय लाहौर।

फैमिलीरिलीफ फंड अर्थात् परस्पर कुटुम्ब सहायक भण्डार—हिन्दूम्युचुअल फेमिलीरिलीफ फंड लाहौर।

हाजिरी जुराबें आदि हौजिरी फैक्टरी बच्छोवाली लाहौर॥

लैम्प-राय विश्वम्भरनाथ जी का देशी तेल जलने का लैम्प गोपालसिंह और रामनाथ चौरे बाजार देहली या स्वदेशी कम्पनी लाहौर।

लैदरगुडस अर्थात् चमड़े के बूट जूते साज और जीन वगैरह—स्टुअर्ट फैक्टरी आगरा और स्वदेशी कम्पनी अनार कली लाहौर॥

लाइफएश्योरैंस-भारत लाइफ एश्योरैंस कम्पनी लिमिटिड लाहौर।

(पीतल के ताले) महेश औषधालय लाहौर।

मैचिज (दियासलाई) बंगाल मैचिज मैनुफैक्चरिङ्ग कम्पनी कलकत्ता॥

मैटिल एण्ड वुड्वर्क (अर्थात् धातु और लकड़ी का काम—मैटिल एण्ड वुडवर्क कम्पनी लिमिटिड देहली॥

पेपर (छापने और लिखने का कागज) अपर इंडिया कुपर पेपर मिल्स कम्पनी लिमिटिड लखनऊ।

सुगन्धितद्रव्य (अर्थात् खुशबुएं)—एच बोस नंबर ६६ बी बाजार कलकत्ता॥

सिल्क्स (रेशमी दर्याई) गुलबदन अलपका चारखाना, लिहंगा, कनावेज आदि पाल मल वेलीराम डबी बाजार लाहौर॥

लाला शामदास दर्याई वाला कत्ता बाजार लाहौर।

स्टीलपैन्स—मोतीराम मिस्त्री नाभा (रियासत) पंजाब॥

स्टीलटाक—पंजाब आइरन वर्क्स—सियाल कोट (पंजाब)।

सोप सुधबूदार (अर्थात् साबुन कारबोलिक) आदि साबुन—सोमराज

शर्मा एण्ड कम्पनी शहालमी गेट लाहौर ।

स्पोर्टिंगगेअर (अर्थात्) क्रिकिटटेन्स आदि खेलों की चीजें जो० एम० आवरोईएण्ड कम्पनी सियालकोट ।

साइएटीफिक् ऐपरेटस-पंजाव साएँस इनस्टीच युटवर्कशाप भाटीगेटलाहौर ॥

टेंट्स (तम्बू कनातें) आदि वूटासिंह एण्ड सन्स, कंटरेक्टर्सराविलपिंडी ।

वुलन क्लाथ (अर्थात् ऊनी पट्टू पट्टियां आदि जो कि शिमला और कूल्लू की पहाड़ियों में बनते हैं) उन्हीं दुकानों में मिलेगा जिनमें सूत कपड़ा बिकता है यानी (सूती उन्हीं कलों और मिलों से जहां कपड़ा बनता है) ॥

पाठक महाशयों से प्रार्थना है कि वे अपने नगर व प्रदेश की बनी हुई उन चीजों की सूचना जो कि इस सूचीपत्र में नहीं आई मैनेजर स्वदेशी वस्तु प्रचारक के पास भेज देवें ताकि वह भी इन में छापदी जावें ॥

अधर्म अवश्य फलता है ॥

नाधर्मश्चरितोलोके सद्यःफलतिगौरिव ।

शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ मनु ॥

संसार में बहुधा लोग जब पापी को सुखी और यजनशील ब्रह्मचारी को रोगी वा दुःखी देखते हैं तो तर्क खड़ा करते हैं, और धर्म से घृणा व अरुचि, और व्यभिचारादि पापों में रुचि व प्रीति करने लगते हैं, परन्तु यह उन का भ्रम है । जैसे अंडी का तेल पीने वा हड़ खाने से रेचन होता है यदि किसी को वद्धकोष्ठ (कवज) न हो जावे तो सोचना चाहिये ऐसा क्यों हुआ विचार करने पर भान हो जाता है कि रेचक औषधि खाकर इस ने श्रम किया वा किसी चिन्ता विशेष में पड़ गया । इस से पचाव हो गया वा पेट में पूर्व से इतनी गांठ या सूखापन था कि उस के लिये जितने पदार्थ की आवश्यकता थी नहीं पहुंचा वा न्यून प्रभाव (असर) हुआ इस से उस समय अभीष्ट कार्य नहीं हुआ परन्तु एक दो दिन पीछे ऐसा देखा जाता है कि बहुत थोड़ी रेचक (दस्तावर) औषधि अधिक मल निकालती, वा स्वयं मल निकलने लगता है, इस से यह प्रतिपन्न होता है कि पूर्व खाये हुए औषध के ही गुण से ऐसा हुआ है यद्यपि देर से फल निकला इसी प्रकार पुण्य वा पाप का भी फलाफल हुए विना नहीं रहता चाहे कभी विलम्ब भले ही हो जावे, अज्ञानी जन दिनदेरी देख शंका करने लगते हैं और उस प्रभु का विश्वास छोड़ बैठते हैं, जिस के

भरोसे धर्म का बीज बोया जाता है—सच तो यह है कि जैसे बीज बोने के कुछ काल उपरान्त फल होता है एवंविध पुण्य पाप की व्यवस्था जानो, बड़े विद्यानवेत्ता (साइन्स फिलासफर) सुज्ञनों ने लिखा है कि संसार में जो कुछ किया जाता उस का कुछ न कुछ फल अवश्य होता है, दो हाथ मिलाकर तालो बजाते हैं इस की ध्वनि न जाने कहां तक फैलती है। तालाब के पानी में एक कोने पर चोट देने से सारा जल हिल जाता है, इसी से धार्मिक सुजनों की शिक्षा का लक्ष यह है कि पाप से बचो अर्थात् किसी का चित्त न दुखाओ सब सुजनों को विशेषता योगी के लिये मुख्य और प्रथम शास्त्रीय शिक्षा यही है कि हिंसा आदि पाप मत करो "तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः" अहिंसा, सत्यभाषण, अस्तेय (चोरीत्याग) ब्रह्मचर्य्य का धारण, और अपरिग्रह (दानादि से बचाव) यही पांच यम कहाते हैं जिन का साधन अवश्य है इस हिंसा शब्द की व्याख्या व्यास जी ने यही की है "प्राणिनामनभिद्रोहोऽहिंसा" प्राणियों के साथ प्यार से वर्त्तना अर्थात् उन का चित्त न दुखाना अहिंसा है इस में कटुवादिता अन्याय अदया क्रूरता इत्यादि अनेक दोष छूट जाते हैं जो कि विषम फल देने के हेतु हैं और उन की जगह मधुरता न्याय, दया और सुशीलता आदि समुदाय स्थानापन्न होते हैं जो कि मनुष्य को जय यश और सुख दिखाते हैं॥

महाराज पृथ्वीराज में वीरतादि बड़े गुण थे परन्तु स्वाधीनों का मन रखना उन्हें नहीं आता था प्रत्युत कभी २ कठोर बोलते थे इन की, तथा महारानी संयोगिता की कठोर बातों से प्रायः सर्दारों का मन खट्टा हो गया था किसी अवसर पर रानी ने एक बड़े अमोघ तीरंदाज की निन्दा की थी उसने उसी दिन से शस्त्र बांधना छोड़दिया था। शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरी द्वारा जब महाराज पृथ्वीराज बधुआ हुए महारानी संयोगिता ने उस को समझाया कि हे वीर तुम्हारा तीर खाली नहीं पड़ता अब इस संकट में सहायता करो उस ने कहा मैंने प्रतिज्ञा की है कि हथियार न बांधूंगा तथापि आप का अन्नोदक मुझे प्रेरणा करता है कि मैं कहो जिस एक को टूटी तीर कमान से (जो हथियार में दाखिल नहीं) मारदूं—रानी ने शहाबुद्दीन को तो मारने को नहीं कहा, किन्तु जिस ने महाराज को धोखा देकर पकड़वा दिया था, मारने का आदेश दिया और उस वीर ने टूटी कमान से विश्वास घाती का प्राण संहार किया। पापी को देर से पाप का फल मिल गया—कठोर वर्त्ताव का विषम फल दिल्लीश्वर को मिला—शेष फिर॥

होमयज्ञ ॥

[पूर्वप्रकाशितानन्तर मई के पत्र के १६ वें पेज से आगे]

और टीन के नीचे काठ के तखते रहैं जिस से टीन गरम न होगी और शालास्थान को पुष्टता पहुंचेगी यज्ञशाला ऊपर को इस प्रकार खुली रहे कि धुआं तो निकल जावे किन्तु वर्षा का पानी न आसके यज्ञकुण्ड नित्य होम के लिये आठ से १६ अंगुल तक का बहुत है विशेष के निमित्त अर्थात् जो लाख आहुति देनी हो तो २ वर्ग गज का बनाया जाय और पच्चीस हजार के लिये १ वर्ग गज उपयुक्त है इस में २५००, अढाई हजार आहुति मोहन भोग की भी आ सकती हैं और जो घृत की हजार तक आहुति देनी हों तो भी सवाहाथ वर्ग गज का कुण्ड अवश्य चाहिये इन कुण्डों में पांच अंगुल की मेखला रखना कोई कुण्ड हो ऊपर से नीचे को ढलवा बने और ऊपर की लंबाई व चौडाई से नीचे की वर्गाकृति चौथाई रहे और गहराई भी लंबाई व चौडाई के बराबर हो, यदि कहीं पर कुण्ड खोदने का अवसर न हो तो थोड़े होम के लिये मिट्टी डाल कर वेदी (चौतरियासी) बना लेना चाहिये चारों ओर मंगल द्रव्य अर्थात् हल्दी व रोली आदि की सुन्दर रेखा खींचना चाहिये तथा पत्र पुष्प कदली वंदनवार से वेष्टित करके और पूर्ण जल भरे सुशोभित पात्र चारों कोनों पर रखने चाहिये कि अग्नि का भय न रहे—

परन्तु नित्य के साधारण होम के लिये इतने सजाव की आवश्यकता नहीं है ॥

यज्ञ का अग्नि

नित्य होम के लिये जो अग्नि कुण्ड में स्थापित किया जाता है उस का नाम गार्हपत्य है इस को नित्यस्थिर रखना चाहिये प्राचीन काल में इतना हवन होता था कि यह आग दूसरे समय तक बनी रहती थी, इस अग्नि से यज्ञ व संस्कारों में जो आग रक्खी जाती उस को आहवनीय कहते हैं मंत्र से संस्कार की गई अग्नि को प्रणीतकहते हैं और समूह्य परिचाय्य उपचाय्य ये तीन नाम वेदी में आग धरने की जगहों के हैं। दक्षिणाग्नि गार्हपत्य और आहवनीय ये तीन अग्नि मिल कर त्रेताग्नि कहाते हैं गार्हपत्याग्नि से अग्नि ले जाके जहा दक्षिणाग्नि स्थापित की जाती वह स्थान आनाय्य कहाता है।

यज्ञ की समिधा ॥

कुण्ड वा वेदी के प्रमाण से छोटी बड़ी जो सुभीते से समासकें ये आम, बेल, गूलड़, ढांख आदि की बक्कल निकाल कर कटवाना चाहिये नीव आदि की कटु न हों। मैली जगह का उपजा काष्ठ न हो—घुन वा कीड़ा, मकोड़ा भी उस में देख लेना चाहिये यदि कोई जीव वा मलिन वस्तु हो तो उस काष्ठ को त्याग दे—यज्ञ की समिधा यज्ञशाला से पूर्व व पश्चिम ओर के खंभों के पास रखना चाहिये इस विपुल काष्ठ को प्राग्वंश कहते हैं * ॥

होम के द्रव्य ॥

प्रथम—सुगन्धित व रोग नाशक—कस्तूरी केसर अगर तगर सफेद चन्दन वालछर कपूर कपूरकचरी लौंग जायफल जावित्री गिलोय आदि ॥

द्वितीय—पुष्टिकारक—घृत गोधूम (गेहूं) चावल उड़द आदि ॥

तृतीय मिष्ट—मिसरी कन्द शहद आदि ॥

चतुर्थ—फलादि—गोला, छुहारा, दाख, आम्र, मखाना, चिरौंजी, बादाम आदि ॥

अन्न को पकाकर घृत शर्करा युक्त करके होम करना चाहिये मोहनभोग, खीर लड्डू पूड़ी आदि सीज कर चरु बनाना उचित है ॥

१ सेर घी के मोहन भोग में १ रत्ती कस्तूरी मासे भर केशर डालना चाहिये ॥

प्रत्येक वस्तु को अच्छेप्रकार देख लेना कि उस में कोई अपद्रव्य न रहे ॥

आहुति प्रमाण ॥

१ बार में छः मासे घी वा अन्य चरु इस से कम नहीं अधिक १ छटांक तक की मंत्रोक्त आहुति देना।

यज्ञ के पात्र ॥

कुण्ड वा वेदी—इस का प्रमाण ऊपर लिख चुके हैं—८ अंगुल से ९६ अंगुल तक

आज्यस्थाली—इस में घृत रक्खा जाता है सो उचित प्रमाण से छोटी बड़ी चौड़े मुंह की बनवाना ॥

---

* हवि के गृह से उत्तर देश में सदस्य आदि का जो गृह है उसे भी प्राग्वंश कहते हैं ॥

चरुस्थाली—जिस में होम का चरु रक्खा जाता है १ हाथ व्यास की सामान्य है. विशेषतः शाकल्य के अनुसार छोटी बड़ी भी बन सकती है. ये कम से कम ३ होनी चाहिये १ में मेवा दूसरी में मोहन भोग, तीसरी में सुगंधित द्रव्य—

स्रुव——१२ अंगुल से ४८ अंगुल तक और काम पड़े पर १९२ अंगुल तक बनाना पड़ता है साधारण में २४ अंगुल का उचित है अंगूठे की गांठ के बराबर गहिरा हो. खैर की लकड़ी वा तांबे आदि का बनाना

कूर्च——बाहुमात्र-कुशों का होता है. इस से सामिधेनी आदि में काम लिया जाता है ।

मुसलोलूखल—अर्थात् मूसर व ओखली-पैर से नाभिमात्र ओखली और मनुष्य के शिरतक मूसल होता है अथवा इच्छा प्रमाण बनालेना, मसर कत्था की लकडी का ओखली ढांखे की लकड़ी का यदि ये लकड़ी न मिलें तो जो प्राप्त हो उन का बना लेना—इस से यज्ञ का चरु कूटा जाता है ।

शूर्प—यह फटकने के निमित्त होता है सो बांस का बनाना चाहिये चाम से सूप न बांधा जाय ॥

जुहू—बाहुमात्र-इस में रख कर पूर्णाहुति दी जाती है ॥

मूलेखात उपल—अर्थात् सिलबट्टा-द्रव्य पीसने के काम आता है-प्रमाण जैसा समय में उचित हो बना लिया जाय—

शृतावदान-यह प्रादेश मात्र लम्बा होता है और चौड़ा दो अंगुल का इस का अगला भाग तीक्ष्ण हो-यह पक्वचरु को अवदान (शुद्ध) करने के काममें आता है ॥

उपवेश-२४ अंगुल का होता है ॥

पूर्णपात्र-१२ अंगुल लंबा चौड़ा छः अंगुल गहरा इस में २५६ मुठी चावल डाल कर ब्रह्मा को दक्षिणा में दिया जाता है-संस्कार विधि में तो इस के चावलों का प्रमाण ४ मनुष्यों का आहार मात्र है और बम्बई की छपी दर्श कर्म पद्धति में २५६ मुठी का है

प्रणीता-१२ अंगुल लंबा ८ अंगुल चौड़ा इस में यज्ञ कार्य के लिये जल रक्खा

जाता है इस के जल से यज्ञपात्र पवित्र किये जाते हैं और यज्ञान्त में इस के जल का आचमन करके प्रणीता वहीं औंधा देते है ॥

प्रोक्षणी-यह भी प्रणीता के प्रमाण होती है प्रणीता में से शुद्ध जल इस में लाया जाता और यहीं जल सब होम द्रव्यों को शुद्ध करने के काम आताहै तथा घृत आहुति कुण्ड में देकर शेष इस में छोड़ देते हैं इस घृत का भोजन किया जाता है।

अरणी-ये २ लकड़ी होती हैं यज्ञ में इन्हीं की रगड़ से आग निकाल कर प्राचीन लोग अग्न्याधानादि करते थे एक ऊपर की होती सो उत्तरारणी जो कि १८ अंगुल लंबी होती है दूसरी नीचे की अधरारणी कहाती है जो कि ४ अंगुल ऊंची और छः अंगुल गहरी होती है बीच में एक गोल दंड रहता है जो घूमता है उस को मंथन-दंड बोलते हैं ॥

[पुरोडाशपात्रीदोहोतीहैं]-इस में यज्ञ करके बचे हवि के भाग रखेजाते हैं इस की लंबाई प्रादेशमात्र और चौड़ाई आठ अंगुल की होती है तथा गहिराई छः अंगुल की बीच में मंडलाकार बनाई जाती है ॥

षडवत्त-छः अंगुल की कंकलिका के समान होना चाहिये दोनो ओर खुला हुआ ॥

यज्ञों के नाम ॥

अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, नव शस्येष्टि, आग्रायणेष्टि, चातुर्मास्य, निरूढ-पशु, सौत्रामणि, ज्योतिष्टोम जिसका नामान्तर अग्निष्टोम वा सोमयाग वाजपेय, अतिरात्र, पुत्रेष्टि, अश्वमेध इत्यादि ॥

इन यज्ञों की विधि और फल जानने के इच्छुकों को सूत्र ग्रन्थ देखना चाहिये । यह विषय बहुत बड़ा है. ऐसा सुगम नहीं कि यह विधान इस छोटी सी पुस्तक में आजाय ॥

जो होम नित्य सायं प्रातः किया जाता सो अग्निहोत्र अमावस को दर्श यज्ञ, पूर्णमासी को पौर्णमास यज्ञ, नया अन्न होने पर जो यज्ञ होता उसे नव शस्येष्टि बोलते हैं. आग्रायणी अगहन में होती है। नवशस्येष्टि कहने से अन्न की दोनों फसलें आजाती है । वसंत ऋतु में ज्योतिष्टोम यज्ञ होता है इस को सौमिक यज्ञ भी बोलते हैं अर्थात् सोमरस सम्बन्धी जो सोमलता से किया जाय ॥

ओ३म्

REGISTERED. No A 74

भारत सुदशा प्रवर्त्तक ॥

आर्यसमाज फर्रुखाबाद का प्राचीनपत्र, २० वर्ष से श्रीस्वामीजी महाराज की आज्ञानुसार प्रकाशित होता है ॥

(प्रतिमास की २८ वीं तारीख को प्रकाशित होता है जिस में वेदशास्त्रानुकूल धर्म्मसम्बन्धी, व्याख्या, स्त्रीशिक्षा, इतिहास, समाचार और अनेक मनोरञ्जक विषय सरल भाषा में छपते हैं ॥

इस पत्र का उद्देश्य सत्य सनातन धर्म नागराक्षर तथा मातृभाषा की उन्नति व ख्याति करना है

२० वां भाग ९ वीं संख्या फाल्गुन सं० १९५५ वि० मार्च सन् १८९९ ई०

विज्ञापन—सामवेदभाष्य ॥

श्री पं० तुलसीराम जी स्वामी द्वारा अनुवादित होकर ४० पेज पर अच्छे कागज मे प्रतिमास छपता है आर्यों के लिये यह अपूर्व अलभ्य लाभ है ८ अङ्क छप चुके है इस में मन्त्रों की गणना मन्त्रगान की रीति षड्जादि स्वरों की व्याख्या लिखी है और उन शङ्काओं का निवारण किया है जो प्रायः लोगों को उठती हैं ऊपर वेद मन्त्र नीचे पदपाठ पुनः प्रमाणपूर्वक संस्कृतभाष्य नीचे स्पष्ट भावार्थ व तात्पर्य भी लिख दिया है इतने काम पर भी मूल्य बहुत थोड़ा अर्थात् ३) रु० साल है अनुमान ३ वर्ष के पूरा होगा परन्तु ६)रु० अग्रिम देने से सम्पूर्ण भाष्य क्रमशः प्रतिमास मिलेगा वेदविद्याके रसिकों को परममान्य धर्मग्रन्थके उत्साहियों को पं० तुलसीराम स्वामी, स्वामी प्रेस मेरठ को निवेदन पत्र भेजना चाहिये ॥

गोली खासी की ॥

यह भी रामवाण हैं कैसी ही गीली सूखी खांसी हो इस का रस कंठ तले पड़ते ही चैन पड़ जाता है खांसी वा कभ उठ नहीं सस्ती मूल्य ।) तोला

ज्वर मर्दन वटी—जूड़ी संतत इकतरा तिजारी चौथैया विषमज्वर आदि सबको प्रमाण ३ से ५ गोली तक खाने में नहीं ठहर सक्ता १ गोली -) की है ।-)॥ तक के टिकट आने से भेजदी जायंगी। धर्मार्थ बांटने वालों को ३ रु० सैकड़ा परन्तु १०० सौ गोली से कम न बेचेंगे ॥

पं० गणेशप्रसाद शर्म्मा द्वारा सम्पादित होकर मुंशी नारायणदास जी मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद की आज्ञा से सरस्वती प्रेस—इटावा में छपा ॥

नुसखा सुजाक ॥

यह वही नुसखा है जिस ने हमारी संख्या से बाहर रोगियों को आराम किया झूठी इश्तिहारी दवाओं से लोगों का विश्वास उठ गया इस लिये इस नुसखे को हम सिर्फ विदेशियों के हाथ १।) पर बेचते हैं आप ही बना कर लाभ उठाइये सवा रुपया १।) आने पर सारी दवा व तर्कीब लिखदी जायगी। कैसा ही नया या पुराना सुजाक क्यों न हो ३ दिन में आराम हो जायगा, ऊपर की सब चीजें नक़द दाम या वी॰ पी॰ पर भेजी जायगी ॥

कन्हैयालाल श्री वल्लभलाल शर्मा जनरलमरचेण्ट किरानाबाजार फर्रुखाबाद

इतर व फुलेल का सच्चा कारखाना ॥

जो कि ७२ साल से जारी है ॥

अहह !!! सुगन्ध भी दुनिया में क्या ही अनोखी वस्तु है जो मनुष्य क्या देवी देवताओं के मन को भी प्रसन्न करती है अगर आप को असलीखास मलियागिर चन्दन का जमीन पर बना हुआ अतर जिस की प्रशंसा यह कि ज़रा भी शरीर से छू जावे मुद्दत तक सुगन्ध न जावे अगर कहीं कपड़े से लग जावे कपड़ा धोते २ फट जावे परन्तु सुगन्ध कब जाने की और जिस की तारीफ़ के सैकड़ों सार्टीफिकट राजा महाराजों सेठ साहूकारों, अमीरों, रईसों, वकील, मुख्तारों, हकीमों, हुक्कामों, और तिज्जारों के हमारे पास आये हैं ज्यादा लिखना फजूल है हाथ कंगन को आरसी क्या एक बार मंगवा कर सूंघ तो देखिये कैसा दिल को खुश मगज़ को मुअत्तर केशों को सुगन्धित कर नेत्रों को रोशनी देता है नीचे हर एक प्रकार के घटिया बढ़िया अतर और फुलेल का मोल लिखा है रूह-गुलाब ५०), ४०), फी तोला रूह पानड़ी ३) २॥) २) । रूह खस ३), २॥) २) फी तोला । अतर गुलाब २०) १५) १०) ५) ४) ३) २॥) २) १॥) १) ॥।) ॥) आने फी तोला, । अतर खस पानड़ी दौना पोदीना आम पान मिट्टी दिलचस्प और कद २) १॥) १) ॥।) ॥) तक फी तोला । अतर हिना, वर्ग, हिना गुलहिना, मुश्कीहिना और मसाला ४) ३) २) १॥) १) ॥।) ॥) आने फी तोला-तक । अतर—केवड़ा, बेला, चमेली, मोगरा, मोतिया सेवती, केतकी, चम्पा, ५) ४) ३) २॥) २) १॥) १) ॥।) और ॥) आने फी तोला तक के ।

इतर-संगतरा, काही, इलायची, ≈) ‒)॥ ‒) आने फी तोला । अतर मलियागिरी सन्दल ।) आने फी तोला जिस के दाम घटते बढ़ते रहते हैं । फुलेल चमेली-बेला-मोगरा-केवड़ा, हिना मसाला, जुही गुलरोहन, १०) ८) ५) ४) ३) २॥) २) १॥) १) ।॥) आने फी सेर तक-

इतर दानी-रंग विरंगी विलायती मजबूत कांच की फी शीशी ।)≡)≈) आने तक—

पता-बेनीराम मूलचन्द ठेकेदार फूल मुकाम कन्नौज-जि॰ फर्रुखाबाद

स्थानिक समाचार

ता० १३ मार्च को प० कालूराम जी के चि० पुत्र का मुण्डन संस्कार शुद्ध वैदिक रीति से हुआ। इस अवसर पर आर्यबन्धु और जाति व मित्रजन समवेत थे सब प्रसन्न रहे। और बालक को शुभाशिष की—

अलीगढ़ समाज के उत्सव पर प० गणेशप्रसाद शर्मा यहां के समाज की आज्ञा से संमिलित हुए

सामाजिक संदेशमाला

चौधरी जंगसिंह वर्मा मन्त्री आ०स० गढ़िया छिनकोरा की पुत्री का विवाह वैदिकरीति से हुआ इस में १०) प० द्वारका प्रसाद आदि पण्डितों को और १) आर्यावर्त्त को प्रदान हुआ हम बहुत दुःख के साथ प्रकाशित करते हैं कि बाबू गङ्गाप्रसाद जी एम० ए० डिप्टी कलेक्टर की सहधर्मिणी का ता० १ ली फरवरी को और भगिनी का दूसरी को तथा स्नेहागार माता का ७ वीं को स्वर्गवास हो गया !!!

आपने बड़ी धीर वृत्ति से अंत्येष्टि कार्य वैदिकरीति से कराये—पिण्डादि का बखेड़ा सब उड़ादिया—इस में सन्देह नहीं कि आप के इस शोकावसर पर यह उदाहरण उन की जाति में प्रथम ही है। "धीरज धर्म मित्र अरुनारी, आपतिकाल परखिये चारी"—हा कष्टम् विपत्तिपर विपत्ति इसी को कहते हैं परमात्मा उन के चित्त को शान्ति लाभ देवें॥

ता० १० । ११ । १२ । मार्च को आर्यसमाज नगर अलीगढ़ का वार्षिक उत्सव सानन्द हुआ क्या यह वार्षिक उत्सव था? अलीगढ के समाज को स्थापित हुए १४ । १५ वर्ष हुए हमारीजान यह प्रथमावसर था परन्तु उत्सव व अधिवेशन जो कहिये। बड़े समारोह के साथ हुआ इस उत्सव ने समाज की जड़ को आपाताल पहुंचादिया—ता०१० को प्रातःकाल हवन और सायं भजन व व्याख्यान हुए ता० ११ प्रातः समाज की रिपोर्ट पढ़ी गई बाद को परस्पर भेंट मिलाप दोपहर पर दो बजे से ६ बजे तक बड़ी धूमधाम से नगर कीर्त्तन हुआ गढ़राना सिकन्द्राबाद जलाली अलीगढ़ आदि समाजों की भजन मण्डलियां भजनगाती थीं जलाली आदि समाजों के लड़के सब के आगे अतिप्रेम से प्रार्थना करते थे, प० भूमित्र शर्मा जी व्याख्यान करते जाते थे अंगरेजी बाजा सब के आगे था बाबू योगीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय वकील हार्इकोर्ट प्रभृति अनेक गण्यमान्य वकील और नगर के भद्रपुरुष इस कीर्त्तन में साथ थे दो सौ के ऊपर बाहर के आर्यबन्धु पधारे थे—ता० १३ को एक से एक चढ़ बढ़ कर व्याख्यान हुए प० भीमसेन जी शर्मा इटावा प० रविशंकर जी अजमेर बाबू बलदेवप्रसाद जी बरेली लाला मुन्शीराम जी जालंधर प० तुलसीराम जी मेरठ आदि सद्वक्ताओं के प्रभावशाली व्याख्यानों ने श्रोताओं का चित्त द्रवीभूत कर दिया। इस से पूर्व के दो दिनों में प० कृपारामजी प० भूमित्रशर्मा जी प० चैनसुख जी स्वामी पूर्णानन्द जी आदि उपदेशकों के उत्तमोत्तम व्याख्यान हुए थे। अन्त में ११००) रुपये समाजस्थान के वास्ते चन्दा हुआ जिस में २५०) रु० लाला मूलचन्द्र जी

सभासद आ० म० अलीगढ़ के हैं अस्तु इसी से कहा जाता है कि मानो आज ही समाज की नींव पड़ी है। सभा का पंडाल उत्तम बना था व्याख्यान में सारा हाल भर जाता था। पीछे स्थानाभाव हो जाता था नगर के प्रतिष्ठित सुजन श्रवणार्थ पधारते रहे। और प्रसन्न रहे

अलीगढ़ समाज ने स्वागतों का यथोचित आतिथ्य किया सिकन्दराराऊ के सुजनों ने यथोचित श्रम व सहाय किया जिस से वे धन्यवादार्ह हैं

मान्यवर महाशय सम्पादक भा० सु० प्र० जी—नमस्ते

ता० २४ फरवरी को प० मुसद्दीराम जी शर्मा उपदेशक आ० प्र० सभा प० व० अवध का व्याख्यान यहां के समाज में धर्म विषय पर बड़े समारोह से हुआ जिस का अच्छा असर पड़ा ता० २५ को शंकासमाधान होता रहा ता० २६ को बाज़ार सराय अगत में विद्यादानादि विषयों पर व्याख्यान हुए हाजिरी क़रीब दो सौ के थी प्रभाव उत्तम पड़ा ता० २७ को पण्डित जी अलीगंज पधारे श्रीमती आ० प्र० सभा की सेवा में उपदेशकों को इस ओर भेजने के लिये निवेदन है जो उपदेशक फर्रुखाबाद समाज में पधारा करें वे यहां के समाज पर भी कृपा रक्खें क्योंकि यहां कोई उपदेशक नहीं है अतः आवश्यकता ही रहती है ॥

शु० चि० जगदंबाप्रसाद मन्त्री
आ० स० सराय अगत ज़ि० एटा

प०—तुलसीराम जी एम० ए० बरेली-स्कूल की अवैतनिक शिक्षा इस प्रतिज्ञा पर स्वीकार करते हैं कि उनके आदर्श-मेंस बनाया जाय, और ३००)रु० मासिक खर्च स्कूल का रहे—अभी इन्ट्रेन्स तक पढ़ाते हैं, आपने जब जीवन दिया और उचित प्रबन्ध कीजिये अधिक शर्तों में क्या प्रयोजन ?

झिरोलीखेर ज़ि०—अलीगढ़ में डीगपुर (राजपुताना) और मालसूना (पंजाब) में समाज स्थापित हो गये—

आ० म० ११ मार्च से ज्ञात हुआ कि नीचे लिखा पत्र लाला हंसराज जी लाहौर ने पं० दौलतराम शर्मा यगेट ज़ि०-मेरठ को पत्रोत्तर में लिखा है, यदि सत्य है, तो मांस का झगड़ा दूर होना सुगम है ॥

पत्र की प्रति ॥

"श्रीयुत महाशय नमस्ते—हम मांसकी विधि वेदों में नहीं मानते आपको किसी ने भरमाया है, हमें कोई मन्त्र मालूम नहीं जिस में मांसखाने की आज्ञा ईश्वर ने दी है—हंसराज"—

पं०—हरनामसिंह प्रचारक आ० प्र० सभा पंजाब ने गढ़पुर कनौज में एक हिन्दू को जो मुसलमानहो गया था शुद्ध किया, इस के हाथके भोजन चौबीसगांवके जमा हुएलोगोंने खाये, (आ०व०)

बीरपुर (राजस्थान) में जो समाज स्थापित हुआ है उस के प्रधान वहां के महाराजा साहब ही हैं ४४) रु० मासिक चन्दा और १९ सभासद हुए हैं

प्रणव व्याख्या—(फरवरी के पत्र के १० वें पेज से आगे)

हे ब्रह्मन्—ओ३म् इस शब्द के वाच्य आप हैं, । सारे संसारमें व्याप्त हैं। आप की आज्ञा का पालन सब को करना चाहिये। उपदेश के आरम्भ में अच्छे प्रकार स्मरण करने योग्य आपही हैं। आप की महिमा ज्ञेय है। हे भगवन्! आप की स्तुति सामवेद करता है। ऋषि महर्षि ओ३म्, ओम् ऐसा उच्चारण करते हैं। शन्नोमित्रः इत्यादि मन्त्रों में कल्याणमय " शम् " आपही हैं। यज्ञ में-अध्वर्यु अर्थात् यजमान ब्रह्मादि के (प्रतिगर) प्रत्युत्तरमे ओ३म् ऐसा बोल कर कार्य सम्पादन करता है। यज्ञ कराने वाला चारों वेदोंका ज्ञाता ब्रह्मा ओ३म् का उच्चारण करके आप की स्तुति करता है। अग्निहोत्री लोग प्रतिदिन अग्निहोत्र में आप का भजन करते हैं। विद्यारम्भ में गुरुलोग शिष्यों से प्रथम ओंकार वाच्य आप का उच्चारण कराते हैं। ऐसी आप की महिमा को जान कर जो ध्यान करता है उस के सकल मनोरथ पूर्ण होते हैं—किन्तु शुद्ध हृदय और चित्त के एकाग्र भाव की आवश्यकता है, जैसा कि उपनिषद् में कहा है॥

प्रणवोधनुःशरोह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेनवेद्धव्यं शरवत्तन्मयोभवेत् ॥मु०खं०२श्लो०४॥

(प्रणवः)-ओंकार (धनुः) धनुष् (आत्मा,हि) जीवात्मा (शर) बाण (ब्रह्मतत्, लक्ष्यम्, उच्यते) ओंकार वाच्य परमेश्वर लक्ष्य (निशाना) है-उसे (अप्रमत्तेन) अप्रमादी होकर (वेद्धव्यम्) वेधना चाहिये जैसे बाण सीधा लक्ष्य (निशाने) पर जाता है ऐसे ही (तन्मयोभवेत्) उस में तदाकार वृत्ति वाला होना चाहिये॥

समाधिनिर्धूतमलस्यचेतसो निवेशितस्यात्मनियत्सुखंभवेत् ।
नशक्यतेवर्णयितुंगिरातदास्वयंतदन्तःकरणेनगृह्यते ॥

जब ऐसी दशा होजाती है तब कोई परमात्मा के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं सूझता—इसी का नाम समाधि अथवा सच्ची उपासना है, उस काल में उसे जो आनन्द आता है, उसका वर्णन कोई नहीं कर सकता। उस सुखानुभव को अन्तःकरण ही जानता है,

अब ओंकार के ध्यान का फल कहते हैं—

प्रश्नोपनिषद् में शिबि के पुत्र सत्यकाम ऋषि। महात्मा पिप्पलाद से पूछते हैं—

अथहैनं शैव्यः सत्यकामः पप्रच्छ । सयोहवै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत कतमं वाव सतेनलोकं जयतीति ॥ १ ॥

हे भगवन् गुरोः !! (मनुष्येषु) मनुष्यों में (यः) जो (सः) वह (ह-वै) प्रसिद्ध तपस्वी है, अर्थात् जिसनें यमनियमादि सेवन पूर्वक (प्रायणान्तम्) आजन्म (ओंकारम्) ओंकार वाच्य परमेश्वर का (अभिध्यायीत) ध्यान किया (सः) वह (तेन) उस ध्यान के प्रताप से (कतमम्) संसार में से किस (लोकम्) लोक को (वाव) निश्चय करके (जयति) जीतता अर्थात् पाता है

तस्मै सहोवाच । एतद्वै सत्यकाम ! परञ्चापरंच ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति--२

इस के उत्तर में महर्षि पिप्पलाद ने कहा कि हे सत्यकाम ! सांसारिक सुखों की कामना से उपासना किया गया परमेश्वर अपर ब्रह्म और मुक्ति लाभार्थ, ध्यान में आये प्रभु पर ब्रह्म कहाते है-सो जैसी इच्छासे उपासना की जाती वैसी मनःकामना पूर्ण होती है-

सयद्येकमात्रमभिध्यायीत सतेनैवसंवेदितस्तूर्णमेवजगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचोमनुष्यलोकमुपनयन्ते सतत्रतपसाब्रह्मचर्येण श्रद्धयासम्पन्नोमहिमानमनुभवति ॥ ३ ॥

(सः) वह ईश्वरभक्त (यदि) जो (एकमात्रम्) अकार का (अभिध्यायीत) ध्यान करे तो (तेन,एव) उस ध्यान से (संवेदितः) प्रकाशयुक्त अर्थात् ज्ञानवान् हो कर (तूर्णम्, एव) शीघ्र ही जगत् के सुखों को (अभिसं०) प्राप्त होता है (तम्) उस को (ऋचः) ऋग्वेद की एकमात्रा अर्थात् स्तुत्युपासना (मनुष्यलोकम्) पृथिवी पर (उपनयन्ते) मानव प्रतिष्ठा का हेतु होती है-(सः) वह (तत्र) वहां (तपसाब्र०) श्रद्धान्वित तपोबलसे (सुस्पन्नः) भरापूरा रहता है और (महिमानम्, अनुभवति) महत्व अर्थात राज्यादि पदों का अनुभव करता है-

अथयदिद्विमात्रेणमनसिसम्पद्यते सोऽन्तरिक्षंयजुर्भि-रुन्नीयते।ससोमलोकंससोमलोकेविभूतिमनुभूयपुनरावर्त्तते४

(अथ यदि द्वि०) जो द्विमात्रा अर्थात् अ० उ० से समाहित स्वस्थचित्त से आत्म ध्यानकरे तो (सः) वह (यजुर्भिः) ध्यान व कर्मकांड के प्रभाव से मरने पर (मनसिसम्पद्यते) मनसम्बन्धी सुन्दर सुखों का भागी होता है-अर्थात् भ्रान्तिरहित विद्या और ज्ञान को प्राप्त होता है और (अंतरिक्षम्, सोमलोकम्, उन्नीयते) अन्तरिक्षस्थ-सुखरूपी लोकों को जाता है (विभूतिम्, अनुभूय) और मानसिक सुखों का अनुभव कर के (पुनरावर्त्तते) फिर पृथिवीपर उत्तम स्थान में जन्म धारण करता है—अर्थात् द्विमात्रिक ध्यान से स्वर्गादि सुखों की प्राप्ति करने योग्य होता है-

यः पुनरेतन्त्रिमात्रेणोवोमित्यनेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत सतेजसि सूर्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं हवै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते ॥

(यः) जो (पुनः) फिर (एतत्) इस (इत्यनेनैवत्रि०अ०) अउम् इन तीन अक्षर वाले ओंकार वाच्य (परमपुरुषम्) परमात्मा को (अभिध्यायीत) आजीवन ध्यान करे तो (सः) वह मरणानन्तर (तेजसिसूर्ये) तेज वाले सूर्य आदि में (सम्पन्नः) प्राप्त होने में समर्थ होता है (यथा) जैसे (पादोदरः) सांप (त्वचा) कैंचली से (विनिर्मुच्यते) छूटता है (एवमूहवै) इसी प्रकार (सः) वह अनन्य भक्त (कि जिस की ज्ञानवृत्ति का तार आत्मा के साथ परमात्मा से मिला है और वह निर्वातस्थान में जलते दीप ज्योति की भान्ति निश्चलमन है अर्थात् शब्दादि विषयों से इन्द्रियों की वृत्ति को निवृत्त किये है)—(पाप्मना विनिर्मुक्तः) पाप रहित (सः सामभिः) ज्ञान बल से (ब्रह्मलोकम् उन्नीयते) ब्रह्मलोक को जाता है और (सः) वह उपासक (एतस्मात्) इस (जीवघनात्) शरीर से (परात्) सूक्ष्म अर्थात् प्रकृति उस से भी (परम्) सूक्ष्म अर्थात् सू-

त्मातिसूत्म (पुरिशयम्) ब्रह्माण्ड में सोते हुए के तुल्य अवस्थित (पुरुषम्) पूर्ण परमेश्वर को (ईक्षते) देखता है ॥

प्रागुक्त मात्राओं के ध्यान से अभिप्राय है कि एक मात्रा अर्थात् अकार जिस का अर्थ अग्नि विश्वविराट् आदि है सो इन अर्थों से उपासना किये गये प्रभु उपासक को तेजस्वी करके इस लोक में जन्म देते हैं वह विराट् अर्थात् परमात्मा के विविध प्रकार के रचित पदार्थों का स्वामी होकर राज्यादि सुख से सम्पन्न होता है क्योंकि उस ने इन्हीं अर्थों की प्रार्थना की है ।

इसी प्रकार जो अ तथा उ द्विमात्रा वाच्य परमेश्वर का उपासक है वह अकार सम्बन्धी उक्त सुखो से उकार सम्बन्धी अधिक सुखों का भागी होता है अर्थात् तैजस वायु व हिरण्यगर्भ नामार्थों का सेवी होने से स्वर्गादि सुख विशेषका अधिकारी होता है इस उपासक को भक्ति व कर्मकाण्ड दोनों की आवश्यकता है क्योंकि यजुर्भिरुन्नीयते ऐसा पाठ ४ थे मंत्र में आया है जोकि यज्ञादि पूर्वक उपासना बताता है क्योंकि यजुर्वेद में यज्ञ वा उपासना दो मुख्य विषय है किन्तु प्रथमोपासक (अकारसेवी) केवल स्तुति से उपासना करताहै उस की प्रवृत्ति कर्मकाण्ड परक न होने से उतना ही न्यून पदवाला रहता है

तीसरा जो कि अ उ म् तीनों का ध्यान करता है वह मुक्ति का अधिकारी है अर्थात् उन दोनों से मकार के ध्यान का अधिक फल पाने योग्य है मकार का अर्थ ईश्वर व आदित्य है अतः उसे समस्त सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं, । जिस देश व जिस क्षेत्र में जाना चाहता अव्याहत गति से आता जाता है, और परमेश्वर के दिये हुए सब ऐश्वर्यों को सानन्द भोगताहै—उस का मन सदा निर्भ्रान्त आनन्द में रहता है—एवं मुक्तिसुख भोगकर फिर भी अच्छे घर जन्म लेता है, क्योंकि उस का मकार सम्बन्धी सुखभुक्त है और अ उ० का भोग्य है अतः उत्तम कुल में विद्या ज्ञान व ज्ञान संयुक्त हो कर जन्म पाता और आनन्दित रहता है—जिन अर्थों के द्वारा जिस भावना से उपासना की जाती वैसा ही सुखानुभव होता है—इति ॥

अथ गुरुमन्त्रः ॥

ओ३म्-यजु० अ० ४० मं० १७

भूर्भुवः स्वः-तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ य० अ० ३६ मं०-३

यह मन्त्र ऋग्वेद के तीसरे अष्टक के अध्याय ४ चौथे वर्ग १० दशवें में है और यजुर्वेद के ३ । २२ । ३० और ३६ वें अध्याय में आया है तथा सामवेद में और अथर्ववेद के गोपथ ब्राह्मण में इस की विशेष व्याख्या की है मूल कि चारों वेदों में है किन्तु व्याहृति पूर्वक यजुर्वेद के ३६ वें अध्याय में हैं अतएव ऊपर यही पता रक्खा है ॥

इस मन्त्र पर मन्वादि महर्षियों ने व्याख्या की है । द्विजों अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के जप योग्य यही मन्त्र है हिन्दुओं का भी इस पर अबतक ऐसा विश्वास हैं कि कलिकाल में और तो सब मंत्र भोलानाथ महादेव ने कील दिये अतः असिद्ध है किन्तु केवल गायत्री मन्त्र का जप ही समस्त सिद्धियोंका दाता है जो हो इस में संदेह नहीं कि इस मन्त्र से अर्थपूर्वक परमपिता का ध्यान करने से अन्तःकरण पवित्र होजाता है हृदयसागर में कलुषित वासनाओं के बुद्बुदे नष्ट होकर शुद्ध संकल्पों की तरंगें उठने लगती हैं शान्ति और क्षान्ति उन लहरों में आय स्थान पाती है । जब ऐसी दशा होती है उस काल प्रतीत होता है कि समस्त सुखों का सार मैं भोग रहा हूं सुतरां सारी सिद्धियां मुझे प्राप्त हैं संसार के समस्त सुख और मुक्ति पर्यन्त पारलौकिक आनन्द उत्तम धारणा से ही मनुष्य पाता है जिस की धारणाशक्ति अच्छी होती है वही विद्वान् पण्डित होकर सब का अग्रगता और मान्य पूज्य होता है उसी धारणा अर्थात् ज्ञान व बुद्धि की इस मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गई है अतएव इस मंत्र का बड़ा गौरव और माहात्म्य है पिङ्गल ग्रन्थ के रचयिता पिङ्गलाचार्य ने अपने सूत्रो में "धी श्री स्त्रीम्" यह सूत्र रक्खा है जिसका अभिप्राय यही है कि प्रथम बुद्धि ज्ञान को प्राप्त करके ही मनुष्य लक्ष्मी (दौलत) और स्त्री का अधिकारी होता है जिस के समीप बुद्धि नहीं वह धनवान् होता हुआ भी सुख नहीं पाता वरन थोड़े ही दिनो में द्रव्य का नाश कर देता है और मूर्ख दुर्बुद्धि कुबुद्धि आदि नामों से पुकारा जाता है एक नीच कुल और भिक्षुक का बालक तक मेधा जैसी निशित खड्ग के सहारे संसाररूपी रणस्थल में विजयी होता है और अपने से न्यून बुद्धिवालों पर अधिकार जमाता है सुतराम् बुद्धिमान् की सदा जय होती है उस के मुख से अल्प शब्द निकलते परन्तु वे अर्थ

में बड़े गंभीर होते है उन से मनुष्य का चित्त आकर्षित होता है अर्थात् दूसरों का मन उस के वशीभूत होजाता है। मूर्ख के बहुत शब्द और निस्सार होते है कहा भी है "मूरख को मुंह बम्ब है निकसत वचन भुजंग। ताकी औषधि मौन है विष नहि व्यापे अंग" अतएव सब को बुद्धिमान् होने का यत्न सदा करना चाहिये यही आदेश व प्रार्थना गायत्री मन्त्र में हैं ॥

ओ३म्—अर्थात् प्रणव और भूर्भुवः स्वः इन तीन व्याहृतियों की व्याख्या पूर्व होचुकी है अतएव " तत्सवितुर्वरेण्यं " यहां से मन्त्रार्थ लिखा जाता है—

(सवितुः) जो परमेश्वर सब जगत् का उत्पन्न करने और ऐश्वर्य देनेवाला है (देवस्य) सब आत्माओं का प्रकाशक और सम्पूर्ण सुखों का दाता है (वरेण्यम्) सब से श्रेष्ठ और ग्रहण करने योग्य है (भर्ग.) शुद्ध और विज्ञानस्वरूप है (तत्) उस का (धीमहि) हम लोग अनन्य मन से ध्यान करे (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) मलिन वासनाओं से हटाकर उत्तम कामों की ओर झुकावे ॥

वस्तुतः संसार का माया मोह ऐसा ही प्रबल है कि बड़े २ ज्ञानी मोहित होजाते है तब साधारण जनों की कौन गणना है काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सरता इस अकिञ्चन जीव को अपने २ पाश में ला फांसते हैं इन बन्धनों में पड़ कर मुक्ति क्या लौकिक सुख भी नही मिलते किन्तु जो अनन्य मन से प्रभु की भक्ति में लीन हैं वे इन पाशो में नही बंधते। ईश्वर की कृपा विना कोई भवसागर पार नहीं होता परमात्मा अपने भक्तोंपर अवश्य ही कृपा करते हैं—

अतएव उन्हीं से अपना दीन वचन बोलना चाहिये कि हे दयामय प्रभो! यद्यपि हम कायर कुटिल और आप की आज्ञा के पालन में विमुख हैं तथापि अपनी ओर निहार पापो से हमें बचाइए—

आप सर्वज्ञ और सर्वत्र है यह जान कर भी मैं पापों से विरत नहीं होता फलतः आप के देखते अनेक पाप किये और करता हूं अतएव लज्जित हूं। किस मुंह से आप कोविनती करूं—आप के सम्मुख होने में अतीव लज्जा उत्पन्न होती है—मैं पुण्यपथ पर पग धरने को यत्न करता हूं किन्तु रागद्वेष आ फिसलाते देते है—कहते हैं कि किस भ्रम में पड़े हो आओ हमारे साथ चलो हम तुम्हे संसार के सुखों का भोग करावेंगे—धर्म का मार्ग कटकमय है द्वेष व घृणा के योग्य है—ईश्वर व परलोक धोखे की टट्टी है—हमारे पास कनक कामिनी और रूप का भण्डार है आओ अंगूरी मदिरा तय्यार है। सुख से जीवन व्यतीत करो—इत्यादि कह कर मुझे फुसलाते हैं। हे भगवन् मैं लोलुप होकर आप को भूलजाता हूं मेरी ज्ञानज्योति बुत जाती, विवेक चक्षु फूट जाते अहो!! अन्धा हो कर लोभादि के पीछे लग जाता हूं। दयामय!! उस समय कुछ दूर चल कर जो

ठोकर लगती है वह आप का परम अनुग्रह है-मैं ठोकर पर ठोकर खाता हूं तौभी दुष्कर्मों से विरत नहीं होता भांग मदिरा का नशा उतर जाता है और इस के सेवी एकवार कुछकाल के लिये सचेत हो जाते हैं किन्तु मैं ऐसी मोहमयी मदिरा में उन्मत्त हूं कि किसी समय सजग नहीं होता। अहो! इस गहन मोहावर्त्त से आप के सिवाय कौन छुड़ा सकता है। कृपालो! दयाकरो आप के व्यतिरिक्त कोई आश्रय नहीं है। अन्धे के नयन पंगु के पैर अज्ञानान्धकार के दीपक आप ही हो-

एवं विध जब शुद्ध हृदय से प्रार्थना की जाती तो परमात्मा अवश्य मोहजाल को काटदेते हैं-और मनुष्य दुराचारों से छूटकर सदाचार में प्रवृत्त होने लगता है ॥

महर्षि मनु जी लिखते हैं कि—

प्राक्कूलान्पर्य्युपासीनः पवित्रैश्चैवपावितः।
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्ततओंकारमर्हति ॥ अ० २।७५

शुद्ध कुशासन पर बैठा हुआ मार्जन मन्त्रादि कृत्य से पवित्र होने पर तीन प्राणायाम करके ओंकार के जपने योग्य होता है योगशास्त्र में भी कहा है "ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्" कि प्राणायाम से ज्ञान के ढाकने वाले पदार्थ का नाश होता है ॥

एतदक्षरमेतांच जपन्व्याहृतिपूर्विकाम्।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥अ०२।७८॥
सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकंद्विजः।
महतोऽप्येनसोमासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥७९॥

वेदज्ञ ब्राह्मण वा गायत्री जप का अधिकारी पुरुष ओंकार व व्याहृति पूर्वक गायत्री मन्त्र का संधि वेलाओं में जप करता हुआ वेदपाठ के फल अर्थात् ब्रह्मप्राप्ति का अधिकारी होता है और महीना भर हजारवार प्रतिदिन जप करने से पवित्र अन्तःकरण वाला होता है।

एतयर्चाविसंयुक्तः कालेचक्रियया स्वया।
ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥८०॥

द्विजजाति में उत्पन्न होकर गायत्री जप रहित जन उत्तम पुरुषों के बीच निन्दा के योग्य है—

ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ।
त्रिपदाचैवसावित्री विज्ञेयंब्रह्मणोमुखम् ॥८१॥

ओंकार व व्याहृतिपूर्वक त्रिपदा गायत्री ब्रह्म-वेद का मुह है अर्थात् वेद का प्रधान भाग वा वेद का साराश है अथवा ब्रह्म (परमेश्वर) प्राप्ति का द्वार है—

योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः ।
स ब्रह्मपरमभ्येति वायुभूतःखमूर्त्तिमान् ॥८२॥

उक्तप्रकार ३ वर्ष तक निरन्तर मितभोजी जितेन्द्रिय होकर जप करनेवाला वायु के तुल्य शुद्ध और आकाश की भान्ति निर्लिप्त पुरुष ब्रह्मानन्द को पाताहै

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टोदशभिर्गुणैः ।
उपांशुःस्याच्छतगुणः साहस्रोमानसःस्मृतः ॥

अग्निष्टोम यागादि विधियज्ञ से-खुलते शब्द में जितेन्द्रियत्वादि धारणापूर्वक गायत्री मन्त्र जप दशगुणा अधिक फल दायक है-और उपांशु जप (जिसे पास बैठने वाला भी न सुन सके) विधियज्ञ से सौगुना तथा मन में (एकान्त देश में, होठ न खुलें अर्थात् ध्यान जप) हजारगुणा फल देता है—

इन दिनो के कतिपय नास्तिक इन बातों का भेद क्या जानें, भारतवर्ष के लोग जो सत्यतादि गुणविशिष्ट होते थे उस का एक मात्र कारण यही था कि वे प्रभु के सच्चे उपासक थे । इस समय की विविध विद्या व चातुरी जो एक पग सन्मार्ग की ओर चलाती तो दूसरे पैर को उन्मार्ग की ओर भी लेजाती है-इस का कारण यही है कि वह नीति व शिक्षा धर्म और परमेश्वर से विमुख रखती है पुरातन आर्यलोग मलिनता को सदा धोते रहते थे, जैसे कुछ काल तक धोए विना मैला कपड़ा घिन उपजाता और उदासी रखता है । उसी प्रकार पापरूपी मैल से जटिल हृदय भी घृणा करता है, जैसे वस्त्र की शुद्धि रेह व साबुन लगाकर तपाने और धोने से होती है उसी प्रकार मन की शुद्धि प्राणायाम की अग्नि पर अनन्य भक्तिरूप रीठेसे, ध्यानरूपी जल से होती है। सो प्राचीन आर्यलोग यथावसर ऐसा ही करके मलिन वासना बहाते थे-और अपनी चित्तवृत्ति सम्हाले रखते थे अतएव गायत्री मन्त्र के जप से हृदय को शुद्ध रखना, मेधा बढ़ाना, द्विजो को सर्वथा योग्य है— इति ॥

हम लोगों का धनुर्वेद ॥

काल की कुटिल गति से भारतवर्ष को चाहे जो कह लीजिये, पर किसी काल में हम लोगों का विजय डिण्डिम दिग्दिगन्त में बजता था, हमारी युद्ध-मर्यादा के आगे धरातल के वीरमात्र माथा नवाते थे, दूर २ के युद्ध विद्यार्थी हमारे देश में शस्त्रास्त्र संचालन विधि सीखने को आते थे। हमारे आर्य योद्धाओं के चमत्कार शस्त्रास्त्रक्षेपण, युद्ध विरचन प्रभृति कार्यों का वर्णन समस्त पुराण इतिहासों में भरा पड़ा है। आज कल के नास्तिकभावापन्न लोग उन पर चाहे विश्वास करें, चाहे न करें पर जिन को जरा भी भक्ति विश्वास ज्ञान बुद्धि है वे कभी उन वीर लीलाओं से इनकार नहीं कर सकते।

हम लोगों के उस रण रहस्य का खजाना धनुर्वेद था। धनुः शब्द कमान का वाचक होने पर भी मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और मन्त्र मुक्त चार भांति के आयुधों का बोधक था। सो कहना नहीं होगा, कि इस में तीर कमान बरछी भाला, तोप बन्दूक, गोली बारूद सभी चीजें आगई। उन गोली बारूद तोप बन्दूक प्रभृति सभी चीजों का प्राचीन काल में अस्तित्व समझाने के लिये हमारे पास स्थान नहीं है। और न हमारा अभीष्ट ही है। हम सिर्फ यही समझावेंगे, कि प्राचीन धनुर्वेद में जिन बातों का वर्णन है, वह आजकल कितनी असाध्य होरही हैं। धनुर्वेद के दो ग्रन्थ आज कल भी मिलते हैं। उनमें एक महर्षि विश्वामित्र प्रणीत और दूसरा शार्ङ्गधरकृत है। इन में धनुर्धर प्रशंसा धनुर्दानविधि, धनुर्दानमंत्र, वेधप्रकार, चापप्रमाण, गुणलक्षण, स्थानमुष्टि, आकर्षण, गुणमुष्टि, आय, लक्ष्य, अनध्याय, श्रमक्रिया, लक्ष्यस्खलन, दृढभेदिता, हीनगतिः, शुद्धमति, दृढ़चतुष्क, चित्रयुद्धविधि, धावल्लक्ष्य, शब्दवेधित्व, बाणलोह के मसाले, शस्त्रवारण, संग्राम, व्यूह, अक्षौहिणी साधन, वगैरह अनेक गुप्तरहस्य भरे पड़े हैं। तिस के पीछे ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मदण्ड, ब्रह्मशिरः, पाशुपत, वायव्य, आग्नेय, नारसिंह वगैरह दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग और उपसंहार भी वर्णित है। सव्यसाचित्व, प्राप्त करने की विधि भी गाई गई है। अन्यान्य शस्त्रास्त्र के रहते भी आगे आर्यों में धनुर्बाण ही बहुत प्रचलित था। एक आर्य क्या उस समय कस्तान, यवन, मुसलमान, ईरानी, शकुचीन, सभी धनुर्बाण का व्यवहार करते थे। क्रमशः दिव्य अस्त्रों का लोप हुआ। रहे शस्त्र उन शस्त्रों का भी शब्दवेधित्व धावल्लक्ष्य, असल्लक्ष्य, प्रभृति सिद्ध गुणों का लोप हुआ।

पृथिवीराज के समय तक शब्दवेधित्व और अर्जुन के समय तक भ्रमरलक्ष्य, मीनवेध, सव्यसाचित्व प्रभृति का पता लगता है। आगे धनुर्विद्या का ही लोप हुआ। जो कुछ रह गई वह द्रोणाचार्य के शिष्य एकलव्य भिल्ल के वंशधर मेवाडी भीलों में रहगई। पृथ्वीराज ने कैद में पड़कर भी चन्द्रभाट के कहने से अपने शत्रु शहाबुद्दीन को सात लोह के तवक भेदकर इसी शब्द वेधित्व गुण से मार डाला था।

धनुष गया। बंदूक में उन प्राचीन शब्दवेधित्व प्रभृति प्रक्रियाओं का साधन नहीं हो सकता? क्षत्रिय प्रवर झाला सुरतान सिंह बहुत दिनों से इस की तलाश कर रहे थे। अन्त में "जिन ढूंढा तिन पाइयां" कहावत चरितार्थ हो गई। उन्हों ने बन्दूक के अनेक आश्चर्य लक्ष्यवेधों को सिद्ध कर लिया।

यथा–(१) मट्टी की हण्डी को रस्सी में झुलाना और घुमाकर उस में गोली मारना (२) एक चद्दर मे छोटासा छिद्र रखकर उसी छिद्र से उस भ्रमती हुई हण्डी को वेधना, (३) पांचरङ्ग के घूमते हुये गोलों में से जिसे दर्शक कहें उसे ही गोली से उड़ा देना, (४) टीन की चद्दर में छिद्र करके घूमते हुए उक्त पांच गोलो में से पाठक जिसे कहें, उसे उड़ा देना, (५) लकड़ी में पांच गोले लटका कर फिर दर्शक जिसे कहें, उसे वेधना (६) फोटोग्राफ को घुमाना और दर्शक उस चित्र के जिस अंग को कहें, उसे ही फोड़देना (७) एक नारियल पर सुपारी रखकर दर्शक को तलवार पकड़ा देना, फिर एक वस्त्र की चोट से नारियल और सुपारी दोनों को काटना, (८) पीठ पीछे वत्तीबाल कर पास ही एक निशाना रखना और पीछे विना देखे निशाना उड़ा देना,। इस में वत्ती नहीं बुझती (९) पैरों के बीच बन्दूक रखकर विना पीछे देखे निशाना उड़ाना (१०) परदे में छोटे से छिद्र के द्वारा मनुष्य के चित्र के चाहे जिस अंग को उड़ा देना (११) जमीन पर चित्त लेटकर ऊपर लटकते निशाने को नीचे दर्पण में देखकर मारना, (१२) चित्त लेटकर अपने सिर की तरफ के निशाने को विना उधर देखे हाथ में अधर बन्दूक लेकर उड़ा देना, (१४) एक बड़े मटके में घास से लपेट कर चार रंग के न्यारे २ गोले रखना और फिर मटके का घुमाना, आगे दर्शक जौनसा गोला कहें, तौन सा फोड़ देना (१५) साम्हने मिट्टी के चार रंग के जुदी २ आवाज़ देने वाले ४ घड़ों को रखाकर अपनी आंखों में पट्टी (शेष आगे)

जीव (रूह) क्या है—जनवरी के १६ वें पृष्ठ से आगे ॥

पारसी मत के मूल पुरुष जरदश्त जीव को अनादि मानते, और आवागमन के पोषक हैं—(देखो दसातीर फराजाबाद वख्शूराव खशूर आयत १३६ व १३७) पारसियों के पैगम्बर सासान् अव्वल अपने नामा की १९ वीं आयत में लिखते है कि रूह एक जिस्म से दूसरे में जाने वाली है, जिस की शरामें पाचवें सासान् ने बड़ी उत्तमता से इस बात को प्रमाणित किया है, और नामा अव्वल की आयत ७० व ७२ में भी इस का वर्णन है, कि इस देह में मनुष्य अपने पहिले शरीर के कर्मानुसार सुख दुःख सम्बन्धी फल पाता है (देखो सबूततनासुख पं० लेखरामकृत पृ० २७३) ॥

बौद्ध मत वाले भी आवागमन मानते हैं, पं० लेखराम जी के निश्चय के अनुसार यह मत ईसा से ६३० वर्ष पहिले प्रचरित हुआ, इस के प्रचारक क्षत्रिय वर्ण शाक्यसिंह गौतम हुए थे, इस पृथिवी पर ७० करोड़ के अनुमान इन के अनुयायी हैं, इन का सिद्धान्त है कि कर्मानुसार बार २ जन्म लेना पड़ता है, । (देखो आवागमन विचार पृष्ठ ७)

बौद्धमजहब के मुकल्लिदों का बड़ा मकसद यह होता है कि निर्वाण (मुक्ति) हासिल करें यानी फना हो जावें क्योंकि बुद्ध की तालीम के बमूजिब इन्सान नफसानी शहवतों (कामादिकों) व जहमतों (आपत्तियों) और आत्मा के दाइमी आवागमनों से इसी तरह निजात पा सकता है (सुफा ३१ मुख्तसरतारीखहिन्द * लेथब्रुज साहब) अथवा (सु० त० पे० २८५)

बाइबिल व कुरान वाले भी जीवात्मा तथा आवागमन के सिद्धान्त से स्पष्टरूप से तो नहीं हटसकते यद्यपि उन के मत में इस विषय का यथोचित वर्णन नहीं है तथापि इन लोगों में अनेक ऐसे निष्पक्ष भी है कि वे आवागमन के कायल हैं पं० लेखराम जीने बाइबिल से कुछ प्रमाण जीव और उस के जन्म ग्रहण पर पहुचाये हैं, उन में से कुछ पङ्क्ति नीचे लिखी जाती है ।

"देखो खुदावन्द के बुजुर्ग और हौलनाक (भयानक) दिन के आने से पेश्तर में एलियाह † नबी को तुम्हारे पास भेजूंगा (मलाकी की किताब $\frac{४}{५}$) मसीह से ३१७ साल पेश्तर—

* चीफ हिस्ट्रीआफ इण्डिया इस नाम से अंगरेजी में यही इतिहास है ।
† अंगरेज लोग इलाया भी बोलते हैं ।

मसीह कहता है " इलियास (एलियाह) जो आने वाला था यही (यु-हन्ना) है। चाहो तो कबूल करो जिस के कान सुनने के हों सुने (मत्ती $\frac{११}{१४}$)

तब उस के शागिर्दोंने उस से पूछा कि फकीह * कहते हैं कि पहिले एलियाह का आना जरूर है, यसू ने उन्हें जवाब दिया कि एलियाह अलबत्ता पहिले आवेगा, और सब चीजों का बन्दोबस्त करेगा पर मैं तुमसे सच कहता हूं कि एलियाह तो आचुका, लेकिन उन्हों ने उस को नहीं पहिचाना बल्कि जो चाहा उस के साथ किया। इसी तरह इब्नआदम (आदम की संतान) भी दुःख उठावेगा, तब शागिर्दों ने समझा कि उस ने उन से यूहन्ना बपतिस-मां देने वाले की बाबत कहा " (मत्ती $\frac{१७}{१३-१०}$ और यही जिकर मरकस $\frac{९}{१३}$) में है ॥

"इन्सान तो इन्सान है उसे तनासुख (आवागमन) से कब गुरेज है जब कि खुद खुदा को भी तनासुख के चक्कर में आना पड़ा (सबूत त० पृ० ३६१)

"अनेक सुजनों की आवागमन पर सम्मति"

सदहा मुसल्मान भी जरदश्त को नबी जानते हैं और उस के मुअजिजात के कायल हैं (स० त० पृ० २७३)

यूनानी फिलासफर फीसागोरस जो ईसा से पूर्व छठी शताब्दी अर्थात् ५३९ वर्ष पहिले भारत से शिक्षा पाकर यूनान में धर्म प्रचारक हुआ पुनर्जन्म का मानने वाला था यह बात पीटर पार्ली साहब की युनीवर्सल हिस्ट्रीबाब ५९ से प्रमाणित है।

इसी प्रकार युनानी हकीम सुकरात (साक्रेटीज) जो ईसा से ४६८ वर्ष पूर्व जन्मा था जीवात्मा का आवागमन मानता था और इस विषय में यहां के (भारत वर्ष के) पण्डितों से शिक्षा ग्रहण की थी यह बात वाइज साहब की हिस्ट्रीआफ मिडीसन पृ० ३५ व ९४ से प्रतिपन्न है। प्राचीन मिसरी भी जीव को अमर और जन्ममरणधर्मा मानते थे। हेरोडोटस ने (जो ईसा से ४८४ वर्ष पूर्व जन्मा था ॥

* शरा के जानने वाले

ओ३म्

२३६

REGISTERED. No A 74

भारत सुदशा प्रवर्त्तक ॥

आर्यसमाज फ़र्रुखाबाद का प्राचीनपत्र, २० वर्ष से श्रीस्वामीजी महाराज की आज्ञानुसार प्रकाशित होता है ॥

(प्रतिमास की २८ वी तारीख़ को प्रकाशित होता है

जिस में

वेदशास्त्रानुकूल धर्मसम्बन्धी, व्याख्या, स्त्रीशिक्षा, इतिहास, समाचार और अनेक मनोरञ्जक विषय सरल भाषा में छपते हैं ॥

२० वा भाग ८ वीं संख्या माघ सं० १९५५ वि० फरवरी स० १८९९ ई०

इस पत्र का उद्देश्य सत्य सनातन धर्म नागराक्षर तथा मातृभाषा की उन्नति व ख्याति करना है

पं० गणेशप्रसाद शर्म्मा द्वारा सम्पादित होकर मुंशी नारायणदास जी मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद की आज्ञा से सरस्वती प्रेस—इटावा में छपा ॥

जिलाफर्रुखाबाद के समाचार

यहां (फर्रुखाबाद) के समाज में प० गणपति जी शर्मा का व्याख्यान ता० ११ रविवार को ईश्वर भक्ति विषय पर उत्तम हुआ—पण्डित जी के कथन का अच्छा असर पड़ा समाज की ओर से उन को धन्यवाद दिया गया।

ता० १२ को यहां के समाज ने लाला परमानन्द मन्त्री आर्यसमाज कायमगंज के लेखानुसार प० गणेशप्रसाद शर्मा को मुण्डन संस्कार कराने भेजा, तदनुसार पण्डित जी ने चूडाकर्म वैदिकरीति से कराया. तदुपरि ला० कन्हैयालाल जी सभासद आ० स० फर्रुखाबाद ने संस्कार विषय पर व्याख्यान दिया. जिस की पुष्टि प्रागुक्त पण्डित जी ने की और धर्म विषय पर कुछ कथन किया शुभकामों में यहां के समाज में यह पहिला संस्कार है परमात्मा आर्यों का धर्म में उत्साह बढ़ावें—

इस से पूर्व ला० नानिकराम जी सभासद की अन्त्येष्टि वैदिकरीति से घृतादि द्रव्य सम्पन्न हुई थी ६०। ७० आर्यबन्धु बड़ी सहानुभूति से उस समय समवेत थे। जिन के हितभाव को देख कर दूसरे लोग जो समाज को एक खेल समझते थे सच्चा हितैषी जानने लगे—

सामाजिक संदेशमाला॥

महाराज दरभङ्गा के भेजे द्रव्य में से पंजाब गवर्नमेण्ट ने ५००) हिन्दू अनाथालय लाहौर को और २००) रु० आर्यसमाज फीरोजपुर अनाथालय को दिये

पंजाब की यूनीवर्सिटी ने आयुर्वेद की शिक्षा का कार्य दयानन्द ऐङ्गलो वैदिक कालेज लाहौर के आधीन किया—हर्ष की बात है कि उक्त कालेज में अब वैद्यक शिक्षा हुआ करेगी।

श्रीमान् लेफ्टिनेण्ट गवर्नर पंजाब ने इस कालेज को सब से बड़ा और सस्ता ठहराया है। अर्थात् यहां थोड़े व्यय में शिक्षा होती है—

दयानन्द हाईस्कूल जालन्धर तथा कन्या महाविद्यालय जालन्धर उत्तम दशा पर चलता है। यहां धार्मिक शिक्षा भी अत्युत्तम होती है—२६।२७ दिसम्बर को आर्यसमाज जालंधर का वार्षिक उत्सव बड़े समारोह के साथ हुआ ३०० आर्य और ४० आर्याणी बाहर से पधारी थीं—गुरुकुल के वास्ते बाबू ज्वालासहाय जी रईस मियानी ने दशहज़ार रुपये की लागत की धरती दान की और २२३०) कन्या महाविद्यालय के वास्ते एकत्र हुआ तथा जालंधर अनाथालय में ५६२) वेदप्रचार फंड में ३०५) और लेखराम मेमोरियलफण्ड में ४५) वसूल हुए। उक्त विद्यालय की लड़कियों के हाथ की बनी कारीगरी की चीजें वेचीं गईं जोकि विद्यालय की विद्या के सिवाय शिल्पशिक्षा का प्रमाण थीं—

दयानन्द एंगलोवैदिक कालेज मेरठ के लिये आर्यसमाज मेरठ के वा-

विक्टोरसध पर ६००)रु० नकद और ६००) वादे में हुआ ॥

महाराजदरभङ्गाने एक अनाथालय स्थापित करने को १ लाखरुपया दान किया।

अमरावती में ६ जनवरी ९९ ई० को एक विधवा विवाह हुआ जिस में-वर मिस्टर गोपले सब रजिस्टरार और वधू लक्ष्मी बाई हैं ॥

लंदन युनिवर्सिटी में ११३ स्त्रिया भी बी० ए० पास हुई—

आर्यमित्र से ज्ञात हुआ कि शाहदरे के मनुष्यों ने एक पंचायत इस उद्देश से नियत की है कि अदालत में अभियोग न जाकर पंचायत से ही फैसल होजाया करें—

आ० स० सिकन्दराबाद व आ० प्र० सभा का अधिवेशन २५।२६।२७ दिसम्बर को बड़े उत्साह से हुआ १५०० के अनुमान बाहर से आये आर्यबन्धु थे. (१२००) वेदप्रचार के लिये चन्दा हुआ. कुछेक मुसल्मानों ने नगर-कीर्त्तन होने में रुकावट की तब समाज ने हाकिम ज़िला को तार दिया न्यायप्रिय मेजिस्ट्रेटने तुरन्तु उत्तम प्रबन्ध करादिया. अतः ता० २६ को बड़े उत्साह से नगर कीर्त्तन हुआ जिस की जमघट देख विपक्षियों का हृदय कंपित होता था आर्य बांधवों का हृदय फूला नहीं समाता था परस्पर मिलने का मुख्य यही अवसर था. वैसे न तो व्याख्यानों व सभा कार्यों से फुरसत थी न उस समय वार्त्तालाप हो सकता था तथा भिन्न २ स्थानों पर ठहरने के कारण मिलने जुलने में सुगमता भी न थी इस समय इन के आनन्द की सीमा न थी। एक दूसरे को सहोदर भ्राता के समान गले लगा रहे थे। परस्पर की कुशल पूछते उन की मुदश्री आनन्द के सागर में मग्न होती थी। भीड़ के कारण एक को दूसरे की रगड़ बड़ी प्रिय लगती थी। इस से बढ़ कर और सुख क्या है। स्वर्ग में विशेष क्या है ?। अस्तु इस नगरकीर्त्तन में ७ चौक थे। सब के आगे ओङ्कार युक्त झण्डा और बाजा था जिस पीछे वेद मन्त्र पढ़े जाते थे उस के पीछे प० भूमित्र जी व स्वामी परमानन्द जी का व्याख्यान होता आता था। तत्पूर्व हीरालाल जी (जोकि पूर्व में हैदरअली नामक यवन थे और वेलोन समाज ने उन को शुद्ध कर नाम हीरालाल रक्खा था) मुसल्मानी वेद की व्यवस्था खोलते जाते थे। इन के परे मास्टर अमीरचन्द जी प्रभावशाली भजन व व्याख्यान करते थे इस चौक में वादित्र (बाजा) भी था उस के पीछे सिकंदराबाद की भजन मण्डली ३ गोलों में बंटकर करताल व ढोलक पर रोचक भजन गाती थी-यों दो बजे से सायंकाल तक बहुत ही आनन्द रहा इस दिन तथा ता० २५ को समाजस्थान में हवन तथा उत्तमोत्तम व्याख्यान हुए उपदेशकों की कमी न थी समाज के लिये पण्डाल अत्युत्तम बनाया गया था आर्य प्रतिनिधि सभा के १७६ प्रतिनिधि सभासद विद्यमान थे सिकंदराबाद के

टौन हाल में इस सभा का अधिवेशन हुआ था। यह सर्कारी स्थान इस कार्य के लिये बहुत अच्छा था दोनों दिन के निश्चय का सारांश यह है कि कालेज सुसाइटी उन शर्तों पर जो कि कालेज प्र० स० के कुछ सुजनों ने नवम्बर में तैकीं (कि १६। १७ हज़ार रुपया प्र० स० के हस्ते किया जाय और वही कालेज का प्रबन्ध करें वर्त्तमान रजिस्टरी तोड़ दी जाय इत्यादि) स्वीकृत करके कालेज देवे तो प्र० सभा को लेलेना चाहिये। ऐसा होने पर पं० तुलसीराम जी एम० ए० आगरा निवासी ने (जो अब १००) रु० मासिक पर रियासत मुरसान में राजकुमार को पढ़ाते हैं) कालेज को अपना जीवन समर्पण करने का वचन दिया जिस पर सभा ने अत्यन्त हर्ष प्रकट किया और उन को धन्यवाद दिया—

फर्रुखाबाद में संस्कृत आर्यपाठशाला खोलना निश्चित हो कर अनुमान ३००) रु० साल का चन्दा उपस्थित सुजनों से लिखा गया ५००) फर्रुखाबाद का रहा—

वार्षिक आय व्यय प्र० स० का आवजद बनाया गया—

मुरादाबाद में आगामि अधिवेशन होना निश्चित हुआ आर्यमित्र पत्र नागरी भाषा में निकलना स्वीकृत हुआ—

चार आना दिवाली पर वेद प्रचार फण्ड को देने की रीति तोड़ दी गई और नीचे लिखे प्रमाण पदाधिकारी मनोनीत हुए—

प्रधान—पं० भगवान दीन जी महाशय

उपप्रधान—बाबू रामदयाल सिंह जी रईस कुंदरखी, तथा चौधरी हुक्मसिंह जी ज़मीदार आगई॥

मन्त्री—मुन्शी नारायण प्रसाद जी मुरादाबाद॥

पुस्तकाध्यक्ष—मुन्शी श्यामसुन्दर लाल जी बी० ए० साइन्स मास्टर मुरादाबाद और भूत पूर्व सभासद आ० स० फर्रुखाबाद॥

कोषाध्यक्ष—साहू ब्रजरत्न जी महाशय रईस मुरादाबाद इस के सिवा अंतरंग सभा के सभासद भी चुनेगये—अतः पर सभापति आदि को धन्यवाद देकर कार्यवाही समाप्त की गई—

ईश्वरानन्दगिरि का मिथ्या प्रलाप॥

(जनवरी के पत्र के आठवें पृष्ठ से आगे)

हे (अग्ने)! मनुष्य के जन्म को प्राप्त हुए (मेधाय) सुख की प्राप्ति के लिये (चीयमानः) बढ़े हुए (सहस्राक्षः) हज़ार प्रकार की दृष्टि वाले राजन् तू (इमम्) इस (द्विपादम्) दो पग वाले मनुष्यादि और (मेधम्) पवित्र कारक फलप्रद (मयुम्) जंगली (पशुम्) गवादि पशु जीव को (मा) मत (हिंसीः) मारा कर, उस (पशुम्) पशु की (जुषस्व) सेवा कर (तेन) उस पशु से (चिन्वानः) बढ़ता हुआ तू (तन्वः) शरीर में (निषीद) निरन्तर स्थित हो यह (ते) तेरे से (शुक्) शोक (मयुम्) शस्यादि नाशक जंगली पशु को (ऋच्छतु) प्राप्त होवे (ते) तेरे (यम्) जिस शत्रु से हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तम्) उस को (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे॥

पाठक ! अब आप लोग विचारें कि इस में नर हत्या कहां लिखी है इ-सी प्रकार और भी किसी महर्षिकृत मन्त्रार्थ में नहीं है । जिन का जी चाहे वेदभाष्य निकाल कर देखलें—हां भावार्थ में जो लिखा है यदि उस से नर वा पशु हत्या गिरि जी भावें तो भी ठीक नहीं—

उक्त मन्त्र का भावार्थ देखिये कोई भी मनुष्य सब के उपकार करने हारे प-शुओं को कभी न मारे किन्तु इन की अच्छे प्रकार रक्षा करें और इन से उपकार लेके सब मनुष्यों को आनन्द देवें जिन जंगली पशुओं से ग्राम के पशु खेती और मनुष्यों की हानि हो उन को राज पुरुष मारें और बन्धन करें"—

इस भावार्थ से भी गिरि जी का पक्ष समर्थन नहीं होता खेती व प्रजाको सताने वाले सिंह व भेड़िया तथा रोझ आदि जन्तुओं को प्रजाहितार्थ (न स्वार्थता के लिये) राजालोग माराही करते हैं पशुओं को ही नहीं किन्तु अपराधी मनुष्यों को भी दण्ड वा फासी दी जाती है यह राज धर्म है सामा-न्य धर्म नहीं—भावार्थ में भी मारने व बांधने से केवल यही अभिप्राय नहीं कि प्राण लेले—अमुक के थप्पड़ मारो इस का यही अर्थ नहीं कि जान से मारडालो—

अब रहा कि सं० ३३ की छपी पुरानी संस्कारविधि में पुत्रोत्पादनार्थ मांस युक्त भातखाने की विधि लिखी है—सो यह लेख स्वामी जी का नहीं है । वरन आप के महामान्य ग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण के चौदहवें काण्ड के नवें अध्याय का है—जिस में केवल दूध दही में चांवल तथा एक स्थलपर मांस के साथ चावल खाना लिखा है । इन्ही बातों के कारण तो आर्यलोग ब्राह्मण ग्रन्थों को चारों वेदों में नहीं गिनते तथापि संस्कार विधि में लेख होने से जब लोग ऐसा सं-देह करने लगे कि स्वामी जी का यह मत तो नहीं है तब महर्षि ने पबलिक लेकचर में कह दिया वह मेरा मन्तव्य नहीं है न उस का प्रसंग कही उन को लिखे सत्यार्थ प्रकाशस्थ ५१ मन्तव्यों में है दुबारा जब श्री जी ने संस्कारविधि छपाई तो वह मांस भात का लेख निकाल दिया अत एव जो बात आर्य लोग नहीं मानते उस के लेख का अब क्या प्रयोजन है । सच तो यह है कि काग-वृत्तिजनों की दृष्टि सदा मलिनता पर पड़ती है आर्य समाज की उत्तम शिक्षा और कर्त्तव्यता पर दृष्टि न देकर छिद्रान्वेषी सदा ढूढ़ते हैं कि कहीं कोई दोष निकालें—जब नहीं मिलता तब कुछ पच कर मिथ्या प्रलाप करने लग जाते हैं—जो पुरुष निर्दोष हैं उन्हें दोष लगाते और जिन्हों ने असङ्गत अर्थ किये उनका पक्ष कर कहते है कि दयानन्दी लोग महर्षि महीधरादि की निन्दा करते हैं—

क्या "गणानांत्वा०" इत्यादि मन्त्रों के असभ्य अर्थ महीधर ने नहीं किये वा "ये वाजिनंपरिपश्यंति०" आदि में उन्हों ने यज्ञ में घोड़े को मांस का पकाव का दुष्टार्थ नहीं किया-यदि किया तो आर्यसमाज पर क्यों आक्षेप करते हो? पहिले अपनी आंख का तिनका निकाल लीजिये तब दूसरों पर झोका करिये॥

ओ३म्

प्रणवव्याख्या ॥

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादामात्रा मात्राश्चपादा अकार उकारो मकार इति ॥ (माण्डूक्योपनिषदि)

अ, उ, म्, इन तीन अक्षरों का समुदाय "ओ३म्" है। यह परमेश्वर का मुख्य नाम है. इस को प्रणव भी कहते हैं। "प्रकर्षेण नयतेऽनेन" अर्थात् प्रकृष्टता से जिस के द्वारा जगदीश्वर को पाते हैं सो यह ओ३म् है—

वेदादि शास्त्रों के पठन पाठन और समस्त शुभ कार्यों में ओ३म् का प्रथमोच्चारण है। इसी के ध्यान से योगी जन सद्गति पाते हैं। समस्त ऋषि मुनियों और धर्म शासकों ने इसीको आराध्य माना है। ऐहिक और पारलौकिक सारे सुखों का यही भवन है. सम्पूर्ण सिद्धियों का मूल है. इस की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है महात्मा मनुजी कहते हैं कि "अकारंचाप्युकारंचमकारञ्च प्रजापतिः। वेदत्रयान्निदुहद्भूर्भुवः स्वरितीति च"—प्रजापति ने ऋग्, यजु साम इन तीनो वेदों से अ उ म् ये ३ अक्षर निकाल कर "ओ३म्" का उपदेश किया है—महर्षिस्वामीदयानन्द स० जी महाराज ने इस का परमसहत्त्व बताया है ॥

अकार से अग्नि, विश्व, विराट् आदि नाम वाले प्रभु को पहिचानो—ऋग्वेद में "अग्निमीले पुरोहितम्" यह पहिला मन्त्र है। उस के आरम्भ में अग्नि शब्द आया है उसी से अकार लिया गया है। वर्णमाला की आदि में भी प्रथम अकार ही का उच्चारण है ऋच् धातु स्तुति अर्थ में आता है जिस से कि ऋग्वेद शब्द बनता है। उसी वेद से निकला अकार स्तुति स्वरूप है। अर्थात् तद्वाच्य परमात्मा ही स्तुति करने योग्य है। वही सर्वज्ञ ज्ञानस्वरूप होने से ध्येय है। शतपथ में भी कहा है "वागेवऋग्वेदो मनोयजुर्वेदः प्राणः सामवेद इति" ऋग्वेद में वाणी का कर्म स्तुति प्रधान है। यजुर्वेद में मन का कर्म उपासना प्रधान और सामवेद में प्राण का क्रियाज्ञान मुख्य है—माण्डूक्य उप-

निषद् के ९ वें मन्त्र में भी अकार की व्याख्या है। यहां पर अग्नि की ठौर वैश्वानर शब्द है। जो अग्नि का पर्याय वाची है॥

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद

निघण्टु में वैश्वानर शब्द की इस प्रकार निरुक्ति कीगई है कि "विश्वान् नरान् इतो लोकाल्लोकान्तरं नयति" जो पाप पुण्य के अनुसार मनुष्यों को लोकान्तर में पहुंचाता है सो परमात्मा वैश्वानर है भूस्थानी देवता अग्नि का भी यही गुण है। जो अपने बल से द्रव्य पदार्थों को एक स्थान से दूसरे स्थान को लेजाता है। परन्तु उपासना काण्ड में अग्नि वा वैश्वानर शब्द से जलने वाली आग नहीं लीजाती—जैसे व्यवहार की (लौकिक) सिद्धि के लिये अग्नि है वैसे ही परमार्थ साधन अग्नि शब्द वाच्य परमेश्वर है॥

(जागरि०) जाग्रत् अर्थात् उत्पत्तिकाल में अकार वाच्य वैश्वानर प्रभु सब को यथायोग्य अपने कर्मानुसार चलाते हैं (आप्तेः आदिमत्त्वात्) अक्षरारम्भ में भी वर्णमाला में प्रथम अकार ही की व्याप्ति है समस्त कामों को आरम्भ में ओङ्कार का सहाय लिया जाता है (यः एवं वेद) जो ऐसा जानता है (हवै) वही (सर्वान् कामान्) सब कामनाओं को (आप्नोति) पाता है (च) और (आदिः) सब का अग्रणी मान के योग्य (भवति) होता है। इसी प्रकार ज्ञान स्वरूप होने से अग्नि, सब ठौर विद्यमान होने से विश्व, और नानाप्रकार से जगत् को बनाने के हेतु ईश्वर का नाम विराट है॥

दूसरा अक्षर उकार है. उस से परमात्मा के तैजस वायु और हिरण्य गर्भादि नामों का प्रयोजन है। यह अक्षर यजुर्वेद से निकला है वायु जैसा जीवनमूल है उसी प्रकार हमारे प्राण पोषण प्रभु हैं उपनिषद् में कहा है॥

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद॥

-(स्वप्नस्थानः) जब सब सोते हैं जो कि मध्य दशा अर्थात् जगत् की स्थिति

(आराम) है उस समय वही तैजस स्वयं प्रकाशमान और सूर्य्यादि को प्रकाश देने वाला परमात्मा जागता है। वही सब जीवों की रक्षा करता है। (उभ०) दोनों दशाओं में उत्कृष्टता से एकरस रहता है जो उपासक प्रभु को इस प्रकार जानता है (हवै) वही (ज्ञानसन्ततिम्) ज्ञानगति को (उत्कर्षति) बढ़ाता है-(अस्य) इसके (कुले) कुल में (अब्रह्मवित्) कोई नास्तिक (न भवति) नहीं होता॥

यजुर्वेद में प्रथम " इषे त्वोर्जेत्वा वायवस्थ " यह मन्त्र है। इस में वायु शब्द वाच्य परमेश्वर की स्तुति है सब से बलवान् और संसार का पोषण करने से परमात्मा को वायु कहते हैं। " वा गतिगंधनयोः " वा धातु से वायु शब्द बना है जो गति और हिंसन अर्थ में है संसार को यथायोग्य चलाना और मर्यादा में रखना प्रभु का काम है-शिष्टों की रक्षा और दुष्टों को दण्ड करने वाले वे ही हैं-सूर्यादि ग्रहों की क्या सामर्थ्य है जो उन की आज्ञा का उल्लङ्घन कर १ मिनट भी नियत समय से उदय अस्त में अन्तर करें-कठोपनिद् में भी कहा है।

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥

उसी के भय अर्थात् बांधे नियम से अग्नि व सूर्य तपता है मेघ पवन और मृत्यु (मौत) अपना २ काम करते हैं-

सूर्यादि बड़े २ प्रकाशित पदार्थ परमात्मा के गर्भ अर्थात् बीच में हैं अतः आप हिरण्यगर्भ कहाते हैं॥

मकार से प्राज्ञ ईश्वर आदित्य आदि नामार्थ परमेश्वर को जानो यह सामवेद से निकला है-उपनिषद् में भी कहा है—

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीयामात्रामितेरपीतेर्वा-
मिनोति ह वा इदꣳसर्वमपीतिश्चभवतियएवंवेद॥(११मा०)

(सुषुप्तस्थानः) अचेत (बेखबर) सोये की दशा जब जीवों की होती है। अर्थात् प्रलयावस्था में यथावत् रहने वाला (प्राज्ञः) निर्भ्रान्त विशेषज्ञ (मकारस्तृ०) तीसरी मात्रा मकार का वाच्य है सो (मितेः) प्रमाण करने अर्थात् जानने योग्य है (यः एवं वेद) जो इस प्रकार जानता है (हवै) वह निश्चय (इदम्,

सर्वम्) इस समस्त संसार के (मिनोति) यथार्थरूप से जानता है और (अ-पीतिः च भवति). स्वयं शरीर छोड़ मुक्त हो जाता है-परमेश्वर का ऐश्वर्य अनन्त है और सारे लोकों पर राज्य है इस से उस का नाम ईश्वर है-प्रभु का नाश कभी नही होता अतः उन का नाम आदित्य है। सुतराम् जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय ये परमात्मा के तीन काम है सो भी उक्त अक्षरों के भीतर हैं-भूत भविष्यत् वर्त्तमान त्रिकाल में आप एक रस रहते हैं। और सब के साक्षीरूप होकर कर्मानुसार व्यवस्था देते है यही आशय मुण्डक उपनिषद् के प्रथम मन्त्र में है॥

ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानम् ॥
भूतंभवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कारएव० ॥

ऐसे परमेश्वर का अनन्य मन से सदा ध्यान करना चाहिये कि हे पितः हमारे पाप तापों को आप ही हरने वाले है मैं आपकी सहायता विना पापों से वच नही सकता, मेरा पूर्व पुण्य ऐसा नहीं कि सुकृत की ओर झुकावे वरन जब मैं उद्योग करता हूं तो काम क्रोधादि के वेग आप के मङ्गल मय ध्यान की डोर को तोड़ते हैं हे दीननाथ ऐसी दया कीजिये कि वह मेरा मन जो अनायास आप के चरणों से हठ जाता है शिवसङ्कल्प मय हो कर सदा प्रवृत्त रहे इस अन्धे की छड़ी लूले की टेकनी निर्धनी के धन आप ही है-मेरा मन सदा आप के लक्ष्य में रहे यही प्रार्थना है॥

ओमितिब्रह्म । ओमितीदꣳसर्वम् । ओमित्येतदनुकृति ह स्म वा अप्योश्रावयेत्याश्रावयन्ति । ओमिति सामानि-गायन्ति । ओꣳशोमिति शास्त्राणि शंसन्ति । ओमित्य-ध्वर्युः प्रतिगरं गृणाति । ओमिति ब्रह्मा प्रस्तौति । ओ-मित्यग्निहोत्रमनुजानाति । ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्ना-ह । ब्रह्मोपाप्नवानीति । ब्रह्मैवोपाप्नोति ॥ १ ॥ ओ दश (तैत्तिरीय उ० अष्टमोनुवाकः)

वेदसार का लवेदपन ॥

[दिसम्बर के पत्र के १६ वें पेज से आगे]

शोक ! शोक ! ! जिस पक्ष में न केवल भारतवासी वरन कतिपय युरोपियन डाक्टर भी सहमत हैं कि सिंहादि मांसाहारी पशु मांसाहार के कारण ही आंख मीचे उत्पन्न होते हैं । उसी पर राव जी आक्षेप करते हैं । अब तो म म से विदेशियों को भी घृणा हो चली है । विलायतों में फलाहारी प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं । विजेटेरियन सुसाइटी प्रबल युक्तियों से अपना पक्ष समर्थन कर रही है ।

" श्रीयुत लीनिअस, कावीन्टन गेसेन्डी, सरराबर्ट हूम और वद्रिज (नवातात) विद्या के विद्वान् वेरिन क्यूविअर तथा प्रोफेसर लारेंस, लार्डमिनबोडो, मिस्टर टामसनलायल, आदि प्रसिद्ध विद्वान् व नेचरस्ट विद्वानों ने बहुत निरीक्षण व अनुसन्धान करके प्रकाशित किया है कि मनुष्य के दान्त, आन्त, पेट, आदि सब भीतरी व बाहरी बनावट देखने से विदित होता है कि वह मांसखाने योग्य नहीं उत्पन्न किया गया है " ॥

जो जंतु मांसाहारी होते वे अपने सेन्स (ईश्वरदत्तशक्ति) से रात को शिकार करते और मनुष्य उसी शक्ति से रात को सोते हैं ॥

अन्न शाक व फल खानेवाले के मुंह में स्लेवा (दहिनी लुआब) अधिक होता और मांसाहारी के खुश्की के कारण कम होता । यह तमोगुण का लक्षण है, इत्यादि हेतुओं से मांसाहारी आंखमीचे जन्मते हैं—जैसे कि अफीमी की आंख मुंदीसी रहती और उसे पीनक भी आजाती है—अफीमी को रात में अधिक अच्छा लगता और उसे कोलाहल भी विशेष अप्रिय है, यही दशा केवल मांसाहार करने वाले जीवों की होती है—

इस के आगे आप लिखते हैं कि पं० भीमसेन मेडीकल कालेज या रुड़की में जाकर तालीम लें नहीं तो इन मामलात में ज़बान न खोला करें ।

अब हम आप से पूछते हैं कि आप ने किस वैद्यक पाठशाला वा मेडीकलस्कूल में शिक्षा पाई है कि जिस के बल से पृष्ठ चौंसठ की चौथी पङ्क्ति में लिखा है कि "धातु सिर्फ मैथुन के वक्त बनती" और पेज ५५ में लिख मारा कि "यह कहीं नहीं लिखा कि फलां वेदमन्त्रों में ईश्वर कहता है कि हे मनुष्यो मांस मत खाव"—

राव जी क्या आपने चारों वेद देखडाले-वेद देखना तो दूर रहा जो कुछ स्वामी जी महाराज ने पौने दो वेद में लिखाहै उसे भी आप समझ नहीं सके नहीं तो अनेक स्थलों पर अर्थ छोड़ केवल भावार्थ न लिखते। जब आप को अर्थ व भावार्थ का ज्ञान (तमीज़) नहीं तो वेदों को क्या समझोगे-विचित्रता यह कि श्री स्वामीजी कृत भावार्थ में भी आपने अपनी खेंचतान की है-जिस का उदाहरण आगे मिलेगा—

आप जो वेदों में हिंसा समझते हो सो भ्रम दूर करो देखो यजुर्वेद के अध्याय १३ मन्त्र ४२ से ४९ तक स्पष्टरूप से परमात्मा कहते हैं कि हे मनुष्यो घोड़ा, भैंस, गौ, बकरी आदि जीवों को न मारो विस्तारभयसे मन्त्र नहीं लिखे। जब मारने का निषेध है तो खाने का आप ही हो गया क्योंकि विना मारे, मांस खाना नहीं बनता, यदि कोई जंगली जन विना मारे कच्चा ही मांस निगलने की इच्छा रखते हों तो उन के भयानक व्यापार का भी वेदों में निषेध है,—

इसी प्रकार ऋग्वेद के आठवें अष्टक में रक्षोहण विषय अ० ४ वर्ग पांच छः में अनेक मन्त्र हिंसाशील पुरुषों को दण्ड विधायक हैं। उन में से दो एक मन्त्र यहां लिखे जाते हैं॥

अयो दंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुपस्पृश जातवेदः समिद्धः। आजिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृक्त्व्यपि धत्स्वासन्॥

अयः। दंष्ट्रः। अर्चिषा। यातुधानान्। उप। स्पृश। जातवेदः। सम्ऽइद्धः। आ। जिह्वया। मूरदेवान्। रभस्व। क्रव्यऽअदः। वृक्त्वी। अपि। धत्स्व। आसन्॥

हे जातवेदो जातधन जातप्रज्ञ वा त्वं समिद्धः सम्यग्दीप्तः अयं दंष्ट्रोऽयोमयदंष्ट्रः तीक्ष्णदंष्ट्रः सन्नित्यर्थः, यातुधानान् राक्षसान् अर्चिषा ज्वालयोपस्पृश संदहेत्यर्थः। किंच त्वं मूरदेवान् मूढदेवान् मारकव्यापारान् राक्षसान् जिह्वया रभस्व मारयेत्यर्थः, मारयित्वा च क्रव्यादो मांसभक्षकान् राक्षसान् वृक्त्वी छित्वा आसन्नास्येऽपिधत्स्वापि धेहि आच्छादयेत्यर्थः।

॥ सायणाचार्य ॥

हे जातवेद् वा अग्ने। आप सम्यक्‌दीप्त (हो सो) तीक्ष्ण दाढ़ वाले राक्षसों को अपनी ज्वाला से जलाओ—और मारक व्यापार करने वालों (घातकों) को मारो—और मांस भक्षकों तथा कच्चामांस खाने वालों को छेदन कर अपने मुख में छिपाओ—(अर्थात् भस्म करो)॥

अग्ने त्वचं यातुधनस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम्। प्रपर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात्क्रविष्णुर्विचिनोतु वृक्णम्॥ ५॥

अग्ने। त्वचम्। यातुधानस्य। भिन्धि। हिंस्रा। अशनिः। हरसा। हन्तु। एनम्। प्र। पर्वाणि। जातवेदः। शृणीहि। क्रव्यऽअत्। क्रविष्णुः। वि चिनोतु। वृक्णम्॥

हे जातवेदः जातधन जातप्रज्ञ वाग्ने त्वं राक्षसस्य त्वचं भिन्धि विदारय। एनं भिन्नत्वचं यातुधानं हिंस्रा हिंसनशीला तवाशनिर्वज्रं हरसा तापेन हिनस्तु च हतस्य राक्षसस्य पर्वाणि शरीरपर्वाणिच प्रमृणीहि छिन्धीत्यर्थः। छिन्नेषु शरीरसंधिषु सत्सु वृक्णं छिन्नसंधिमेनं यातुधानं क्रविष्णुः मांसमिच्छन् क्रव्यात् मांसभक्षको वृकादि विचिनोतु भक्षयत्वित्यर्थः॥

॥ सायणार्थ ॥

हे जातवेद अग्ने आप राक्षसों की खाल विदीर्ण करो और इस भिन्नत्वच हिंसक को आप का वज्र हने और मारे हुए की सन्धियों को छेदो—छिन्न होने पर वृकादि (विचिनोतु) उसे ढूंढें—अर्थात् खावें—

इसी प्रकार अथर्व वेद के आठवें काण्ड के छठे अनुवाक का २३ वां मन्त्र कहता है ॥

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः ।
गर्भान्खादन्तिकेशवस्तानितोनाशयामसि ॥

जो लोग कच्चा मांस खाते और जो मनुष्यों का मांस खाते वा (क्रवि) अन्य प्रकार का मांस उड़ाते तथा जो गर्भ के और जल में पड़ी लोथों (लाशों) के खाने वाले है उन का हे परमेश्वर ! हम लोग नाश करें । अर्थात् परमात्मा ऐसों को दण्ड देते हैं ॥

पृ० ५६ में लिखा कि "पानी व वायु को तो देखिये ले खुर्दबीन कि इस एक बूंद में असंख्य जीव आप निगल जाते हैं भला इन को खाना या औंध-कर मार डालना क्या पाप नहीं है ? भला यह कैसा परमेश्वर कि आप ही यह हत्या करावे और हम से गुनाही कहे" इत्यादि ॥

(उत्तर) परमात्मा ने मनुष्य को आंखदी है तदनुसार धर्मशास्त्र कहता है "दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलंपिबेत्०" आंख से देखकर पैर बढ़ाओ और छान कर जल पियो यदि आंख से नहीं दीखता तो अन्धे का क्या दोष जो जल के कीड़े आंख से दिखाई नहीं देते उन की मृत्यु का अपराध नहीं—दोष तो उन को है जो निरपराध जीवों को अपने हाथ से काटते । और उन की उस अ-सह्यवेदना को जो घायल शरीर की चेष्टा से उस काल झलकती है देखकर कुछ भी व्यथित नहीं होते—और उन की करुणाभरी वाणी सुनकर किञ्चित भी द्रवीभूत नहीं होते. प्रागुक्त प्रकार का प्रश्न यहां के पण्डितों ने कुछेक अंगरेजी पढ़ों की मन्त्रणा से महर्षि स्वामी जी से किया था जिस का उत्तर स्वामी जी महाराज ने यों दिया था कि—

"क्या विद्याहीन लोग अपनी मूर्खता की प्रसिद्धि अपने वचनों से नहीं करादेते. न जाने यह भूल दुनियां में कबतक रहे गी. जब पात्र व पात्रस्थ जल अन्तवाले हैं तो उन में अनन्त जीव कैसे समासकें गे. छानकर वा अदृश्य श-रीर वाले जन्तु तो हजारवार पानी छानने से भी अलग नहीं होते इत्यादि ॥"

पृ० ५७ में लिखा कि हम श्री१०८ स्वामीदयानन्द जी की भी राय नहीं

नई पुस्तकों का पहिले छपे के बाद-नम्बर उसी से मिलाना ॥

महर्षि (स्वामी दयानन्द स० कृत)

१३९ सत्यार्थप्रकाश	२)
१४० ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	२॥)
१४१ संस्कारविधि	१।)
१४४ आर्याभिविनय	।)
१४५ पंचमहायज्ञविधि	≡)॥
१४६ वेदविरुद्धमत खण्डन	≠)
१४७ वेदान्तध्वान्तिनिवारण	-)
१४८ मेलाचांदापुर (शास्त्रार्थस्वामी जी का मौलवी लोगों से)	-)
१४९ शास्त्रार्थ काशी	-)
१५० आर्योद्देश्यरत्नमाला	-)
१५१ हवन मन्त्र	)॥
१५२ स्वमन्तव्यामन्तव्य	)॥
१५३ वर्णोच्चारण शिक्षा	-)

पं० कृपाराम शर्मा लिखित

१५३ प्रश्नोत्तर नागरी	)।
१५४ आत्मिकबल	)।
१५५ स्वामी दयानन्द का उद्देश्य	)।
१५६ ईश्वरविचार	)।
१५७ वेदकिस पर प्रकट हुए	)॥
१५८ वेदों की आवश्यकता	)।
१५९ सांख्यदर्शन शास्त्र	॥≠)
१६० वैराग्यशतक (भर्तृहरिकृत)	-)
१६१ चाणक्यनीति	≡)
१६१ कनफुकेयोगी बैलकी पूंछ	)।
१६२ षट्शास्त्रों की उत्पत्ति	)।

पं० तुलसीराम जी की पूर्व सूची लिखित से आगे ॥

१६३ सत्यार्थप्रकाश संग्रह	≡)
१६४ पाठक नीतिमाला तथा बालविवाह नाटक	)।
१६५ आर्यचर्पट	१२॥

१ सुनहरे मोटे वेद के मन्त्र बहुत सुन्दर शीशे में जड़ाने लायक कई मेल के -)

उर्दू की पुस्तकें ॥

१७५ षट्शास्त्रों की उत्पत्ति	)।
७६ प्रश्नोत्तर नये वेदांतियों से	)।
१७७ मिथ्याधर्माभिमान	)।
१७८ भारतवर्ष की तरक्की का सच्चा तरीका	)।
१७७ ईश्वर विचार	)।
१७८ जगन्नाथलीला	)।
१७९ जगन्नाथ का वेमुरातुर्रोना	)।
१८० भूलामुसाफिर	)।
१८१ महाअंधेरी रात्री	)।
१८२ खुदा का खौफ	)।
१८३ मसलातनासुख	)॥
१८४ शयतान	)।
१८५ कान्शन्स का खौफ	)।
१८६ अविद्या के तीनो अंग	)।।

१८७ अक़ायद इसल.मिया पर अक़ली-नज़र नम्बर १ से ८ तक (हरएकनम्बर ≠) का दाम १ पैसा) ।

१८८ हमरूहानीडाक्टर हैं	)।
१८९ हम बहिस नहीं करते	)।
१९० विधवा विवाह	)।
१९१ दूध का दूध पानी का पानी	)।।
१९२ मूर्त्तिप्रकाश	)।
१९३ व्यवहार दर्पण	)।।
१९४ मृतकस्नान	)।
१९५ बिरादरी का भूषण	)।

गणेशप्रसादशर्मा मेनेजर
आर्यगुर्जरपुस्तकालय—फर्रुखाबाद

॥ भारत सुदशा प्रवर्त्तक ॥

इस नाम का एक मासिक पत्र आर्यसमाज फर्रुखाबाद से प्रतिमास सरल भाषा नागरी अक्षरों में छपता है इस पत्र में वेदशास्त्रानुकूल धर्म की व्याख्या स्त्री शिक्षा इतिहास व संक्षेपतः समाचार आदि लेख होते हैं॥

यह पत्र प्रायः समाजों व आर्यसुजनों की सहायता व गुण ग्राहकता से २० वर्ष से छपता है। पत्र का नाम करण महर्षि स्वामीदयानन्द स० जी महाराज ने किया था मूल्य १।) मात्र डाकव्यय सहित है खर्च छपाई देकर बचत का पैसा धर्मार्थव्यय किया जाता है अतः

REGISTERED No A 74

भारत सुदशा प्रवर्त्तक ॥

आर्यसमाज फर्रुखाबाद का प्राचीनपत्र, २० वर्ष
से श्रीस्वामीजी महाराज की आज्ञानुसार
प्रकाशित होता है ॥

(प्रतिमास की २८ वीं तारीख़ को प्रकाशित होता है)

जिस में

वेदशास्त्रानुकूल धर्मसम्बन्धी, व्याख्या, स्त्रीशिक्षा, इतिहास, समाचार और
अनेक मनोरञ्जक विषय सरल भाषा में छपते हैं ॥

२० वा भाग ७ वीं संख्या पौष सं० १९५५ वि० जनवरी स० १८९८ ई०

विज्ञापन—सामवेदभाष्य ॥

श्री पं० तुलसीराम जी स्वामी द्वारा अनुवादित होकर ४० पेज पर अच्छे कागज में प्रतिमास छपता है आर्यों के लिये यह अपूर्व अलभ्य लाभ है ८ अङ्क छप चुके हैं इस में मन्त्रों की गणना मन्त्रगान की रीति षड्जादि स्वरों की व्याख्या लिखी है और उन शङ्काओं का निवारण किया है जो प्रायः लोगों को उठती हैं ऊपर वेद मन्त्र नीचे पदपाठ पुनः प्रमाणपूर्वक संस्कृतभाष्य नीचे स्पष्ट भावार्थ व तात्पर्य भी लिख दिया है इतने काम पर भी मूल्य वहुत थोड़ा अर्थात् ३) रु० साल है अनुमान ३ वर्ष के पूरा होगा परन्तु ६)रु० अग्रिम देने से सम्पूर्ण भाष्य क्रमशः प्रतिमास मिलेगा वेदविद्याके रसिकों को परममान्य धर्मग्रन्थके उत्साहियों को पं० तुलसीराम स्वामी, स्वामी प्रेस मेरठ को निवेदन पत्र भेजना चाहिये ।।

पुस्तकों की दूकान

हमारी दूकान में सब प्रकार की पुस्तकें रहती है. वंबई कलकत्ते का माल मुन्शी नवलकिशोर के प्रेस का तथा स्कूलसम्बन्धी सब पुस्तकें जो देहाती व तहसीली तथा अंगरेजी जिला स्कूलों में पढ़ाई जाती हैं कमीशन देकर बड़ी किफायत से देते हैं एक वार मंगा कर देखिये तो सही

'लालमणि शर्मा बुकसेलर बाजार चौक—फर्रुखाबाद

पं० गणेशप्रसाद शर्म्मा द्वारा सम्पादित होकर मुंशी नारायणदास जी मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखावाद की आज्ञा से सरस्वती प्रेस—इटावा में छपा ॥

इस पत्र का उद्देश्य सत्य सनातन धर्म नागराक्षर तथा मातृभाषा की उन्नति व ख्याति करना है

स्थानिक समाचार ॥

ता० ३ जनवरी को श्रीयुत बाबू पुरुषोत्तमनारायण जी उपप्रधान आर्यसमाज फर्रुखाबाद के पितृव्य लाला काशीराम जी का परमधाम होगया आप ने अन्त्येष्टि संस्कार घृत चन्दनादियुक्त वैदिक विधि से कराया—

श्रीयुत लाला नारायणदास जी मंत्री आ०स० के पुत्र का अन्नप्राशन ता० २२ जनवरी को वैदिक रीति से हुआ

यहां के समाज से सिकंदराबाद के समाज के उत्सव व आर्य प्रति नि०सभा वार्षिक अधिवेशन में ता० २५। २६। २७ को प० गणेश प्रसाद शर्मा सम्मिलित हुए तथा ता. १५ को मुन्शी दयाराम जी तहसीलदार अलीगढ के पुत्र के उपनयन में भी ॥

ता० १६ जन० को श्रीमान् बाबू दयाराम साहब तहसीलदार अलीगढ़ जि. फर्रुखाबाद के पुत्र चिं० रतनलाल का यज्ञोपवीत और चि० होतीलाल का कर्णवेध शुद्ध वैदिक रीति से हुआ. इस अवसर पर दूर के आर्य पंडित और आर्य बंधु समवेत हुए थे—ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना. स्वस्ति वाचन. और हवन विधिवत् होकर यज्ञोपवीत व वेदारम्भ हुआ. मंत्रोपदेष्टा श्री प० तुलसीराम जी शर्मा सम्पादक वेद प्रकाश हुए इस अवसर पर प' देवदत्त शास्त्री जी प. गणपति जी. प. भूमित्र शर्मा जी प. गिरिधारी लाला जी प. भवदेव जी प. लालमणि जी. आदि अनेक पंडित विद्यमान थे तहसीलदार साहब ने सब का यथाशक्ति सन्मान किया—और इस आनन्द में वृहदारण्यक उपनिषद् का भाषा में अनुवाद करने को प. देवदत्त जी से प्रार्थना की और छपाई का व्यय देना स्वीकार किया पण्डित जी ने यह श्रम अंगीकृत किया तह० साहब की यह इच्छा है कि समस्त उपनिषदों का सरल व संक्षेप अनुवाद छपाया जावे और मूल्य १) रु० के अनुमान रहे—श्री पं० लालमणि जी से करा रहे हैं २०) मासिक पर इन को पुत्र की शिक्षा के लिये नियत किया है और अनुवाद का कार्य भी होता जाता है ईश्वर उन के धर्म विषयक साहस को बढ़ावे—

आ०स० कायमगंज के सभासद ला० नानिक राम जी का स्वर्गवास हो गया ये सामाजिक कार्यों में बहुत उत्साह रखते थे और चित्त वाहर काम करते थे पुत्री पाठशाला व समाज के स्थान के लिये सचेष्ट थे आशा है कि ला० परमानन्द जी ला० छेदालाल जी आदि सज्जन छिड़े काम की पूर्ति करेंगे—

अग्निदेव क्यों अप्रसन्न हुए ॥

पं० गौरीशंकर काश्मीरी धर्मसभा वाले जो एक समय हाथ धोकर आर्यसमाज की निन्दा पर उतारु थे। कई दिन से बेलों का होम करते थे सो यज्ञ शाला में अग्नि लगने से सब जल गई—सो जान

नहीं पड़ता कि कौन से देवता का पूजन नहीं हुआ जिस ने कोप किया-

सामाजिक संदेश माला

सहवर्त्ती आर्यावर्त्त पूछते हैं कि क्या यह सत्य है कि डी. ए. वी. कालेज सुसाइटी पश्चिमोत्तर प्रान्त को तोड़ कर द्रव्य तथा उस का प्रवन्ध प्रतिनिधिसभा पश्चिमोत्तर के आधीन करने की प्रस्तावना उक्त सुसाइटी के गत दिसम्बर महीने की अधिवेशन में अस्वीकृत हुई- उक्त समाचार सत्य है-कालेज कमेटी ने स्वीकृत नहीं की—

पं० यमुना प्रसाद जी सभासद आ० स० लश्कर के परमपद पाने का समाचार सुनकर वहुत शोक हुआ। लश्कर गवालियर में सामाजिक चर्चा के मूल पुरुष ये ही थे अपने जीवन काल में वरावर भा० सु० प्र० के प्रेमी ग्राहक रहे आज उन का मृत्यु शोक लिखते दु ख उपजता है। आर्य धर्म के दृढसेवी और भक्त पुरुष थे महर्षि स्वामी जी के लश्कर जाने पर धर्म प्रवृत्ति में आपने वहुत सहायता दी थी-

ठाकुर उमराव सिंह जी वर्मा मिलिटरी पुलिस रंगून ने एक हलवाइन को जो (३ वर्ष से पुत्र पुत्री सहित मुसल्मान हो गई थी) ता० १४।११।९८ ई० को शुद्ध किया और उसे इस के घर कुमार पुर जि० सुल्तानपुर भिजवादिया-(आ०व०)

प्रियसहयोगी आर्यावर्त्त को उचित चेतावनी ॥

आर्यसमाज नगला वघराया के सभासदों ने पण्ड्या वावूराम जी उपदेशक आ० स० मुरसान से प० भीमसेन अनुवादित गीता सुनकर २७) रु० भेंट किये जिस पर हमारे प्रशंसित सहयोगी ने लिखा कि " समाज के पण्डित सामाजिकों की इस तरह हजामत न वनाया करें और दान लेने में संकोच करें" इत्यादि-यह सत्य है कि दान से जहां तक वच सके उत्तम है। दान लेना लोक में मान और परलोक में सुख का हेतु नहीं परन्तु आवश्यकतानुसार लिये विना काम भी नहीं चलता जो किसी भान्ति का व्यापार नहीं करता वरन पाखण्ड जंजाल छोड़ समाज में आया है और सदुपदेश करता है उस के पास पूंजी भी नहीं है तो धर्म से दान लेने में उसे कुछ भी दोष नहीं वरन विधान है पण्ड्यावावूराम एक दीन पुरुष हैं लड़का लड़की उन के आगे है आशातीत लाभ की यजमानी छोड़कर समाज में आये है यह उन का वड़ा साहस है। इस में दरिद्रावस्थापन्न हो गये परन्तु धर्म नहीं छोड़ा यह वात वहीं के हिन्दुओं ने हम से कही थी कि पण्डित जी अव यहां नहीं आते हम सामाजिक रीति

से काम नहीं कराते वे गौरीगणेश नहीं पुजवाते सो अब बहुत तंग हैं इत्यादि और हम उन से मिले भी थे—

पुत्र का यज्ञोपवीत गृहस्थ विरादरी वाले का बातों ही बातों नहीं होजाता अतः इस कार्य में लगाने वा परिवार के पालन पोषण के लिये द्रव्य लिया तो क्या अनुचित किया—

ऐसे पुरुष के विषय में आक्षेप अयुक्त है इसका असर उपदेशकों पर अच्छा नहीं पड़ता वरन यह दिखलाता है कि समाजों में ऐसी संकीर्णता के विचार वाले पुरुष भी है जो अपने उपदेशकों को ऐसी दृष्टि से देखते हैं। तब नये लोग क्यों उत्साह करेंगे। हा जो यथार्थ ही स्वार्थी हैं उन पर दृष्टि रखना चाहिये।

प्रेरितपत्र

महाशय नमस्ते—

इस पत्र को भा० सु० प्र० में प्रकाशित करदीजिये कृपा होगी॥

श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पश्चिमोत्तर देश से सविनय प्रार्थना है कि एक मास के वास्ते माह फालगुन में उपदेश करने के वास्ते श्रीयुत पं० प्रयागदत्त जी शर्मा उपदेशक को आर्यसमाज गवालियर में भेजदें कृपा होगी और यह आर्यसमाज खास गवालियर एक माह की तनखाह और आने व जाने का किराया प्रतिनिधि सभा को देगा आ० स० बहुत कमजोर है फागुन में शिशमाही उत्सव होगा और हमारे बाबू भोला भाईजी शर्मा प्रधान आर्यसमाज के वास्ते आर्य मन्दिर बनवावेंगे उस के वास्ते होली पर अपील करनी होगी।

ज्योतिस्वरूप मन्त्री आर्यसमाज
गवालियर

(उपदेशक चाहो तो लीजिये)

महाशयो—मैं आर्यसमाज फर्रुखाबाद की पाठशाला का विद्यार्थी हूं। आर्यसमाज नैनीताल में १ वर्ष तक उपदेशक रहा हूं अब आ० स० नैनीताल को मुझे रखने की सामर्थ्य नहीं इस लिये रुहेलखण्ड कुमायूं प्रान्त में अवैतनिक उपदेश कर रहा हूं कोई समाज वेतन देसके तो वैतनिक रहने को इच्छा है

जीवानन्द शर्मा
पता—मार्फत आर्यसमाज पीलीभीत

श्रीमान् सम्पादक जी नमस्ते

रावरोशनसिंह की एक और चालाकी

यद्यपि सिद्धान्ताचार्य जी की पोल अब अच्छी तरह खुल चुकी है. परन्तु अभी हमारे पास बहुतसा मसाला जमा है कि जिस से हम जबतब रावसाहिब की खातिर किया करें गे

आपने लिखा है वेदसार पृ० ७२ (जीव को अनादि मानकर और कु-

दरत से पैदा होने का खण्डन करके) लिहाज़ा हम उक्त सरसय्यद बहादुर मुहतमिम व मालिक अलीगढ़ मुहमडन कालेज से पूछते हैं–

और फिर पृ० ७८ में लिखते हैं कि– और सरसय्यद अहमदखां बहादुर अलीगढ़ निवासी से ये पूछते हैं कि आप इन तत्वों को क्यों नहीं मानते ॥

मान्यवर सम्पादक जी–हम रावसाहब को भी जानते हैं और सर सय्यद साहब को भी–इस कारण से हमें पूराविश्वास हो गया था कि यह वेदसार सर सय्यद के देवलोक होने के बाद छपा है नहीं तो रावसाहब में इतनी दिलेरी कहा कि जो उन के जीते जी उन को चेलेंज देते अतएव हमने जनाब सय्यद-अहमद अली साहब एम०ए० डिप्टीकलेक्टर फतहपुर से जो सरसय्यद अहमदखां साहिब के अजीजों में हैं पूछा उन्होंने हमारे पास लिखभेजा है कि (सरसय्यद साहब २७ मार्च सन् १८९८ई० को देवलोक हुए) और वेदसार मई में छपा है, यानी स० स० के देवलोक होने के दो महीने बाद—

अब विचारणीय यह है कि जब सरसय्यद ही न रहे तो फिर उन से प्रश्न करने से क्या फायदा ? इस का जवाब ग्रन्थ करता केवल यह देसकता है कि यह लेख पहिला है, परन्तु हम पूछते हैं कि जब यह पुस्तक छपाई थी तब यह प्रश्न निकाल क्यों न दिया ?

महाशय जी हम को यह बताने की जरूरत नहीं है कि रावसाहब ने ऐसा क्यों लिखा? पाठकगण समझ सकते हैं,

भवदीय-नन्दनसिंह उपाध्याय अलीपर

सं० १९५५ कातिक शुदि १५ तथा मार्गशीर्ष वदि १।२ को आर्य्यसमाज धारूर का द्वितीय वार्षिक उत्सव सानन्दसमाप्त हुआ, आसपास के समाजों में निमन्त्रण पत्र भेजे गये थे, परन्तु बहुत थोड़े सुजनोके दर्शन हुए कोई समाज इसओर दृष्टि नही देते–सो उचित नहीं अस्तु १५ को यज्ञारम्भ हुआ आर्यभाइयोंने चतुर्विध द्रव्य से यजुर्संहिता से २५००० आहुति दी । उससमय वाल्मीकीय रामायण का नमूना विश्वामित्र का यज्ञ प्रत्यक्ष हुआ सुबाहु मारीच भी उपस्थित हुए, फिर पं० भगवतीप्रसाद शर्मा जी पं० मानिक प्रसादजी को श्रीरामलक्ष्मण का अवतार लेना पड़ा—

इस वर्ष के लिये प्रधानपद पं० कुञ्जनलाल शर्मा जी को दिया गया, और हरपूरनमासी का १ सालसे हवन जारी है, और मंत्रीरामचन्द्रसेठ आर्यधर्म के बड़े उत्साही हैं।

पटरीनाथशर्मा उप-मंत्री आ०स०धारूर॥

ईश्वरानन्दगिरि का मिथ्याप्रलाप ॥

५ जनवरी के प्रयाग समाचार में ई०गि० ने दुराग्रह पूरित एक लेख प्रकाश किया है लेख क्या है मनमानी गढ़ंत का आधार है। जिन बातों को आर्य लोग नहीं मानते, वा जिन का समाज से स्पष्ट खण्डन होचुका है उन्हीं, गड़ी गोहों को उखाड़ बहुधा लोग सर्वसाधारण को बहकाते हैं कि देखो जी समाज वाले ऐसा कहते हैं! कुछ न हुआ तो बैठे विठाये मांस का रामरसरा लेवैठे ज्ञात नहीं कि ये गिरि जी कौन हैं कोई हों उत्तर तो देना ही योग्य है॥

थोड़े दिन हुए कि "मांस भोजन विचार" नामक एक पुस्तक श्रीमान् करनजसर प्रतापसिंह जी वर्मा के० सी० एस० आई० एडीकांग टूहिज रायलहाइनेसदी प्रिन्स आफवेलस और प्रधान आर्यसमाज जोधपुर ने प्रकाशित कराई उसे लक्ष्य बनाय आप आर्यसमाजों को दूषित करते हैं। क्या दर्शित महाशय के विचार का आर्यसमाज उत्तर दाता (ज़िम्मेदार) हैं वह पुस्तक महर्षि स्वामी दयानन्द स० जी महाराज और आर्यसमाज के मन्तव्यानुसार नहीं है न सब आर्य उस को मानते हैं न किसी प्रतिनिधि सभा वा परोपकारिणी सभा से अनुमोदित है उस में तो यह स्पष्ट लिखा है कि एक उपदेशक ने दर्शित महाराजकी सम्मति से निर्णयार्थ प्रकाशित किया न कि महाराज का मन्तव्य दिखाया और जो उन का मन्तव्य भी हो तो क्या एक व्यक्ति का विचार आर्यसमाज का मन्तव्य हो जायगा? परन्तु गिरिजी ने यहां भी चालांकी न छोड़ी। लिख हीतो मारा कि "आर्यसमाज के शिरोमणि पण्डितों की ओर से आर्यसमाजियों के उपकारार्थ प्रकाशित हुआ" बताइये तो सही ऐसा मांसभोजनविचार में कहां लिखा है—

पाठक! विचारिये तो सही कहा एक उपदेशक ऐसा वाक्य और कहां उस के विरुद्ध यह लिखना कि आर्यसमाज के शिरोमणि पण्डितों की ओर से बना कहां निर्णयार्थ प्रकाशित हुआ ऐसा पाठ और कहां उस का उलटा उपकारार्थ प्रकाशित यों धरताना हम अधिक क्या लिखें इसी से आप इन के अन्तःकरण का परिचय पा सकते हैं—

दूसरे आप ने नवम्बर के भारतसुदशाप्रवर्त्तक में मुद्रित अश्वं माहिंसीः० पर कठोर आक्षेप किया है कि वाहरे दयानन्दी तुम ने भांग का लोटा तो नहीं चढ़ा लिया जो य० अ० मं० इतना ही लिख कर यजुर्वेद के पाठी बन बैठे—

गिरि जी ! हम ने तो लोटा नहीं चढ़ाया अपनी कहिये कि कितनी पी कर भा०सु-प्र० देखा था यहां पर तो आप जब आक्षेप कर सकते थे जब मंत्र संख्या छपी होती कि–उस स्थल पर तो कुटेशन की भान्ति संक्षेपतः मन्त्रों में से अभीष्ट प्रतीकें लेली गई हैं जो प्रयोजनीय समझी और प्रायः सभी लेखक किसी मंत्र वा श्लोक का वही भाग उठालेते हैं जितना आवश्यक समझते हैं–

इसी प्रकार वहां पर किया गया हो जो कुछ लिखा वैसा यदि वेद मंत्रों में न मिले तो आप का आक्षेप योग्य है अथवा उन कई मन्त्र खंडो को कोई एक मन्त्र मान लिया जाय तो असंगत है सो ऐसा नहीं किया इसीसे य०अ०मं० का संकेत कर दिया कि ये मंत्र खंड यजुर्वेद में हैं और वेदपाठियो के लिये ये बातें हस्तामलक हैं सो देखो पहिला टुकड़ा यह है "अश्वंमाहिꣳसीः०"। यह य० अ० १३ मं० ४२ वें में हैं। दूसरा खंड " गां–माहिꣳसीः० "। अ० १३ मं० ४३ वें में हैं। तीसरा भाग–"अविमा०"। अ० १३ मं० ४४ वें में हैं। चौथा शकल–माहिꣳसीर्द्विपादं। मयुं पशुंमेधमग्ने जुषस्व–अ० १३, मं० ४७ वें में, और पांचवां भाग–"इमꣳ सहस्रꣳ शतधारं–माहिꣳसीः"–जो कि यजुर्वेद के १३ वें अध्याय के ४९ वें मन्त्र में हैं–यदि वहा न मिले तब मुंह धोकर फिर आना आप को दिखला दिये जायंगे यदि ये सारे मन्त्र लिखे जाते तो अर्थसहित ३ पेज भर जाते इसी से पूरे २ नहीं लिखे।

आगे चल कर गिरि जी अपने संकुचित हृदय का और भी परिचय देतेहैं लिखते है कि "दयानन्द ने ही अपने बनाये ग्रंथों में मनुष्य पशु पक्षी आदि प्राणियों का विनाश करना लिखा है तब दयानन्दी लोग व्यर्थ क्यों चिल्लाते हैं देखो यजुर्वेद भा० मं० ४७। ४८। ४९। ५०"–इत्यादि शिव! शिव!! "नानृतात्पातकंमहत्"–झूठ लिखते लज्जा नहीं आती कहां पर मनुष्यादि का विनाश श्रीस्वामी जी ने लिखा है ऐसा तो कोई कसाई भी नहीं करता–

पाठको यदि विस्तारभय न होता तो हम उक्त चारों मन्त्रों का अर्थ दिखा देते जिन में गिरि जी को विनाश सूझा है परन्तु लेख बढ़ेगा अतः केवल ४७ वां मन्त्र महर्षिकृत वेदभाष्य से ज्यों का त्यों उठाया जाता है॥

इमं माहिꣳसीर्द्विपादं पशुꣳसहस्राक्षो मेधाय चीयमानः। मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। मयुं तेशुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥

महाव्याहृति व्याख्या ॥

[पूर्व प्रकाशितानन्तर दिसम्बर के पत्र के १४ वें पेज से आगे]

पायूपस्थेऽपानं चक्षुः श्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते । मध्येतु समानः एषह्येतद्धुतमन्नं समुन्नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ॥

अर्थात् आंख कान मुख और नाक में प्राण वायु स्थित है । बाहरी पवन अपान चेष्टा से भीतर जाता है व्यान से सारे शरीर में व्याप्त होता है और भीतर के सारे शरीर को धोता है पुनः मलिन वायु प्राण चेष्टा से बाहर निकलता है इस में सन्देह नहीं कि इस प्राण का कार्य बन्द होते ही जीव निकल जाता है उसी का नाम मरना वा प्राण निकलना है—होम में आघारावाज्यभागाहुतियों में "ओ३म् अग्नयेस्वाहा" प्रथम मन्त्र है और व्याहृति आहुतियों में "भूरग्नये स्वाहा" पहिला है तथा उभयकालीन मन्त्रों में "भूरग्नये प्राणाय स्वाहा" यह प्राथमिक मन्त्र है इन मंत्रों का अर्थ विचारने से चित्त को परम आह्लाद प्राप्त होता है और वेदों की गंभीर विद्या का परिचय मिलता है "भूः" शब्द परमात्मा का भी वाचक है क्योंकि वह जगत् के जीवन का हेतु है प्राणों से भी प्रिय है । वरन प्राणों का प्राण है । सामवेद के तलवकार उपनिषद् में कहा भी है ।

यत्प्राणेन प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते । तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥

जो प्राण द्वारा श्वास नहीं लेता जिस के कारण से प्राण अपना काम करता है उस प्राणों के प्राण परम प्रभु को तू ब्रह्म जान और उसकी उपासना कर ।

भुवर्—भुव इत्यन्तरिक्षम्—पवन का आधार अंतरिक्ष का नाम भुवर् है और यह शब्द वायु का भी वाचक है "भुवइतिवायुः" जैसे प्राण अर्थात् अग्नि जीवन का हेतु है उसी प्रकार पवन भी है यदि पवन न हो तो हम क्षण भर भी जी नहीं सकते समुद्र में मछली की भान्ति हवा में जीव रहते हैं इदानीं विज्ञान से निश्चय हुआ कि एक वर्ग इञ्च पर हवा का बोझ साढ़े सात सेर है यह एक अद्भुत पदार्थ है जो अपनी मूलदशा में अधिक स्थान पाकर उस सब में व्याप जाता है और थोड़ी जगह में भी दब कर आजाता है सो घन हाथ के स्थान में जितनी हवा भरी हो उसे दबा कर १ एकघन हाथ के ठौर में रख सकते हैं

एक प्रकार की भुशुंडी (बंदूक) होती है उस में बारूद की जगह दबादबा कर हवा भर देते हैं इस से भी वैसा ही शब्द होता और गोली छूटती है जैसा कि गोली बारूद भरी बंदूक से होता है। यदि कोई चाहे कि पवन को पानी की तरह किसी बरतन के आधे वा पौने भाग तक भर कर शेष को खाली रक्खें। ऐसा नहीं हो सकता। जितना आप खाली रक्खेंगे उस में भी हवा भर जायगी—

पवन जैसे जीवों को जिलाने का कारण उसी प्रकार वृष्टि में भी सहायक है भूः अर्थात् अग्निबल से जल छिन्न भिन्न हो हलका होने से वायु के सहारे ऊपर को उठता है और इसी आश्रय से बादलरूप होने पर इधर से उधर को जाता है। परमपिता परमेश्वर मानो वायुरूपी रेल से यह बड़ा जलरूपी माल का ढेर अभीष्ट स्थानों को पहुंचाते हैं॥

एक घन इंच पानी गरम होने से १७२८ घनइञ्च भर भाफ होती है और यही भाफ जब पवन लगने से ठंडी होती तो १ घनइञ्च प्रमाण पानी बनजाता है पवन में जब ईश्वर के दिए प्रमाण से अधिक जल हो जाता तो वायु दूषित होजाता है और वह होम करने से शुद्ध होता है जिस के लिये "भुववायवे स्वाहा" इत्यादि मंत्र हैं—फलतः भुवः शब्दवाच्य वायु परम जीवन है।

भुवः शब्द से कौन से प्राण का ग्रहण करना चाहिये सो दिखलाते हैं "भुवइत्यपानः" भुवः शब्द से अपान चेष्टा वाले प्राण का ग्रहण करना चाहिये जो मलमूत्र के स्थानों में विचरता हुआ उन को शुद्ध करता है "पायूपस्थेऽपानं" हवा को भीतर लेकर कटि के नीचे की दोनों कर्मेन्द्रियों को सम्हाले रहना अपान का काम है। यदि यह चेष्टा हमारे शरीरों में न होती तो किसी को न तो भूख लगती और न रुधिर की वृद्धि होने पाती और मल का ढेर शरीर में होकर जीवन असंभव होजाता—अपान प्राण की यथावत् चेष्टा रहने के लिये परमात्मा की स्तुतिपूर्वक "भुववायवेऽपानायस्वाहा" इस मन्त्र से प्रार्थना रूप आहुति दी जाती है।

"भुव इति सामानि" भुवः शब्द सामवेद को भी कहता है। सामवेद की स्वर प्रक्रिया अर्थात् षड्जादि स्वरों का यथावत् उच्चारण पूर्वक गानका वर्णन भी वायु से सम्बन्ध रखता है। क्योंकि बिना वायु के स्वरों की उत्पत्ति नहीं होती। मन्द और तीव्र शब्द उच्चारण करने वाले के न्यूनाधिक्य बल लगाने पर निर्भर है—"आकाशवायुः प्रभवः शरीरात्समुच्चरन् वक्त्रमुपैतिनादः स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानो वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः" पाणिनि जीने कहा है कि आकाश और वायु के संयोग से उत्पन्न होने वाला नाभि के नीचे से ऊपर को

उठता हुआ जो मुख को प्राप्त होता है उस को नाद कहते हैं और वह कण्ठ आदि स्थानों में वंट कर वर्णभाव को प्राप्त होता है । उसी का नाम शब्द है ।

सामवेद में प्रथम छन्द आर्चिक है उस में छः अध्याय हैं–पहिले मन्त्र में ३ तीन गान निकलते हैं । पहिले गान का नाम पर्क दूसरे का वर्हिष्य, और तीसरे को भी पर्क ही बोलते हैं । सो सामवेद सस्वर पढ़ने में परम आनन्द प्राप्त होता है ॥

भुवः शब्द परमात्मा का भी वाचक है कृपासिन्धु जगदीश्वर अपने धर्मात्मा सेवकों और मुमुक्षुओं को सब दुखों से अलग करके सदा सुख में रखते हैं । इस कारण उन का नाम भुवः है ॥

स्वर्–" सुवः इति असौ लोकः " । अन्तरिक्ष के ऊपर सुख का साधन होनेसे स्वः शब्द सूर्य का वाचक है । सूर्य जीवों के जीवन का हेतु है । शरीरों का पोषण करता इस लिये इसे पूषा बोलते हैं । प्रकाश देने के कारण प्रभाकर और दिनकर कहते हैं । वनस्पत्यादि के उगने में गर्मी पहुंचाता है । इसलिये सविता नाम से पुकारा जाता है । एवं गुणों के अनुसार अनेक नाम हैं । ऋग्वेद में कहा है ॥

" विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् । सहस्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः "

असंख्य किरणों वाला अनेक प्रकारों से भोक्तृ शक्तियों में अपने तेज से व्याप्त, प्रजा के जीवन का हेतु यह प्रत्यक्ष सूर्य है । सो उदय होकर तपता है

संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं एक भोग करने वाले दूसरे भोग में आने वाले अर्थात् भोक्तृ और भोग्यशक्ति इन को प्राण व रयि नाम से भी पुकारते हैं इन में सूर्य भोक्तृ शक्ति है । प्रश्नोपनिषद् में कहा है ॥

" आदित्योहवैप्राणः रयिरेव चन्द्रमा, " भोग कराने वाला सूर्य प्राण रूप है–और भोक्तृशक्ति चन्द्रमा रयि है । यदि सूर्य न होतो मनुष्यादि प्राणी किसी पदार्थका भोग नहीं कर सकते।विना प्रकाश दीवार की नाईं रहा करतेहैं॥

यहां पर जो सूर्य को प्राण शब्द से लिखा है उस से प्राण वायु नहीं समझना । प्राण से अभीष्ट उस भोक्तृशक्ति से है क्षुधा लगाती है और खाये हुए

अन्न का परिपाक करके रस बनाती है। अर्थात् भोगने योग्य पदार्थों का भोग सूर्य ही करता है। और पदार्थों में भांति २ के रंग भी इसी से उपजते हैं॥

इस समय के विज्ञानवेत्ताओं ने सूर्य की किरण सात रंग की मानी हैं। संस्कृत में सूर्य को सप्ताश्व तथा सप्ताश्ववाहन कहा है। उस का भी यही अभिप्राय है कि सूर्य के तेज की व्याप्ति सात प्रकार से होती है।

प्रत्येक पदार्थ जो नाना रंग के दिखाई देते हैं उन का कारण सूर्य है। पदार्थों में ग्रहण करने की शक्ति होती है इसलिये जिस रंगकी किरण को जो पदार्थ ग्रहण नहीं करता वही उस पर से फिरती है। इस कारण उस में वैसा ही रंग प्रतीत होता है॥

सूर्य का नाम तापन भी है। क्योंकि संसार के पदार्थों को तपाता है। इस तपाने से शोधन होता है। हवा में नियत प्रमाण से जो तरी (रतूवत) आजाती है वह सूर्य से भी दूर होती है (जैसे कि अग्नि जलाकर होम करने पर हुआ करती है) तदर्थ " स्वरादित्याय स्वाहा " यह व्याहृति युक्त मन्त्र पूर्वोक्त प्रकार है—

सूर्य द्वारा एक और प्रकार से पृथ्वी पर शोधन होता है वह यह है कि वैशाख, जेठ में जब हवा पर तीव्र किरणें पड़ती हैं तो ऊपर की वायु हलकी होकर बिखरती है * उस खाली जगह का भराव ठंडी हवा से होता है ऐसा होने में एक प्रकार की हवा का दूसरी भान्ति की हवा पर बड़ा धक्का लगता है तब आंधी आती है वह वेगपूर्वक घर के भीतर उन २ (तहखाना आदि) स्थानों तक में जा घुसती है जहां की बसी हुई दुर्गन्धित वायु सहसा नहीं निकल सकती—इस प्रकार भूमण्डल का शोधन होता है—

जल भी सूर्य के कारण मिलता है कुवां तालाब आदि में जो जल है वहभी सूर्य के ताप से प्राप्त है। अर्थात् सूर्य की गर्मी से समुद्रादि से भाफ उठती है और वह शीत से घनी हो जाती है इस लिये धुआं की भांति दीख पड़ती है इसी के समुदाय को मेघ कहते हैं। जब वायु में ३२ तापांश से कम उष्णता रहती तब वही भाफ के जलकण वर्फ होकर गिरने लगते हैं ऊपर की भाफ होकर जलविन्दु होजाय और उसी समय कहीं वहां पर की वायु भी शीतल हो

* वायु अग्नि आदि शब्द पुल्लिंग हैं पर भाषा में इन का व्यवहार स्त्रीलिंग के समान होता है॥

तो वही जलकण ओला बन जाते हैं और सूर्य की सामान्य गर्मी जब वायु में रहती तब पानी बरसता है मनुस्मृति में भी कहा है—

अग्नौ प्रास्ताहुतिस्सम्य-गादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥

अग्नि में जो आहुति दी जाती वह द्युस्थानी देवता सूर्य को प्राप्त होती और आदित्य (सूर्य) से वृष्टि होती है जैसा कि ऊपर लिख आये है वर्षा से अन्न और अन्न से वीर्य बनता है । उसी से प्रजा उत्पन्न होती हैं । सुवः इतिव्यानः स्वः व्यान वायु का भी वाचक है जो कि सारे शरीर में विचरण करता है इस में प्रश्नोपनिषद् का प्रमाण है ॥

हृदिह्येष आत्मा । अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासांशतं शतमेकैकस्यां द्वा सप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखा नाडी सहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ॥

जीवात्मा जो कि हृदय में रहता है इसी हृदय में १०१ नाडी हैं उन में एक नाड़ी की सौ सौ शाखा नाडी हैं (१०१×१००) अर्थात् सब १०१०० हैं। इन शाखाओं में भी पुनः एक एक शाखा की ७२ हजार प्रतिशाखा हैं इसलिये (७२०००+१०१००) ७२७२००००० प्रतिशाखा हैं सब मिल कर (१०१×१०१००+ ७२७२०००००) ७२७२१०२०१ बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख दसहजार दो सौ एक नाड़ी होती हैं इन में व्यान वायु की चेष्टा होती है जैसा कि ऊपर लिखआये हैं कि अपान से पवन देह के भीतर जाती और व्यान से सारी नसों में व्याप्त होकर रुधिर की शुद्धि होती पुनः प्राण चेष्टा से वह अशुद्ध वायु बाहर निकल जाता है व्यान चेष्टा ही के कारण हम को हवा का बोझ जान नहीं पड़ता क्योंकि उस की स्वाभाविक प्रवृत्ति होरही है भीतर जाकर जो हवा बाहर निकलती है वह वैसी मैली होती है जैसे बरतन माज कर धोने से मट मैला पानी निकलता है इस वायु में कारबोनिकएसिडग्यास मूल वायु से सौगुना हो जाता है । शुद्ध वायु में १३) रु० में १ पाई के प्रमाण का०ए०ग्यास से रहता है यह अधिक होकर स्वास्थ्य भंग करता है इस की शुद्धि के "स्वरादित्यायव्यानाय स्वाहा"—यह आहुति है, "सुवरिति यजूंषि"—स्वः शब्द से यजुर्वेद की विद्या का

भी ग्रहण होता है. इस में सूर्य व ध्यान का भी वर्णन है, "इषेत्वोर्जेत्वा"-यह, यजुर्वेद का पहिला मन्त्र है जो उपासना काण्ड में ईश्वर और कर्मकांड में सूर्य परक है. सन्ध्योपासन में स्वः परमात्मा का द्योतक है, "स्वरितिप्रानः"-जो सब जगत् में व्यापक हो के सब को नियम में रखता है और सब के ठहरनेका स्थान तथा सुखस्वरूप है. इस से परमेश्वर का नाम स्वः है ॥

एतदक्षरमेतांच जपन्व्याहृतिपूर्विकाम् ।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येनयुज्यते ॥मं०अ०२। ७८॥

वेदज्ञ ब्राह्मण ओंकार व व्याहृति युक्त गायत्री को (दोनों) सन्धि कालों में जपता हुआ वेद पाठ के फल अर्थात् ब्रह्म प्राप्ति का स्वत्वाधिकारी हो जाता है॥

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकंद्विजः ।
महतोऽप्येनसोमासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥ ७९ ॥

द्विज एकान्त में हजार बार प्रणव व्याहृति युक्त त्रिपाद सावित्री का जप करके एक महीने में मलिन संस्काररूप पाप से केंचुली की तरह छुट कर निर्मल हो जाता है ॥

योऽधीतेऽहन्यहन्येतांत्रीणिवर्षाण्यतन्द्रितः ।
सब्रह्मपरमभ्येतिवायुभूतःखमूर्त्तिमान् ॥ ८२ ॥

जो निरालस तीन वर्षतक प्रतिदिन इस प्रणव-व्याहृति सहित गायत्री का एकाग्रचित्त जप करता है वह वायु के तुल्य (खमूर्त्तिमान्) शुद्ध हुआ परमात्मा को प्राप्त होता है, किसी २ की सम्मति में अभ्येति के ठौर अध्येति पाठ से परमात्मा को जानलेता है, ऐसा अर्थ होता है। परमात्मा का जानना ही उस को पाने का हेतु है जो जानता नहीं वह पाता भी नहीं—

प्राचीन काल में यह प्रथा थी कि बहुत दिन तक कुसंस्कारों में पड़ने से जब चित्त में पापरूप मल अधिक हो जाता था तो ज्ञानी जन प्राणायामादि क्रिया से समय पूर्वक उक्तप्रकार जप किया करते थे, ऐसा करने से उनका चित्त स्थिर, प्रसन्न एवंधर्मरत हो जाता था. फलतः व्याहृतियों का जप व होम सारे सुख और मङ्गल का दाता है लोक तथा परलोक का [illegible]

जीव (रूह) क्या है ? ॥

(पूर्वप्रकाशितानन्तर दिसम्बर के पत्र के १० वें पेज से आगे)

गीता में भी माहात्मा कृष्णचन्द्रने अर्जुन से कहा है—

वहूनिमेव्यतीतानिजन्मानि तव चार्जुन ।

तान्यहंवेदसर्वाणिनत्वंवेत्थपरंतप ! ॥ अ ०४ श्लो० ५ ॥

अर्थात् हमारे तुम्हारे वहुत जन्म व्यतीत हो गये हैं उन सव को मैं जानता हूं तुम नहीं"—एवं महाभारत में भी कथन है—

"पुनःपुनश्चमरणंजन्मचैव पुनः पुनः"—

म० भा० प० १४ अ० १६ ॥

वार २ मरना और वार २ जन्म लेना है—

नास्तिक—उक्त कठोपनिषद् के लेख से ज्ञात होता है कि जीव ब्रह्म अर्थात् परमात्मा के समान है. अर्थात् जैसे परमेश्वर न उत्पन्न होता न मरता है इसी प्रकार की दशा जीव की भी है—.

आस्तिक—जीव परमेश्वर नहीं हो सकता वह उस से पृथक् है परमात्मा हमारा पिता हम लोग उस के पुत्र हैं वह स्वामी हम सेवक हैं वह सर्वज्ञ और सृष्टि कर्ता है हम अल्पज्ञ और उस की प्रजा हैं—

ना० जीव मर कर अर्थात् शरीर से निकल कर कहां रक्खा जाता है ॥

आ० जो स्थान उस के पाप पुण्य के अनुसार परमेश्वरने स्थिर कियाहै

ना० जब तक निर्दिष्ट स्थान पर नहीं जाता किस सहारे रहता है ॥

आ० तब तक परमात्मा के आधार रहता है ॥

ना० ऊपर जो आप ने जीवात्मा को अंगूठे जैसा कहा सो क्या अभिप्राय है क्या वह अंगूठे के बराबर है ॥

आ० जीवात्मा को अंगूठे मात्र इस लिये कहा कि हृदय जो अंगूठे का सा है उस में वह रहता है किन्तु अंगूठे के बराबर नहीं,—सूर्य वा अग्नि एक स्थान पर होकर उस पदार्थ में सर्वत्र व्याप्त जाता है वैसे ही जीव भी शरीर में सर्वत्र अवगत होता है । जैसे रहने के स्थान में खाने, नहाने, सोने, तथा वैठने, आदि कामों के लिये जुदे २ कमरे होते हैं इन में मुख्य रसोई घर है यदि वह नष्ट होजाय और पुनः वन सकने की आशा भी न होतो उस में कोई नहीं रहता इसी प्रकार हृदय तथा शिर जैसा अच्छा स्थान जिस में पांच ज्ञानेन्द्रियां काम करती हैं नष्ट होतेही जीवात्मा स्वदेह को त्याग देता है फिर—

स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनिचैव रूपाणि देही स्वगुणै-र्वृणोति। क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोपिदृष्टः ॥ श्वे० उ० अ० ५ मं० १२ ॥

स्थूल तथा सूक्ष्म अनेक शरीरों को अपने पाप पुण्यों के अनुसार धारण करता है और परमेश्वर जो कि इन के (जीवों के) संयोग का हेतु है अपने क्रिया गुण व आत्म गुणों से जाना जाता है इसी अध्याय के सातवें मन्त्र में भी कहा है कि—

गुणान्वयो यः फलकर्मकर्त्ता कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता। सविश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः संचरति स्वकर्मभिः ॥७॥

जो सत्, रज, तम तीनों गुणों से युक्त उत्तम मध्यम व निकृष्ट कर्म फल का करने व भोगने वाला है और अनेक रूप धारण करता है प्राणापान आदि दश प्राणों का स्वामी अपने कर्मानुसार घूमता फिरता है कठो० में भी कहा है

नसाम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्। अयं लोकोनास्ति पर इति मानी पुनःपुनर्वशमापद्यतेमे ॥ व० २ म० ६ ॥

धन के मद में भूले अज्ञानी जनों को परमार्थ नहीं सूझता जो कुछ है यहीं है परलोक कुछ वस्तु नहीं ऐसा मान धर्म विमुख रहते हैं और कर्मानुसार वार २ जन्ममरण रूप दण्ड में परमात्मा के अधीभूत होते हैं ॥

योनिमन्ये प्रपद्यंते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथा कर्म यथाश्रुतम् ॥व०५मं०७॥

(अन्ये) ब्रह्मज्ञानी पुरुषों से भिन्न मनुष्य (यथाकर्म) जैसा किया (यथा श्रुतम्) जैसा सुना वैसे संस्कारों से बंधकर (शरीरत्वाय) देह धरने को (योनिम्) गर्भाशय को (प्रपद्यन्ते) प्राप्त होते हैं (अन्ये) अति निकृष्ट पाप करने वाले (स्थाणुम्) वृक्षादि स्थावर योनियों को (अनुसं०) पाते है।

वेदशास्त्र के मानने वाले वैदिक पुरुषों के सिवाय अन्य मत वाले भी पुनर्जन्म के अनुचर हैं ॥

भारत सुदशा प्रवर्त्तक ॥

आर्यसमाज फर्रुखाबाद का प्राचीनपत्र, २० वर्ष से श्रीस्वामीजी महाराज की आज्ञानुसार प्रकाशित होता है ॥
(प्रतिमास की २८ वीं तारीख को प्रकाशित होता है)
जिस में
वेदशास्त्रानुकूल धर्म्मसम्बन्धी, व्याख्या, स्त्रीशिक्षा, इतिहास, समाचार और अनेक मनोरञ्जक विषय सरल भाषा में छपते हैं ॥

२० वा भाग ५ वीं संख्या कार्त्तिक सं० १९५५ वि० नवम्बर स० १८९८ ई०

विज्ञापन—सामवेदभाष्य ॥

पं० गणेशप्रसाद शर्म्मा द्वारा सम्पादित होकर मुंशी नारायणदास जी मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद की आज्ञा से सरस्वती प्रेस—इटावा में छपा ॥

" पशु चिकित्सा "

(श्री शिवचन्द्र मित्र मेडीकल अफसर की लिखी हुई)

पशुओं के रोग की आज तक ऐसी सुगम पुस्तक न थी कि उन अनबोलते जीवों का रोग कटे—यह अभाव इस पुस्तक ने दूर कर दिया इस में भले बुरे पशु के लक्षण (पहिचान) लिखे हैं और प्रत्येक रोग की ओषधि साथ निदान के लिखी है लिखे अनुसार वर्त्ताव करने से निकम्मे पशु तक काम देने लगते हैं सुन्दर टाइप में १३२ पेज पर बढ़िया कागज पर छपी है मूल्य ॥) है—

पता—मनेजर आर्यगुर्जर पुस्तकालय फर्रुखाबाद

विवाह विज्ञापन ॥

हम को एक ऐसे कान्यकुब्ज लड़के की चाह है जो आयु में १८ साल से कम न हो अंगरेजी में इन्ट्रेन्स पास घर का आसूदा हो। लड़की १२ वर्ष की नागरी पढ़ी है—

दयाराम तिवारी नामनेर आगरा

स्थानिक समाचार

ता० ५ वी नवम्बर को बाबू लखपतराय जी प्रधान श्रीमती आ० प्र० सभा व बाबू ज्वाला सहाय उपमंत्री आ. स. गाजियाबाद व पं. नन्दकिशोर देव शर्मा उपदेशक यहां पधारे ता. ६ रविवार को वैदिकधर्म पर पंडित जी ने ५०।६० आर्यों की उपस्थिति में व्याख्यान दिया. उस समय ३५) रु. वेद प्रचार फंड के लिए लिखागया. और २८) वसूल होगए. और सभासदों से लिखाना शेषरहा—

ता. १३ नवम्बर दीपावली को समाज में वैदिक विधि से हवन होकर समाज का नियमित कृत्य हुआ और पुनः श्रीमती आ० प्र० सभा के सरक्यूलर न० ३ के अनुसार वेद प्रचार के वास्ते महर्षि स्वामी जी के यादगार के नाम से चंदे के लिए कहागया. और जो सुजन उस समय विद्यमान थे उन्हों ने ।) चारआना नियमानुसार देना स्वीकार किया— और अनुपस्थित महाशयों से वसूल करने की सम्मति हुई—

दीपावली को अनेक आर्य सुजनों के घर हवन हुए और विशेषतः पं. कालूराम जी ने कराया ॥

आर्य समाज शाहजहांपुर ने ढाई के कार्तिकी के मेले पर उपदेश का प्रबन्ध करने का विचार करके यहां के समाज को लिखा था सो २) रु. खर्च की सहायता में उक्त समाज को भेजे गए ॥

शोक ! शोक ! !

बहुत दुःख के साथ लिखने में आता

है कि लाला नारायण दास जी मन्त्री आ० स० के पुत्र का जिस की आयु आठ वर्ष की थी ता० १५ नवम्बर को स्वर्गवास हो गया ३ मास से यह ज्वर पीड़ित था मन्त्री जीने औषधि तथा दान पुण्य व होम जो २ कर्त्तव्य था सभी कुछ किया परन्तु मृत्यु से रोकने का कोई उपाय नही है यज्ञादिक और औषधि प्रयोग चित्त को शान्ति प्रसन्नता आरोग्यता और भविष्यत् के लिये अनेक शुभ के हेतु हैं नकि मृत्यु को रोकने वाले–बीच २ में कुछ समय को दशा ऐसी भी होगई थी कि आरोग्य होने की आशा प्रतीत होती थी–परन्तु हा ! वह आशा मायाविनी थी आप को इस बुढ़ापे में यह बड़ा घाव हो गया और इसी प्रकार की पिछली भूली हुई चोटों के उखाड़ने का कारण हुआ तथापि धैर्य धारण के साथ मन्त्री जी ने कर्त्तव्य में त्रुटि नहीं की न उन के चेहरे पर अधीरता लक्षित हुई ज्ञान फिर आता भी कौन दिन काम है । आप के एक अभी सद्योजात पुत्र और दो कन्या है परमात्मा उनकी रक्षा करे और शोकाग्नि को अपने ज्ञानजल से शीतल करें—

सामाजिक समाचार ॥

आर्य समाज उर्दू बाजार गोरखपुर को एक विद्वान् उपदेशक की आवश्यकता है ॥

आर्यसमाज कलकत्ते के मन्दिर निर्माण का विचार प्रवृत्त है ॥

शुद्धि–छः मनुष्य जोकि मुसल्मान हो गये थे आर्यसमाज लाहौर ने शुद्ध किये

आ० स० अमृतसर के वार्षिक उत्सव पर डी० ए० वी० कालेज लाहौर को ५०००) रु० चन्दा हुआ–

सीवान–जि० सारन में समाज स्थापित हो गया बाबू कन्हैयालाल जी मंत्री हैं तथा छपरा में भी–इस में ११ सभासद हुए हैं ॥

सुना है कि पिहानी जि० हरदोई में समाज स्थापित हो गया ॥

स्वामी आत्मानन्द स० जी इन दिनों झांसी में हैं–आर्य मंदिर के लिये उद्योग कर रहे हैं ॥

स्वामी भास्करानन्द स० जी बहुतदिन पीछे जोधपुर में प्रकट हुए हैं स० ध० प्रचारक जालंधर से ज्ञात हुआ कि आप के कारण इन दिनों वहां आर्य धर्म की बड़ी धूम है–श्रीमान् महाराजाधिराज जोधपुर समाज की ओर दत्त चित्त है–श्रीमान् महाराज करनल सरप्रतापसिंह जी महोदय समाज के प्रधान हैं–राज की ओर से पबलिक आर्यसमाज योधपुर के लिये दशहजार वर्गगज धरती राज से मिली है–

पंजाब में एक १२ । १३ वर्ष की देवी सिद्ध साधकों ने प्रकट की वह अपनी

बनी हुई सिढ़ियां दिखाती कशमीर पहुंची महाराज कश्मीर के श्री भवन में भी तन्त्र साधकों ने देवी की महिमा पहुंचाई महाराज ने कहा यदि यह देवी है तो सिंह हमारे यहां है देवी सवारी करके अपनी सचाई दिखावे—बस फिर क्या देवी की कला भंग हो गई—

कन्या अनाथालय देहली

मसजिदमोठ देहली में कन्या अनाथालय स्थापित होने की सूचना पूर्वपत्र में दीजा चुकी है इस में पुत्रीशाला भी नियत हो गई है उसी में एक शाखा विधवाओं की शिक्षा के वास्ते खोली गई है उस में इदानीं ३ विधवा मौजूद हैं (दो ब्राह्मणी १ क्षत्रिया) इन को भोजन वस्त्र विधवाश्रम फण्ड से मिलता है सब सज्जनों से निवेदन है कि इस पुण्य कार्य की धन से सहायता करें और शिक्षा पाने के लिये विधवाओं को भेजने में पूर्ण प्रयत्न करें—

हमारे एक मित्र ने ४ तक विधवाओं को चार २ रुपया मासिक वृत्ति देना स्वीकार किया है आशा है कि अन्य सुजन भी ध्यान देवेंगे।

शुभार्थी—गणेशप्रसाद शर्मा
पता—आर्यसमाज फर्रुखाबाद

प्रेरितपत्र ॥

क्वार शुदि ३ को हमारे समाज के मन्त्री पं० सोहनसिंह जी मंत्री आ०स० के पुत्र का नाम करण पं० गणेशप्रसाद जी शर्मा आर्यसमाज फर्रुखाबाद ने वैदिक रीति से कराया संस्कार सम्बन्धी विधि की उत्तमता का वर्णन भी पण्डित यथा प्रसंग कर देते थे जिस से संस्कारोपस्थित नर नारियों को आनन्द व उत्साह होता था नाम चि० जयदेव शर्मा रक्खा हवन विधिवत् हुआ ५)रु० यज्ञ कर्त्तारों को प्रदान किए १) आर्यसमाज पिलखना को उपरान्त स्वागत सज्जनों को यज्ञ प्रसाद दिया गया तथा भोज हुआ परमात्मा बालक को दीर्घायु करे यहां पर आर्यसमाज फर्रुखाबाद को भी धन्य वाद है कि हमारी प्रार्थनापर पंडित जी को भेज कर सहायता की जाती है—

रामदयाल पांडे उ० म० आ०स०
पिलखना जि० फर्रुखाबाद

वार्षिकरिपोर्ट

आर्य समाज फर्रुखाबाद की १९ वें वर्ष की (जुलाई सन् १८९७ से जून स० १८९८ ई० तक)

श्रीसदानन्द कन्द श्री जगदीश्वर की कृपा से इस समाज का १९ वां वर्ष सानंद व्यतीत हुआ. इस में निरंतर ५२ साप्ताहिक समाज हुए और ७ नैमित्तिक अधिवेशन अर्थात् दोदिन वार्षिक उत्सव, दोदिन होली. दिवाली. पर हवन होकर व्याख्यान हुए। १ समुदाय बाबू श्याम विहारी लाल सभासद् टेम्परेन्स सुसाइटी प्रयाग के आने पर २२ अगस्त को तथा एक ता. ११ अक्टूवर को प० गणपति शर्मा उपदेशक के आने पर और १ सामान्य रीत्या श्रावणी पर इस के सिवाय जो २ व्याख्यान उपदेशकों के हुए वे प्रायः रविवारों में आपड़े इस कारण उन का लेख नहीं किया गया ॥

समाज का साप्ताहिक कार्य (अर्थात्) ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना व समयोपयोगी समाचार पत्रों के लेख, और वेद पाठ पं० गणेश प्रसाद शर्मा ने किया और स्वामी जी का जीवन चरित्र लाला नारायणदास जी प्रथम मन्त्री आर्यसमाज वा लाला बद्रीप्रसाद अध्यापक अनाथालय ने यथावकाश पढ़ा, समाज की उपस्थिति अच्छी नहीं हुई ॥

३४ आर्यों के नाम हाज़िरी के रजिष्टर में दर्ज हैं उन की हाज़िरी का औसत पूर्णांक ६ दशम लव ९ है। इन के सिवाय दो चार अन्य अलिखित सुजन भी आजाया करते थे दाखिला के रजिष्टर में आर्यों का नं० १३० है जिन में ११ सुजनों का परमधाम पिछले वर्ष होगया और आर्य सभासदों के रजिष्टर में २५ नाम लिखित थे जिन में विगत वर्ष मुन्शी देवीप्रसाद जी डिप्टीकलेक्टर पिंशनर व चोधरी जोगराज जी का स्वर्गवास हो गया आर्य बन्धुओं के वियोग का समाज को बहुत शोक हुआ अन्तरंग सभा के अधिवेशन भी न्यून अर्थात् छः हुए परन्तु प्रबन्ध में शिथिलता नहीं हुई काम पड़े यहां के सभासद् श्रीमती आर्यप्रति निधि सभा श्रीमती परोपकारिणी सभा * व समाज के अधिवेशनोंमें उपस्थित होते रहे † समाज की आज्ञा से प० गणेशप्रसाद जी शर्मा ने १०

---

* लाला नारायणदास जी संभल आदि स्थानों में उत्सवादि पर पधारे ॥

† राय वहादुर बाबू दुर्गाप्रसाद जी म० व बाबू पुरुषोत्तमनारायण जी व लाला सेवाराम जी श्रीमती परोपका० सभा आगरे पधारे थे—

वैदिक संस्कार कराये और पिलखना समाज का उत्सव वृन्दावन नामक एक त्रिवेदी (ईसाई) का प्रायश्चित (ता० २३ दिसम्बर को) और १ समाज खिमसेपुर चैत शुदि ९ को स्थापित किया जिस में १६ सभासद और २४) रु० सालचन्दा है कायम गंज आदि समाजों में जाकर होम कराया व व्याख्यान दिया (चैत वदि १० को) तथा इन समाजों को प्रतिनिधि सभा से संयुक्त करने को उत्तेजना दी खिमसेपुर पिलखना आदि में दो दो वार और मसेनी नुनौआ गढ़िया कायमगंज संभल और मुरादाबाद आदि स्थानों में एक एक वार यात्रा की कतिपय स्थानों में होम कराया और व्याख्यान दिया और नगर में नियमित और नैमित्तक अनेक वार होम कराये—होम यज्ञ का प्रचार इस नगर के आर्यों में अच्छा है इस के अतिरिक्त समाज के वैदिक पुस्तक प्रचारक फण्ड की सहायता से ईश्वर सिद्धि आदि आर्य धर्म के पोषक १० पुस्तक लिखे जो छप भी गये और इस से पूर्व वर्षों में १७ लेख तयार किये थे अर्थात् सब २७ पुस्तक व ट्रैक्ट पं० जी के बनाये चलते हैं और समाज के मासिक पत्र भारत सुदशा प्रवर्तक का भी सम्पादन करते हैं उक्त पं० जी के अनवकाश में पं० प्रागदत्त जी आदि को सामाजिक कार्य की पूर्त्ति के लिये अलीगढ़ आदि स्थानों पर समाज ने भेजा समाज के औषधि फण्ड से निरन्तर तैलादि २ । ४ गुणकारी औषधि विना मूल्य दीनों को वितरण होती रहीं । इस वर्ष फंड में रुपये ५॥) का व्यय हुआ तथा धर्मार्थ कोष से * निराश्रित कुलीन ब्राह्मणी विधवा का प्रतिपाल होता है इस कोष में १९४७।)॥। रु० हैं ॥

समाज कोष में १५५९।≡) रोकड़ी थे और इस वर्ष २५३।≡)।।। आय और २४०-)। व्यय हुआ अर्थात् २५) चन्दा आर्यप्र० सभा को दिया ५) सहायता समाज कन्नौज ७।-)।।। स्वागत सत्कार § में १७≡)। समाजों की यात्रा में, १९≡)। पुस्तकालय में तथा नीचे लिखी पुस्तकें लाला सेवाराम जी प्रधान आ०स० ने धर्मार्थ प्रधान की † और १७९।।≡)॥ वार्षिकोत्सव होम आदि में व्यय हुये ॥

---

* पं० छोटेलाल जी पं० जानकीप्रसाद जी पं० रामदयाल जी आदि उपदेशक समाज में वार्षिकोत्सव के सिवाय भी पधारे थे ।

† तैत्तिरीय ब्राह्मण (१) आश्वलायन श्रौत (२) तैत्तिरीय आरण्यक (४) लाट्यायन श्रौत (५) तैत्तिरीय संहिता (६) मैत्र्युपनिषद् (७) बीज गणित

तथा भा०सु०प्र० मासिक पत्र में ३७१=)॥ आय और ३६७।)॥। व्यय होकर ३॥।-)॥। वचे सो यह वचत में गण्य नहीं क्योंकि २४) रु० का खर्च जो इसी फंड में योग्यथा समाज ने अपने ऊपर स्वीकार किया अब समाज फण्ड में-देह वा० १५७६॥≡)। है नीचे लिखे अनुसार पदाधिकारी इस वर्ष * रहे और उन सब ने अपनी २ ड्यूटी का काम यथोचित किया, इस के सिवा निम्न लिखित महाशयों ने नैमित्तिक चन्दे में सहायता दी ॥

१५) रु० लाला पुरुषोत्तमनारायण जी ने १५) लाला सूर्यप्रसाद जीने (जिन में १०) रु० लेखराम मैमोरियल फण्ड में मार्फत पं० गणपति शर्मा के भेजे गये) ५) वार्षिकोत्सव में एवं ४) रु० मुन्शी चिन्तामणि जी ने १०) लाला वंशीधर जी २) पं० कालूराम जी १) गणेशप्रसाद शर्मा ६) रु० वावू राजवहादुर जी ने प्रदान किये–लाला कालीचरण जी ने अपने यहां ब्रह्मचारी आनन्दकिशोर जी की शिक्षा से सम्पूर्ण मनुस्मृति की कथा कहाई और पं० चैन सुख जी को १०) भेट किये और ५) लाला भीमराज जी ने दिये और १५) रु० अन्य सुजनों ने (जिन का नाम स्मरण नहीं) दिये। इस के सिवाय ५ पांच अनाथों का पोषण राय वहादुर वावू दुर्गाप्रसाद जी ने और ३ तीन वावू पुरुषोत्तमनारायण जी ने लिये किन्तु पीछे अन्यत्र चले गए परन्तु संस्कारों के अवसर पर समाज के दान का किसीने ध्यान नहीं दिया हां वैदिक संस्कार वेदोक्त रीति से कराये और सन्ध्योपासन तथा हवन में भी प्रवृत्ति अच्छी रही लाला कालीचरण जी दोनों काल स्वयं होम व सन्ध्योपासन करते हैं एवं स्वयं वलिवैश्व भी और महाराज कालूराम भी नित्त वाहर होम करते हैं परमात्मा आर्यों की धर्म में श्रद्धा वढ़ावे ॥ इति ॥

ह० सेवाराम सभापति ह० नारायणदास मन्त्री

ह० पुरुषोत्तमनारायण मन्त्री

* लाला सेवाराम जी प्रधान, रायवहादुर वावू दुर्गाप्रसाद जी उपप्रधान तथा लाला कालीचरण जी वावू पुरुषोत्तमनारायण जी मन्त्री लाला नारायणदास जी मन्त्री पं० गणेशप्रसाद ।

(होमयज्ञ-(पूर्वप्रकाशितानन्तर अक्टूबर के पत्र के ८ वें पेज से आगे)

होम में कैसा चरु डालना चाहिये ॥

हमारे देश के बहुतेरे ब्राह्मण अविद्या के वशीभूत हो कच्चा अन्न अग्नि में छुड़वा देते हैं अर्थात् कच्चे तिल जौ और चांवल का होम कराते हैं सो ठीक नहीं-गृह्य सूत्रों में आमान्न का विधान नहीं है। आश्वलायन गृह्य में लिखा है कि "अथ सायं प्रातः सिद्धस्य हविष्यस्य जुहुयात्" ॥ ५ । १ कं० २ ॥

अर्थात् सिद्ध चरु का होम सायं प्रातः करना चाहिये सूत्रों में जब कि पाक क्रिया तक लिखी है फिर हम नहीं जानते कि वे किस प्रमाण पर कच्चा अन्न रखते हैं-जो चटर २ होकर ऐसा बुरा उटकता है कि यज्ञ में बैठना कठिन पड़ जाता है और जलने की एक विरहायंध भी आती है अतएव हलवा पूरी पकवान से होम कराना चाहिये यदि यवतण्डुल आदि का ही करना अभीष्ट हो तो इन को सुष्ठु पका कर उस में घृत व मिसरी डालकर उत्तम चरु बनाय हवन करना-

दूसरी शंका प्रायः लोगों की मांस के होम पर है उस विषय में प्रश्नोत्तर की रीति पर नीचे लिखा समाधान है।

(प्र०) क्या यज्ञों में हिंसा होती है ?

(उ०) यज्ञों में हिंसा करना वेद विहित नहीं, जो लोग पशु को मार के बलिदान करते यह उन की भूल है मांस में न सुगन्ध है न उस के परमाणु रोगनाशक हैं जो वस्तु स्वयं १२ प्रकार मलों से युक्त है उस में सुगन्ध कैसे सम्भव है ॥

(प्र०) अश्वमेध यज्ञ में घोड़ा गोमेध में गौ. और नर मेध में मनुष्य मारे जाते थे क्या यह मिथ्या है।

(उ०) हां मिथ्या है मांसाहारियों ने अपने स्वार्थ के लिये ये बातें चलाई हैं। मन्त्रों व सूत्रों पर वामियों ने उलटे टीके किये हैं-धर्मशास्त्रों में बनावटी श्लोक भी गढ़ २ कर धरदिये हैं। जैसा कि मनु में लिख मारा कि—

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये नच मैथुने ।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥

अर्थात् न मांस खाने में दोष न मद्य पीने वा मैथुन करने में यह तो मनुष्यों की मानो स्वाभाविक प्रवृत्ति है किन्तु इस की निवृत्ति में महाफल है अ-

न्यत्रान्यत्र भी ऐसे वाक्य मिलते हैं। यथा प्रोक्षितं भक्षयेन्मासम् ॥ "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति–प्रोक्षित अर्थात् यज्ञ सम्बन्धी मांस खाने में पाप नहीं क्योंकि वेद रीति से यज्ञ में हिंसा करना हिंसा में गण्य नहीं इसी प्रकार—"सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्" सौत्रामणी यज्ञ में मद्य पीना पातक नही ऐसा भी लिख मारा है किन्तु जो बात वस्तुतः पापरूप है सो कदापि श्रेय नहीं।

(प्र०) यदि ये वाक्य हैं तो इन का अर्थ क्या है ॥

(उ०) (सौत्रा०) इसका अभिप्राय यह है कि सौत्रा मणी यज्ञ में सोमवल्ली जो एक उत्तम औषधि है उस का रस पीना चाहिये। मद्य व मांस किसी को स्वभाव से प्रिय नहीं मैथुन को छोड़ मद्य मास ऐसी वस्तु नहीं कि उस के खाने पीने को स्वयं मन चले। मांस की प्रवृत्ति मांसाहारी पशुओं में भी तभी होती है जब वे मांस खाते वा अपने मा बाप को खाता देखते। हा सिंहादि किसी२ पशु में मांस की प्रवृत्ति स्वभाव से देखी जाती है। सब में नहीं, किन्तु मनुष्यों को तो स्वभाव से मांसाशी नहीं पाते, जिस पुरुष ने मांस कभी नहीं खाया वह मांस को देख स्वभाव से उस के खाने में प्रवृत्त नही होता, प्रत्युत घिनाता है और मद्य भी किसी को स्वाभाविक प्रिय नहीं है। अश्व का अर्थ अग्नि भी है देखो उणादिकोष १५१ सूत्र की व्याख्या केवल घोड़ा ही अश्व शब्द का अर्थ नहीं और मेध का अर्थ यज्ञ और घृत है। आज्यंमेधः" जिस यज्ञ में अग्नि के गुणों का वर्णन हो सो अश्वमेध है अग्नि में घी डालने का नाम भी अश्वमेध है शतपथ ब्राह्मण में भी "राष्ट्रंवा अश्वमेधः" (१३ । १ । ६ । ३) ऐसा पाठ है देश रक्षा ही अश्वमेध है राजा स्वदेश स्थिरता व उन्नति के लिये न्याय से प्रजा का पालन करे। यही इस वाक्य का अभिप्राय है–जब ऊपर लिखे अनुसार अनेक अर्थ सिद्ध है तो दीन घोड़े ने क्या अपराध किया जो उसे मार कर होम किया जाता है इसी प्रकार गोमेध का अर्थ यह है कि अन्न इन्द्रियां किरण को पवित्र रखना उणादि कोष के दूसरे पाद के ६७ वें सूत्र में गो शब्द का अर्थ ("गच्छति यो यत्र यया वा सा गौः"–पशुरिन्द्रियं सुखं किरणो वज्रं चन्द्रमा भूमिर्वाणी जलं वा) पशु इन्द्रिय सुख, किरण, वज्र, चन्द्रमा, भूमि, वाणी, और जल है वेदों का विधिवत पाठ करना भी गोमेध है और जो न मांस भक्षणे–दोषो०) मनुस्मृति में लेख है सो वस्तुतः मनुवाक्य नहीं कारण कि अनेक ठौर

मनुजीने निषेध किया है अहिंसा साधारण धर्म है (१) स्वर्ग व मोक्ष की प्राप्ति का साधन है (२) सुख का हेतु है हिंसा करने से पाप व दुःख होता है ऐसा मनुजी अपनी स्मृति में अध्याय २। ४। ५। ६। १०। ११ आदि में कई ठौर लिख चुके हैं। और ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्य को यहां तक वलदेकर निषेध किया कि ये लोग आपत्तिकाल में भी हिंसा न करें (३) चाहे वैश्य वृत्ति भले ही करलें–देखो मनु० अ० १० श्लोक ८३ का इस के सिवाय हिंसक को प्रायश्चित भी वताया है और प्रायश्चित्त पाप का होता है यह पुष्टि भी ११ वें अध्याय में की है. देखो श्लोक १३१ से १४१ तक ॥

इसी प्रकार यज्ञ वाक्य शंख अत्रि व्यास वृहस्पत्यादि स्मृतियोंमें भी हिंसा का निषेध किया है विस्तारभय से अधिक नहीं लिख सकते–

(प्र०) यहां तो आपने वहुत कुछ वल लगाया परन्तु वेदों मे भी तो अश्वमेध यज्ञ के प्रकरण में घोड़े का मांस होमना महीधर स्वामी ने लिखा है सो एक स्थल पर नहीं अनेक मन्त्रों में अश्व का अर्थ घोड़ा किया है, तथा घोड़ा उस का वांधना मारना होम करना यज्ञ शेष मांस वांटदेना इत्यादि लिखा है क्या उस को आप नहीं मानोगे–देखो यजुर्वेद के २५ वें अध्याय के ३५ वें मन्त्र को–

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं यईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति। ये चार्वतोमांथंसभिक्षामुपा-

---

१ अहिंसयैवभूतानां कार्यंश्रेयोऽनुशासनम्।
वाक्चैवमधुराश्लक्ष्णा प्रयोज्याधर्ममिच्छता ॥२।१५९॥
अहिंसासत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतंसामासिकंधर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ १० । ६३ ॥

२ योवन्धनवधक्लेशान् प्राणिनान्नचिकीर्षति।
ससर्वस्यहितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते । ५ । ४६ ॥

३ वैश्यवृत्यापिजीवंस्तु ब्राह्मणःक्षत्रियोपिवा।
हिंसाप्रायांपराधीनां कृषिंयत्नेनवर्जयेत् ॥ १० । ८३ ॥

संतउतोलेषामधिगूर्त्तिर्नईन्वतु ॥ यजु० अ० २५ मं० ३५ ॥

॥ महीधर भाष्यम् ॥

(येजनाः पक्वं वाजिनमश्वं परिपश्यन्ति अयंपक्वइति जानन्ति । यईम् ईमित्यव्ययंचार्थे ये च इत्याहुः एवंकथयन्ति किम् सुरभिः सुगन्धः पाकोजातः अतोनिर्हर अग्ने सकाशादुत्तारयेति । ये च जनाअर्वतोऽश्वस्य मांसभिक्षामुपासते हुतशिष्टमांसयाचनां कुर्वन्ते । उतो अपिचतेषां पाकद्रष्टादिजनानामभिगूर्त्तिः उद्यमोनोऽस्मानिन्वतु । प्रीणातु ॥ यद्वायंमन्त्रोदेवपरोव्याख्येयः ॥ येदेवाः पक्वं वाजिनं परिपश्यन्ति कदा होष्यतीति ये च विलम्बं दृष्ट्वा सुरभिः पाको जातोऽस्मभ्यं निर्हर देहीत्याहुः ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासते मांसं याचन्ते तेषामभिगूर्त्तिः संकल्पोऽस्मान् प्रीणातु सफलो भवत्वित्यर्थः) ॥

भा०—यह है कि जो मनुष्य घोड़े के मांस को पका हुआ जान कहते हैं कि सुगन्ध आने लगी (अर्थात् पकगया) इस कारण अग्नि से उतारो और जो पुरुप घोड़े के मांस की भिक्षा मागते हैं अर्थात् हवन करके शेप बचे मांस की याचना करते हैं कि पाक को देखने वाले जनों का उद्यम हम लोगों को प्रसन्न (अर्थात् पका माल मिले) अब इस मन्त्र का देवता पर व्याख्यान करते हैं जो देवता लोग पके हुए घोड़े को जानते हैं जो विलम्ब देखकर कहते है कि कब इस का होम करेगा—सुन्दर पाक हुआ हमारे लिये (निर्हर) दो जो देवता घोड़ा के मांस को मागते हैं उन का यह संकल्प हम को सफल करे ॥

(२) इस मन्त्र का अर्थ जो महीधर ने किया है सो ठीक नहीं बात तो

यह है कि यस्यनास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रंतस्य करोतिकिम् । लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति " ॥ जिसे स्वयं बुद्धि नहीं शास्त्र क्या करे नेत्रहीन को दर्पण बोध नहीं कराता,-अथवा जो पुरुष जानबूझ कर किसी स्वार्थ के वश अनर्थ करता उस पर भी वश नहीं चलता—महीधरने यहां भी वैसा ही ऊटपटांग अर्थ किया है जैसा (गणानांत्वा) इत्यादि मन्त्रों के अर्थों में यजमान की स्त्री का घोड़े से वह काम कराना लिखा है जो काम संतानोत्पत्ति के लिये पुरुष स्त्री से करता है । यह तो एक बड़ी मोटी बात है । आप लोग विचार सकते हैं स्त्री के गुप्तस्थान और घोड़े के मूत्र स्थान का योग कैसे सम्भव है । यदि आजदिन कोई ऐसे अनर्थक वाक्य छापे तो हमारी सभ्य सर्कार विना दण्ड दिये न छोड़े शोक !! २ कहां तो वेदों को ये लोग भी ईश्वरीय पुस्तक बताते और कहां उसी में प्रागुक्त अनर्थ दिखाते जो सर्वथा सृष्टि क्रम से विरुद्ध हैं -इन्हीं अर्थों को देखकर वेदों से लोगों की रुचि और भक्ति जाती रही और जैनियों ने लिखा कि " चत्वारो वेदकर्त्तारो भाण्डधूर्त्तनिशाचराः " अर्थात् चारों वेदों के कर्त्ता भाण्ड धूर्त्त व राक्षस हुए । महात्मा गौतम बुद्ध का चित्त भी ऐसे ही अनर्थों से हट गया और एक बड़ा समुदाय जैन बौद्धों का पृथ्वी पर हो गया—यदि इन को वेदोपदेश होता तो लंका चीन जापान आदि देश बौद्धों के बदले आर्य प्रजा से परिपूर्ण होते ॥

चार्वाक आभाणक आदि जैनबौद्ध के मतवालों ने अच्छा खण्डन किया है उन के ग्रन्थों में लिखा है कि—

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमेगमिष्यति । स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥

अर्थात् यज्ञ के लिये मारा गया (घोड़ा आदि) पशु अग्नि में होम करने से यदि स्वर्ग को जाता है तो यजमान अपने पिता आदि को मार के उन्हें स्वर्ग में क्यों नहीं भेजता कारण कि स्वर्ग ही के वास्ते बड़े २ यज्ञादिक किये जाते हैं-यह गुटका तो ऐसा सहज है कि क्रमशः वर्त्तने से सब सहज ही स्वर्ग को चले जावें अर्थात् यजमान के बूढ़े होने पर उसका पुत्र उसे मारकर स्वर्ग पहुंचावे इसी प्रकार उसका पोता अपने पिता को यों परम्परा चलने से स्वर्ग का मार्ग बहुत ही सुगम हो जायगा ॥

देखो उक्त मन्त्र का सत्य अर्थ यह है जो महर्षि दयानन्द स्वामिकृत भाष्य से उठाया गया है ॥

॥ महर्षिदयानन्दभाष्यम् ॥

(ये) (वाजिनम्) वेगवन्तमश्वं (परिपश्यन्ति) सर्वतोऽन्वक्षिन्ते (पक्वम्) परिपक्वस्वभावम् (ये) (ईम्) प्राप्तम् (आहुः) (सुरभिः) सुगन्धः (निः) नितराम् (हर) निस्सारय (इति) (ये) (च) (अर्वतः) अश्वस्य (मांसभिक्षाम्) मांसयाचनाम् (उपासते) (उतो) अपि (तेषाम्) (अभिगूर्त्तिः) अभ्युद्यमः (नः) अस्मान् (इन्वतु) प्राप्नोतु ॥ ३५ ॥

अन्वयः—येऽर्वतो मांसभिक्षामुपासते च येऽश्वमी हन्तव्यमाहुस्तान्निर्हर दूरं प्रक्षिप। ये वाजिनं पक्वं परिपश्यन्ति उतो अपि तेषां सुरभिरभिगूर्त्तिर्न इन्वत्विति ॥ ३५ ॥

(ये) जो (अर्वतः) घोड़े के (मांस भिक्षाम्) मांस के मांगने की (उपासते) उपासना करते (च) और (ये) जो घोड़े को (ईम्) पाया हुआ मारने योग्य (आहुः) कहते हैं उन को (निःहर) निरन्तर हरो दूर पहुंचाओ (ये) जो (वाजिनम्) वेगवान् घोड़ा को (पक्वम्) पक्का * (परिपश्यंति) सब ओर से देखते हैं (उतो) और (तेषाम्) उनका (सुरभिः) अच्छा सुगन्ध और (अभिगूर्त्तिः) सब ओर से उद्यम (नः) हम लोगों को (इन्वतु) प्राप्त हो उन के अच्छे काम हम को प्राप्त हों ॥

भा०— जो घोड़े आदि उत्तम पशुओं का मांस खाना चाहें वे राजा आदि श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा रोके जाने चाहियें। जिस से मनुष्यों का उद्यम सिद्ध हो—

सच तो यह है कि वेद का शुद्ध अर्थ पवित्र अन्तः करण में ही भासता है

* पक्का अर्थात् सवारी में काम देने योग्य देखते भालते हैं सम्पादक

इसी से वेदों का अर्थ करना धीर तपस्वी जितेन्द्रिय—लोभ रहित सच्चे साधु महात्मा का काम है—

महीधर को इतना भी बोध न रहा कि मांस पकने में सुगन्ध आती है वा दुर्गन्ध ? जहां मांस कटता विकता वा पकाया जाता सदा कुवास ही आती है। तथा यह भी न सूझा कि, जिस वेद में हम हिंसा बताते हैं उसी में अहिंसा तो स्पष्ट है। फिर इस दशा में क्या वेदों का ईश्वर ईसाई मुसलमानों के खुदा के समान भ्रान्तियुक्त है जो भूला करता है ॥

देखो यजुर्वेद में हिंसा का निषेध अध्याय मन्त्र में हुआ है कि घोड़ा भैंस गौ बकरी और दो पैर वाले जीव इन को न मारो ॥

अश्वंमाहिꣳसीः, गांमाहिꣳसीः, अविं माहिꣳसीः, । माहिꣳसीर्द्विपादं पशुं मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व । इमꣳ साहस्रꣳ शतधारं माहिꣳसीः ॥ य० ॥ अ० मं० ॥

इसी प्रकार अथर्ववेद के आठवें काण्ड के दूसरे अनुवाक का २३ वां मन्त्र भी शिक्षा करता है कि जो मनुष्य कच्चा वा पुरुष का पकाया हुआ मांस वा अण्डे वा गर्भ के बच्चे खाते हैं उन्हें तू नष्ट करता है ॥

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं चये क्रविः । गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥ अ० ८।६।२३ ॥

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि वेदशास्त्र में हिंसा नहीं तब यज्ञों में क्यों ? अतएव हिंसा रहित सदा सब को होम यज्ञ करना चाहिये ॥ इति

जीव रूह क्या है ॥

(पूर्व प्रकाशितानन्तर मई के पत्र के १२ वें पेज से आगे)

ना–जीव को किसने बनाया—

आ–जीवात्मा अनादि है किसी का बनाया नहीं ईश्वर उस के कर्मानुसार फलदेता है और फल भोग में वह पराधीन और कर्म करने में स्वतन्त्र है–वेद में कहा है ॥

देखो ऋग्वेद अष्टक २ अध्याय ३ वर्ग १७ ऋचा २० वीं को और यही ऋचा श्वेताश्वतर उपनिषद् के चौथे अध्याय में भी वर्णित है ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ अ० २ अ० ३ व० १७ मं० २० ॥

(द्वा) दो (सुपर्णा) पक्षी (सयुजा) साथ मिले हुए (सखाया) मित्र से हैं और (समानम्) अपने समान (वृक्षम्) वृक्ष के (परिषस्व जाते) सब ओर से संग हैं (तयोः) उन दोनों में से (अन्यः) एक तो (पिप्पलम्) फल को (स्वादु) सवाद मान कर (अत्ति) खाता और (अन्यः) दूसरा (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभिचाकशीति) साक्षिमात्र है ॥

ना–पुनर्जन्म किस प्रकार कब से होता आया है

आ०–अनादिकाल से यह जीवन मरण चला आता है यों होता है जैसा कठोपनिषद् में कहा है ॥

अनुपश्ययथापूर्वे प्रतिपश्यतथापरे । सस्यमिवमर्त्यःपच्यते सस्यमिवजायतेपुनः ॥ प्रथमावल्ली मं ६

नचिकेता अपने पिता वाजश्रवस नामक ऋषि से कहता है कि (पूर्वे) पहिले हो चुके लोग (यथा) जैसा आचरण करते आये (परे) वर्तमान सुजन भी (प्रतिपश्य) वैसे ही प्रतिज्ञा पालन करते हैं क्योंकि देह क्षणभंगुर है । (मर्त्यः) मनुष्य (सस्यमिव) खेती के समान (पच्यते) पकता वा

ओ३म्

भारत सुदशा प्रवर्त्तक ॥

आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद का प्राचीनपत्र, २० वर्ष से श्रीस्वामीजी महाराज की आज्ञानुसार प्रकाशित होता है ॥

(प्रतिमास की २८ वीं तारीख़ को प्रकाशित होता है)

जिस में

वेदशास्त्रानुकूल धर्म्मसम्बन्धी, व्याख्या, स्त्रीशिक्षा, इतिहास, समाचार और अनेक मनोरञ्जक विषय सरल भाषा में छपते हैं ॥

इस पत्र का उद्देश्य सत्य सनातन धर्म नागराक्षर तथा मातृभाषा की उन्नति व ख्याति करना है

२० वा भाग ४ थी संख्या द्वितीयाश्विन सं० १९५५ वि० अक्टूबर स० १८९८ ई०

पं० गणेशप्रसाद शर्म्मा द्वारा सम्पादित होकर मुंशी नारायणदास जी मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद की आज्ञा से सरस्वती प्रेस—इटावा में छपा ॥

स्थानिक समाचार ॥

ता० १५ शनिवार को लाला नारायण दास जी मन्त्री आ० स० ने स्वपुत्र के आरोग्य पाने पर वैदिकविधि से ऋग-चतुष्टय पूर्वक हवन कराया और दीनों को अन्नदान से संतुष्ट किया ॥

विगत अमा० को महाराज कालूराम जी ने पुष्कल घृत से होम कराया ॥

सामाजिक संदेशमाला

युगण्डा (एफ्रिका) में एक आर्यसमाज स्थापित होनेका तथा कालिण्डन मेंएक आर्यसमाज रहने का शुभ समाचार हमारे योग्य सहयोगी आर्य मसेंजर प्रकाशित करते हैं। इसी लेख में उन्हों ने पंजाबी आर्यों का ठीक फोटू उतारा है। जिस का सार यह है कि पंजाबियों ने आर्यसमाज की बहुत उन्नति की और वे इस काम में गौरवास्पद हैं परन्तु समाज की बदनामी भी इन्हीं से हुई घासी मांसी की पदवी व दो दल होना आदि—

उर्दू बाजार गोरखपुर में समाज स्थापित हुआ और एक पुस्तकालय भी खुला है ॥

मौजा वबियाल जि० अम्बाला में समाज स्थापित हुआ—

श्रीमान् पुवायां नरेश ने अपने पुत्र चि० कुमार इन्द्रविक्रम सिंह वर्मा के विवाहोत्सव के आनन्द में समाज पुवायां को स्थान निर्माणार्थ भूमि प्रदान की है। आशा है कि यथावसर द्रव्य सहायता देकर स्थान भी बनवा देवेंगे आप के लिये यह कौन बड़ी बात है समाज को उद्योग करना चाहिये ॥

लाला आत्माराम जी व मास्टर दुर्गाप्रसाद जी के व्याख्यानों से चम्बा के राजा साहब बहुत प्रसन्न हुए और १०००) रु० वैदिक पाठशाला लाहौर को प्रदानकिये

श्रीमान् राजाधिराज शाहपुराधीशों के राज भवन में लाला मुन्शी राम जी वा लाला आत्माराम जी का व्याख्यान परमश्लाघ्य हुआ। श्रीमान् समयावधि विराजमान रहे ३०० सौ के अनुमान श्रोता भी थे कलकत्ते में धर्म महामण्डल की बड़ी धूम है उधर आर्यसमाज में ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी वैदिक सिद्धान्तों का मण्डन कर रहे हैं ॥

आर्यसमाज बम्बई अब कुछ सचेत प्रतीत होता है प्रायः मास में कोई स-प्ताह उत्साह से बीतता है इस समाज को प० आत्माराम बपुजी दालवी की विधवा धर्म पत्नी श्रीमती राधा बाई ने ५००) रु० समाजस्थ संस्कृत पाठशाला को दिये हैं यह धन आत्माराम दालवी स्कालरशिप नाम से रहेगा।

आर्यसमाज दक्षिण हैदराबाद ने श्रीमान् निजाम महाराज के ३३ वीं वर्षगांठ के स्मारक में " निजामजन्मोत्सव दक्षिण कन्या पाठशाला व अनाथालय" विजय दशमी को स्थापित करना निश्चय किया है। विचार प्रशस्त है ॥

अन्यान्यसमाचार ॥

एक मैम का दाह संस्कार—नम्बर ६६ धर्मतला स्ट्रीट के रहने वाले डाक्टर एम० एल० जोली विट्ज की स्त्री ६२ वर्ष की अवस्था में मरगई थी उक्त स्त्री की इच्छानुसार उस की लाश नीम तल्ला की श्मशानभूमि में जलाई गई थी। मालूम होता है कि कलकत्ता में अंगरेज भी अब दाहसंस्कार के गुणों को समझने लगे हैं ॥ (आ० मि० १९ सि०)

स्वामी अभेदानन्द जी जोकि स्वामी

विवेकानन्द जी के पश्चात् एमरीका गये थे आपने यहां के पादरियों की लीला वहां खोली। मिशनरी रिविऊ आफदी वर्ल्ड नाम पुस्तक में कलकत्ता फ्रीचर्च मिशन के पादरी डाक्टर के एस० मैकडोनल्ड ने उक्त स्वामी जी को तुच्छ ठहराने को एक लम्बा लेखप्रकाश किया और अभेदानन्द की बातोंपर एमरीकनों की प्रसन्नता पर शोक प्रकट किया अब पादड़ी लोग सन्यासियों से बहुत चिढ़ते हैं-इन की आमदनी में कमी हुई न !!!॥

पंजाब के सर्दार दयालसिंह मजीठिया २५ लाख रुपया एक नवीन कालेज की स्थापना के निमित्त मरते समय संकल्प कर गये हैं। इस में अंगरेजी के साथ ब्राह्मधर्म की शिक्षा को भी लेख है परन्तु सिक्खों के लिये कुछ नहीं किया इस से लोग असन्तुष्ट हैं और क्रस्तानों के चर्चमिशन स्कूल मजीठिया के लिये एक ग्राम और मिस्ट्रेस रनहेल नामक मेम साहिब को २० हजार धर्म पत्नी को सब मकानात व जवाहिरात परन्तु खर्च को केवल १००) रु० महीना ३०) हजार लाहौर में एक वृहत्पुस्तकालय के लिये दिया है—ब्रह्मसमाज की शिक्षा व ईसाइयों का दान सरदार साहब के स्वधर्म में ढमाढोल जंचाता है।

वम्बई के प्रसिद्ध पार्सी मिस्टर जमशेद जी नसरवान जी टाटाने भारत में साइन्स विद्या वृद्धि के लिये तीस ३०) लाख रुपये प्रदान किये हैं इन्होंने जाति पांति व धर्म का रगड़ा छोड़ सब के हितार्थ यह संकल्प किया है। अतः आप भारत की ओर से धन्यवाद के पात्र हैं आशा है कि इस द्रव्य से कृषि व भूगर्भ विद्या तथा रसायन विद्या में भारतीय छात्र उत्तीर्ण होकर देश का कल्याण करेंगे—

वम्बई की प्रसिद्ध दान शीला दीनवाई के मरने पर २३६८५१) रु० का दान हुआ ये बाई जी मिस्टर नसरवान जी मानक जी पीटिट की विधवा थीं॥

औब्ज़र्वर समाचार लिखता है कि भारतवर्षके प्रधान सेनापति ने आज्ञा प्रचार की है कि युवा सैनिक किसी पद के क्यों न हो मद्य पान की दशामें अपराध करने पर दण्डभागी होंगे पदोन्नति के समय भी उन के इस आचरण पर ध्यान दिया जायगा कि मद्यपी हैं वा नहीं-(७।१०।९८)

रूस व यूनान के युद्ध में रूम के मद्य न पीने वाले मुसलमान प्रबल पड़े थे। इंगलेण्ड के प्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी डाक्टर ग्रेस भी मद्य नहीं पीते।

मादक पदार्थों से पश्चिमोत्तर व अवध की सर्कार में सन् ९६ ई० में ५२८६४११) रु० और ९७ ई० में ४२२९६९५) रु० हुए एक व्यक्ति की सम्मति है कि सेव (फल) दिनमें तीनवार खानेसे कैसाही मद्यप क्यों नहो कुटेव छोड़कर चंगा होजायगा॥

राजपुताना की वालटर कृत राजपुत्र हित कारिणी सभा का अधिकांश काम नियमानुसार चलता है वहा के १४ रज वाड़ों में २७०७ विवाह नियम के अनुकूल और ७२ प्रतिकूल हुए॥

श्रीमान् रमेश चन्द्रदत्त सी० आई० ई० सा० २६ अक्टूबर से लंदन में आर्यों की प्राचीन सभ्यता पर व्याख्यान देवेंगे। वाद कोमुसलमानों व अंगरेजीराज विषय पर—

होमयज्ञ-(पूर्व प्रकाशितानन्तर सितम्बर के पत्र के १६ वें पेज से आगे)

वर्च्चोज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ॥२॥ ओ३म् ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥३॥ ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥४॥ (१)

सायङ्काल होम करने के मन्त्र

(२) ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥१॥
ओ३म् अग्निर्वर्च्चोज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ॥२॥
ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥३॥
ओ३म् सजूर्देवेनसवित्रासजूरात्र्येन्द्रवत्याजुषाणोऽग्निर्वेतु स्वाहा ॥४॥

सायङ्काल इन चार मंत्रों से आहुति देना और तीसरे मंत्र अर्थात् जो प्रथम है वही तीसरी संख्या पर भी लिखा है उस को मन में उच्चारण करके तीसरी आहुति दान करना चाहिये। ये मंत्र यजुर्वेद के अध्याय तीसरे के ९। १० हैं॥

---

(१) (सूर्य्योज्यो०) जो चराचर का आत्मा प्रकाश स्वरूप और सूर्यादि प्रकाशक लोकों का भी प्रकाशक है उस की प्रसन्नता के लिये हम लोग होम करते हैं (सूर्योवर्चो) जो सूर्य परमेश्वर हम को सर्व विद्याओं का देने वाला और हम लोगों से उन का प्रचार कराने वाला है उसी की अनुग्रह से हमलोग अग्निहोत्र करते हैं। (ज्योतिःसूर्यः) जो आप प्रकाशमान और जगत् का प्रकाश करने वाला सूर्य अर्थात् सब संसारका प्रकाशक ईश्वर है उस की प्रसन्नता के अर्थ हमलोग होम करते हैं (सजूर्देवेन) जो परमेश्वर सूर्यादि लोकों में व्यापक वायु व दिन के साथ परिपूर्ण सब पर प्रीति करने वाला और सब के अंग २ में प्राप्त है वह अग्नि परमेश्वर हम को विदित हो उस के अर्थ हम लोग होम करते हैं॥

(२) (अग्निर्ज्यो०) अग्नि जो परमेश्वर ज्योतिःस्वरूप है उस की आज्ञा से हम परोपकार के लिये होम करते हैं और उस का रचा हुआ जो यह भौतिकाग्नि है जिस में द्रव्य डालते हैं सो इस लिये है कि उन द्रव्यों को परमाणु रूप करके जल वा वायु तथा वृष्टि के साथ मिला के शुद्ध करदे (अग्निर्वर्च्चो०) अग्नि जो परमेश्वर सो वर्च अर्थात् सब विद्याओं का देने वालाहै तथा भौतिक अग्नि आरोग्य तथा बुद्धि बढ़ाने का हेतु है इस लिये हम लोग होम करके परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं। (सजूः) जो परमेश्वर प्राणादि में व्यापक वायु तथा रात्रि के साथ पूर्ण सब पर प्रीति करने वाला और सब के अंग २ में प्राप्त है वह अग्नि परमेश्वर हम को प्राप्त हो जिस की प्राप्ति के लिये हम होम करते हैं॥

नीचे लिखे आठ मंत्रों से दोनों काल होम करना यदि कोई एक ही समय करे तो सायं प्रातः तथा उभय कालीन समस्त मंत्रों तथा प्रारम्भ के आघारावाज्यभागाहुति के मंत्रों से अर्थात् समस्त मंत्रों से एक काल में होम करदेवे॥ "यामेधां०" इस मन्त्र से लेकर "अग्नेनय०" तक ३ मंत्रों का अनुमोदन स्वामी जी महाराज ने संस्कार विधि में किया है अतः ये ३ मंत्र बढ़ने से आठ होगये ॥

अथोभयोः कालयोरग्निहोत्रे होमकरणार्थास्समाना मंत्राः॥

ओ३म्–भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ इदमग्नये प्राणाय इदन्नमम ॥ ओ३म् भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ॥ इदंवायवेऽपानाय इदन्नमम ॥२॥ ओ३म भूर्भुवःस्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्नमम ॥४॥ ओ३म् आपो ज्योतिरसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरों स्वाहा ॥५॥

ओ३म्–यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तयामामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा (१) ॥ य० अ० ३२ मं० १४

ओ३म्–विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा (२) ॥ य० अ० ३० मं० ३

(१) हे (अग्ने) ईश्वर ! (देवगणाः) अनेकों विद्वान् (च) और (पितरः) ज्ञानी लोग (याम्) जिस (मेधाम्) बुद्धि को (उपासते) सेवन करते हैं (तयामेधया) उस बुद्धि वा धन से (माम्) मुझ को (अद्य) आज (स्वाहा) सत्यवाणी से (मेधाविनम्) बुद्धिमान् वा धनवान् (कुरु) कीजिये॥

(२) हे (देव सवितः) परमेश्वर आप हमारे (विश्वानि) सब (दुरितानि) दुःखों को (परासुव) दूर कीजिये और (यत्) जो (भद्रम्) सुख है (तत्) उस को (नः) हमारे लिये (आसुव) अच्छे प्रकार उत्पन्न कीजिये॥

ओ३म्—अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देववयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा (१) ॥ य० अ० ४० मं० १६

प्रागुक्त आठ मन्त्रों की आहुतियों के पश्चात्—ओ३म् सर्वं वै पूर्णं स्वाहा—इस मन्त्र से तीन पूर्णाहुति अर्थात् एक २ वार मन्त्रोचारण करके ३ आहुति देवे इस प्रकार नित्य कर्म समाप्त है यदि कोई संस्कार करना हो तो प्रागुक्त मन्त्रों तथा जिस २ संस्कार में जो २ विशेष मन्त्र संस्कारविधि में लिखे हैं उन से आहुति देना चाहिये और सामान्यरीत्या विशेष होम के लिये व संस्कारों के निमित्त भी ईश्वरस्तुति प्रार्थना के मन्त्रों तथा स्वस्तिवाचन व शान्ति करण के मन्त्रों से आहुति दान करना चाहिये इस से भी अधिक शाकल्य हो तो ऋक् तथा यजुर्वेद के स्तुतिरूप मन्त्रों से और गायत्र्यादि मन्त्रों से होम करना अन्त में नीचे लिखे मन्त्र से उक्त प्रकार पूर्णाहुति करना ॥

ओ३म्—पूर्णादर्विपरापत सुपूर्णापुनरापत । वस्नेव विक्रीणावहाऽइष मूर्जंशतक्रतो (२) य० अ० ३ मं० ४९

---

(१) हे (देव) दिव्यस्वरूप (अग्ने) परमात्मन् जिस से हम लोग (ते) आप के लिये (भूयिष्ठाम्) अधिकतर (नमउक्तिम्) सत्कार पूर्वक प्रशंसा का (विधेम) सेवन करें । इस से (विद्वान्) सब को जानने वाले आप (अस्मत्) हमलोगों से (जुहुराणम्) कुटिलतारूप (एनः) पापाचरण को (युयोधि) पृथक् कीजिये (अस्मान्) हम जीवों को (राये) विज्ञान वा धन से हुए सुख के लिये (सुपथा) धर्मानुकूल मार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) प्रशस्त ज्ञानों को (नय) प्राप्त कीजिये ॥

(२) इस का अर्थ यह है कि जो (दर्वि) पके हुए होम करने योग्य पदार्थों को ग्रहण करने वाली (पूर्णा) द्रव्यों से पूर्ण हुई आहुति (परापत) होमे हुये पदार्थों के अंशों को ऊपर प्राप्त करती वा जो आहुति आकाश में जाकर वृष्टि से (सुपूर्णा) पूर्ण हुई (पुनरापत) फिर अच्छे प्रकार पृथ्वी में उत्तम जल को प्राप्त करती है उस से हे (शतक्रतो) असंख्यात कर्म वा प्रज्ञा वाले जगदीश्वर आप की कृपा से हम यज्ञ कराने और करने वाले विद्वान् होता और यजमान दोनों (इषम्) उत्तम २ अन्नादि पदार्थ (ऊर्जम्) पराक्रम युक्त वस्तुओं को (वस्नेव) वैश्यों के व्यवहारों के समान (विक्रीणावहै) ॥

पूर्णाहुति के पश्चात् "ओ३म्–सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु"(१)इतने मन्त्र से प्रणीता पात्र के जल से आचमन करके ॥

दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः (२) य० अ० ३६ मं० २२

इस आधे मन्त्र से प्रणीता को वहीं औंधा देना । उपरान्त

ओं त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषं यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोअस्तु त्र्यायुषम् (३) य० अ० ३ मन्त्र ६२

इस मन्त्र से परमात्मा की प्रार्थना करे इन दिनों प्रायः प्रचार में उक्तमन्त्र से लोग अग्नि होत्र की भस्म माथे तथा गले आदि में लगाते हैं परन्तु स्वामी जी ने इस विषय में कोई विधिवाक्य नहीं दिखाया है हां यज्ञोपवीतसंस्कार में अवश्य विधान है ॥

ओ३म्–पूषासि घर्मायदस्वः

इस मन्त्र से घृत युक्त प्रोक्षणी के जल का आचमन भी प्रायः लोग कराते हैं (४) इति ॥

---

(१) जनवरी सन् ९१ ई० की छपी है (जगद्विनोद यन्त्रालय अलीगढ़ की) नित्य कर्म पद्धति जो पं० हरिश्चन्द्र शर्मा उपदेशक आ० स० बुलन्दशहर की है उस में भी प्रोक्षणी के जल का आचमन उक्त मन्त्र द्वारा लिखा है तथा अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः इत्यादि यजुर्वेद के अध्याय तीसरे के (३९ से ४३ तक) तथा १७ वां इन छः मन्त्रों से गार्हपत्योपस्थान करना भी लिखा है ॥

(२) हे ईश्वर आप की कृपा से जल तथा ओषधि हमारे लिये सुमित्रिया अर्थात् सुख दायक हों ॥

(३) जो पापी हम से द्वेष करता है वा जिस दुष्ट से हम द्वेष करते हैं उस को पूर्वोक्त पदार्थ प्रतिकूल हों ॥

(४) इस का अभिप्राय यह कि हे प्रभु हमारे तीनोपन सुधरें वा सौ के ऊपर ३०० वर्ष से ४०० तक की आयु वाले हों ॥

वैदिकमत की प्राचीनता ॥

(सितम्बर के पत्र ८ पृष्ठ से आगे)

वैदिक धर्मोपदेशक श्रीपरमेश्वर ॥

पुण्यमयी पवित्र भारत भूमि में सृष्टि की आदि में वेदोत्पत्ति ईश्वर के द्वारा हुई अर्थात् " यथापूर्वमकल्पयत् " पूर्व कल्प में जैसे जोड़ेदार जीव तथा गिरि कानन नद नदी समुद्र और सूर्य चन्द्र तारकादि को सृज कर वेदों को प्रकट किया था उसी प्रकार वर्त्तमान कल्प में भी अग्नि वायु आदित्य और अंगिरा के हृदय में क्रमशः ऋक् यजु साम व अथर्ववेद को प्रकाशित कर दिया इन्हीं ऋषियों से ब्रह्मा ने वेद पढ़ा ब्रह्मा से उन के मरीच्यादि पुत्रों ने शिक्षा पाई तब क्रमागत अद्यावधि वेदों की शिक्षा चली आ रही है इसी से इन का नाम श्रुति है कि प्राचीनों से सुनते आते हैं भारत वर्ष में जब मनुष्यों की वृद्धि हुई तो यहां से चीन व यूनान आदि में बसने लगे भारत वर्ष के पण्डितों से सारे देशों ने शिक्षा पाई समय के हेर फेर से अनेक मत चल पड़े उन में प्रसिद्ध बड़े २ थोकों की नवीनता ऊपर दिखला चुके हैं उन के सिवा शंकरस्वामी के मत वाले तथा दुष्ट वाम मार्गी आदि भी इस देश में बढ़े किन्तु अंत को शिथिल पड़गये संसार में यद्यपि लोग झूठ से काम निकालते हैं परन्तु उसकी बढ़ती से क्लेश की वृद्धि होती है तब पुनः सत्यस्वरूप वेदों का आश्रय लिया जाता है इसी से वेदों का नितान्त लोप कभी नहीं होता—

वेदों के कल्पादि में होने का प्रमाण वेद पुस्तक ही है क्योंकि इन से समीचीन कोई पुस्तक ही नहीं जिस का प्रमाण दिया जावे उदाहरणवत् एक मन्त्र नीचे * नोट में लिख दिया है जिस का अभिप्राय यही है उसी परमेश्वर से वेद प्रकट हुए हैं—इस के सिवाय ब्राह्मण उपनिषद् षट् दर्शन और मनुस्मृत्यादि ग्रन्थों का भी साक्ष्य वेदों की समीचीनता पर है पूर्वोक्त सब ग्रन्थ मूल वेद व वेदाशय को लेकर ही बने हैं—काल के परिवर्त्तन से ग्रन्थों में उलट फेर होना दूसरी बात है ॥

भारत वासी ही वेदों की प्राचीनता का वर्णन नहीं करते वरन विदेशी पण्डित भी स्वीकार करते हैं ॥

* तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत—य० अ० ३१ मं० ७

सुप्रिमकोर्ट कलकत्ता के जज सर विलियम जोन्स साहब मनुस्मृति ही को बहुत पुरानी अङ्गीकृत करते हैं। आपने मनुस्मृति का अंगरेजी में अनुवाद किया है अतः उस की भूमिका में लिखा है कि यह स्मृति किसी समय यूनान व मिश्र तक प्रचरित थी इसी के अनुसार वहां सम्पूर्ण कार्य होते थे–

वाइविल इन इण्डिया में लिखा है कि ईरान, मिश्र व रोम की नीति का भित्ति मूल मनु जी हुए ॥

मखज़न उल उलूम की ७ वीं जिल्द के ११ नम्बर में मौलवी अल्ताफ हुसेन साहब लिखते हैं कि हिन्दुस्तान के पुराने रहने वाले हिन्दू (आर्य) हैं। उन के पुरखों का वृत्तान्त जो इतिहासों में देखा जाता है उस से उन का सब प्रकार की विद्याओं में निपुण होना प्रसिद्ध है उन्हों ने तत्त्वशास्त्र में बहुत उन्नति की है। इस बात पर सब एक मत हैं कि हिन्दुओं की प्रथमोन्नति के समय में अन्य सब जातियां विद्याहीन थीं इस से यह स्पष्ट सिद्ध है कि उन्हों ने ये विद्यायें और किसी से नहीं सीखीं ॥

तेरहवीं सदी की तीसरी जिल्द के नम्बर ८ में लिखा है कि इसी हिन्दुस्तान में जिस की विद्याओं से समस्त भूगोल कृतार्थ हुआ और जिस के प्राचीन ऋषियों ने विद्या विषय में कोई बात शेष नहीं छोड़ी *

भारतत्रिकालदशा में कर्नल अलकाट साहब लिखते हैं कि प्रायः छःहज़ार वर्ष हुए होंगे कि आर्यों का एक समुदाय मिश्र देश को गया उस समय वहां मेना नामक राजा राज्य करता था—भारती आर्यों ने मिश्र में जाकर सब को उपदेश किया। वेद पढ़ाया तथा शिल्प विद्या सिखाई फिर वह शिक्षा वहां से यूनान यूनान से रूम और अरब आदि देशों में फैल गई ॥

इसी प्रकार उपनिषदों की भी युरोपियन विद्वान् प्रशंसा करते हैं। जर्मन के प्रसिद्ध पण्डित स्कोपनहार प्रकाशित करते हैं कि अहा उपनिषदों की प्रत्येक पङ्क्ति किस प्रकार पूर्वापर पोषक और गौरवान्वित आशयों को प्रकट कर रही है कि इस के प्रत्येक वचन से गम्भीर अथच महोत्तम शिक्षा निकलती है। सम्पूर्ण उपनिषद् उच्च पवित्र, और यथार्थ भावों से परिपूर्ण हो रहे है संसार का कोई भी शिक्षाप्रद ग्रन्थ उपनिषदों की समता को प्राप्त नहीं हो सकता–

* देखो स्मृति प्रकाश की भूमिका छापा आर्य दर्पण प्रेस शाहजहांपुर ॥

इन का पाठ हमारे वर्तमान जीवन को सुख का मूल हुआ है और यही हमारे मृत्युकाल तथा भविष्यत् जीवन के लिये शान्ति का कारण होगा। *

इङ्गलैंड के प्रसिद्ध विद्वान् प्रोफेसर मेक्समूलर भी वेदान्त पर कहते हैं कि यदि फिलासोफी मनुष्यों के मृत्युकाल को हर्षदायक बनाने के लिये रची गई है तो मेरे जानने में वेदान्त विज्ञान से वढ़कर मौत के भयानक समय को हर्ष-दायक बनाने वाला दूसरा ज्ञान नहीं है। †

जर्मनी के माननीय विद्याधन डाक्टर पालडिउशन ने भी अपनी स्पीच में (जो लाहौर २० दिसम्बर सन् ९३ ई० को दी थी) कहा था कि आर्यों के प्राचीन वैदिक धर्म में सब कुछ है। वेदों में मूर्त्तिपूजा नहीं है केवल निराकार परमात्मा की उपासना है जोकि सर्वान्तर्यामी है। जितने मत संसार में हैं वे सब अधूरे हैं इसी एक वैदिक धर्म का आश्रय रक्खे हुए हैं ॥

पाठक! प्रागुक्त वचनों से आपने बोध किया होगा मनुस्मृत्यादि ग्रन्थ उत्तम व प्राचीन हैं। और इन सब में वेदों की प्रशंसा है अतएव वेद सर्वो-परि हैं ॥

अब विचारना चाहिये कि वेदोत्पत्ति हुए कितना समय व्यतीत हुआ है और वह कैसे जाना जा सकता है ॥

हम ऊपर लिख आये हैं कि सृष्टि की आदि में वेद प्रकट हुए और इस वर्त्तमान कल्प की सृष्टि को बीते एक अरब सत्तानवे करोड़ उनतीस लाख अ-ड़तालीस हजार नौ सौ निन्यानवे वर्ष व्यतीत हुए हैं उस में प्रमाण यह है कि जो संकल्प कि आर्य लोग अपने नैत्यिक वा नैमित्तिक कामों में पढ़ते हैं उसी से उक्त वर्ष वीतना सिद्ध होता है। इसी संकल्प में कहाजाता है कि " वैव-स्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे० " अर्थात् वैवस्वत मनु का २८ वां क-लियुग वर्त्तमान है इस से जाना जाता है कि उक्त मनु के २७ कलि बीत चुके हैं—स्वायंभुवादि १४ मन्वन्तर का कल्प होता है (वैवस्वतः ७ सातवां है तो छः मन्वन्तर बीत चुके) और ७१ चतुर्युगी का १ मन्वन्तर कहाता है। एक चतु-

* आ० व० ८ सि० स० ९४ ई०

† अमृत बाजार पत्रिका ५ अगस्त ९४ ई० व आर्यावर्त्त २५ अगस्त ९४ ई०

युगी ४३२०००० वर्ष की होती है जोकि अपने ३६०००० मूल तथा ७२ हजार संध्यासंध्यांश सहित है इस को ७१ से गुणा करने से (४३२००००×७१) ३०६७२०००० होते हैं इन में १७२८००० कल्प की आदि सन्धि का प्रमाण जोड़ देना चाहिये ऐसा करने से ३०८४४८००० हुए क्योंकि छः मन्वन्तर बीत चुके इस लिये इस संख्या को छः गुणा करने से १८५०६८८००० होते हैं । इन में विगत सताईस चतुर्युगी की संख्या (४३२००००×२७) ११६६४०००० और २८ वां व्यतीत कलि ४९९९ जोड़ने से (१८५०६८८०००+११६६४००००+४९९९) १९६७२९४८९९९ एक अरब ९७ करोड़ २९ लाख ४८ हजार नौ सौ निन्यानवे वर्ष व्यतीत होते हैं यही समय वेद को प्रकट हुए कल्प में से बीता है कल्पादि का हिसाब जो सविस्तर देखा चाहें वे हमारी बनाई जगदुत्पत्ति स्थिति व प्रलय नामक पुस्तक में देखें ॥

समस्त लेख का सारांश यह कि मुहम्मद को हुए १३१५ ईसा को १८९७ गौतम को २४४४ मूसा को ३४६८ जरदुश्त को ४२९७ और व्यास को हुए ४९९९ वर्ष (अनुमान) होते हैं । तथा वेद को १९७२९४८९९९ बरसें व्यतीत हुए हैं सारे मतों ने वेदों का सहारा लिया है और लेंगे क्योंकि विना वेद कोई मत नहीं चलसकता मनुजीने सत्य कहा है ॥

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम् ॥
अशक्यंचाप्रमेयंच वेदशास्त्रमितिस्थितिः ॥ अ० १२।९४
चातुर्वर्ण्यंत्रयोलोका-श्चत्वारश्चाश्रमाःपृथक् ।
भूतंभव्यंभविष्यंच सर्ववेदात्प्रसिध्यति ॥ अ० १२।९७

ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेवच ।
त्र्यवरापरपज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥

धर्म व्यवस्थापक सभा की आवश्यकता ॥

देश, जाति, या समुदाय में जब विद्या विहीन विचार शून्य, अदूरदर्शी स्वार्थी, स्वच्छन्दचारी हठी और दुराग्रही पुरुषों का आधक्य होता है तब ही वह समाज छिन्न भिन्न होने लगता है ॥ इन दिनों देखते हैं तो आर्यसमाज के नाम से ऐसे अनेक पुस्तक बनगये हैं जो कि बहुधा आर्यतत्त्व से रहित हैं। नवीन रचना की इतनी भरमार है कि बहुधा पुस्तक पसारों की पुड़ियों में बचते हैं। जिस के जो मन समानी अपनी कल्पना कर बैठता है और नया सिद्धान्ती बन जाता है यदि यही दशा रही तो जैसे ईसाइयों में रोमन केथोलिक, प्राटस्टेण्ट और ग्रीक चर्च हैं अथवा मुसलमानों में ७३ वा ८४ फ़िरके समझे जाते हैं और हिन्दुओं के थोकों की तो गणना ही नहीं है इसी प्रकार आर्यों में भी गोल बंध जायेंगे—पंजाब की मांस पार्टी का रगड़ा और जोधपुर का निराला सिद्धान्त, अभी शान्त नहीं हुआ था इसी बीच एक नयेनवी (वा इमाम जी कहिये) रावरोशन सिंह रईस बंगरा ने वेदसार नामक पुस्तक रचकर उस में अपने को १९ वीं सदी का सिद्धान्ताचार्य ठहराया है। इन्होंने अनेक अंशों में आर्यसमाज के सिद्धान्तों के विरुद्ध अपना एक गोल पृथक् करने का सूत्रपात किया है। आर्यसमाज के सभ्यों को आर्य हठी और अपने तईं को सिद्धान्ती ठहराया है। मूल कि धर्म के तत्त्व को न जान कर इन दिनों लोग वेद विरुद्ध मन मानी कल्पना कर बैठते हैं और अपने को आर्य समाजी बताते हैं। साथ ही स्वामी जी की प्रशंसा भी मुक्तकंठ करते हैं ऐसे ही लोगों की रची पोथियां जब पौराणिकों के हाथ लगती हैं तो वे सर्वसाधारण को दिखलाते हैं और वार्त्तालाप वा शास्त्रार्थ में आगे (पेश) कर कहते हैं कि भाइयो देखो यह आर्यों की करतूत है इन के यहां मांस खाना लिखा है। डाक्टर की राय से शराब पीना जायज़ है। ब्राह्मण का मान सन्मान पापमूलक है षोडश संस्कार गप्प हैं स्वर्ग मोक्ष धोखे की टट्टी है * इत्यादि २ दिखाने पर आर्यों को वृथा

* इत्यादि बातें वेदसार में हैं जिन की समालोचना आगे की जायगी ॥

लज्जित होना पड़ता है शोक का विषय है कि आर्यसमाज का वृक्ष अभी बढ़ने नहीं पाया कि उस पर सिद्धान्त भेद रूपी पैनी कुठारी चलने लगी—यदि इस विषय में शीघ्र यत्न न किया जायगा तो अनेक शोक वनने की शंका है ॥

इस का मुख्य उपाय यही है कि समस्त आर्यप्रतिनिधिसभाओं द्वारा स्वीकृत विचारशील आर्य विद्वानों की एक सभा धर्म निर्णय के लिये स्थापित हो महर्षि स्वामी जी महाराज ने भी मनु के प्रमाण व्यवस्था दी है कि न्यून से न्यून दश विद्वानों अथवा बहुत न्यून हों तो तीन विद्वानों की सभा जैसी व्यवस्था करे उस धर्म अर्थात् व्यवस्था का उल्लङ्घन कोई भी न करे—इस सभा में चारों वेद न्यायशास्त्र निरुक्त धर्मशास्त्र आदि के वेत्ता विद्वान् सभासद् हों परन्तु वे ब्रह्मचारी गृहस्थ और वानप्रस्थ हों तब वह सभा हो कि जिस में दश विद्वानों से न्यून न होने चाहिये ॥

यद्यपि समाजों की सार्वदेशिक सभा का प्रश्न कई वर्ष से उठरहा है परन्तु अभीतक अनेक कारणों से स्थापित न हो सकी और अब ऐसा होना आवश्यक प्रतीत होता है यदि यह सभा स्थापित हो जाय तो इसी के अधिकार व प्रबन्ध से धर्म व्यवस्थापक सभा स्थापित होना चाहिये उस में उन सब पुस्तकों की विवेचना की जावे जोकि आर्य लोग बनाते हैं जब तक सभा से पुस्तक पास न हो जावे आर्यसमाज की न समझी जाय अर्थात् आर्यसमाज उसी पुस्तक का उत्तर दाता है जो उक्त सभा की मुहर से मुद्रित है इस में कार्य कर्त्ता दो एक वैतनिक भी होना चाहिये और ग्रन्थ कर्त्ता लोगों से कुछ द्रव्य भी रजिस्टरी की भान्ति लेना चाहिये। इस धन से सभा कोष की वृद्धि होगी और पुस्तक रचयिताओं को भी विक्री में लाभ होगा क्योंकि सभा की मुहर से ग्रन्थ मान्यास्पद होता है और भी विचारने से इस के नियम बन सकते हैं। ७।८ वर्ष का समय हुआ जबकि आर्य धर्म सभा के नाम से एक सभा प्रागुक्त विचारों के निर्णय और शंकासमाधान के लिये प्रयाग में प० भीमसेन जी शर्मा के उद्योग से स्थापित हुई थी परन्तु कार्य कर्त्ताओं के शैथिल्यादि दोषों से चल न सकी स्वयं प० भीमसेन जी आर्यसिद्धान्त में अपना कर्त्तव्य पालन करते रहे और अब भी उस का निर्वाह किये जाते हैं ऐसे कार्य तो सर्वसाधारण के सहाय और काम करने वालों के अवकाश व चित्तदान पर निर्भर हैं। किन्तु अब वह दशा है कि यदि आज

प० तुलसीराम जी (जो सामवेद का भाष्य कर रहे हैं) सामवेद में रामावतार दिखावें वा प० भीमसेन जी मनुस्मृति वा उपनिषदों से कृष्ण की चीर हरण लीला सिद्ध करें तो आर्यसमाज बन्धन में पड़ जावे यद्यपि यथार्थ में आर्यसमाज ज़िम्मेदार नहीं परन्तु जब समाज के प्रागुक्त पण्डित कहाते हैं और आर्य पक्ष लेकर विपक्ष का खण्डन करते हैं और विश्वासपात्र हैं इन का विपरीत नोटिस हुए बिना आर्यसमाज के विरुद्ध करने पर भी सर्वसाधारण में अनुकूल ही समझे जावेंगे अतएव इन की भूल का एक प्रकार से समाज पर बोझ आता है और उक्त प्रकार सभा हो जाने पर कभी कोई बात हठ वा दुराग्रह से किसी की न चलेगी न समाज उंगलाया जायगा ॥

नये सिद्धान्तचार्य राव रोशनसिंह रईस बंगरा जिला जालौन

उक्त महाशय ने अपरेल सन ९६ ई० में एक बिल सब समाजों में भेजा था जिस का अभिप्राय यह था कि एक नया थोक (आर्य वा अन्यों का जो उसमें सम्मिलित हों) बनाया जावे उस में परस्पर वर्ण व्यवस्था का पक्ष छोड़ खान पान और विवाहादि संस्कार हुआ करें इस बिल से किसी आर्य व हिन्दू ने सहानुभूति प्रकाश न की हम ने भी प्रेम भाव से जुलाई सन ९६ ई० के भा०सु०में राव साहब से अपना बिल वापिस लेने को समुचित रीत्या निवेदन किया था वैसे तो ऐसे अंड बंड अनेक बिल व चोचें खुलती रहती हैं परन्तु उस में उन्हों ने अपने तईं को आर्य समाज कानपुर का सभासद लिखा था इस लिये हमें इतना लिखने की आवश्यकता हुई कि कहीं सिद्धान्त भेद न हो जावे परन्तु वह हमारा उस समय का अनुमान ठीक पड़ा जो शंका की थी वही आगे आई राव साहब ने हमारे लेखपर ध्यान न देकर उलटा क्रोध प्रकाश किया और अपने अभीष्ट की सिद्धि में वेदसार नामक २९८ पेज का एक पुस्तक रच डाला जिस में प्रथम तो ईश्वर विषय है फिर वेदोत्पत्ति आदि विषय हैं इस में १८ अध्याय दफा के नाम से लिखे हैं उन में क्या है सत्यार्थप्रकाश का खंडन स्वामी दयानंद स० जी महाराज की प्रशंसा और निन्दा पंडित भीमसेन जी व्याजस्तुति

और उन पर कठोर (आक्षेप भा० सु० प्र० पर दांत पिसौअल षोडश संस्कारों का खंडन नये ढंग से ईसाई मुसलमान वा ब्राह्मो की तरह विवाह की रीति भाकी कन्या, लुगाई की कहानी अपने नोकर और रसोइयों की बनावटी गाथायें आर्यों को झूठी अपने को सिद्धान्ती मासका मंडन डाक्टर की सम्मति से मद्यपान करना अपनी एक निराली धर्म सभा बनाना, उस का मंदिर स्थापन इत्यादि अटपटांग स्वांग दिखाया है, अत एव आर्यों को ऐसी पुस्तक को न तो आर्य समाज की समझना चाहिये न ग्रंथ कर्ता को तबतक आर्यसमाज का सभासद् मानना जब तक अपनी भूल स्वीकृत न करलें—

हम नहीं जानते कि कानपुर समाज ने वेदसार छपने पर राव जी से कोई उत्तर लिया वा नहीं ॥

आर्यसमाज धर्म के आधार है धर्म विचार से जब समाज ने बड़े २ सूर्यवंशी व चन्द्रवंशी राजों की परवाह न की तो अधूरे ग्रामाधीशों की कौन गणनाहै।

वेदसार के देखने से ज्ञात होता है कि रावसाहब संस्कृत फारसी अरबी आदि किसी भाषा के विद्वान् नहीं, संस्कृत तो दूर रहा उन्हें साधारण भाषा लिखना नहीं आता—पृष्ठ १२६ में हाकिम का बहु वचन (गैयन ढिरियन की गमारू तुला (वजन पर) हाकिमन लिखा है। इसी प्रकार लिंग (जेंडर) ज्ञान रहित होने से स्त्री लिङ्ग के प्रयोग में पुलिंग पद रक्खा है अर्थात् मेरी जोजा वजीर आजम साहिब देखो पृष्ठ ३९ की तीसरी पङ्क्ति को—सच तो यह है कि अनधिकारी को अधिकार मिलने से ऐसी ही व्यवस्था होती है

स्वामी जी महाराज ने बहुत यथार्थ कहा है—कि "जो अविद्या युक्त मूर्ख वेदों के न जानने वाले मनुष्य जिस धर्म को कहें उस को कभी न मानना, क्योंकि जो मूर्खों के कहे हुए धर्म के अनुकूल चलते हैं उन के पीछे सैकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं ॥

येवदन्तितमोभूता मूर्खाधर्ममतद्विदः।
तत्पापंशतधाभूत्वा तद्वक्तृननुगच्छति॥

ओ३म्

भारत सुदशा प्रवर्त्तक ॥

आर्यसमाज फर्रुखाबाद का प्राचीनपत्र, २० वर्ष
से श्रीस्वामीजी महाराज की आज्ञानुसार
प्रकाशित होता है ॥

(प्रतिमास की २८ वीं तारीख को प्रकाशित होता है)

जिस में

वेदशास्त्रानुकूल धर्मसम्बन्धी, व्याख्या, स्त्रीशिक्षा, इतिहास, समाचार और
अनेक मनोरञ्जक विषय सरल भाषा में छपते हैं ॥

२० वा भाग ३ री संख्या प्रथमाश्विन सं० १९५५ वि० सितम्बर सन् १८९८ ई०

विज्ञापन—सामवेदभाष्य ॥

श्री पं० तुलसीराम जी स्वामी द्वारा अनुवादित होकर ४० पेज पर अच्छे कागज मे प्रतिमास छपता है आर्यों के लिये यह अपूर्व अलभ्य लाभ है चार अङ्क छप चुके हैं इस में मन्त्रों की गणना मन्त्रगान की रीति षड्जादि स्वरों की व्याख्या लिखी है और उन शङ्काओं का निवारण किया है जो प्रायः लोगों को उठती हैं ऊपर वेद मन्त्र नीचे पदपाठ पुनः प्रमाणपूर्वक संस्कृतभाष्य नीचे स्पष्ट भावार्थ व तात्पर्य भी लिख दिया है इतने काम पर भी मूल्य बहुत थोड़ा अर्थात् ३) रु० साल है अनुमान ३ वर्ष के पूरा होगा परन्तु ६)रु० अग्रिम देने से सम्पूर्ण भाष्य क्रमशः प्रतिमास मिलेगा वेदविद्याके रसिकों को परममान्य धर्मग्रन्थके उत्साहियों को पं० तुलसीराम स्वामी, स्वामी प्रेस मेरठ को निवेदन पत्र भेजना चाहिये ॥

सुरमा ॥

इस सुरमा से यह रोग आरोग होते हैं जाला माड़ा फुली धुन्ध छड़ सफेदी रतोंधी सबलवायु कमलवायु सूर्यग्रहण खुजली फरकना जलन आंख लाल पीली रहिना दुखना नींद का न आना भूत का भय आदि एक माशे का दाम ≡) । शेर—ममीरा मुफ्त नज़र है मेरे आगे हीरा क्या है। कि रहे दीन अनाथों पर इहसान मेरा । परहेज़ मांस का न खाना ॥ छेदालाल महता आर्य मुकाम कायमगंज जि० फर्रुखाबाद ॥

पं० गणेशप्रसाद शर्म्मा द्वारा सम्पादित होकर मुंशी नारायणदास जी मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद की आज्ञा से सरस्वती प्रेस-इटावा में छपा ॥

स्थानिक समाचार ॥

ता० ८ सितम्बर को बाबू कन्हैसिंह जी दारोगा सेंट्रल जेल की पुत्री का जात कर्म तथा नामकरण शुद्ध वैदिक रीति से होकर चि० भाग्यवती नाम रक्खा गया—संस्कार में आपने विधिवत् विपुल चरु से हवन कराया और इष्ट मित्रों का सत्कार किया ।

आश्विन कृष्णा अमावास्या को लाला नारायणदास जी मंत्री आर्य्यस० ने चि० ज्येष्ठ पुत्र के कुछ रोगार्त्त होने से, जैसे औषधादि प्रयोगरूपी ईश्वरीय आज्ञा का पालन किया, वैसे ही परमात्मा की स्तुति प्रार्थना पूर्वक हवन भी कराया, पांच वेद पाठी ब्राह्मणों का वरण किया ईश्वर कृपया उसी दिन से रोग क्रमशः घटने लगा है—जगदीश्वर शीघ्र आरोग्य करे ॥

सामाजिक संदेश माला ॥

आर्यसमाज चकराता में प्रति १५ वे दिन किसी एक आर्य के घर हवन होता है श्रावणी को मुन्शी बाबूलाल सभासद् के घर पर होम होकर रक्षा बन्धन पर पं० रामचन्द्र जी ने व्याख्यान दिया था ।

हमारी अनुमति में प्रति अमा व पूर्णिमा को आर्यसमाजों में हवन होना चाहिये क्योंकि यह काम धर्म का है इस लिये धर्म विचार से सब आर्यलोगों को इस दिन अवश्य ही समाज में आने व मिल कर प्रार्थना करने का अवसर प्राप्त होगा समाजों की हाज़िरी तबतक अच्छी नहीं होगी जब तक इस प्रकार पुण्य कार्यों की बात न लगाई जावेगी

कन्या अनाथालय देहली

क०अ० मसजिद मोठ देहली का कुछ वृत्तान्त पूर्व लिखा जा चुका है कि कन्या पाठशाला में १८ लड़कियां नागरी शिक्षा पाती हैं यहां विधवाओं के पोषणार्थ हमारे एक मित्र ने प्रबन्ध किया है वे ४ तक विधवाओं को विद्या पढ़ने के लिये ४) रु० मासिक (प्रत्येक को) देने को प्रस्तुत हैं अतएव आर्यसुजनों को सूचना दी जाती है कि यदि ऐसी विधवा जो शिक्षा योग्य सुशील हो और देहली के उक्त आश्रम में रहना स्वीकार करे उस के मध्ये मुझ को लिखें । --

गणेशप्रसाद शर्मा

पता—कार्यालय आर्यसमाज

फर्रुखाबाद

आर्यपत्रिका से ज्ञात हुआ कि राम नगर का लेखराम एंगलो संस्कृत स्कूल उन्नति दशा में है।

श्री पं० भीमसेन जी शर्मा के पुत्र जन्म हुआ उस का नामकरण संस्कार श्री पं० ज्वालादत्त जी ने वैदिक रीति से करके सनाम चि० देवसेन शर्मा रक्खा इस आनन्द में पण्डित जी ने विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को भोजन दिया।

परमात्मा बालक को चिरायु करे वह पितृवत् धार्मिक व पण्डित हो देशोपकार करे—

दयानन्दाश्रम हाईस्कूल अजमेर से इन्ट्रेन्स में १३ में ८ और मिडिल में १२ में दश पास हुए सैकड़ों स्कूलों से यह फल अच्छा है

अगस्त में धर्म महामण्डल के महामन्त्री पं० दीनदयालु शर्मा ने कानपुर में कई व्याख्यान दिये संयोग से श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी महाराज भी कानपुर पधारे फिर क्या महामंत्री जी के व्याख्यानों का यथोचित उत्तर व आर्य धर्म का मण्डन समाज स्थान में स्वामी जी खूब करते रहे—

नए समाज स्थापित हुए ॥

ग्राम नरैना जि० मेरठ में पं० मुरसद्दीराम जी उपदेशक पश्चिमोत्तर प्रतिनिधि सभा के उपदेश से (ठाकुर चतुरसिंह प्रधान और श्री भगवान्‌सिंह वर्मा मंत्री है, चंदासमाज १२) रु० वार्षिक १५ सभासदों के बीच हुआ है ॥

१४ अगस्त को घुगरावली जि० बुलन्द शहर में लीलाधर जी के उद्योग और पं० मुरसद्दीराम जी के उपदेश से ला० वेणीप्रसाद जी प्रधान ला०- लीलाधर जी मंत्री हैं सिकन्दरपुर तथा ताल ग्राम जि० फर्रुखाबाद तथा किशनी जि० मैनपुरी में पं० जानकीप्रसाद जी शर्मा उपदेशक के उपदेश से—

नवीन आविष्कार ॥

बम्बई प्रान्त के प्रोफेसर भिडे ने एक ऐसा यन्त्र बनाया जिससे बाईसिकल (पैरगाड़ी) को जहां चाहें ठहरायें- इन्हीं महाशय ने एक ऐसा भी यन्त्र बनाया है जिस से रेल में आगे आने वाला स्टेशन पूर्व से ज्ञात हो जाय भारत की सर्कार ने इस का पेटेंट स्वीकार किया है और पैरगाड़ी वाले यन्त्र का पेटेंट कराने को दर्शित महाशय एमरीका गये हैं एमरीका की शोधक मंडली ने उक्त पेटेंट स्वीकृत किया है देखो भारत वासियों की बुद्धि सोचें तो सब कुछ करलें—(वें० स०)

जिस कपास से बारीक कपड़ा बुना जाता वह मिसर व एमरीका में होती है और यहां का सूत मोटा होता है इस लिये खंभात नरेश ने मिसर से बिनौले मगाकर बुआये हैं आशा है कि राज को वैसी ही सफलता होगी जैसी दो एक अन्यस्थलों पर हो चुकी है ॥

रूस में एक ऐसा यन्त्र बना है जिस से जल के भीतर के जन्तु दीख पड़ते हैं॥

इंगलैण्ड में जो यन्त्र बना उससे पेट के भीतर का दृश्य देखा जासकता है—

(प्रेरित पत्र का सार)

मौजा गल्ली में आयुर्वेदीय विद्यालय का स्थापित होना

यहां सन् १८९१ ई० में उक्त विद्यालय स्थापित हुआ था सो ५ । ६ वर्ष चल कर टूट गया जब कि मैं प्रवासी था। दूर होने से प्रबन्ध नहीं कर सकता था अब मेरा रहना गल्ली में हुआ तो यहां के भद्र पुरुषों के सहाय से पुनः जून ९८ ई० से विद्यालय खोला है जिस में अब १२ विद्यार्थी हैं और भर्ती होते जाते हैं विद्यार्थियों को संस्कृत तथा वैद्यक सिखाया जाता है और वनौषधियों का अनुभव कराते हैं। एतदर्थ घर २ धर्मघट धराये हैं उन से तथा फीस से ५) रु० मासिक आय होता है और पांच ही मुद्रा मासिक का एक अध्यापक है किन्तु उतने अल्प व्यय से काम नहीं चल सकता अतएव धार्मिक सेठ साहूकार तालूकेदार और साधारण सुजनों से निवेदन है कि इस शुभ काम में सहायता देवें जिस समय यथेष्ट धन एकत्र हो जायगा तो मूलधन नष्ट नहीं किया जायगा उस के व्याज से काम चलता रहेगा

सम्पादक जी उक्त लेख छाप दीजिये आप का मासिकपत्र भारतसुदशा प्रवर्त्तक के यहां अवलोकन होने से मौजा गल्ली में आर्यसमाज स्थापित हो गया है ॥

आप का सच्चा हितैषी—कृष्णानन्द शर्म्मा मौजा गल्ली—पो० आ० वैसखेत जिला कमायूं

पण्डित कृ० न० जी को उचित है कि उस प्रान्त के देशानुरागी धर्मशील सुजनों से याचना करें और द्रव्य वहीं के किसी योग्य साहूकार के यहां जमा करावें तथा एक प्रबन्धकर्तृ सभा बनाकर उस के द्वारा कार्य चलावें तब अभीष्ट सिद्ध होगा ॥

[भारतसुदशा प्रवर्त्तक सितम्बर सन् १८९८ ई०]

समाचार पत्रों में क्या एतद्विषयक भी छपने चाहिये ॥

ता० ३ सितम्बर के आर्यावर्त्त में जो लेख काशी के लिये योग्य उपदेशक विषयक छपा है वह अनुचित है यह तो केवल श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा प० उ० अवध से सम्बन्ध रखता है सो न तो आर्यावर्त्त को छापना उचित था न मन्त्री समाज काशी को छपने भेजना था पत्र में जो प० नन्दकिशोर जी तथा पं० बद्रीदत्त जी पर कटाक्ष है वह उन्हीं का जी नहीं तोड़ता वरन दूसरे उपदेशकों का और आर्यसमाज की निर्बलता प्रकट करता है माना कि काशी में संस्कृतज्ञ अधिक हैं तो क्या आर्य

सुजन धर्म पक्ष में उन से गिर सकते हैं। आर्यसमाज सत्यता के आधार पर है. कूरी संस्कृत की टांय २ पर नहीं काशी के पण्डितों ने आज तक क्या किया सिवाय व्याकरण में परस्पर के गाल घं-घोटा के—जिन्हे पीढ़ी पर पीढ़ी वीत गईं संस्कृत लिपि अथवा उस के ढंगढाल का आजतक न सुधार सरल किया वरन संस्कृत भाषा को मुडफुटी बनादिया जंहा दो संस्कृतज्ञ इ न्ट्ठे हुए मूड़फुटौअ-ल होने लगी प० नन्दकिशोर जी कास पढ़े संस्कृत में भलीभान्ति सम्भाषण कर सकते हैं और अच्छा व्याख्यान देते हैं तथा पण्डित वद्रीदत्त जी व्याख्यान में योग्य हैं क्या हुआ पारसी शब्द कुछ अधिक बोलते हैं कितने अवसरों पर उसी भाषा की आवश्यकता हो जाती है यह दर्शित उपदेशकों के उत्साह व पौरुष की प्रशंसा है कि अभय काशी जैसे स्थान पर वक्तृत्व किया यदि फारसी शब्दाधिक्य के कारण उन का व्याख्यान वहां के लिये समयोचित न था तो इन के व्याख्यान को वलात् म-न्त्री जी को (मजबूर) किसने किया घर ऐसे घरेऊ प्रवन्ध तो स्वयं घर में ही हो जाने चाहिये ॥

पंजाव का झगड़ा भी समाचार पत्रों ही के कारण अधिक बढ़ा और प्रसिद्ध हुआ आदि में कोई ऐसी बात न थी जो पीछे „ गडुआ गढ़त भेर हो गई „ इस लिये समाचार पत्रों में उक्त प्रकार के लेख न होने चाहिये ॥

रँढिहाव पुतिहाव करने वा भीतरी बातें प्रकट करने के लिये पत्र नहीं है, वरन अपने सच्चे उद्देश्य को पूरा करने को हैं। अतएव समाचार पत्रों में वह वाद प्रतिवाद जिस से वैमनस्य बढ़े वा निर्बलता ज्ञात हो कदापि न छपने चाहिये—हां जो यथार्थ में आर्यसमाज के योग्य नहीं ऐसे वञ्चक का नोटिस आदि अवश्य होना योग्य है कि दूसरे धोखा न खावें—

यहां का समाज हर रविवार को होता है हाजिरी ३० । ४० तक हो जाती है। समाज की तरफ से एक कन्या पाठशाला भी खोली गयी है । १० कन्यायें शिक्षा पाती हैं एक (अध्यापिका) की जरू-रत है । पाठाशाला पण्डित महेशीलाल के स्थान पर होती है । समाज की त-रफ से एक उपदेशक भी रख लिया गया है जो उपदेश भी करता है और पाठ-शाला में भी पढ़ाता है अभी वेतन १०) रु० केवल दिया जाता है ॥

पन्नालाल—आर्यसमाज

फैजाबाद

वैदिक मत की प्राचीनता ॥

(अगस्त के पत्र के १२ वें पेज से आगे)

लाभ किया ॥

मूसा की अवस्थामिसर में आने पर यात्रा पुस्तक के ७ वें पर्व में ८० वर्ष की लिखी है मूसाने बनीइसराइल को उपदेश दिया। मूसा की बहुत सी शिक्षा, ठीक वेदों से मिलती है तथा कुछ पुराणों से कुछ मजूसी आदि मतों से जो उस से पूर्व हो चुके हैं—

यज्ञवेदी बनाना, यज्ञपात्रों का रखना, ऊपर से चंदोवा तानना, युद्धों में परमेश्वर की सहायता लेना, सोने चांदी की मूर्त्तियों की पूजा का खण्डन करना, वेदानुकूल है परन्तु घी के बदले सुगन्धित तेल से चरु बनाना जो यात्रा पुस्तक में लिखा है सो ठीक नहीं कदाचित् अनुवादक की भूल से हो फारसी वाले घी व तेलको रोगन बोलते हैं मूसाने पशुओं का बलिदान भी बतलाया था,। जान पड़ता है कि महीधर भाष्य की भनक उस के कान में अवश्य पड़ी॥

इसी प्रकार जो प्रायश्चित तथा व्रतों की शिक्षा की हो वह मन्वादि स्मृतियों से ली गई। तथा जादू की छड़ी का सांप बनना, और समुद्र का इसके चलते सूख जाना इत्यादि किसी ऐन्द्र जालिक से सीखी जानो जिन को अधिक देखना हो वे बाइबिल का पुराना विषय मिशन प्रेस प्रयाग का छपा अवलोकन करें॥

मूसा ने वेद व जिन्दावास्ता से मत शिक्षा लेकर इबरानी भाषा में एक संग्रह किया और उस का नाम तौरेत रक्खा, और ईश्वर वचन कह कर यहूदिया देश में प्रचार किया॥

॥ मजूसी मत के धर्माधिकारी जरदुश्त ईरानी ॥

ईरान अर्थात् पारस देश के धर्माचार्य महात्मा जरदुस्त थे जो कि मूसा से ८२९ वर्ष पहिले हुए मूसा की यात्रा पुस्तक के प्रमाण से ईसा से १५७१ वर्ष पूर्व मूसा का होना ऊपर लिख आये हैं॥

अर्थात् अब से ३४६८ वर्ष पूर्व मूसा को हुए बीतना दिखा चुके हैं और ४२९७ वर्ष पूर्व (अब से) जरदुश्त के होने का प्रमाण नीचे लिखा है इस लिये (४२९७–३४६८) ८२९ वर्ष मूसा से पूर्व जरदुश्त की उत्पत्ति में होते हैं॥

लिडिया नगर निवासी जेनथस की साक्षी से डियोजिन्स लायरटस लिखता है कि ट्राय के युद्ध से छसौवरस पहिले जोरास्टर विद्यमान था यह युद्ध

ईसा से १८०० अठारहसौ वर्ष पहिले हुआ इस हिसाब से (१८००+६००+१८९७)
४२९७ वर्ष जरदुश्त की उत्पति के निकलते है (१) ॥

प्रोफेसर मेक्स मूलर लिखते हैं कि इस में कुछ सन्देह नहीं कि युनानीहकीम फलातू (२) और अरस्तू (३) जरदुश्त को जानते थे (४) परन्तु प्लैनी नामक इतिहास वेत्ता की सम्मति है कि जोरास्टर नवी यहूदी मूसा से कई हजार वर्ष पहिले हुआ। और उस ने मजूसी मत चलाया—यह बात प्लैनी ने अपनी पुस्तक के वाव ३० कीभी दूसरी आयत में लिखा है ऐसा प्रमाण मतपर्येषणा के ११ वें पेज में मुद्रित है ॥

पं० लेखराम जी ने भी अपने अनुसन्धान में जरदुश्त को मूसा से बहुत पहिले दिखाया है और पं हनुमान् प्रसाद जी ने भी मतपर्येषणा में यही निश्चय किया कि दर्शित महात्मा व्यास जी के पश्चात् और मूसा से पूर्व हुए परन्तु जरदुश्त की बनाई जिन्दावस्ता पुस्तक के वाव १३ आयत ६५ से ७६ तक देखने से ज्ञात होता है कि जरदुश्त व व्यास जी का समय एक ही शताब्दी है आयु में जितने कुछ जरदुश्त जी छोटे हों उक्त पुस्तक में वाह्लीक (वलख) में व्यास जी से उन का वार्तालाप होना पाया जाता है जो हो इतिहासज्ञों के मतों में वर्षों का हेर फेर अवश्य है परन्तु इस पर अधिकांश सम्मति है कि जरदुश्त मूसा से पहिले हुए और व्यास के समय में विद्यमान थे उन्हों ने ईश्वर की एकता ईश्वर वाक्य (इलहाम) का होना गाय की रक्षा, (५) अग्निहोत्र का करना पुनर्जन्म मानना(६)परस्त्री गमन से वचना (७) सत्यभाषण करना गुण कर्मानुसार सुख दुःख होना (८) इत्यादि वेदोक्त विषय को स्वपुस्तक में स्वीकार किया है और सात सितारों का पूजन (९) पुलसिरात (१०) आफताव परस्ती अर्थात् सूर्य का पूजन (११) आदि पुराणों से लिया है—

(१) फलातू ईसा से ४२९ और (२) अरस्तू (ईसा से) ३८४ वर्ष पूर्व हुए (३) देखो मेक्स मूलर का साइन्स आफ लेंगवेज जिल्द १ पेज २७९ (४) देखो मतपर्येषण पृ०११ । (५) देखो तालमूत वहय्यद (६) देखो दसातीर आसमानी आयत ८१ (७) दसातीर आयत ९० (८) दसातीर आस० आ० ६८ (९) दसातीर आसमानी आयत १६३ (१०) तालमूत वहय्यद हदीसें पार्सियों की देखो (११) डवल्यू ऐविंग साहव की वनाई लाइफ ऑफ महम्मद वाव १

पौराणिक मत और महात्मा व्यास जी ॥

जिस पौराणिक मत की आज ईसाई मुसलमान और शिक्षित शिखाधारी पोल खोल रहे हैं। जिस का प्रमाण विद्वन्मण्डली में हास्यास्पद है जिस मत को सुसभ्य अङ्गीकृत नहीं करते सो शिक्षा वेद व्यास ने हमारी सम्मति में पुराणों में नहीं की है—जिस का उदाहरण व प्रमाण हम आगे दिखावेंगे ॥

इस में सन्देह नहीं कि वेद व्यास जी के नाम से अनेक स्वार्थियों ने पुराणों में कपोल कल्पना की है ॥

अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः ॥ इति भारते

और यहां तक ऊट पटांग और व्यर्थ गाथा बढ़ाई कि मूल कथा की भी रेढ़ मार दी है उस लेख से भी लोगों को घृणा हो गई जो यथार्थ है इसी कारण जरा सी गुंजाइश पाते ही इस समय के लोग तर्क करने लगते हैं और व्यास जी महाराज पर भी आक्षेप करते हैं कि अठारह पुराणों के बनाने वाले क्या येही व्यास थे—कुछ पुराण व्यास के नाम से बने और भागवतादि ग्रन्थ व्यास के पुत्र शुक मुनि के नाम से प्रसिद्ध किए गए व्यास जी ने जो वेदान्त सूत्र बनाये हैं अथवा पतञ्जलि मुनि कृत योगशास्त्र पर टीका की है कैसी उत्तम और हृदय-ग्राही है कहां तो यह ईश्वर प्राप्ति का शुद्ध वर्णन और कहां ऊट पटांग जड़ वस्तुओं की उन के नाम से मान्यता करवाना बड़ी भूल की बात है—जैसा ब्रह्मनिरूपण अर्थात् ब्रह्म से सृष्टि का होना आदि वेदान्त में है उस के विरुद्ध देवी भागवतादि में शक्ति आदि से सृष्ट्युत्पत्ति का वर्णन है इसी से कहा जाता है कि व्यास जी ने सब पुराण नहीं बनाए, वा उतना भाग भारत आदि का लिखा है—जितना बुद्धिग्राह्य है ॥

व्यास जी के नाम से मार्कण्डेय और शिव पुराण राजा भोज के समय में बना, भोज राजा को ज्ञात हुआ तो ग्रन्थकारों के हाथ कटवा दिये और आज्ञा का प्रचार कराया कि जो कोई महात्मा पुरुषों की छाप रख-कर ग्रन्थ बनावेगा वह दण्ड पावेगा—यह बात राजा भोज के बनाये संजीवनी नामक इतिहास में लिखी है जिस को महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने स्वकृत सत्यार्थ प्रकाश में प्रकट किया है यह भी लिखा है कि राज्यगवालियर के भिण्ड नगर

में तिवारी ब्राह्मणों के घर वह ग्रन्थ है और लखुना के राव साहब और उन के गुमाश्ते चौवे रामदयाल जी ने अपनी आंख से उसे देखा है ॥ इस ग्रन्थ की विद्यमानता की साक्षी हम से चौवे चतुर्भुज जी चपरासी मुन्सफी महावन ने भी दी है यह भी कहा कि वे लोग ग्रन्थ छिपाते हैं ॥

उक्त ग्रन्थ में यह भी लिखा है कि व्यास जी ने चार हजार चार सौ और उन के शिष्यों ने पांच हजार छ सौ श्लोकयुत अर्थात् सब दश सहस्र श्लोकों के प्रमाण भारत बनाया था यही ग्रन्थ विक्रमादित्य के समय में बीस सहस्र और भोज के पिता जी के समय में पच्चीस सहस्र हुआ महाराज भोजराज लिखते हैं कि मेरी आधी आयुपर ३० हजार मिलता है और अब इन दिनों देखिये तो लाख के ऊपर है ग्रन्थ की आदि में २४ हजार की साक्षी विना उपाख्यान के मिलती है—"चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्—इस २४ से ऊपर की वढ़ती तो मोटी समझ वाले भी स्वीकार करेंगे—इसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण का भी २४००० प्रमाण है और अब २५० के अनुमान श्लोक बढ़ते हैं ६ । ७ अध्याय उत्तर काण्ड में गढ़े गये हैं ।

इस विषय को जो अधिक देखना चाहें वे हमारी लिखी पुराणोत्पत्ति, पुराण लीला आदि को देखें ॥

पुराण धर्म ग्रन्थ नहीं राजाओं के भले बुरे चरित्रों का निदर्शन हैं पीछे नाना प्रकार की बातें उन के बीच देशी पण्डित और कथक्कड़ भरते गये यहा तक कि अब भी तुलसी कृत रामायण में मठा बढ़ाते जाते हैं जिन की इच्छा हो वे बम्बई तथा नवलकिशोर आदि प्रेसों की छपी रामायणें मिला कर देखें—और उन को किसी हाथ की लिखी पुरानी लिपी से मिलावें वा राजापुर (प्रयाग के पास) जाकर तुलसीदास जी की गद्दीपर की रामायण से मिलान करें तो बराबर भेद पावेंगे पुराण तो दूर रहे वेदों पर भी लोग हाथ पसार रहे हैं तुकाराम तांत्या की छपाई ऋक् संहिता (निर्णय सागर प्रेस सन् ८१) में ५७० पृष्ठ से ५७६ तक में मूल के विरुद्ध वालखिल्य नामक परिशिष्ट मिलाया गया है जिस से ११२ ऋचा व १८ वर्ग बढ़ गये हैं क्या आश्चर्य थोड़े दिनों में ईश्वरावतार भी वेदों में बढ़ा दिया जाय तो बस छुट्टी हुई—वेद क्या मोम की नाक हो जायगे—जैसे पुराण वैसे ही वेद कहावेंगे—अस्तु ॥

पौराणिकमत कोई विशेष मत नहीं है जैसे कि ईसाई मुहम्मदी आदि एक मत होकर एक ईश्वर तथा पैगम्बर को मानते हैं वैसे पौराणिक नहीं—जैसे न्यारे२ पुराण हैं वैसेही पृथक् २ उनके ईश्वर और पूजनादि हैं। ये सब पुराण आधुनिक हैं वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत की गणना अठारह पुराणों में नहींहै। ये दोनों अन्य भागवतादि से प्राचीन हैं। वाराही संहिता में लिखा है विक्रमादित्य के ५१८ वर्ष पूर्वयुधिष्ठिर का संवत् २५२६ था इसलिए (२५२६+५१८+१९५५) ४९९९ वर्ष अब से युधिष्ठिर को हुए बीतते हैं इन्हीं के समय में वा पश्चात् महाभारत बना यदि व्यास जी ने ही बनाया तो व्यास को हुए भी अनुमान ४९९९ वर्ष होते हैं और ऊपर के लेख में जरदुश्त का समय ४२९७ अतीत दिखाया है सो सात सौ वर्ष का इस हिसाब से अंतर आता है हजारों का नहीं युधिष्ठिर का होना द्वापर के अन्त अर्थात् कलि के आरंभ में माना है और अब गत कलि ४९९८ है इस हिसाब से ऊपर की विधि ठीक बैठती है तथा चेम्बर्स जं क्रोना लोजी नामक काल विद्या के ग्रंथ में सन् १८४२ ई० के साथ दूसरे देशों के सनों का मिलान करते हुए कलियुग का संवत् ४९४३ लिखा है सन् १८४२ से अब १८९७ ई० तक ५५ वर्ष का अन्तर है सो ५५ वर्ष ४९४३ में जोड़ने से ४९९८ ठीक होजाते हैं दबिस्तान मज़ाहिब व आईन अकबरी में जो कलि व युधिष्ठिर का संवत् दिया गया है उस से भी प्रायः भेद नहीं पड़ता इन सब लेखों से दो चार कम पांच हजार वर्ष व्यास जी के हुए होते हैं और यही बाइस से कुछ कम जरदुश्त को बीते मानना चाहिये हिन्दुओं के विश्वास की बात जुदी है व्यास जी का समय पांच हजार वर्ष पूर्व होने से यह न समझना चाहिये कि सब पुराण भी पांच हजार वर्ष के बने हैं कोई बहुत नवीन डेढ़ दो हजार के भीतर के हैं शतपथ ब्राह्मणादि तथा कठादि उपनिषद् पुराने होने से पुराण समझने चाहिये उन में वेदों की व्याख्या तथा इतिहासादिक आये हैं भागवतादि पुराण भी वेद के कुछ कुछ आश्रय को लेकर प्रचरित हुए क्योंकि विना किसी प्राचीन व प्रामाणिक अपौरुषेय पुस्तक के सहारे दूसरी पुस्तक नहीं चल सकती— शेष आगे

॥ एक ॥

एकं ब्रह्म द्वितीयं नास्ति—एकमेवाद्वितीयम्—एक और एक ग्यारह होते हैं एक मछली सारा जल गंदला कर देती है—एक वहम हजारों शुबहे पैदा क-

रता है—एक चुप हजार बला टालती है-एक मीठा बोल हजारों खफगी दूर कर देता है-एक सुपूत कुलका दीपक होता है "एको गोत्रे स भवति पुमान्यः कुटुम्बं बिभर्ति "-एक कुचाल कुनबे भर को बदनाम कर देता है-एक पखटइ सुबह को देर से उठने से दिनभर के सब काम अस्त व्यस्त रहते हैं—एकाम्न भोजन भी हिन्दुस्तान की खराबी का कारण है—एकाहारी सदा सुखी-

एकेनापिसुपुत्रेण सिंहीस्वपितिनिर्भयम्-
एकानारीसुन्दरीवादरीवा एकंमित्रंभूपतिर्वायतिर्वा ॥
एकोवासःपत्तनेवावनेवा एकोदेवः केशवोवाशिवोवा-
एकस्यक्षणिकाप्रीति-रन्यः प्राणैर्वियुज्यते ॥

॥ दो ॥

रातदिन-पाप पुण्य-झूठ सच-सुख दुःख-जीवन मरण, ताना बाना-स्वर्ग-नरक, सुमति कुमति-संपत विपत्—" सर्वस्य द्वे सुमतिकुमती संपदापत्तिहेतू " जहां सुमति तहां संपद् नाना। जहां कुमति तहं विपति निदाना। रोग दोष, प्रकृति पुरुष, धूप छांह-अंधियारा उजाला-नीर क्षीर-दूध का दूध पानी का पानी, दोनों दीन से गये पांडे-न रहे भात न रहे मांडे-आधा तीतर आधा बटेर-न सूत न कपास कोरियों से लठिंलठा-दैवी आसुरी—दैवीसंपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरीमता" लोक वेद—लौकिक वैदिक—ऐहिक आमुष्मिक-यह लोक परलोक—सकाम निष्काम-गुण कर्म-गौण मुख्य-बद्ध मुक्त—जीवात्मा परमात्मा॥

सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे।
एकस्तयोः खादति पिप्पलान्न-मन्योनिरन्नोऽपिबलेनभूयान्॥

कहां तक दो को गिनावें सकल संसार दो से हैं इस लिये संसार की यावत् वस्तु विना दो के हुई नही तब इस दो की अकथ कहानी है (हि० प्र०)

होमयज्ञ—पूर्वप्रकाशितानन्तर अगस्त के पत्र के १६ वें पेज से आगे

अतः पर नीचे लिखे मन्त्र से पंखा आदि कर के अग्नि प्रदीप्त करे। हलके तांबे वा टीन का पंखा हो तो बहुकाल के लिये प्रशस्त है परन्तु इस पंखे को अपने ऊपर हांकने के काम में न लावे न अन्य किसी यज्ञ पात्र को निजी काम में वर्त्ते—यज्ञपात्रों का वर्त्तमान यज्ञ ही में करना—यज्ञ के वर्त्तन चांडाल आदि नीचों को छुवाना न चाहिये ॥

[अथ पवनदानमन्त्रः]

ओ३म्—उद्बुध्यस्वाग्ने ! प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते स ꣳ सृजेथामयञ्च । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥ य० अ० १५ मं० ५४ (१)

॥ अथ समिदाधानमन्त्राः ॥

(२) ओ३म्—अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेने-ध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्च्च-

(१) (अग्ने !) हे ! परमेश्वर वा अग्नि (उद्बुध्यस्व) प्रकाशित हूजिये (प्रतिजागृहि) हम को चैतन्य कीजिये । (इष्टापूर्त्ते) यज्ञ की वा इष्ट सुखों की पूर्त्ति के लिये (अस्मिन्) इस वर्त्तमान काल में (सधस्थे) एक स्थान में और (उत्तरस्मिन्) आगामि समय में (अयम्) यह (यजमानः) यह यज्ञ करने वाला (संसृजेथाम्) सिद्धि को प्राप्त हो (विश्वेदेवाः) सारे विद्वान् लोग (च) और (यजमानः) यजमान अर्थात् यज्ञ करने वाले पुरुष (सीदत) बैठें इस के उपरान्त प्रादेशमात्र समिधा नीचे लिखे प्रत्येक मन्त्र से एक २ जो चन्दन आम वा पलाश (ढाक) की हो प्रदीप्त अग्नि पर धरना चाहिये॥

(२) इस का अर्थ यह है कि (जातवेदः) हे जातवेद अग्ने ! (अयम्) यह (इध्म) ईंधन (ते) तेरा (आत्मा) व्यापने की जगह है (तेन) उस ईंधन से (इध्यस्व) प्रदीप्त हो (वर्द्धस्व) बढ़िये (च) और (इद्ध) प्रदीप्त कर (च) और (वर्द्धय) बढ़ाओ (अस्मान्) हम लोगों को तथा (प्रजया) सन्तान से (पशुभिः) पशुओं से (ब्रह्मवर्चसेन) ब्राह्म तेज से (अन्नाद्येन) भोज्यादि पदार्थों से (समेधय) समृद्धकर—

भावार्थ—कि जो लोग अग्निहोत्रादि में समिदाधान कर अग्नि को प्रदीप्त करते हैं उन्हे धन धान्य पशु सन्तान और ब्रह्म तेज का लाभ होता है ॥

सेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥

इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम ॥

इस मन्त्र से एक समिधा घी में डुबो कर अग्नि पर छोड़ना ॥

(१) समिधाग्निन्दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन्हव्याजुहोतन स्वाहा-

इदमग्नये इदन्नमम ॥१॥ य० अ० ३ मं०—१

(२) सुसमिद्धाय शोचिषे घृतन्तीव्रञ्जुहोतन । अग्नये जातवेदसे स्वाहा-

इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम । य० अ० ३ मं० २

इन ऊपर के दो मन्त्रों से दूसरी एक समिधा उक्त प्रकार चढाना ॥

(३) तन्त्वासमिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचायविष्ठ्य स्वाहा ॥

इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्नमम ॥ य० अ० ३ मन्त्र ३

इस मन्त्र से १ समिधा अग्नि को देना अग्नि के प्रज्वलित होने पर नीचे लिखे मन्त्र से पाच आहुति देना स्रुवे को अंगुष्ठ मध्यमा तथा अनामिका से पकड़ना यदि घृत दीनावस्थादि कारण से न्यून मिले तो भी नित्य कर्म न छोड़ना, चाहें एक २ विन्दु ही घृत होमा जाय ॥

---

(१) हे विद्वान् लोगो तुम (समिधा) जिस ईंधन से अच्छे प्रकार प्रकाश हो सकता है उस से तथा (घृतैः) घी से (अग्निम्) आग को (वोधयत) उद्दीप्त करो जैसे (अतिथिम्) अतिथि का सेवन किया जाता है वैसे आग को (दुवस्यत) सेवन करो और (आ) (अस्मिन्) इस [आग] में (हव्या) होम की वस्तुओ से (आजुहोतन) अच्छे प्रकार हवन करो ॥

(२) हे पुरुषो ! तुम (सुसमिद्धाय) भली भांति प्रकाशित (शोचिषे) शुद्ध किये गये वा (जातवेदसे) सब पदार्थों में विद्यमान (अग्नये) अग्नि में (तीव्रम्) तीव्र स्वभाव (घृतम्) घी आदि पदार्थों को (जुहोतन) होमो ॥

(३) (तम्) उस भौतिक अग्नि को (त्वा) जो (व्यत्यय के कारण यहां पर त्वा का अर्थ तुम के बदले जो है) (अंगिरः) पदार्थों को प्राप्त कराने वा (यविष्ठ्य) भेद कराने में प्रबल है (बृहत्) बड़ा (शोच) संताप अर्थात् प्रकाश करता है (समिद्भिः) लकड़ियों से तथा (घृतेन) घी से (हमलोग) (वर्द्धयामसि) बढाते हैं ॥

ओ३म् अयन्त इध्मआत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येनसमेधय स्वाहा ।

इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम–

इस मन्त्र का अर्थ ऊपर आगया इस लिये यहां नहीं लिखा इस के उपरान्त नीचे लिखे मन्त्रों से आघाराज्याहुति करना ॥

॥ आघारावाज्याहुत्यौ ॥

ओ३म् अग्नये स्वाहा* ॥ इदमग्नये इदन्नमम ॥

इस मन्त्र से प्रज्वलित अग्नि में उत्तर अलँका को आहुति देना ।

ओ३म्—सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय इदन्नमम ॥

इस मन्त्र से अग्नि में दक्षिण अलंग को आहुति देना तिस पीछे दो आहुति कुण्ड के मध्य में देना ये आज्यभागाहुति कहाती हैं ।

आज्यभागाहुत्यौ ॥

ओ३म्–प्रजापतये स्वाहा–इदं प्रजापतये-इदन्नमम ।

ओ३म्–इन्द्राय स्वाहा–इदमिन्द्राय इदन्नमम ॥

इन चारो आहुतियों के समुदाय का नाम "आघारावाज्यभागाहुति" है । अर्थात् यह नाम बोलने से प्रागुक्त चारों आहुति समझी जाती हैं । सो नित्य अग्निहोत्र के लिये आवश्यक है ॥

इसके उपरान्त चार व्याहृति आहुति और एक स्विष्टकृत् होमाहुति और एक प्राजापत्याहुति है सो विशेष होम के लिये है नित्य के वास्ते आवश्यक नहीं–

* इस का अभिप्राय यह है कि यह आहुति ज्ञान स्वरूप परमेश्वर की आज्ञा पालनरूप प्रसन्नता के लिये उसे वा अग्नि को दीजाती इदन्नमम–यह मेरे वास्ते अर्थात् स्वार्थ हेतु नहीं ऐसे ही अन्य सोमाय आदि शब्दों का अर्थ जानो ॥

व्याहृत्याहुतयः ॥

ओ३म्-भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्नमम ।

ओ३म्-भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे इदन्नमम ॥

ओ३म्-स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय इदन्नमम

ओ३म्-भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा-इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्नमम* ॥

स्विष्टकृदाहुतिः ॥

ओ३म्-यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्नमम ॥

प्राजापत्याहुतिः ॥

ओ३म्-प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये इदन्नमम ॥

(यह आहुति मौन हो करना)

प्रातःकाल होम करने के मन्त्र ॥

ओ३म्-सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥१॥ सूर्यो

व्याहृतियों का अर्थ ॥

*(भूरिति वै प्राणः) जो सब जगत् के जीने का हेतु और प्राण से भी प्रिय है। इस से परमेश्वर का नाम "भूः" है (भुवरित्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करने वाले मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है इस लिये परमेश्वर का नाम "भुवः" है (स्वरिति व्यानः) जो सब जगत् में व्यापक होके सब को नियम में रखता और सब का ठहरने का स्थान तथा सुख स्वरूप है इस से परमेश्वर का नाम (स्वः) है

ओ३म्

२२९

भारत सुदशा प्रवर्त्तक ॥

आर्यसमाज फ़र्रुख़ाबाद का प्राचीनपत्र, २० वर्ष से श्रीस्वामीजी महाराज की आज्ञानुसार प्रकाशित होता है ॥

(प्रतिमास की २८ वीं तारीख को प्रकाशित होता है)

जिस में

वेदशास्त्रानुकूल धर्म्मसम्बन्धी, व्याख्या, स्त्रीशिक्षा, इतिहास, समाचार और अनेक मनोरञ्जक विषय सरल भाषा में छपते हैं ॥

२० वां भाग १ ली संख्या श्रावण सं० १९५५ वि० जुलाई सं० १८९८ ई०

इस पत्र का उद्देश्य सत्य सनातन धर्म आर्यभाषा तथा मातृभाषा की उन्नति व प्रचार करना है ॥

पं० गणेशप्रसाद शर्म्मा द्वारा सम्पादित होकर मुंशी नारायणदास जी मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद की आज्ञा से सरस्वती प्रेस—इटावा में छपा ॥

मूर्त्तिपूजा)। (२२) ईसाई शिक्षा का प्रभाव)। (२३) वर्णप्रकाश)॥ (२४) रचना बोधनी -)॥ (२५) पत्रप्रकाश ≈) इन में नम्बर १ से लेकर १० तक उर्दू में भी हैं इन के अतिरिक्त मेरे यहां श्रीमान् लाला देवराज सा० मैनेजर कन्या महाविद्यालय की बनाई हुई भी सम्पूर्ण पुस्तकें मिलती हैं ॥

चिम्मनलाल वैश्य तिलहर जि० शाहजहांपुर

ओ३म् ॥

अथ मङ्गला-चरणम् ॥

ओ३म्-विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव

ओ३म् शान्तिः ३ ॥

भारतसुदशा प्रवर्त्तक का नया वर्ष

श्री मङ्गलमय प्रभु की परम कृपा से यह पत्र निरापद् १९ वर्ष पूर्ण करके आज सानन्द बीसवें में प्रविष्ट होता है विद्या धर्म प्रिय उदार चेता पाठकों को हर्ष का समय है कि उन का प्रेम वृक्ष यह पत्र भारत भूमि में सघन और दृढ़ होता जाता है और प्रतिमास एक वार आप इस के फल का आस्वादन करते और सद्भाव प्रकट करते हैं। आशा है कि जैसी कृपा प्रीति व सहायता (विना किसी उपहार के पुचाड़े के) अद्यावधि आप लोग करते आए इसी प्रकार वर्त्तमान व आगामि समय में करते रहेंगे-किम्बहुनाकृपार्थी-सम्पादक भा०सु०प्र०

विज्ञापन-सामवेदभाष्य ॥

श्री पं० तुलसीराम जी स्वामी द्वारा अनुवादित होकर ४० पेज पर अच्छे कागज में प्रतिमास छपता है आर्यों के लिये यह अपूर्व अलभ्य लाभ है प्रथम अङ्क छप चुका है इस में मन्त्रों की गणना मन्त्रगान की रीति षड्जादि स्वरों की व्याख्या लिखी है और उन शङ्काओं का निवारण किया है जो प्रायः लोगों को उठती है ऊपर वेद मन्त्र नीचे पदपाठ पुनः प्रमाण पूर्वक संस्कृतभाष्य नीचे स्पष्ट भावार्थ व तात्पर्य भी लिख दिया है इतने काम पर भी मूल्य बहुत थोड़ा अर्थात् २॥) रु० साल है अनुमान ३ वर्ष के पूरा होगा परन्तु ५) रु० अग्रिम देने से सम्पूर्ण भाष्य क्रमशः प्रतिमास मिलेगा वेदविद्या के रसिकों परममान्य धर्मग्रन्थ के उत्साहियों को पं० तुलसीराम स्वामी, स्वामी प्रेस मेरठ को निवेदन पत्र भेजना चाहिये ॥

समालोचना ॥

कर्मवर्णन—सुकर्मों के सेवन कुकर्मों के त्याग पर उपनिषद् व धर्मशास्त्र के प्रमाण से लेख है सब को हित है ब्रह्मोपासक और कर्मकाण्डी को विशेष ध्यान देने योग्य है मूल्य)॥

ब्रह्मकीर्त्तन—ब्रह्म के नाम व गुणों का उत्तम वर्णन है मूल्य)॥

फलितज्योतिषपरीक्षा—

आज कल जो मिथ्या फलित प्रचरित है जिस के जगड्वाल में लोग धोखा खाते हैं उस का इस में खण्डन है मूल्य -) ये तीनों पुस्तकें बाबू विहारीलाल जी महाशय बी० ए० सुपरन्टेण्डेण्ट इंगलिश हाईस्कूल जबलपुर की रची हैं उन के पास तथा आर्यगुर्जर पुस्तकालय फर्रुखाबाद में मिलती हैं—

धर्मलक्षणवर्णनम्—

जाजलि ब्राह्मण व तुलाधार वैश्य के बीच जो उत्तम संवाद महाभारत शान्तिपर्व में है. वह इस में उद्धृत है वैश्यों के लिये अति उत्तम है श्री पं० भीमसेन जी के शिष्य पं० श्यामलाल शर्मा इटावास्थ का श्रम है। मूल्य =)

सजीवनी बूटी—वीर्यवर्णन

आल्हा छन्दों में वीर्यरक्षा का वर्णन अति उत्तम जिस के पढ़ने से एक वार मूछों पर हाथ जाता है. पं० बाबूराम शर्मा इटावास्थ की रचना मूल्य -)॥

धर्मबलिदानपथिकवियोग—दर्शित पं० जी ने आल्हाछन्द में पं० लेखराम के वियोग पर कविता की है। एक अद्भुत प्रभाव लाती है. मू० =) है—

स्थावर में जीव विचार—पुनर्जन्म ॥

ये दोनों पुस्तकें श्री पण्डित भीमसेन जी शर्मा की लिखी हैं पण्डित जी जैसे सुयोग्य विद्वान् हैं वैसे ही उन के लेख भी शास्त्रीय प्रमाणों से पूर्ण होते हैं। पहिली पुस्तक में वृक्ष वनस्पति आदि स्थावर में जीव होना दिखाया है शाक पात के खाने में जो मांसाहारी तर्क व आक्षेप करते हैं उन का उत्तर दिया है दूसरी में जीव क्या है कहां जाता आता है इन सब शङ्काओं का निवारण है मूल्य क्रमशः -) व =)॥ है ये ऊपर की पांचो पुस्तकें दर्शित पण्डित जी के पास सरस्वती प्रेस इटावा में मिलेंगी—

स्थानिक समाचार

फर्रुखाबाद में संस्कृत पाठशाला—

पाठकों को नए वर्ष के आरम्भ में हर्ष का समाचार दिया जाता है कि आर्यसमाज फर्रुखाबाद व श्रीमती आर्यप्रतिनिधि-सभा के उद्योग से यहां पाठशाला स्थिर होना निश्चित हो गया यह पाठशाला श्रावणी के दिन से खुलेगी—

राय बहादुर श्रीयुत बाबू दुर्गाप्रसाद जी उपसभापति—आ० स० की कन्या का जातकर्म व नामकरण संस्कार मिति श्रावण वदि-४ गुरुवार को वैदिक रीति से हो कर उस का नाम चि० प्रेममोहनी रक्खा गया इस अवसर पर हवन व प्रेम-भोज यथाविधि हुआ—

विगत पूर्णिमा को श्रीयुत पं० सिद्धगोपालजी महाशय डिप्टी कलेक्टर के यहां वैदिक विधि से हवन हुआ—यह शुभ-कार्य प्रतिपूर्णमासी को आप के होता है

श्री लाला नारायण दास जी मन्त्री आर्यसमाज को वर्ष कुछ शारीरिक पीड़ा हुई जिस के किञ्चित् निवृत्त होते ही विगत अमावास्या को आपने पांच ब्राह्मणों का वरण कर वेदपाठ व वैदिक-रीत्या हवन कराया—उस दिन से क्रमशः स्वास्थ्य उत्तम दशा पर होता गया—धर्म का फल उत्तम ही होता है ॥

श्री मुन्शी चिन्तामणि जी के चि० पुत्र का मुण्डन संस्कार वैदिक विधि से हुआ—

शोकसमाचार ॥

बहुत दुःख के साथ लिखने में आता है कि रियासत कुचेश्वर के रावसाहब श्रीमान् राव उमराव सिंह जी वर्मा का ता० ३ जून को परमधाम वास होगया अभी आप ऐसे शिथिल न थे परन्तु मृत्यु के लिये आशील युवा वृद्ध सब एक ही से है—निठुर काल कृपाल जिधर पड़ती है अपना काम पूरा करके छोड़ती है। रावसाहब आर्यसमाज के बड़े शुभचिन्तक, दानशील यज्ञ करने वाले दृढ़ आर्य थे पाठशाला समाचार पत्र आदि को बहुत सहायता देते थे—अभी आपने मेरठ कालेज को ५०००) देने की प्रतिज्ञा की थी और ५००) रु० दे भी चुके थे इस से पूर्व ५००) रु० आर्यसमाज मेरठ को मन्दिर फंड में दिये था—हा! काल इन बातों का विचार नहीं करता जैसे धर्म में आप उदार थे वैसे ही आप की प्रसिद्ध रानी साहिबा भी अनेक वार स्त्री पाठशाला व स्त्री-समाज को सहायता दे चुकी हैं—आशा है कि इस अवसर पर धीरज धारण कर स्वधर्म पालन करेंगी—परमात्मा राव-साहब की आत्मा को सद्गति देवे और तदाश्रितों के चित्तों की शोकाग्नि को शान्त करे ॥

यह लिखते हृदय शोक से परिपूर्ण हो जाता है कि आर्यसमाज कासगंज के संस्थापक और प्रधान श्री लाला टीकाराम जी का ३९ वर्ष की अवस्था में ता०

७ जुलाई को परमधाम वास हो गया आप सद्वृत्तिनिष्ठ निरभिमान उदार और दृढ़ आर्य थे, पञ्चमहायज्ञादि करने के सच्चे प्रेमी थे संस्कृत फ़ारसी व कुछ अंगरेजी भी जानते थे। वार्त्तालाप में प्रगल्भ विपक्षियों को उत्तर देने में कुशल और सुधार के कामों में दत्तचित्त थे, इस में संदेह नहीं कि आर्यसमाज कासगंज को और उन की जाति को अतिशोक का समय है समाज का काम आपने आजीवन भलीभांति किया बिरादरी में नाच आदि का बन्द करना इन्ही का विशेष उद्योग हुआ। अन्त समय में १०००) रु० आ० स० कासगंज के स्थान निर्माण के लिये दान किये मानो दृढ़ नींव डालदी जब देखा कि शरीर न रहेगा अपने भाई बाबू तोताराम जी वकील महाशय को आज्ञा दी कि जो पात्र अन्त्येष्टि को दरकार होते हैं मेरे सामने तयार कराओ तथा घृतादि से विधिवत् क्रिया करना सो उन के सुयोग्य भ्राता ने की उस समय नगर के सुजन तथा आर्य ५०० पांच सौ के अनुमान थे परमेश्वर उन की आत्मा को सद्गति और परिवार के दुःख में धीरज प्रदान करें—

यद्यपि बाबू तोताराम जी पर यह प्रथम गम्भीर आपत्ति है तथापि आप धीरवृत्ति से आशा है कि सब कार्य वैसा ही सम्हालें और करेंगे जैसा कि कुशल पुरुष करते हैं—किम्बहुना॥

श्रीयुत बाबू पन्नालाल जी मनूचा रईस व सभासद् आर्यसमाज फैजाबाद के प्रिय अनुज चि० लल्लन जी का विवाह मिति आषाढ़ वदि ३ को अतरौली में हुआ दूसरे छोटे भाई चि० सत्यप्रसाद का स्थान वृन्दावन में मिति आषाढ़ शुदि ९ को सानन्द हुआ, आपने इन दोनों विवाहों में सीठने की घृणित रीति को उठादिया, और आप के परिवार में माता आदि सुशिक्षिता स्त्रियां हैं इन्हों ने समधियाने वाली औरतों के इस कहने पर भी कि यदि गाली गाओगी तो प्रति स्त्री एक रुपया भेट दी जायगी सीठने नहीं गाई, वरन उत्तर दिया कि सौ सौ रुपया दो तब भी ऐसा न किया जायगा बाबू जी ने वेश्या का नाच भी बन्द रक्खा और नीचे लिखे अनुसार सच्चा दान दिया, परमेश्वर युगल वर वधू को मङ्गल कारी हो—

५) आर्यसमाज अतरौली को
२) कन्यामहाविद्यालय जालन्धर
१) यतीमखाना फ़िरोजपुर
१) यतीमखाना बरेली
१) वेदप्रचार फंड प० उ० अवध
१) एंगलोवैदिक कालेज मेरठ
२) आर्यसमाज कन्नोज के स्थान निर्माण में
१) भारतसुदशाप्रवर्त्तक फर्रुखाबाद
१) आर्य्य वंशप्रकाश लाहौर
१) ककूमलमेमोरियलफंड लाहौर
१) ककूमलमेमोरियलस्कूल लाहौर

१) के पुस्तक „आनन्दकन्द पुस्तकालय” फैजाबाद को
१) आर्यावर्त्त पत्र रांची
१) वनिताहितैषी रांची
१) भारत भगिनी इलाहाबाद
१) पञ्चालपण्डिता जालंधर

२८)

भ्रमणवृत्तान्त पं० ज्ञानकीप्रसादजी उपदेशक श्रीमती आ० प्र० सभा प० उ० अवध ॥

ता० २३ जून को पण्डित जी फर्रुखाबाद पधारे समाज की सम्मति से पण्डित जी ने निम्न लिखित स्थानों में दौरा किया जहां कि जाने की आवश्यकता थी—

क़ायमगंज—ता० २५ से २८ तक ४ दिन यहां वास किया २ व्याख्यान (मनुष्यों के वर्त्तमानधर्म व मनुष्यकर्त्तव्य पर— दिये जिस से लोगों का उत्साह बढ़ा यहां के सुजन समाज का स्थान बनवाने का बहुत चेष्टा कर रहे हैं—

पिलखना—ता० २९ को पहुंचे यहां ५ दिन वास किया ४ व्याख्यान दिये १ दिन यज्ञ भी कराया विशेष वृत्तान्त वहां के पत्र में देखिये।

सरायअगहद—जि० एटा ४ दिन विश्राम किया और दो व्याख्यान प्रभावशाली दिये जिस से ता० ५ जुलाई को समाज स्थापित हो गया—और जैनमत वालोंसे प्रश्नोत्तर हुये इस समाज के सभापति पं० बलदेव प्रसाद जी जमीदार और मन्त्री लालमणि शर्मा है। १० सभासद इदानीं हुए हैं—

अलीगंज—जि० एटा ता० ८ वी को पधारे यहां भी आप के दो व्याख्यान ऐसे प्रभावोत्पादक हुए कि जिन के असर से आर्यसमाज ता० ११ जुलाई को स्थापित हो गया और बाईस सभासद समाज में युक्त हुए ४॥) मासिक चन्दे के हस्ताक्षर भी हो गये। पौराणिकों से प्रश्नोत्तर खूब हुए अन्त को सत्यधर्म का प्रकाश रहा—

तमाखू छोड़ना—पं० हरनाम सिंह प्रचारक पंजाब प्रतिनिधि ने ता० १८ जून को पुराना क़िला दिल्ली में १ व्याख्यान दिया जिस के कारण बहुत से सुजनों ने तमाखू पीना छोड़ने की प्रतिज्ञा की।

स्त्री स्कूल—अम्बाला छावनी मे १ स्त्रीस्कूल खुल गया।

वेद व कुरान—दोनों का निदर्शन २६ जून को लाहौर समाज में हकीम सन्तराम प्रचारक ने खूब कराया जिस से सच्चे धर्म की सचाई लोगों के चित्त पर जम गई हकीम जी फारसी अरबी के विद्वान् हैं—आशा है, कि आप पं० लेखराम जी का अनुकरण करेंगे—

लोरा लाई नया समाज—बलोचिस्तान में पं० कर्मनारायण जी के उद्योग से स्थापित हुआ।

शुद्ध होना—आर्यसमाज ... ने एक मुन्नीराम अरोड़ को शुद्ध किया—

फैजाबाद में समाज का पुनः स्थापित होना—इस स्थान में सन् १८८६ ई० में समाज स्थापित हुआ था सो ५। ६ वर्ष चल कर अन्त में टूट गया था जब कि बाबू कक्कूमल जी का परमधामवास हुआ था उधर पं० महेशीलाल तिवारी की भी बदली हो गई अब तिवारी जी फिर आ गये हैं इस लिये उन की तथा नगर के भद्र पुरुषों की सम्मति से पुनः समाज स्थापित हुआ १८ सभासद् हुए हैं। आशा है कि अब के ऐसा उत्तम प्रबन्ध होगा कि समाज की नींव सदा दृढ़ रहे—

प्रेरित पत्र.

आर्यसमाज पिलखना.

तारीख २९ जून सन् १८९८ ई० को श्रीमान् पण्डित जानकी प्रसाद जी उपदेशक श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा पश्चिमोत्तर देश अवध स्थान कायमगंज से आकर सुशोभित हुये व्याख्यान के लिये समाज की ओर से नोटिस बांटे गये तारीख ३० जून तथा १ म जुलाई को दो व्याख्यान पण्डित जी के ऐसे प्रभावशाली हुये जिससे वैदिक धर्म की चर्चा अधिक फैली। यहां तक कि मूलचन्द सुनार जो आर्यसमाज के सभासद् नहीं उन के एक सत्य नारायण की कथा होने वाली थी उस धन से उन्हों ने एक हवन विधिवत् (पण्डित जी द्वारा) कराया पश्चात् उक्त सुनार के गृह पर हवन के लाभोंपर पण्डित जी ने व्याख्यान दिया जिस में श्रोतागणों की संख्या २०० स्त्री पुरुषों की थी व्याख्यान सुनकर स्त्री पुरुष अति प्रसन्न हुये। तारीख ३ जुलाई रविवार को समाज के साधारण अधिवेशन में प्रशंसित पण्डित जी ने संस्कारों के लाभों पर व्याख्यान दिया जिस के प्रभाव से लाला गुलजारी लाल वैश्यने अपना नाम समाज के सभासदों में लिखाया तत्पश्चात् तारीख ४ जौलाई को पण्डित जी कस्बा सराय अगहद को पधारे और पण्डित बलदेव प्रसाद जी रईस जो कि इस आर्यसमाज पिलखना के प्रधान हैं उन के स्थान पर ठहरे। तारीख ४ व ५ जौलाई को दो व्याख्यान हुए। दोनों दिन इस समाज के सभासद् और बहुत से श्रोतागण इकट्ठे होते रहे। सराय अगहद में समाज स्थापित होने के लिये पं० बलदेव प्रसाद जी व आर्यसमाज पिलखना प्रथम ही से उपाय कर रहे थे तिस पर पं० जानकी प्रसाद जी उपदेशक ने ऐसे ललित व्याख्यान दिये कि जिससे वैदिक धर्म की धुनि गूंज उठी और परमात्मा की कृपा से तारीख ५ जौलाई

को कसवा सराय अगहद में नूतन आर्य समाज स्थापित हो गया ॥

श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा को धन्यवाद है कि जिस की कृपा से प्रशंसित पण्डितजी पधारे और वैदिक धर्म की चर्चा अधिक फैली । अब प्रार्थना है कि छोटे आर्यसमाजों में जल्द २ उपदेशक भेजकर सभा इन की पुष्टि करे ॥

हू० आ० कु० मि० मोहन सिंह चतुर्वेदी
मन्त्री आ० स० पिलखना जि०
फर्रुखाबाद

गढ़िया में बृहत् होम ॥

आषाढ़ वदि १३ गुरुवार सं० १९५५ वि० को गढ़ियाछिनकोरा ज़िला मैनपुरी के प्रतिष्ठित भूस्यधिकारी (जमीदार) चौ० जंगसिंह जी वर्मा मन्त्री आ० स० गढ़िया ने जो पुत्रजन्म के आनन्द में एक बृहत् होम २००) रु० का कराया था अभी तक इस बीच में इतना बड़ा यज्ञ नहीं हुआ था यज्ञार्थ आहूत निम्नलिखित पण्डित यथासमय १ दिन पूर्व पहुंच गए पं० रामदयालु जी पं० गणेशप्रसाद ने यज्ञमण्डप आदि का उत्तम प्रबन्ध यथाविधि किया था १००) रु० में यथाभाग घृत मेवा कन्द हलवा तथा सुगन्धित पदार्थ प्रस्तुत किये गये थे ११ वर्ग गज का उत्तम कुण्ड मेखला सहित बनवाया गया प्रातः ६ बजे से यज्ञारम्भ हुआ ग्राम के तथा पार्श्ववर्त्ती ग्रामों से दर्शक जन पधारे थे पं० रामदयालु जी ब्रह्मासन पर प्रतिष्ठित किये गये तथा पं० गणेशप्रसाद शर्मा पं० जयदयालु शर्मा पं० जानकीप्रसाद जी पं० नन्दकिशोर जी पं० लालमणि जी पं० द्वारका प्रसाद जी आदि अध्वर्यु उद्गाता आग्नीध होता आदि पदों पर वृत हुए यजमान जंगसिंह जी ने सब का वरणविधिवत् चन्दन पुष्प वस्त्रादि से किया यज्ञपात्र यथावत् स्थापित किये गये उस समय का मन्त्रोच्चारण वा आहुतिदान प्राचीन काल के यज्ञों का स्मरण कराता था बड़े २ चमसा घृत डालने को बनाये गये थे मध्याह्नोत्तर समाप्ति हुई ब्राह्मणों में ३०) रु० दक्षिणा प्रदान हुआ उक्त निर्दिष्ट के सिवाय भी यज्ञकार्य कर्त्ता ब्राह्मण थे तथा ३०) वेदप्रचार फंड आ० प्र० सभा ६) विश्वविद्यालय इटावा ४) अनाथालय बरेली २) लेखराम मेमोरियल फंड और १) रु० आ० सु० प्र० पत्र फर्रुखाबाद को दान मिला उपरान्त यज्ञशेष अर्थात् होम का प्रसाद बांटागया पुनः सायंकाल व्याख्यानों का प्रवाह चला पं० जानकीप्रसाद जी उपदेशकने प्रार्थना के अनन्तर वर्त्तमान धर्म पर व्याख्यान दिया तदुपरि पं० जयदयालु जी हेड पं० दर्बार हाईस्कूल बीकानेर ने "कोहंकाचमेशक्तिः" अर्थात् मैं कौन हूं और मेरी शक्ति क्या है वह किस काम में आता

आदिये इस पर कथन किया तदुपरि पं० रामदयालु जी उपदेशक आ० प्र० सैंभा ने धर्म विषय में सुललित वक्तृत्व किया पीछे इसी की पुष्टि और सब के व्याख्यानों का सार पं० गणेशप्रसाद शर्मा ने वर्णन किया अपने २ ढंग पर सब व्याख्यान उत्तम हुए-

ईश्वर विषय में दो एक श्रोताजनों ने प्रश्न किये उन के उत्तर पं० गणेशप्रसाद शर्मा ने दिये होम तथा व्याख्यानों का दर्शक वा श्रोताओं पर उत्तम प्रभाव हुआ उन्होंने आर्यसमाज का सच्चा प्रभाव चौधरी जंगसिंह जी की धर्मनिष्ठता का प्रमाण पाया-

दूसरे दिन चौधरी आधार सिंह जी प्रधान आ० स० गढ़िया ने २०) रु० के व्यय से उसी स्थान पर हवन कराया और ११) दान किये ४) रु० पण्डितों में ५) रु० वेदप्रचारफंड १) लेखराम फंड और १) अनाथालय बरेली-आप का उत्साह भी श्लाघ्य है ॥

एक दर्शक भगवान्दास शर्मा

श्रीयुत सम्पादक भारत सु० प्र० महाशय नमस्ते-

विदित किया जाता है कि बम्बई प्रान्त के सुयोग्य उपदेशक पं० कृपाराम इच्छाराम जी की धर्मपत्नी श्रीमती "डाहीं गौरी" का ता० १२-४-९८ को देहान्त होगया जिस का अन्त्येष्टि संस्कार वैदिक रीति से हुआ वेदपाठक लोग सस्वर उच्च घोष करते २ शव (लाश) के साथ चले थे सैकड़ों लोग इस छूटी हुई पुरातन प्रथा को देख आनन्दित हुये थे श्मशान मे वेदपाठी तथा पण्डित जी ने प्रथम स्तुति प्रार्थनोपासना शान्ति पाठ तथा धर्मोपदेश और वैराग्य विषय में हवन क्रिया के अन्त पर्यन्त उपदेश किया था श्रोतागण गद्गद् हुए

पाठकगण ! जैसे महाकवि कालिदास ने रघुवंश में कहा है

अवगच्छति मूढचेतसः प्रियनाशे हृदि शल्यमर्पितम् ॥
स्थिरधीस्तु तदेव मन्यते कुशलद्वारतया समुद्धृतम् ॥

अर्थात् मूढबुद्धि मनुष्य प्रिय वस्तु के नाश से शोक करते हैं स्थिर बुद्धि तथा न्याय समझने वाले संतोष मानते हैं वैसे ही पण्डित जी ने छोटे २ बच्चों के आर्तनाद गृह सूत्र का भङ्ग गृहस्थाश्रमरूप रथके एक चक्र का खंडित होना और वैदिक उपदेश में महात्रुटी हुई तथापि ज्ञान दृष्ट्या महान्धैर्य धारणकर सभों को शान्ति देकर आप शान्त रहे थे । श्मशान क्रिया पूर्ण कर गृह पर आकर हवन कर सान्त्वन किया था प्रत्यह दशाहपर्यन्त उपनिषद् की कथा करते रहे थे ॥

आप का कृपाभिलाषी आर्यों का दास
मणिशङ्कर

वेङ्कटेश्वर से उद्धृत समाचार॥

काशी नागरी प्रचारिणी सभा—का एक डिपूटेशन ता० ११ जुलाई को पश्चिमोत्तर अवध के वर्त्तमान श्रीमान् लेफ्टिनेण्ट गवर्नर की सेवा में उपस्थित हुआ था। श्रीमान् कुछ समय तक अत्यन्त ही नम्रतापूर्वक आवश्यकीय विषयों पर वार्त्ता करते रहे महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी जी ने निवेदन किया कि जिस उर्दू लेखक को हिन्दी की अपेक्षा उर्दू शीघ्र लिखने का अभिमान हो वह हमारे हिन्दी लिखने से शीघ्र लिखें इतना कह कर श्रीमान् के सम्मुख अत्यन्त ही शीघ्र और स्वच्छ हिन्दी लिखकर दिखा दी—

समुद्र का जल मीठा करने की कल—

जर्मनी के एक डाक्टर ने प्रस्तुत की है ६००) रु० का उस में खर्च है क्षणभर में पानी मीठा ले लीजिये—

तीन सौ विधवा ईसाइन हो गईं—

वें० स०—ता० १५ जुलाई लिखता है कि गत दश मास में ईसाई धर्म की भक्त पण्डिता रमाबाई ने तीन सौ विधवा स्त्रियों को ईसाई बनाया यदि सत्य है तो परम खेद का स्थल है बम्बई प्रान्त के आर्य हिन्दू धर्माभिमानी जनों ने कुछ भी ध्यान नही दिया क्या ? शोक २

घास का कागज—घास से बने कागज़ का खर्च दिन २ बढ़ता जाता है, यह बहुत स्वच्छ होता है—

जन्ममरण—सारी पृथिवीपर १ मिनट में ६८ बालकों का जन्म और ७० मनुष्यों की मृत्यु होती है—(तब तो दुनियां बहुत जल्द खाली हो जायगी—

युरोप की मनुष्य गणना

५० वर्ष पहिले २५ करोड़ थी अब छत्तीस करोड़ है।

बाइबिल की वार्षिक बिक्री—

४० लाख प्रतिवर्ष बिकती है, पचास वर्ष पहिले छः लाख साल का खर्च था।

मादक द्रव्य से आय—

मुम्बई की गवर्नमेण्ट का सन् ९५। ९६ में १०४३५२०७) रु० और सन् ९६। ९७ में ९८७९११५) रु० की आय हुई अर्थात् प्रथम वर्ष से दूसरी में ४५६०९२ चार लाख छप्पन हजार बानवे मुद्रा की कमी हुई—सो क्यों ?। देश की दी-

न दशा वा धर्म शिक्षा का प्रवाह है—सरकार जिस पर ड्यूटी कम कर दे उसी प्रमाण मद्य पर महसूल बढ़ावे तो उत्तम है, सरकार को हानि न पड़ेगी और प्रजा को सुभीता होगा ॥

मद्य से अनिष्ट—

मुम्बई चन्दनवाड़ी में वारा श्रीकृष्ण नामक हिन्दूने मद्य के प्रभाव में अपनी धोती में आग दे दी और जल गया ॥

विचारपूर्वक दान—

हुशंगावाद के पं० सुखदेव प्रसाद वकील ने स्वपुत्र के विवाह के आनन्द में ए० वी० मिडलस्कूल के छात्रों को घड़ियां व मिठाई बांटी तथा कन्या पाठशाला को भी चुनरियां तथा मिठाई प्रदान की—धन्य ॥

वरहामपुर—

में एरण्डी (रेशमी वस्त्र) बनने का कारखाना खुलने वाला है ॥

कृष्णगढ़ सोमयागमिल—में उत्तम २ वस्त्र तयार होते हैं ॥

दिल्ली के खत्री—

लोगों ने एक सभा में यह नियम पास किया कि एक स्त्री के होते जो दूसरा व्याह करे वह जाति से पृथक् किया जायगा दूसरे खत्री सुजनों को भी ऐसा करना चाहिये ॥

भारतवर्ष के राजकोष से—

हमारी सरकार ने सन् ९६ । ९७ में १८३१९३०) रु० पादरियों के अर्थ व्यय किया।

अद्भुत अभियोग—गङ्गास्नान से पाप दूर होते हैं वा नहीं? ॥

इस समय देववन्ध की दीवानी अदालत में यह विचित्र मुकद्दमा चल रहा है कि गङ्गा नहाने से पाप दूर होता है या नहीं—विजनौर निवासी पं० सोतीशङ्कर लाल शर्मा ने मुद्दई हो कर पं० गोकुलप्रसाद महोपदेशक के नाम नालिश की है कि महोपदेशक जी यदि गङ्गा के नहाने से पाप महापाप का दूर हो कर मुक्ति प्राप्त करना तथा गङ्गा में अस्थि डालने से स्वर्ग प्राप्त होना इन बातों को श्रुति, स्मृति आदि से साबित न कर सकें तो व्याख्यान देना छोड़ दें और यदि साबित कर दें तो मैं १००) रुपये जो इसी काम को जमा किये हैं छोड़ दूंगा. नहीं तो खर्चे समेत सब वसूल करूंगा । २२-२३ जून को

मुकद्दमे की पेशी रही, बहुत लोग देखने को आये थे पौराणिक के साथ कई समाजी गवाह थे, परन्तु अन्त में एक इकरारनामा दोनों तरफ से लिखा गया कि जिस में ११ पण्डित महात्मा पञ्च हुए हैं, इन की राय के ऊपर मुकद्दमा फैसला किया जायगा पं० गो० पू० श्री म० ने श्रुतिस्मृति के प्रमाण दिये हैं, उन का अर्थ लिख कर प्रत्येक विद्वान् को अपनी सम्मति लिखनी होगी अदालत से ११ कापी हो कर विद्वानों के पास भेजी जायंगी ॥

पञ्चों के नाम ॥

१ स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती काशी ॥
२ महामहोपाध्याय श्री० पं० शिवकुमार शास्त्री ।
३ महामहोपाध्याय श्री० पं० शिवदत्त शास्त्री लाहौर ।
४ पण्डितवर श्रीकृष्णशास्त्री दानाध्यक्ष पटियाला ।
५ पं० श्री ऋषिरामशास्त्री मुरादाबाद ।
६ पं० वर श्री श्रीधरशास्त्री शामना
७ श्री रामलाल शास्त्री रानी का रायपुर ।
८ श्री हरयशोराय शास्त्री हाथरस ।
९ श्री पण्डितवर भीमसेन शर्मा इटावा ।
१० श्री पं० देवदत्त शास्त्री कानपुर ।
११ श्री पं० तुलसीराम स्वामी मेरठ ।
७

१५ — वेङ्कटेश्वर के प्रेरितस्तम्भ में पत्र प्रेषक पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र
९८

दीनारपुर मुरादाबाद ने सम्मति दी है कि इतने विद्वानों के हाथ गङ्गामाहात्म्य है और कसरत राय पर फैसला है परन्तु आर्यसमाज के केवल ३ पण्डित क्या खूब !! प्रथम तो ये अभियोग अदालत के योग्य नहीं था पीछे बहुपक्ष तो वैसे ही पञ्चों में बना है आज लाखों जन विना ही शास्त्र के कहने को तयार हैं कि गङ्गा मुक्ति की दाता है परन्तु पौराणिक पण्डितों को वेद में यह दिखाना होगा कि गङ्गा को भागीरथ लाये इन के पुरखा तरे और इस के सिवाय अमुक २ अन्य वंश स्वर्ग को गये अमुक २ ऋषियों ने महिमा गाई सो प्राचीन वेदादि से दिखानी पड़ेगी तथा गन्धाक्षत पुष्प से पूजन आरती की विधि बतलानी होगी तब यह मुकद्दमा फैसल हो सकेगा खेल नहीं है कि कसरत राय हो जाय ॥

भारतसुदशा प्रवर्त्तक जुलाई सन् ९८ ई० (वाग्भूषण)

वाणीरूपी भूषण ही लोक में एक भूषण है इस के आगे स्वर्ण जैसे सुकान्त मणिमय आभूषण दूषण हैं यह वह धन है जो राजमुद्रा "सिक्का" के समान तत्काल खरे भुनाता है इस को चोर चुरा नहीं सकता डाकू लूट नहीं सकता वञ्चक धोखा दे मुट्ठी नहीं भर सकता चापलूस फुसलाकर जीत नहीं सकता न बलवान् धमका कर छीन सकता है जिस के गले में यह हार है विदेश में धनी के समान अनेक उसको आदर देते हैं। सहोदर भाई के तुल्य उस से वर्त्तते हैं। टेढ़ी राह पर चलने वालों को सीधामार्ग दिखाना शत्रुओं को मित्र बनाना बड़ी २ उलझटों को सुलझाना और छिपे विद्यारत्नों का प्रकट करना इस का परमगुण है हंसते को फूट २ रुलाने रोते हुए को खिल खिल हंसाने और रोष भरे को बरफसा ठण्ढा कर देने के लिये यह महामन्त्र है धर्म से धन कमाने की कल है अन्तःकरण से मैल निकालने का नल है दुष्टों पर जय पाने को प्रबल दल है। विवेकलता को जल देने को घना बादल है। मान की पीढ़ी और स्वर्ग की सीढ़ी है विद्वन्मण्डली का आरगन है राजसभा में बैठने का आसन है गायक, कवि, और वक्तृता देने वालों के मुंह का भूषण है वकील वारिस्टरों का भरण और पण्डित विद्वानों का आभरण है जिन को बोलना आता वेही बुद्धिमान् कहाते हैं। जो अपना मनोभाव कहने में हिचकते वे गावदी गवल्ले भोंदूदास वा बछिया के ताऊ आदि कहे जाते हैं अतएव आर्यसन्तान को बालकपने से शुद्ध व स्पष्ट बोलने का अभ्यास कराना चाहिये ॥

अधर्म अवश्य फलता है ॥

[पूर्वप्रकाशितानन्तर जून के पत्र के १२ वें पेज से आगे]

दारा के पास भी ऐसा ही जीजला सिपाही था सन् १६५७ ई० में जब दारा की औरंगजेब से लड़ाई हुई दारा बड़ी वीरता से लड़ता रहा विजय होने में कुछ देर न थी उस का हाथी घबरा गया था—उसी जीजले सिपाही ने दारा को दूसरे हाथी पर न विठाकर-उतर आने को बहुत समझाया जब दारा शिकोह उतरा त्यों ही उस ने अपनी सेना में प्रकट किया कि युवराज मारे गए। वस फिर क्या था दारा का दल उसी क्षण भाग खड़ा हुआ—औरंगजेब को विजय लाभ हुआ।

दारा को कटुवादिता रूपपाप का फल काल के उपरान्त मिला इसी प्रकार शेरशाह ने मालवा विजय करने पर वहां के राजा रायसेन के साथ कापट्य—दगा किया दुर्ग (किला) के रहने वालों से कहा तुम्हारी प्राणरक्षा रहेगी, किला खाली करदो जब वे बाहर निकले उन्हें पकड़ लिया और मारडाला। इस का फल उसी सन् अर्थात् १५४२ ई० में शेरशाह को मिलगया अर्थात् जब कालिंजर का किला घेरा और वहां वालों को भी प्राणदान के वचन पर बाहर आने को कहा उन लोगों ने उत्तर दिया कि तूने रायसेन वालों के साथ मिथ्या व्यवहार कर के पाप कमाया है. तेरा विश्वास नहीं यों कह अपनी घिरी सेना को उत्तेजित किया कि कुत्ते की मौत मरने से सम्मुख तलवार के वीरोचित मृत्यु श्रेयस्कर है यों ललकार के ऐसे गोले मारे कि शेरशाह का मेगजीन उड़गया उसी की आग से वह बड़ी वेदना से परलोक सिधारा कौरव अर्थात् दुर्योधन ने पाण्डवों को निरपराध सताया अपने चचेरे भाई युधिष्ठिर की स्त्री अर्थात् अपनी भावज को सभा के बीच में नंगा करके अपमान किया उस को अपनी जांघ पर बैठने को कहा पाण्डवों को वनवास दिया लाख के घर में देकर आग लगाई विष का भोजन खिलाया १२ वर्ष पीछे वही जांघ भीमसेन से तोड़ी गई और सारे भाइयों का प्राण उस की विद्यमानता में गया—

एक पुरुष अपने सिपाही को प्रायः गाली दिया करता था सेवक परमदीन व सहनशील था परन्तु उस का चित्त फट गया था वह एक दिन किसी गम्भीर दुःख में था. उस के स्वामी ने उस समय गालिदान किया. उसने कृपाण

होमयज्ञ

पूर्वप्रकाशितानन्तर जून के पत्र के १६ पेज से आगे

यज्ञ कार्य कर्त्ता

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धोग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः । तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणाऽआपृणध्वम् ॥ य० अ० २५ मं० २८

होता, अध्वर्यु, आवयाः अग्निमिन्ध, ग्रावग्राभ शंस्ता । ब्रह्मा, पुरोहित, उद्गाता, और यजमान ऋत्विज् आदि पुरुष यज्ञ कार्य करते कराते हैं ।

समस्त ऋत्विज् सदाचारी सुशील, विद्वान्, सच्चे आस्तिक, वेदवित्, यज्ञ कर्म को जानने वाले होने चाहिये ॥

यजमान—जो सुशील संयमी ईश्वर भक्त अपने धन व्यय से यज्ञ करता है इस को व्रती व यष्टा भी कहते हैं सोमवान् यज्ञ करने में यही दीक्षित कहाता है—

ऋत्विज्—जो ऋतु २ में होम करे । कौषीतकीशाखा में १७ ऋत्विज् कहे हैं ॥

अग्न्याधेयं पाकयज्ञा-नग्निष्टोमादिकान्मखान् ।
यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ॥
मनु० अ० २ श्लो० १४३

ब्रह्मा—चारोवेदों का ज्ञाता, यज्ञ कर्म में प्रवीण सुशील विद्वान् होता है जो कि वेदी के दक्षिण ओर उत्तराभिमुख बैठता है यज्ञ के समस्त कार्य कर्त्ता ऋत्विजों पर दृष्टि रखना इस का काम है यज्ञ कार्य में चूक पड़ने से ब्रह्मा ही उत्तर दाता होता है ॥

पुरोहित—जो यजमान का सच्चा हितैषी धर्मात्मा विद्वान् हो उसे बनाना,

यह यजमान का प्रतिनिधि भी है यज्ञ में पुरोहित वेदी के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठता है ॥

अहिंसा यज्ञ का चाहने वाला इसका उत्तर में आसन दक्षिण मुख होता है यजुर्वेद जानना इस को अवश्य है ॥

प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा, उन्नेता, ये भी अध्वर्यु की शाखा है ॥

—अग्निमिन्ध—अग्नि को काष्ठादि से प्रदीप्त करने पर ही इस की दृष्टि रह.ती है आग्नीध वा आग्नीध्र वा अग्नीध्र ये तीन नाम भी जो कि अग्नि प्रज्वलित रखने वालों के है ॥

पोता—वह पुरुष है जो यज्ञ के पदार्थों को पवित्र रखता है ।

आवयाः—दान कार्य का अधिष्ठाता होता है

ग्रावग्राभः—ग्रावन् शब्द है जिस का अर्थ मेघ व पत्थर है—जो यज्ञ कार्य में शिलवट्टा सम्बन्धी पीसने के काम का करने वाला ग्रावग्राभ होता है ग्रावाणं प्रस्तरं गृह्णाति स ग्रावग्राभः

शंस्ता—यज्ञ का प्रशंसक—

होता—यह ऋग्वेदवित्, पण्डित पूर्वाभिमुख अर्थात् वेदी के पश्चिम बैठता है विशेषतः घृताहुति देना इस का काम है कभी २ यह भी यजमान की जगह काम करता है मैत्रावरुण, अच्छावाक, ग्रावस्तुत, ये भी होता की जैल में हैं । इन के दान की गाय होती है ऐसा भी विधान शास्त्रों में पाया जाता है ॥

उद्गाता—यह सामवेद का गाने वाला होता है इस का पूर्व आसन पश्चिम मुख होता है काम पड़े पर ब्रह्मा के साथ भी स्वर भरता है अर्थात् ब्रह्मा से लगा हुआ बैठता है । प्रस्तोता प्रतिहर्त्ता सुब्रह्मण्य ये इसी उद्गाता की श्रेणी में हैं ॥

आचार्य—वेदमन्त्रों की व्याख्या करने वाला सुशील, जितेन्द्रिय, सदाचारी वेदविद्या के दान में कुशल आचार्य कहाता है

उपनीयतु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥
मनु० अ० २ श्लो० १४०